लिंग-पुराण

(प्रथम-द्वितीय खंड)

सरल भाषानुवाद सहित

सम्पादक–

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारो वेद, १०८ उपनिषद्, षट-दर्शन,
२० स्मृतियाँ और अठारह पुराणो के
प्रसिद्ध भाष्यकार।

प्रकाशक–

संस्कृति-संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली।

(उत्तर प्रदेश)

भूमिका

शैव पुराणो मे "लिंग पुराण" एक विशेष महत्त्व की रचना है। वैसे तो जनसाधारण मे "शिव पुराण" का प्रचार अधिक है, क्योंकि वह प्राय कथात्मक है और श्रोतागण उसे अपेक्षाकृत शीघ्र हृदयङ्गम कर लेते हैं। पर "लिंग पुराण" मे शैव-सिद्धान्तो का जैसा स्पष्ट विवेचन पाया जाता है वैसा अन्यत्र कम मिलता है। शिव के अव्यक्त ब्रह्म-रूप को मानकर उनसे ही समस्त विश्व के उद्भव का वर्णन इसमे बोधगम्य शैली मे किया गया है। यही वर्णन अन्य समस्त पुराणो मे भी थोडे बहुत अन्तर से मिलता है पर कई पुराणकारो ने उसको इतना विस्तृत और जटिल बना दिया है कि समझने मे कठिनाई का अनुभव होने लगता है। 'लिंग पुराण' मे उसे संक्षिप्त रूप से स्पष्टता के साथ व्यक्त किया गया है।

पुराण-कर्ता ने प्रथम अध्याय मे ही जो प्रस्तावना की है उसमे शिव को 'शब्द ब्रह्म' शरीर वाला कहा है। भारतीय वेदो, उपनिषदो तथा दर्शनो मे भी सृष्टि का आरम्भ 'शब्द ब्रह्म' से ही किया गया है। इस ब्रह्म का न कोई आकार है और न रूप है। इसलिये यदि कोई उसे स्थूल रूप मे देखने और समझने की चेष्टा करता है तो सफल नही हो सकता। पर साथ ही यह भी निश्चय है कि उनके 'शब्द ब्रह्म' वाले स्वरूप को थोडे से उच्चकोटि के विद्वानो के अतिरिक्त अन्य कोई समझ भी नहीं सकता। सामान्य बुद्धि के लोगो के लिए उसे किसी न किसी स्थूल प्रतीक के रूप मे प्रकट करना ही पडेगा। इसीलिए शिव को मूलतः "शब्द ब्रह्म के तनु वाला" कह कर साथ मे यह भी कह दिया है—

वर्णावमव्यक्त लक्षण बहुधा स्थितम् ॥

अर्थात् वे शिव भगवान 'अव्यक्त' भी है और "अनेकों रूपो में प्रकट" भी है। ससार के अन्य सभी धर्मों ने भगवान को केवल एक ज्योति अथवा दिव्य-शक्ति के रूप मे माना है, और कुछ उसे आकाश मे स्थित सर्व शक्तिमान पुरुष के रूप मे वर्णित करते हैं, पर भारतीय मनीषियो ने प्रत्येक स्थान पर भगवान के तीन रूपो का वर्णन किया है व्यक्त, अव्यक्त और व्यक्ताव्यक्त। 'लिंग पुराण' मे इसी भाव को शिव की तीन मूर्तियो मे बतलाया है—अलिंगी, लिङ्गी और लिंगालिंगी—

अलिंग चैव लिंगं च लिंगालिंगानि मूर्तय: ॥

अर्थात् "वे भगवान अलिंग (चिन्ह रहित) है, लिंग (चिन्ह अथवा रूप युक्त) भी हैं और इस प्रकार वे लिंगालिंगी (अव्यक्त और व्यक्त) दोनो है। ये तीनो ही भाव मूर्तियाँ भगवान शिव की हैं।"

यद्यपि भगवत्-शक्ति की यह कल्पना बहुत सूक्ष्म और परिश्रम साध्य है, पर आज यही आधुनिक विज्ञान की खोजो के सामने यथार्थ सिद्ध हो रही है। ईसाई धर्म के ईश्वर का स्वरूप तो, जिसे मानवाकार बतलाया गया था और कहा गया था कि आज से छ: सात हजार वर्ष पहले उसने "आदम और हव्वा" को बनाकर सृष्टि-रचना का श्रीगणेश किया, अब योरोप अमरीका के देशो मे 'बच्चो की कहानियो' की तरह माना जाता है। पर पुराणो मे सृष्टि के क्रम-विकास का हिसाब, विज्ञान की तरह अरबो-खरबो वर्ष का ही लगाया गया है। लिंग पुराण के "कालमान और ब्रह्माण्ड" निरूपण अध्याय मे युगो, मन्वन्तरो और कल्पो का हिसाब बतलाते हुए कल्प का परिमाण इस प्रकार कहा है—

कोटीनां द्वे सहस्रे तु अष्टौ कोटि शतानि च।
द्विषष्टिश्च तथा कोट्यो नियुतानि च सप्तति: ॥

कल्पार्ध संख्या दिव्या वैकल्प मेवं तु कल्पयेत्।
कल्पानां वै सहस्रं तु वर्षमेकं मजस्य तु ॥

"दिव्य कल्पार्ध का परिमाण दो हजार आठ सौ बासठ करोड़, सात लाख वर्ष होना है। कल्प इससे दुगुना होता है और ब्रह्मा के एक वर्ष मे ऐसे एक हजार कल्प होते हैं।"

ये सख्याएँ निस्सन्देह मानव-मस्तिष्क को लड़खडा देने वाली है। कहाँ तो योरोप अमरीका के विद्वान् भी चार-पाँच सौ वर्ष पहले पृथ्वी को पाँच छ हजार वर्ष पुरानी मानते थे, और आज भी इसे अधिक से अधिक दो अरब पुरानी जान सके हैं, और कहाँ हमारे पुराणकार ईसा के जन्म के समय ही "पृथ्वी के इतिहास" की गणना खरबो वर्षों में कर रहे थे। पर इसमे अविश्वास की कोई बात नही। प्रत्येक ज्ञानी व्यक्ति इस बात को समझता और स्वीकार करता है कि देश तथा काल अनन्त है। यह पृथ्वी, इसी के समान अन्य लाखो पृथ्वियाँ और सूर्य भी समय-समय पर बनते-बिगडते रहते हैं। सृष्टि और प्रलय का क्रम निरन्तर चलता रहता है। अगर हम अपने दिमाग मे 'अनन्त' की कल्पना कर सकते हो तो उसकी तुलना मे अरब और खरब की सख्याएँ भी बिल्कुल छोटी है।

इसीलिए पुराणो मे काष्ठा तथा पल से लेकर कल्प तक का हिसाब बतलाकर मनुष्यो की बुद्धि मे यह तथ्य बैठाने की चेष्टा की गई है कि भगवान की इस रचना का कभी अन्त नही होता। अरब, खरब और उससे भी अधिक पद्म और सङ्ख तक की सख्या व्यतीत हो जाने पर भी वह कायम रहती है। हाँ, उसका रूप सदैव बदलता रहता है। अगर समस्त विश्व की दृष्टि से विचार किया जाय तो प्रत्येक क्षण इसमे बडे-बडे परिवर्तन होते रहते हैं। वैज्ञानिको का दो अरब वर्ष का हिसाब तो तब से चलता है जब कि पृथ्वी सूर्य से पृथक होकर एक जलते हुए पिण्ड के रूप में आई। पर पुराणो का हिसाब उस समय से चलना है जब सूर्य भी न था और मूल प्रकृति में से महत् तत्व का आविर्भाव होने लगा था।

यह सच है कि पुराणकारो ने कई तरह के हिसाबों को मिला जुला दिया है और अचैतन्य और स्थावर पदार्थों का वर्णन भी वर्तमान प्राण-धारी जीवो के समान ही किया है। कारण यह कि अशिक्षित तथा अल्प विकसित बुद्धि वाला जन-समुदाय भी इससे थोडा बहुत समझ सकें। अन्यथा यदि हम उस वर्णन मे काम लाये गये अलङ्कारिक शब्दो के वास्तविक अर्थों पर विचार करें तो मालूम पड जाता है कि यह वर्णन उस समय का है जब मनुष्य क्या पेड और पौधे भी उत्पन्न नही हुये थे। 'लिंग पुराण' में इस सृष्टि-विज्ञान पर बहुत अच्छी तरह प्रकाश डाला गया है, जिससे विदित हो जाता है कि संसार मे हमको जो विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है, मनुष्यों मे धर्म, जाति, सम्प्रदाय, समुदाय, वर्ग, गोत्र आदि का जितना भी भेद प्रतीत होता है, वह सब हमारा ही कल्पित है। अन्यथा अगर 'मूल दृष्टि' से विचार किया जाय तो मनुष्य मात्र ही नही प्राणी मात्र उसी प्रकार एक है जिस प्रकार एक मुट्ठी भर रेत के समस्त कणो मे कोई अन्तर नही दिखलाई देता। अथवा एक घडा जल मे से प्रत्येक बूँद तत्व की निगाह से एक सी ही होती है।

खेद की बात है कि अपने को पक्के धर्मात्मा' और सच्चे 'सनातनी' समझने वाले व्यक्ति पुराणो मे केवल कथाओ और उपाख्यानो पर ही ध्यान देते हैं, पर उनमे वर्णित सृष्टि-विज्ञान, तत्व-विभाग, प्राणियो का विकास, मानवीय शक्तियो की क्रमश वृद्धि आदि को समझने की चेष्टा कभी नही करते। यदि वे ऐसा करते तो विरोधियो द्वारा "मिथ्या कल्पना" बताये जाने वाले इन पुराणो से ही वह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता था, जिससे इस जगत् और मानव-जीवन का यथार्थ स्वरूप सहज मे ज्ञात हो जाता। धर्म और अध्यात्म का वास्तविक सार यही है कि मनुष्य संकीर्ण दृष्टि को त्याग कर प्राणीमात्र से आत्मीय भाव अनुभव करे। भारतीय मनीषियो ने इसी तथ्य को समझाने के

लिये "आत्मवत् सर्व भूतेषु य पश्यति स पण्डित" की उक्ति को उद्-घोषित किया है।

पञ्चतत्वो का महान् सिद्धान्त—

इस जगत मे जितने बडे से बडे और छोटे से छोटे पदार्थ देखने मे आते हैं वे सब पञ्च-भूतों के खेल है। वेद तुल्य समझे जाने वाले सस्कृत ग्रन्थो से लेकर तुलसी रामायण तक मे 'छिति, जल, पावक, गगन, समीरा"—कह कर इन पाँच तत्वो को ही मानव जीवन का आधार बताया गया है। इसका विवेचन करते हुए 'लिंग पुराण' मे कहा है—

"अहङ्कार से शब्द तन्मात्र और उससे अव्यय आकाश हुआ। आकाश से स्पर्श तन्मात्र और उससे वायु हुआ। वायु से रूप तन्मात्र और उससे अग्नि तत्व हुआ। अग्नि से रस तन्मात्र और उससे जल हुआ। जल से गन्ध तन्मात्र और उससे धरा हुई।"

यह पाँच तत्व का सिद्धान्त भारतीय मनीषियो को हजारो वर्ष पूर्व ज्ञात था और उन्होने इसका विस्तार पूर्वक विवेचन किया था। पर आधुनिक वैज्ञानिको ने अपने ढङ्ग से खोज करके तत्वो की सख्या ९० के ऊपर पहुँचा दी। इस पर अनेको विदेशी लेखक भारतीय शास्त्रो के पाँच तत्व वाले सिद्धान्त की हँसी उडाने लगे। पर उनका विज्ञान तो हर रोज बदलने वाला है। इसलिये पिछले चालीस पचास वर्षों मे जैसे-जैसे अणु सिद्धान्त का ज्ञान बढता गया, वैसे ही ९० तत्व वाले सिद्धान्त का खोखलापन प्रकट होता गया। एक भारतीय लेखक ने पाँच तत्वो के सिद्धान्त की पुष्टि करते हुये लिखा है—

"भारतीय शास्त्रो मे केवल पाँच तत्वो का ही वर्णन है और उनमे से एक तत्व जल है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने अपनी खोजों के आधार पर कहा कि जल तो कोई मौलिक तत्व नही है। यह तो दो

प्रकार की वायु रूपी गैसों अर्थात् 'हाइड्रोजन' और 'ऑक्सिजन' के मिलने से बनता है। इसलिये जल एक मिश्रित पदार्थ है और इसको 'तत्त्व' कहना भूल है। जल तत्त्व के असली तात्पर्य को तो उन्होंने समझा नहीं और चूंकि साधारण जल दो भिन्न-भिन्न तत्त्वों से बना है, इसलिये वे इस बात को लेकर ही उड गये कि प्राचीन लोग कितने बेवकूफ थे कि उन्होंने जल को तत्त्व घोषित कर दिया। इस मनोवृत्ति के कारण उनको अपने अन्वेषण और प्राकृतिक ज्ञान पर गर्व भी होने लगा कि प्राचीन प्रणाली में तो लोग केवल पाँच ही तत्त्वों को जानते थे, पर हमने तो ८०-९० तत्त्वों का पता लगा लिया। पर हम बतायेंगे कि इस मनोभाव में कितनी भारी भूल भरी है। हम यह भी सिद्ध करेंगे कि पाँच ही तत्त्वों द्वारा प्राचीन ऋषिगण प्राकृतिक रहस्यों में कितनी गहराई तक पहुच गये थे और ८०-९० तत्त्वों को जानते हुये भी आज के वैज्ञानिक किस प्रकार प्राकृतिक ज्ञान-सागर के एक किनारे पर ही सतह पर हिलोरे खा रहे हैं।"

"वास्तव में तत्त्व पाँच ही हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। इनमें से प्रत्येक तत्त्व का एक विशेष गुण होता है जिसे 'तन्मात्रा' कहते हैं। ऋषियों के सिद्धान्तानुसार पहले पाँच सूक्ष्म तन्मात्राओं की सृष्टि हुई, जिन्हे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध कहते हैं। फिर इन तन्मात्राओं के अनुकूल पाँच स्थूल तत्त्वों की सृष्टि हुई। इसलिये साधारणतः इन तन्मात्राओं अथवा 'महाभूतों' का तत्त्वों के गुणों के रूप में वर्णन किया जाता है, पर इस बात को सदैव स्मरण रखना चाहिये कि भारतीय सृष्टि विज्ञान के अनुसार पहले सूक्ष्म तन्मात्राओं का आविर्भाव होकर बाद में स्थूल तत्त्वों की रचना हुई। सबसे पहले आकाश की उत्पत्ति हुई उसके बाद आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। इससे समझा जा सकता है कि एक समय ऐसा था जब पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु का अस्तित्व न था केवल आकाश ही आकाश था। इसी प्रकार पृथ्वी तत्त्व

की सृष्टि के पहले सब कुछ जलमय ही होगा, हाँ उसके ऊपर वाले तत्व अर्थात् अग्नि, वायु और आकाश भी वर्तमान होगे, पर पृथ्वी-तत्व न होगा।"

इस प्रकार हमारे शास्त्र वैज्ञानिको से आगे बढ कर कहते हैं कि पाँच तत्वो से अभिप्राय दृष्टिगोचर विभिन्न प्रकार के पदार्थों से नही है, वरन् उनकी मूल अवस्था से है। पृथ्वी-तत्व से मतलब रङ्ग-बिरङ्गी मिट्टी से नही बल्कि पदार्थों की ठोस अवस्था से है। वैसे ही अपस् अथवा जल तत्व से अभिप्राय पानी से नही, बल्कि पदार्थों की तरल अवस्था से है। यही बात अग्नि और वायु के सम्बन्ध मे समझनी चाहिये। आकाश के सम्बन्ध मे तो, जो सबसे अधिक सूक्ष्म तत्व है, अभी वैज्ञानिक विशेष पता भी नही लगा सके हैं।

पर वैज्ञानिको ने दूसरी शङ्का यह उठाई कि जिस प्रकार प्राचीन समय मे पञ्च भूतो और उनके गुणो का वर्णन किया गया है, उससे तरल और वायवीय पदार्थों मे किसी प्रकार की गन्ध नही होनी चाहिये थी। पर हम तेजाब, मिट्टी का तेल आदि तरल पदार्थों मे तथा 'क्लोरीन' 'एमोनिया' आदि गैसो मे तीव्र गन्ध पाते हैं, इसका क्या कारण है? सामान्य दृष्टि से यह शङ्का उचित जान पडती है, पर जब हम इस विषय मे 'लिंग पुराण' के विवरण पर ध्यान देते हैं तो सहज मे उसका निराकरण हो जाता है—

"स्पर्श मात्र आकाश को आवृत करता है और रूप मात्र को क्रियात्मक वायु वहन करता है। अग्नि-तत्व ने रस मात्र को आवृत किया है। तथा सर्व रसात्मक जल गन्धमात्र को आवृत्त किये हुए है। इस प्रकार यह भूमि पाँचो तत्वो के गुण अर्थात् गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द गुण वाली होती है। जल चार गुण वाला होता है, अग्नि तत्व में तीन गुण होते हैं, वायु में दो और आकाश केवल एक अर्थात् शब्द गुण वाला होता है।"

पञ्च तत्वों का भण्डार उतना ही नही है जितना हमको दिखाई पड़ता है । उनकी अधिकता का वर्णन करते हुए पुराणकार कहते हैं—प्रत्येक विश्व या ब्रह्माण्ड के चारो ओर उससे दश गुना जल होता है जिससे वह आवृत रहता है । जल से दश गुना तेज होता है जिस ने जल को आवृत्त कर रखा है । तेज से दश गुनी वायु और वायु से दश गुना आकाश है, जिन्होने इस अण्ड को इसी क्रम से बाहिर से आवृत्त कर रखा है । ऐसे-ऐसे अण्ड करोडो-करोडो अयुत है । उन ब्रह्माण्डो मे से प्रत्येक में पृथक ब्रह्मा, विष्णु, और रुद्र भी होते हैं ।"

आधुनिक वैज्ञानिको ने जब से भीमकाय दूरबीनें, जिनमे से किसी-किसी का वजन १० हजार मन भी है, बनाकर अन्तरिक्ष का निरीक्षण करना आरम्भ किया है, तब से वे भी यही कह रहे है कि आकाश मे सौर-लोकों और ब्रह्माण्डों की कोई गिनती नही है । जितनी अधिक शक्तिशाली दूरबीने बनती जाती हैं, उतने ही अधिक नये-नये सूर्य दिखाई पडते जाते हैं । इनमे से कितने ही तो इतनी दूर हैं कि जो प्रकाश एक मिनिट मे लगभग एक करोड मील की गति से चलता है वह उन पिण्डो तक पचास लाख वर्ष में नही पहुच पाता । उनका यह कथन आकाश के अनन्त स्वरूप का कुछ अनुमान करा सकता है ।

शैव-सिद्धान्त की महत्ता—

जो लोग साम्प्रदायिक मतभेद के कारण एक दूसरे पर दोषारोपण किया करते हैं, उस मनोवृत्ति को त्यागकर अगर हम "लिंग पुराण" में वर्णित शैव-सिद्धान्त पर विचार करते हैं, तो हम कह सकते हैं उसके नियम और उपदेश सामान्य मनुष्यो के लिये कल्याणकारी ही हैं । उसमे धर्म के जिस स्वरूप को प्रतिपादित किया गया है, उसमें कोई जटिलता नही है वरन् वह प्रत्येक मनुष्य का सहज कर्तव्य ही है । उसमे यह प्रश्न उठाकर कि भगवान शिव किस प्रकार के पुरुषो पर प्रसन्न हुआ करते है सत्पुरुषो के लक्षण इस प्रकार बतलाये हैं—

"जो अपने आपको सयम मे रखने वाले, धर्म का ध्यान रखने वाले, परम दया वाले, तपस्वी, सन्यासी, विरक्त, आत्मा के वश मे रखने वाले ज्ञानी पुरुष होते है, उन्ही पर भगवान् महेश्वर प्रसन्न होते हैं। जो दानी, सत्य भाषण करने वाले निस्पृह और श्रुति तथा स्मृति के ज्ञाता होते है और श्रौत तथा स्मार्त धर्मो मे कोई विरोध उपस्थित नही करते, उन पर प्रभु शिव प्रसन्न रहा करते। 'सत्' शब्द ब्रह्म का वाचक है, जो महा पुरुष उसके अन्त तक पहुच जाते हैं वे ही 'सन्त' कहे जाते है। दश इन्द्रियो द्वारा साध्य विषयो मे और आठ प्रकार के पहले बताये हुए ऐश्वर्यों मे वे लोग कभी भी हर्ष और क्रोध नही किया करते हैं। इसी से वे 'जितात्मा' होते हैं। श्रुति और स्मृतियो द्वारा प्रतिपादित धर्म का पूर्ण ज्ञान होने पर पुरुष धर्मज्ञ माना जाता है। विद्या की साधना करने वाला साधु होता है और गुरु का हित करने के कारण ब्रह्मचारी कहा जाता है। क्रियाओ के साधन करने से गृहस्थ भी 'साधु' बन जाता है। अरण्य मे तप की साधना के कारण वैखानस (स यासी) भी 'साधु' कहा गया है। इसी प्रकार योग का साधन करने वाला यति 'साधु' कहा गया है। इस प्रकार अपने-अपने आश्रमो का साधन करने से ही सब 'साधु' कहे गये है, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और यति ये चार आश्रम होते है। ये आश्रमो के वाचक शब्द क्रियात्मक होते है, जिनसे उनके धर्म और अधर्म का भी ज्ञान हो जाता है। 'कुशल' अर्थात् कल्याणकारी कर्म को धर्म और अकुशल (अकल्याणकारी) कर्म को ही अधर्म समझना चाहिए।"

"लिङ्ग पुराण" ने धर्म और अधर्म की जो व्याख्या की है वह बहुत स्पष्ट और बोधगम्य है। धर्म का निर्णय केवल किन्ही साम्प्रदायिक विधि-विधानो या धर्म ग्रन्थो के आधार पर ही नही किया जा सकता। इस प्रकार के बहुत से विधान या धार्मिक नियम देश-काल के बदल जाने से अनुपयोगी अथवा हानिकारक भी हो जाते है। उदाहरण के लिए बाल-विवाह और पर्दा की प्रथा मुसलमानी शासन काल मे

यातनाइयो से बहू-बेटियो की रक्षा के लिए प्रचलित करनी पड़ी थी। यद्यपि वह हानिकारक ही थी तो भी समय की गति को देखकर उसे 'धर्म' मान लिया गया। पर अब जब वह शासन समाप्त हो गया और उस तरह स्त्रियो को छीन लेना बन्द हो गया तो उसे प्रचलित रखना अनावश्यक ही नही अनुचित भी है, क्योकि उससे समाज की प्रत्यक्ष रूप मे हानि हो रही है। इसलिए 'धर्म' वास्तव मे उसी को कहा जा सकता है जो कल्याणकारी हो। अकल्याणकारी अथवा हानिकारक रीति-रिवाजो को 'धर्म' के नाम से पुकारना भूल है।

इसी प्रकार उपर्युक्त उदाहरण मे जो यह कहा गया है कि मनुष्य प्रत्येक अवस्था मे 'साधु' बन सकता है, वह भी एक बडा महत्व-पूर्ण उपदेश है। हमारे यहाँ के बहुत से लोग जिनकी रुचि सत्कर्मों की ओर नही है, प्राय: यह बहाना बनाया करते हैं कि हम तो विद्यार्थी हैं, लडके हैं, अथवा हम तो गृहस्थ है बाल-बच्चो का निर्वाह बडी कठिनाई से कर पाते हैं, अतएव हम लोग परोपकार, परमार्थ के कार्यों के लिये समय और साधन कहाँ से पा सकते हैं? पर 'पुराणकार' का मत है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी भी आश्रम मे रह कर साधना करता हुआ, अपना कर्तव्य सचाई से पालन करता हुआ 'साधु' की पदवी का अधि-कारी बन जाता है। जिसको सत्कर्मों की लगन होगी, जिसके हृदय मे परोपकार की, सेवा धर्म की भावना होगी उसे ऐसे कार्यों के लिए समय और साधन अवश्य मिल जायेंगे। जिसने इस तथ्य को समझ लिया है कि बिना परोपकार की भावना के मनुष्य कदापि 'धार्मिक' कहलाने का अधिकारी हो ही नही सकता वह अवश्य उसके लिये साधन भी ढूँढ लेगा।

सच्चे ब्राह्मण की श्रेष्ठता—

राजा क्षुप और दधीच ऋषि के विवाद के रूप मे जो कथा कही गई है उससे सिद्ध होता है कि सच्चे ब्राह्मण का लक्षण सेवा-धर्म और परोपकार होता है और घास फूस की कुटी मे रहने वाला लोक-सेवी

ब्राह्मण बडे-बडे राजाओ और वैभवशालियो की अपेक्षा अधिक पूजनीय है। राजा क्षुप का ब्रह्मा का पुत्र कहा गया है और वह बडा वीर तथा वैभवशाली था। च्यवन ऋषि के पुत्र दधीच के साथ उसकी बहुत अधिक मित्रता थी। एक बार किसी प्रसगवश उनमे यह विवाद छिड गया कि क्षत्रिय और ब्राह्मण मे से कौन अधिक श्रेष्ठ है। क्षुप के कथनानुसार राजा मे आठो लोकपालो का अ श होता है, इसलिये उसे इन्द्र, अग्नि, यम निऋ ति, वरुण, सोम और कुबेर के सदृश्य ही मानना चाहिये। विष्णु का अ श होने से ब्राह्मण को भी उनका सदैव सम्मान करना चाहिए। उधर दधीच सच्चे ब्राह्मण की अपेक्षा किसी को बडा मानने को तैयार न था।

इन दोनो का विवाद इतना बढ गया है उसने एक घोर सग्राम का रूप धारण कर लिया। क्षुप को भगवान् विष्णु की सहायता प्राप्ति थी और दधीच ने शिव से वज्राग होने का वरदान प्राप्त कर लिया था। इसलिये इस सगाम मे विष्णु के सहित सभी देवताओ को पराभूत होना पडा। अन्त मे राजा क्षुप ने अपनी न्यूनता स्वीकार करके दधीच की स्तुति की और ब्राह्मण को ही सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया, तब शान्ति स्थापित हो सकी। उसके पश्चात् दधीच ने कहा—

देवैश्च पूज्या राजेन्द्र नृ पैश्च विविधैर्गणैः ।
ब्राह्मणा एव राजेन्द्र बलिनः प्रभविष्णवः ॥
इत्युक्त्वा स्वोटज विप्रः प्रविवेश महाद्युतिः।
दधीचमभिवर्द्य व जगाम स्व नृपः क्षयम् ॥

अर्थात् "देवो के द्वारा, नृपो के द्वारा तथा अन्य सब व्यक्तियो के द्वारा ब्राह्मण सम्मान के योग्य और अधिक शक्तिशाली होता है। इतना कहकर वे महा तेजस्वी मुनि अपनी कुटिया मे प्रवेश कर गये और राजा उनकी वन्दना करके अपने नगर को चला गया।"

इस प्रकार पुराणकार ने शिव और ब्राह्मणकी श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। पर साथ ही साथ उन्होंने यह भी बता दिया है कि युद्ध में पक्षपाती समस्त देवताओं के सहित विष्णु तक को भी हटाने वाला वह दधीच ब्राह्मण गरीब लोगों की तरह एक बहुत साधारण कुटी में रहता था और राजा द्वारा पूजे जाने के पश्चात् भी वह उसी में रहा। उसमें जो कुछ तेज था, बल था, वह इसी त्याग और तपस्या का था। जिसको धन की इच्छा ही नहीं, और जिसने त्यागमय जीवन को ही आदर्श मानकर अपना रखा है वह बड़े पदवीधारी और वैभवशाली व्यक्तियों से क्यों दब सकता है? क्योंकि जितने धनवान् और बड़ी-बड़ी जमीन, जायदाद वाले व्यक्ति होंगे वे अवश्य ही अपने स्वार्थ के लिए प्रयत्नशील होंगे, जब कि सच्चा ब्राह्मण जिसने संसार के भोगों को स्वेच्छा-पूर्वक त्याग रखा है और अपना जीवन परोपकार के लिए अर्पण कर रखा है, परमार्थ का पथिक होगा। यदि स्वार्थी को परमार्थी से अधिक श्रेष्ठ मान लिया जाय तो यह सत्य और न्याय का विपर्यय-पतन ही माना जायगा। दधीच कितने अधिक परोपकारी थे यह इससे जाना जा सकता है कि देवताओं से इतना विरोध हो जाने पर भी जब देवराज इन्द्र को वृत्रासुर को मारने के लिए वज्र बनाने की आवश्यकता पड़ी तो उन्होंने अपनी हड्डियाँ भी उनको दे दीं। दधीच का यह अस्थि-दान भारतीय धार्मिक साहित्य की एक अमर कथा है।

चारों युगों का सच्चा स्वरूप —

पुराणों में जगह-जगह सतयुग, त्रेता आदि के विषय में जो उपाख्यान कहे गये हैं, उनसे ऐसा प्रकट होता है कि उन युगों में सब प्रकार की कलाओं तथा ज्ञान की बहुत अधिक वृद्धि हो गई थी और लोग तरह-तरह की सुख प्रद और शोभाजनक वस्तुओं का व्यवहार करते थे। पर 'लिङ्ग पुराण' में दिए गये 'चारों युगों का लोक धर्म' अध्याय में

उन युगो की परिस्थिति का जो वर्णन मिलता है उससे विदित होता है कि उस युग के मनुष्य अथवा इतर प्राणी, जो भी उस समय रहे हो, वे कृत्रिम पदार्थों और खान-पान से सर्वथा परे थे। वे प्रकृति की गोद मे पलते थे और जीवन के अन्तिम क्षण तक, वह जैसे भी रखे उसी तरह रहते थे। उस अध्याय का साराश इस प्रकार है—

"सतयुग के प्राणी परम तृप्त थे और उनमे ऊँच-नीच का तनिक भी अन्तर नही था। उन सबकी आयु समान होती थी और रूप भी एक-सा ही था। उनको ठण्ड गर्मी से कष्ट नही होता था। वे प्राणी पर्वत और समुद्र मे निवास करते थे, किसी का कोई घर या आश्रय स्थल नही होता था। उनमे किसी प्रकार का शोक नही था और सत्व गुण की प्रधानता होती थी। वे अधिकतर एकान्त मे रहने वाले थे। वे निष्काम कर्मशील थे। उनकी स्वर्ग और नरक के कारण, स्वरूप कर्मों मे प्रवृत्ति नही थी। उस समय वर्णाश्रम की कोई व्यवस्था नही थी और न कोई 'वर्णशङ्कर' होता था।"

यदि इस वर्णन की भली-भाँति विवेचना की जाय तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुचेंगे कि उस समय के प्राणी वर्तमान मनुष्यो से अधिकाश में भिन्न थे। जो बिना घर के रह सकें, जिनके कोई परिवार या बाल-बच्चे न हो, जो सर्दी गर्मी से प्रभावित न होते हो, जो पर्वतो के नीचे या समुद्र के किनारे ही दिन-रात और प्रत्येक मौसम मे गुजर कर लेत हो उनको यदि मनुष्येतर प्राणी या आदिम-मानव कहा जाय तो इसमे कोई अनौचित्य नही समझा सकता। वास्तव मे जिस समय प्राणी की आवश्यकताएँ अत्यन्त सीमित थी और सख्या कम होने से प्राकृतिक-आहार के लिए किसी तरह का सघर्ष नहीं करना पडता था, उसे यदि यदि "कल्प वृक्षो का युग" कहा जाय तो वह ठीक ही है।

त्रेता मे यह स्थिति कुछ बदली और जनसख्या बढ जाने से निर्वाह के साधनो को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न और कुछ सघर्ष भी

होने लगा। उस परिस्थिति का वर्णन करते हुए पुराणकार ने लिखा है—

"त्रेता नामक युग में काल-प्रभाव से आहार के लिए रस का मिलना बन्द हो जाता है। पर उस समय एक नई सिद्धि (साधन) उत्पन्न हो जाती है। उस समय जल मेघ का रूप धारण कर बरसने लगता है। उसके प्रभाव से पृथ्वी मे ऐसे वृक्ष उत्पन्न हो गये, जिनसे प्राणियो के लिए निवास और आहार दोनो की व्यवस्था हो गई है। पर तब प्राणियो मे आपा-धापी का भाव उत्पन्न होने लगा और कुछ समय पश्चात् वे वृक्ष नष्ट हो गये। फिर जब लोग राग-द्वेष त्यागकर उन वृक्षो का ध्यान करने लगे तो वे प्रादुर्भूत हो गये। उन वृक्षो से ही उस समय की प्रजा को आहार, वस्त्र, आभूषण सब कुछ मिल जाता था। उनके प्रत्येक 'पुटक' मे गंध, वर्ण, रसयुक्त मधु उत्पन्न होता था, उसका उपभोग करके वे सब लोग बडे सुखी और दीर्घायु होते थे।

"इस प्रकार जब बार-बार वे कल्प-वृक्ष उत्पन्न हुए और फिर नष्ट हो गये, तो लोग अपने रहने के लिये अन्य प्रकार के साधन तलाश करने लगे। तब शारीरिक स्वास्थ्य मे अन्तर पड जाने से वे गर्मी, वर्षा और जाडे का कष्ट भी अनुभव करने लगे। अत. वे वल्कल, चर्म आदि से अपनी देह को ढकने लगे और गुफाओ मे रहने लगे। इसके पहले वे बिना आश्रय-स्थल वाले स्वेच्छाचारी थे और चाहे जहाँ रहा करते थे। पर फिर वे यथायोग्य प्रेम-पूर्वक इन गुफाओ के घरो मे रहने लगे। इस प्रकार उन्होने वर्षा, धूप आदि से बचने की व्यवस्था कर ली, पर आहार के सम्बन्ध मे बडी चिन्ता उपस्थित हो गई, क्योकि मधु उत्पन्न करने वाले सब वृक्ष नष्ट हो गये थे।"

"फिर त्रेता युग मे एक नई सिद्धि उत्पन्न हुई। वर्षा के जल से से नदी, नालो का प्रादुर्भाव होने लगा और उनका भूमि से सम्पर्क होने से बिना जोते-बोये चौदह प्रकार की वनस्पतियो तथा फूलो से युक्त

झाड़ियाँ आदि उत्पन्न हुईं। तब लोग इन्हीं वनस्पतियों को खाकर निर्वाह करने लगे। जब वे राग और लोभ के कारण इन वनस्पतियों को भी मनमाने ढङ्ग से ग्रहण करने लग गये तब वे भी नष्ट हो गईं। इसके पश्चात् हल चला कर तथा पृथ्वी में से जल निकाल कर खाद्य-पदार्थ उत्पन्न कर सकने का ज्ञान लोगों को हुआ, और उसी से वे जीवन धारण करने लगे। इस तरह लोगों के पास जब अधिक सामग्री संग्रह होने लगी तो अनेक लोग बलपूर्वक दूसरों के पदार्थों, स्त्री, पुत्र आदि का अपहरण करने लग गये। जब विष्णु ने यह दशा देखी तो लोक-रक्षार्थ क्षत्रिय वर्ण का प्रादुर्भाव किया। ब्रह्माजी ने ही उस समय समाज की व्यवस्था के लिए वर्णों और आश्रमों की प्रतिष्ठा की। त्रेता में ही यज्ञों का क्रम चला। उस समय पशु-यज्ञ नहीं किया जाता था, तब ऋषिगण अहिंसक यज्ञ की ही प्रशंसा किया करते थे। द्वापर में लोगों में विचार भिन्नता बहुत बढ़ गई, पर भाषा की त्रुटियों से उनको भाव प्रकाशन में बड़ी कठिनाई होती थी। द्वापर में ही लोगों में तरह-तरह के रोग, नौकरी और व्यापार सम्बन्धी झगड़े, अभियोग आदि की वृद्धि होने लगी, वर्ण-संकरता उत्पन्न हुई और जो वेद त्रेता में एक था उसको चार भागों में बाँटा गया।"

पाठक देख सकते हैं कि 'लिंग पुराण' में मानव-जाति और समाज के विकास का कैसा बुद्धि-संगत वर्णन किया गया है, जो लोग प्राचीन ग्रन्थकारों पर सदा 'गप-शप' लिखने का ही आरोप लगाया करते हैं, उनमें स्वयं ही खोज करने की प्रवृत्ति और निष्पक्ष भाव से वास्तविकता तथा कवि कल्पना को पृथक कर सकने की योग्यता का अभाव होता है। जब वर्तमान काल का कोई कवि रामचन्द्रजी के ब्याह और बरात का वर्णन करेगा तो वह उसमें वैसी ही सजावट और शोभा का वर्णन करेगा जैसी आजकल बड़े राजाओं की बरात में दिखाई पड़ती है। पर 'लिङ्ग पुराण' के वर्णन से प्रकट होता है कि उस समय लोग खेती करने ही लगे थे और वस्त्रों तथा बर्तनों आदि का अस्तित्व

भी न था। पर कवियो ने उनका वर्णन वर्तमान काल के अनुरूप ही किया है जिससे पाठक स्वाभाविक रूप से उनको पढ सकें और उनमे अनुकरणीय शिक्षाएँ ग्रहण कर सकें। पर विद्वानो की जानकारी के लिये वे बीच-बीच मे यह सकेत भी कर देते हैं कि ये कथाएँ सत्य और कल्पना का मिश्रण हैं। वर्तमान समय मे ऐसी कथाओ के सर्व-श्रेष्ठ रचयिता गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने जगत् प्रसिद्ध "राम-चरित मानस" के आरम्भ में ही स्पष्ट लिख दिया है—

नाना भाँति राम अवतारा।
रामायण सत कोटि अपारा॥
कलप भेदि हरि चरित सुहाए।
भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी।
सुन मुनि बरनी कविन्ह घनेरी॥

प्रत्येक युग और कल्प मे जब जैसी परिस्थिति होती है भगवान् का उसी रूप में अविर्भाव होना है। मनीषी लोग इनका वर्णन सक्षेप मे बतला देते हैं और कविगण उसमें कल्पना और अलकृत भाषा का सयोग करके लोकरजिणी कथा प्रस्तुत कर देते हैं। यदि वे ऐसा न करें तो सामान्य पाठक उसे न तो रुचि पूर्वक पढ सकेंगे और न उससे कोई उपयोगी शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे। पर लिङ्ग पुराणान्तर्गत 'विभिन्न युगो मे लोक धर्म' विषयक वर्णन से हम जान सकते हैं कि सभ्यता, सस्कृति, समाज, सङ्गठन और रीति-रिवाजो का उद्गम और प्रचलन काल की परिस्थितियो के अनुसार क्रम से ही हुआ है, उसमे चमत्कार जैसी कोई बात नही हुई।

सूर्य का स्वरूप और महत्व—

प्राचीन काल मे जब दूरबीन के सदृश्य कोई यन्त्र मनुष्यो के पास न था और यात्रा सम्बन्धी कठिनाइयो के कारण पृथ्वी के आकार

श्रौर विस्तार की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त नही की जा सकी थी, उस समय भूगोल और खगोल के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा जाता था वह अनुमान के आधार पर ही होता है, जिसमे बहुत सी भूलें रह जाती थी। योरोप के विद्वान् पाँच, सात सौ वर्ष पहिले मिश्र देश (ईजिप्ट) के पास समुद्र का अन्त मानते थे और जिब्राल्टर (स्पेन) को 'पृथ्वी का अन्तिम छोर' कहते थे। जब कोलम्बस ने अटलांटिक महासागर को पार करके अन्य महाद्वीप की खोज का प्रस्ताव किया तो स्पेन के विश्व-विद्यालय के आचार्यों तथा वहाँ के राजा ने कहा कि 'अगर पृथ्वी गोल है और इसके दूसरी तरफ भी भूमि है तो क्या वहाँ मनुष्य उलटे लटक कर चलते होगे? क्या वहाँ पेडो की जड ऊपर की तरफ और डालियाँ तथा पत्ते नीचे की तरफ होगे?' पृथ्वी और ग्रहो की गति के सम्बन्ध मे भी वहाँ ऐसे ही भ्रम फैले हुए थे। जब खगोल शास्त्री गैलीलियो ने कहा कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है और सब ग्रह सूर्य के आकर्षण से आकाश में गति शील रहते हैं, तो उसे 'नास्तिक' कह कर जेल-खाने मे बन्द कर दिया, क्योकि ये बातें उनकी धर्म पुस्तको मे लिखी हुई बातो से भिन्न प्रकार की थी। हमारे यहाँ भी इन सब बातो मे अनुमान से ही काम लिया गया था, इसलिए बहुत से विषयो मे भूल भी हो गईं। उदाहरणार्थ पुराणो में कही यह भी लिखा है कि चन्द्रमा सूर्य से ऊपर है, पर 'लिङ्ग पुराण' मे स्पष्ट कहा गया है कि चन्द्रमा की उत्पत्ति सूर्य से हो है।

चन्द्र ऋक्षग्रहा: सर्वे विज्ञेया सूर्य संभवा: ।

अर्थात् "चन्द्रमा, नक्षत्र और ग्रह सब सूर्य से ही उत्पन्न हुए है।"

इसके पश्चात सूर्य के महत्व को दर्शाते हुये कहा है—'यह सूर्य ही तीनो लोको का स्वामी, मूलाधार और परम देवत है। इसी से सब कुछ उत्पन्न होता है और इसी मे विलीन हो जाता है। लोको के भाव

और अभाव (अस्तित्व और नष्ट होना) पहले सूर्य से ही निकले थे। सूर्य से ही क्षण, मुहूर्त, दिवस, निशा, पक्ष, मास, सम्वत्सर, ऋतु और युग उत्पन्न होते हैं और इसी मे लय हुआ करते हैं। इस प्रकार सूर्य को छोड़कर अन्य किसी भी प्रकार से काल की सख्या हो नही होती है। काल के बिना कोई नियम भी नही हो सकता। ऋतुओ का विभाग, पुष्प, फल, मूल इसके बिना कैसे होगे ? सूर्य देव के बिना अनाज का उत्पत्ति, घास और जडी-बूटियाँ भी कैसे होगी ? इसके बिना पृथ्वी पर और दिव्य लोक मे प्राणियो के समस्त व्यवहारो का निरोध हो जायगा। जगत मे रुद्र रूप वाले, प्रतापी भगवान् भास्कर के बिना किसी की निष्पत्ति होना सम्भव नही।"

"यह चर और अचर से सयुक्त त्रैलोक्य सूर्य से ही तपता है। यह ही तेजो का समूह है, जो सार्वलौकिक है। यही इस जगत को ऊपर, नीचे और बगल से तप ता है। जिस प्रकार प्रभा करने वाला दीपक घर के मध्य मे रखा हुआ चारो तरफ अन्धकार को नाश करता है, उसी प्रकार यह सहस्र किरणों वाला, ग्रहो का राजा और जगत का पति सूर्य भी अपनी किरणो द्वारा सम्पूर्ण जगत को सभी ओर से आलोकित किया करता है।"

आधुनिक वैज्ञानिको ने भी सूर्य को ही जगत का कारण बतलाया है। उसके बिना इस पृथ्वी पर किसी भी प्राणी का अस्तित्व रहना सम्भव नहीं। इतना ही नही वैज्ञानिक यह भी बतलाते हैं कि पृथ्वी पर जितनी भली-बुरी घटनायें सदैव होती रहती हैं, उनमे भी सूर्य का प्रभाव बहुत कुछ काम करता है। युद्ध, शान्ति, जातीय विग्रह, उद्योगो की वृद्धि, कृषि-जन्य पदार्थों की उत्तमता आदि सबका आधार सूर्य से विकरण होने वाली विभिन्न किरणो पर सिद्ध किया गया है। 'लिंग पुराण' में भी प्रत्येक मास के सूर्य का पृथक नाम दिया गया है, और उसकी किरणों के विशेष गुण और प्रभाव बतलाये गये हैं।

साम्प्रदायिक सद्भावना—

"लिंग पुराण" मे कई स्थानो पर नग्न-साधुग्रो की चर्चा ग्रौर उनकी प्रशसा पाई जाती है। एक ग्रध्याय मे जल को छान कर पीने का ग्रत्यन्त महत्त्व वर्णन किया गया है। "शिव ग्रौर ऋषियो के सम्वाद" मे कहा गया है—

> न निन्देद्यतिन तस्माद्दिग्वास समनुत्तमम् ।
> बालोन्मत्तविचेष्ट तु मत्पर ब्रह्मवादिनम् ॥

ग्रर्थात् 'इस लिये जो साधु दिशाग्रो के ही वस्त्र पहिनने वाले (दिगम्बर ग्रथवा नग्न) हैं, सर्वोत्तम हैं, उनकी निन्दा न करनी चाहिए। क्योकि वे बालक ग्रौर उन्मत्त की भाँति चेष्टा रहित होकर मुझ में परायण ग्रौर ब्रह्मवादी होते है।"

फिर ग्रागे चलकर ग्रौर भी कहा है—

> नग्ना एव हि जायते देवता मुनयस्तथा ।
> ये चान्ये मानवा लोके सर्वे जयत्यवाससः ॥
> इन्द्रियैरजितैर्नग्नो दुकूलेनापि सवृतः ।
> तैरेव सवृतैर्गुप्तो न वस्त्र कारणम् स्मृतम् ॥

ग्रर्थात्—"देवता, मुनिगण तथा मनुष्य ग्रारम्भ मे सभी नग्न ही उत्पन्न हुग्रा करते है। पर वास्तव मे नग्न वह है, जिसने ग्रपनी इन्द्रियो को जीत लिया है, चाहे वह वस्त्र धारण किये हुये ही क्यो न हो। इन्द्रियो को जीत लेने वाला ही 'गुप्त' माना जायगा। इसमे वस्त्र पहिनने से कोई प्रभाव नही पड़ता।"

ग्रन्य पुराणो मे भी नग्न साधुग्रो का वर्णन किया गया है, यद्यपि उसमे उनकी निन्दा का भाव ही पाया है। 'विष्णु पुराण' (३—१८) मे बताया गया है कि जब देवगण दैत्यो से हार गये तो

विष्णु भगवान ने अपनी देह से 'माया-मोह' को उत्पन्न करके उसे दैत्यों को धर्म-भ्रष्ट करने के लिए भेजा। उसका वर्णन करते हुए कहा गया है—

ततो दिगम्बरो मुण्डो वर्हिपिच्छधरो द्विज।
मायामोहोऽसुरान् श्लक्ष्णमिदं वचनमब्रवीत्॥

अर्हतैतं महाधर्मं मायामोहेनते यत।
प्रोक्तास्तमाश्रिता धर्ममर्हतास्तेन तेऽभवन्॥

अर्थात्—"तब उस दिगम्बर, मुण्डित शिर वाले, भूमि को स्वच्छ करने की 'पिच्छि' लिए हुये 'माया मोह' ने उन असुरों से अत्यन्त मीठे वचनों में कहा—यह अर्हन्त का धर्म 'महाधर्म' है, इसी का आदर करो। तब वे दैत्य उस धर्म के अनुयायी बन 'अर्हत' कहे जाने लगे।"

अन्य पुराणों में भी 'श्वेत' (जैन) मुनियों के विषय में इसी से मिलती-जुलती कथाएं लिखी हैं और प्रकारान्तर से उनकी निन्दा की है। पर 'लिंग पुराण' में किसी विशेष सम्प्रदाय का नाम न लेकर नग्न साधुओं और जल को छान कर पीने का जिस ढङ्ग से समर्थन किया गया है, उससे उसका सद्भाव ही प्रकट होता है :—

चक्षुपूतं चरेन्मार्गं वस्त्रपूतं जल पिबेत्।
सत्यपूतं वदेद्वाक्यं मनः पूतं समाचरेत्॥

अर्थात्—"मार्ग में आंखों से भली भांति देख कर ही चलना चाहिये, जल को सदा वस्त्र से छान कर पीना चाहिए, सचाई के साथ पवित्र वचन बोलने चाहिये, शुद्ध मन से विचार कर आचरण करना चाहिये।"

यह तो नीति का एक उत्तम उपदेश हो गया। पर इसके आगे दिये गये श्लोक से प्रकट होता है कि पुराणकार का विशेष जोर छने हुए जल का व्यवहार करने पर ही है—

मत्स्य गृहस्य यत्पाप षण्मासऽभ्यतर भवेत्।
एकाह तत्सम ज्ञेयमपूत यज्जलभवेत्॥

अर्थात्—"मत्स्यो के पकड़ने वाले को जितना पाप छ मास में होता है, उतना पाप एक दिन वस्त्र से पवित्र नही किये हुए जल के पीने से होता है।"

जल को छान कर व्यवहार में लाने पर सबसे अधिक बल जैन-मत मे ही दिया गया है और नग्न रह कर आत्मध्यान मे लीन रहने वाले साधुप्रो का महत्व भी उन्ही मे सर्वाधिक है। इसलिए, आलोचको का यह अनुमान न्यूनाधिक परिमाण मे ठीक हो सकता है कि 'लिंग पुराण' मे ऐसे विचारो का समावेश शैवो से सद्भाव रखने वाले किन्ही जैन-साधु के सम्पर्क से हुआ हो। यदि यह कारण न भी हो तो भी अन्य सम्प्रदाय के प्रति आदर की भावना रखना पुराणकार की सदाशयता और उच्चता को ही प्रमाणित करता है। सच्चे धार्मिक व्यक्ति किसी भी सम्प्रदाय या मत के क्यो न हों वे दूसरे धर्म या सम्प्रदाय पर आक्षेप करना कभी पसन्द नही करते। दूसरे धर्मों के प्रति आदर और सहिष्णुता की भावना रखना श्रेष्ठता और उच्चता का लक्षण है। भगवान विष्णु और वैष्णवो के प्रति भी 'लिंग पुराण' मे सदाशयता का काफी परिचय दिया गया है और कही भी उनके प्रति किसी प्रकार का अभद्रता सूचक शब्द प्रयोग मे नही लाया गया है, जैसा कि अन्य पुराणो मे कही कही देखने मे आता है।

ज्ञान की प्रधानता—

सासारिक कष्टो की निवृत्ति का मुख्य मार्ग "लिंग पुराण" में ध्यान को बतलाया गया है। यहाँ अधिकाश प्राणी विविध प्रकार की

कामनाओ के पीछे दौडते हुये कष्ट पाया करते हैं। यह एक ऐसा कारण भगवान ने उत्पन्न कर दिया है कि जिसके फन्दे से मनुष्य कभी छुटकारा नही पाते। जैसा 'गीता' मे कहा गया है कि विषयो की कामना करने से आसक्ति पैदा होती है, उसकी पूर्ति न होने पर क्रोध उत्पन्न होता है, फिर क्रोध से अविवेक और अन्त मे नाश होता है। इसी प्रकार 'लिंग पुराण' के कर्ता ने कामनाओ के कारण ही मानव-जीवन को दुखी बतलाया है। उसके फल स्वरूप "क्रोध, हर्ष, लोभ, मोह, दम्भ, धर्म और अधर्म उत्पन्न हुआ करते हैं। इन सबका सग्रह इस मानव-मन और देह मे हुआ करता है और यही सब लोगो के क्लेशो का कारण होता है।"

बुद्धिमान व्यक्ति को इस 'अविद्या' को त्याग कर 'विद्या' का अवलम्बन करना चाहिये। योगी पुरुष ऐसा ही करते है और इस प्रकार क्रोधादि तथा धर्माधर्म से छुटकारा पा जाते है। ऐसा पुरुष तीनो दुखो से मुक्त होकर परम गति का अधिकारी बना करता है। इस प्रकार के ज्ञान के बिना ध्याता का ध्यान नही हो सकता।" यहाँ लिङ्ग पुराण' के कर्ता ने स्पष्ट 'गीता' के ही कथन को उद्धृत कर दिया है। 'गीता' मे कहा है—

यथैधासि समिद्धोऽग्नि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्नि सर्वं कर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ।।
न हि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते। (गीता ४-३७,३८)

अर्थात् जिस प्रकार प्रज्ज्वलित अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है उसी प्रकार ज्ञान रूपी अग्नि सब प्रकार के कर्मों को भस्म कर डालती है। इस ससार मे ज्ञान के समान पवित्र करने वाला और कुछ भी नही है।" इसी बात को शब्दो के किञ्चित परिवर्तन के साथ 'लिंग पुराण' के "ध्यानयज्ञ माहात्म्य वर्णन" अध्याय मे भी कहा गया है—

ज्ञानाग्निर्दहते क्षिप्र शुष्केन्धनमिवानलः ।
ज्ञानात्परतर नास्ति सर्वपाप विनाशनम् ।।

अर्थात्—"सब पापो को ज्ञान रूपी अग्नि सूखे ईंधन की तरह शीघ्र ही जला डालती है। ज्ञान से बढकर सब प्रकार के पापो को नष्ट करने वाला और कुछ भी नही है।" इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए आगे कहा गया है—

"ज्ञान के अभ्यास से मनुष्यो की बुद्धि निर्मल हो जाया करती है। इसलिए सदा ज्ञान मे निष्ठा रखते हुए और तत्परायण होकर उसका अभ्यास करना चाहिए। जो 'योगी' ज्ञान से तृप्त हो जाता है और आसक्ति का त्याग कर देता है, उसको फिर कुछ भी 'कर्तव्य' नही रह जाता। यदि कुछ कर्तव्य शेष रह जाता है तो समझ लो कि वह तत्त्व वेत्ता नही है। जिसे ऐसा ज्ञान हो जाता है वही ब्रह्मवेत्ता होकर जीवन्मुक्त बन जाता है। जो अभी वर्णाश्रम धर्म मे सलग्न है उसे सासारिक बन्धन तथा क्रोध को त्यागकर इस ज्ञान को प्राप्त करना चाहिये, तभी वह मोक्ष का अधिकारी हो सकता है। मोक्ष का हेतु ज्ञान ही होता है और ऐसा व्यक्ति अपनी आत्मा मे ही स्थित रहता है।"

इस प्रकार का ज्ञान किस प्रकार हो सकता है इसके लिये 'लिङ्ग पुराण' मे योग-मार्ग का उपदेश दिया गया है कि "जैसा ज्ञान होता है वैसा ही ध्यान भी होना है, इसलिए ध्यान का अभ्यास करें। ध्यान 'निर्विषय' होता है, पर आरम्भ मे 'सविषय' ध्यान ही करना पडता है। जब ध्यान परिपक्व हो जाता है, तब ध्यान करने वाले को और किसी का ध्यान ही नही रहता। ध्यान की स्थिति मे योगी न कुछ देखता है, न सूँघता है और न कुछ सुनता ही है। वह तो स्वय अपनी आत्मा मे ही लीन रहता है।" गीता' मे भी ध्यान-योग का ऐसा ही माहात्म्य बताया गया है—

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥
यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥

(गीता ६—१०, २६, २७)

अर्थात्—"योगी एकान्त मे अकेला रह कर चित्त और आत्मा का संयम करे, किसी भी वासना को न रखकर, परिग्रह छोड कर निरन्तर अभ्यास मे लगा रहे। जब मन चचल होकर जहाँ-जहाँ जावे, वहाँ वहाँ से उसे रोक कर आत्म-ध्यान मे लगावे। इस प्रकार शान्त-चित्त, रज (सासारिकता) से रहित, निष्पाप और ब्रह्मभूत योगी उत्तम सुख को प्राप्त होता है।"

इस प्रकार 'लिंग पुराण' मे 'गीता' के ही आध्यात्मिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन पाया जाता है जिसे भारत ही नहीं विदेशो के भी हजारो विद्वानो ने आत्मज्ञान का सर्वश्रेष्ठ मार्ग बतलाया है। यदि कोई अन्तर है तो यही कि गीता मे अन्तिम निष्कर्ष यह निकाला गया है कि कैसा भी ब्रह्मज्ञानी और जीवन्मुक्त हो जाने पर भी मनुष्य को सांसारिक कर्तव्यो का त्याग नही करना चाहिये। वरन् 'लोक-शिक्षण' की दृष्टि से उनको निष्काम भाव से करते रहना ही हितकारी है। 'लिंग पुराण' मे इसके बजाय 'ब्रह्मज्ञानी' के लिये ससार त्यागी होकर सब प्रकार के बन्धनो से पृथक हो जाना ही मुक्ति-प्राप्ति का मार्ग बताया गया है। पर इसमे कोई नवीनता नही है। हिन्दू धर्म-शास्त्रो मे सर्वत्र 'प्रवृत्ति' और 'निवृत्ति' दोनो मार्गों का प्रतिपादन पाया जाता है, और ये दोनो ही आवश्यक हैं। 'प्रवृत्ति' मार्ग को स्वीकार किये बिना व्यक्ति और समाज का अस्तित्व स्थिर नही रह सकता, और 'निवृत्ति' मार्ग के बिना जन साधारण को त्याग और परमार्थ का कोई उपयुक्त आदर्श नही मिल सकता। 'गीताकार' ने 'प्रवृत्ति और निवृत्ति' का समन्वय करके 'निष्काम कर्म' का एक नया और उच्च मार्ग अवश्य निकाला है, पर ऐसा प्रतीत होता है कि थोड़े से विशेष व्यक्तियो को छोड़कर उसका पालन करना और भी कठिन है। 'प्रवृत्ति' और निवृत्ति' वालों

की सचाई की पहिचान तो फिर भी सम्भव है, पर 'निष्काम कर्म' की वास्तविकता को जान सकना 'योगियो' के लिए भी गहन' (कठिन) है।

पाँच प्रकार के योग-मार्ग--

त्र्यम्बक-साधना, योग मार्ग द्वारा कैसे की जाय ? यह प्रश्न उठने पर उसके पाँच तरह के विधान बतलाये गये हैं--(१) मन्त्र योग, (२) स्पर्श-योग, (३) भाव-योग, (४) अभाव-योग, (५) महायोग।

"जिसमे ध्यान से युक्त मन्त्र-जप किया जाता है वह 'मन्त्रयोग' है। जिसम रेचन आदि क्रियाओ द्वारा विशेष रूप से सुषुम्ना नाडी की शुद्धि की जाती है, योगाभ्यास द्वारा वायु को जय किया जाता है तथा 'वज्री' आदि साधनो से बल को स्थिर रखने की क्रिया की जाती है, जो धारणा आदि अङ्गो से युक्त है और जो कुम्भक म निर्मलता करने वाला है वह 'स्पर्श योग' है। जब साधक यौगिक क्रियाओ के साधन को त्याग कर केवल भगवान शिव का आश्रय ग्रहण कर लेता है और मन मे उठने वाले समस्त बाह्य और अन्तरङ्ग भावो का सहार करके चित्त को पूर्ण रूप से शुद्ध कर लेता है, वह 'भाव योग' कहा जाता है। 'अभाव-योग' मे इस सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत को सर्वथा शून्य, निराभास, भेदाभेद से रहित चिन्तन किया जाता है। इसके द्वारा ससार के विभिन्न पदार्थ दृष्टि स विलीन हो जाते है और साधक निर्वाण का पथिक बन जाता है।

ये योग-मार्ग प्राचीनकाल से प्रचलित हैं और इनके द्वारा साधक अपनी मानसिक तथा शारीरिक शक्तियो की इच्छानुसार वृद्धि कर सकते हैं। मन्त्र-योग म विशेष रूप स ध्यान द्वारा चित्त वृत्तियो को सब तरफ से खीच कर एक ही केन्द्र पर लगाना होता है। जिस प्रकार आतशी शीशे द्वारा सूर्य की किरणो को एक स्थान पर केन्द्रित कर देने स कपडा, कागज आदि म आग लग जाती है उसी प्रकार चित्त वृत्तियो के किसी भी लक्ष्य पर एकाग्र कर देने से शीघ्र ही उसकी पूर्ति हो जाती है।

'स्पर्श-योग' का आशय अष्टाङ्ग योग से ही है जिसका विस्तार पूर्वक वर्णन इसी पुराण में अन्यत्र किया गया है। इसमें इतनी विशेषता है कि प्रत्येक साधन में भगवान शिव का ध्यान भी करते रहा जाय। इससे योग सिद्धि अपेक्षाकृत शीघ्र होगी, क्योंकि शिव जी योग विद्या के सर्व प्रथम प्रवर्तक और आदि गुरु माने जाते हैं। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि योग के सभी अङ्ग मनुष्य के शरीर और मन पर अद्भुत प्रभाव डालने वाले हैं। इनके द्वारा साधक अपने समस्त अङ्गों और इन्द्रियों को जितना चाहे सक्रिय बना सकता है। इस प्रकार जो शक्ति प्राप्त होती है उसका उपयोग अगर सांसारिक लाभों के लिए किया जाय तो अपना और दूसरों का भी बहुत कुछ उपकार किया जा सकता है और यदि उसे केवल परमार्थ मार्ग पर प्रयुक्त किया जाय तो उससे मुक्ति का प्राप्त करना सर्वथा सम्भव होता है।

'भाव-योग' का उद्देश्य योग सम्बन्धी शारीरिक अभ्यासों को छोड़ कर केवल मन के द्वारा भगवान शिव में अपनी चित्त वृत्तियों को केन्द्रित करना और सांसारिक विषयों के विचारों को दिन प्रतिदिन कम करते जाना है। जिस प्रकार 'हठयोग' को क्रिया-प्रधान और राजयोग को विचार-प्रधान कहा जा सकता है, वैसा ही अन्तर स्पर्श-योग और भाव-योग में भी समझ सकते हैं। भाव-योग में आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा आदि का अभ्यास न करके केवल साकार शिव भगवान का आश्रय ग्रहण करने से चित्त शुद्ध हो जाता है और आध्यात्मिक दृष्टि से साधक बड़ी उच्च पदवी को प्राप्त कर लेता है। इसकी तुलना भक्तियोग से भी की जा सकती है जिसमें किसी भी क्रिया की तरफ साधक का ध्यान नहीं जाता, वरन् अपने इष्टदेव की भावना करते-करते ही वह उससे तादात्म्य प्राप्त करके उसी के समान 'शक्तिपुञ्ज' बन जाता है।

'अभाव-योग' को हम ज्ञान-योग भी कह सकते हैं। यह परमहंसों और अवधूतों का मार्ग है। संसार को सब प्रकार से शून्य समझना

ग्रौर उसके सब पदार्थों को मिथ्या मानना तभी सार्थक हो सकता है जब मनुष्य धर्म-शास्त्रो मे परमहसो तथा अवधूतो के लिये बताये गये, सर्वथा त्यागमय मार्ग पर चले ग्रौर अपने शरीर को मृत-शव की तरह मानकर उसके रहने अथवा नष्ट होने की जरा भी चिन्ता न करे। क्योकि यदि मुख से तो ससार को 'प्रपञ्च, माया, मिथ्या' कहा जाय पर अपने निर्वाह अथवा शारीरिक सुख के लिए उद्योग किया जाय, भिक्षा मांगी जाय तो वह कोरा ढोंग रह जाता है। इसलिए अभाव-योग केवल उनके ही लिए उपयुक्त है जो संसार के मिथ्या होने के सिद्धान्त को हार्दिक रूप से मान चुके हो ग्रौर उसके अनुसार आचरण करने की सामर्थ्य भी रखते हो।

'महा-योग' इन सभी योग मार्गों का समन्वित कल्याणकारी रूप है। इसमे क्रिया, ज्ञान, चित्तशुद्धि, भक्ति आदि सभी आध्यात्मिक तत्त्व उचित अनुपात में सम्मिलित रहते है, क्योकि केवल एक मार्ग को ग्रहण करके विकास के सर्वोच्च शिखर पर पहुच जाना हर एक के लिये सम्भव नही है। वह लाखो मे किसी एक साधक के लिये ही यथार्थ माना जा सकता है, जो अपने को उसमे पूरी तरह तल्लीन कर सके। अन्यथा जो व्यक्ति एक-एक योग-अङ्ग की सीढ़ी पर कदम रखता हुआ अग्रसर होगा, वह सामान्य शक्ति ग्रौर बुद्धि वाला होने पर भी सर्वोच्च स्थान पर पहुच जायगा। यह मार्ग वैसा ही है जैसे कोई भी सामान्य बुद्धि का बालक भी यदि प्रायमरी स्कूल से आरम्भ करके नियामित रूप से प्रत्येक दर्जे की पढाई पूरी करता जाय तो एक दिन एम.ए. की अन्तिम डिग्री भी बिना विशेष कठिनाई के प्राप्त कर लेता है, जबकि उससे कही अधिक तीक्ष्ण बुद्धि वाले, पर अनियमित छात्र बीच में ही रुक जाते हैं। इस प्रकार महायोग के साधक को अपना लक्ष्य भगवान शिव का सायुज्य प्राप्त करना रख कर आध्यात्मिक प्रगति की विभिन्न कक्षाओं को अभ्यास द्वारा उत्तीर्ण करना चाहिए। ऐसा करने से वे अन्तिम लक्ष्य को अवश्य प्राप्त कर सकेंगे।

'योग' का अर्थ आत्मा और परमात्मा का सम्मिलन बताया गया है। जीवात्मा यद्यपि परमात्मा का ही अंश है, पर वह अल्प शक्ति वाला है, जब कि परमात्मा सर्वशक्तिमान है। यदि योग-मार्ग के अभ्यासों द्वारा जीवात्मा की शक्ति को बढ़ाया जाय और उसे अपने स्वरूप का ज्ञान कराया जाय, तो वह क्रमशः अधिकाधिक शक्ति प्राप्त करता हुआ ईश्वरीय-स्तर के निकट पहुँच जाता है। ऐसे ही श्रेष्ठ साधकों को 'जीवन्मुक्त' कहा जाता है। फिर वे संसार में रहते हुए, उसके सब कार्यों को करते हुए भी वास्तव में उसमें लिप्त नहीं होते। इसका कारण उन पर सांसारिक सुख-दुःख, हानि-लाभ, सफलता-असफलता, जीवन-मरण का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता और अपने अन्तरङ्ग में वे सदा पूर्ण सन्तुष्ट, आनन्दित और अभय रहते हैं। यही महायोग का सार है।

× × ×

पौराणिक दृष्टि से 'लिंग पुराण' कई पुराणों से अधिक शिक्षाप्रद और सदुपदेश पूर्ण है, चाहे कथा भाग के अधिक न होने से साधारण जनता के उसका परिचय अपेक्षाकृत कम हो। उसका कथा-भाग अधिकांश में शिव पुराण और वायु पुराण से मिलता-जुलता है, इसलिए हमने इस सुलभ-संस्करण में उसको कम करके यथा-शक्ति शैव-सिद्धांतों को सङ्कलित करने की चेष्टा की है। इससे पाठकों को भगवान शिव के निराकार और साकार दोनों रूपों का परिचय प्राप्त होगा और वे उनकी उपासना तथा भक्ति में अग्रसर होकर आत्म-कल्याण के भागी होंगे।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

विषय—सूची

लिंग पुराण

।। लिङ्गोद्भव प्रतिज्ञा ।।

नमो रुद्राय हरये ब्रह्मणे परमात्मने ।
प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यंतकारिणे ।।१।।
नारदोऽभ्यर्च्य शैलेशे शंकरं संगमेश्वरे ।
हिरण्यगर्भे स्वर्लीने ह्यविमुक्ते महालये ।।२।।
रौद्रे गोप्रक्षके चैव श्रेष्ठे पाशुपते तथा ।
विघ्नेश्वरे च केदारे तथा गोमायुकेश्वरे ।।३।।
हिरण्येगर्भे चंद्रेशे ईशान्ये च त्रिविष्टपे ।
शुक्रेश्वरे यथान्यायं नैमिषं प्रययौ मुनिः ।।४।।
नैमिषेयास्तदा दृष्ट्वा नारदं हृष्टमानसाः ।
समभ्यर्च्यासनं तस्मै तद्योग्यं समकल्पयन् ।।५।।
सोपि हृष्टो मुनिवरैर्दत्तं भेजे तदासनम् ।
संपूज्यमानो मुनिभिः सुखासीनो वरासने ।।६।।
चक्रे कथां विचित्रार्थां लिंगमाहात्म्यमाश्रिताम् ।
एतस्मिन्नेव काले तु सूतः पौराणिकः स्वयम् ।।७।।
जगाम नैमिषं धीमान् प्रणामार्थं तपस्विनाम् ।
तस्मै सात च पूजा च यथावच्चक्रिरे तदा ।।८।।

इस विश्व का सृजन, स्थिति और संहार के करने वाले, प्रधान पुरुष एवं ईश भगवान् रुद्र, हरि और परमात्मा ब्रह्मा के लिए नमस्कार है ।।१।। नारद मुनि ने शैलेश में, सङ्गमेश्वर में, स्वर्लीन हिरण्य गर्भ में,

अविमुक्त महालय मे, रौद्र में, गौ प्रेक्षक मे, श्रेष्ठ पाशुपत मे, विघ्नेश्वर मे, केदार मे, गोमापुकेश्वर मे, चन्द्रेश हिरण्य गर्भ मे, ईशान्य मे, त्रिविष्टप में और शुक्रेश्वर मे इन समस्त स्थलों मे यथाविधि भगवान् शङ्कर की अभ्यर्चना की थी और फिर इसके अनन्तर नैमिष क्षेत्र को चले गये थे। नार का अर्थ अज्ञान है। उसके खण्डन करने वाले नारद शब्द का अर्थ है इससे ज्ञानियो को भी लिङ्ग के अर्चन की आवश्यकता है। ॥२॥३॥४॥ नैमिष क्षेत्र मे निवास करने वालो ने जिस समय नारद मुनि का दर्शन किया था। उस समय उनके मन को बहुत हर्ष हुआ था। उन्होने नारद की भली-भाँति अर्चना की और फिर यथोचित् आसन दिया था ॥५॥ नारद मुनि ने परम प्रसन्न होकर मुनियो के द्वारा दिए हुए आसन पर अपनी सस्थिति की थी। मुनिगण के द्वारा सम्पूज्यमान होकर, उस आसन पर नारदण सुखपूर्वक विराजमान हो गये थे ॥६॥ लिङ्गार्चन के माहात्म्य को श्रय वाली विचित्र अर्थ से युक्त कथा कर रहे थे कि इसी बीच मे उस समय पौराणिक और धीमान् सूत स्वयं तपस्वियो को प्रणाम करने के लिए चले गये थे। उस समय सबने उनका सुस्वागत और अर्चन यथावत् किया था ॥७॥८॥

भवभक्तो भवांश्चैव वयं वै नारदस्तथा ।
अस्याग्रतो मुनेः पुण्यं पुराणं वक्तुमर्हसि ॥९॥
सफलं साधितं सर्वं भवता विदितं भवेत् ।
एवमुक्तः सरद्दष्टात्मा सूतः पौराणिकोत्तमः ॥१०॥
अभिवाद्याग्रतो धीमान्नारदं ब्रह्मणः सुतम् ।
नैमिषेयाश्च पुण्यात्मा पुराणं व्याजहार सः ॥११॥
नमस्कृत्य महादेव ब्रह्माणं च जनार्दनम् ।
मुनीश्वर तथा व्यासं वक्तुं लिंगं स्मराम्यहम् ॥१२॥
शब्दब्रह्मतनुं साक्षाच्छब्दब्रह्मप्रकाशकम् ।
वर्णावयवमव्यक्तलक्षणं बहुधा स्थितम् ॥१३॥

सबने सूतजी से प्रार्थना की थी कि आप स्वयं श्री भगवान् शङ्कर के पूर्ण भक्त हैं, यह नारद मुनि भी शिव मे अटल भक्ति रखते हैं तथा हम लोग सभी शिवाराधन के उपासक हैं। आप कृपा करके इन महामुनि नारदजी के समक्ष म लिङ्ग पुराण का प्रवचन करने के योग्य होते हैं। यह पुराण परम पुण्यमय है ॥९॥ आपने सभी कुछ फल सहित साधन किया है और आपको सभी ज्ञात है। इस प्रकार से कहे जाने पर पौराणिको मे सर्व शिरोमणि सूत अत्यन्त प्रसन्न हुए थे ॥१०॥ परम धीमान् सूतजी ने सबसे प्रथम ब्रह्माजी के पुत्र नारद मुनि का अभिवादन किया था और इसके अनन्तर परम पुण्य आत्मा वाले सूत ने निमिष क्षेत्र के निवासी मुनिगणो को प्रणाम किया और इसके पश्चात् उन्होने पुराण का प्रवचन आरम्भ किया था ॥११॥ श्री सूतजी ने कहा—सब प्रथम मैं महादेव को प्रणाम करता हू और फिर ब्रह्माजी तथा भगवान् जनार्दन को प्रणाम करता हू। इसके अनन्तर मुनिवर व्यास जी को प्रणाम करके इस लिङ्ग पुराण की कथा कहने के लिए प्रवृत्त होता हू ॥१२॥ महादेव ही इस महापुराण के देवता हैं अत प्रथम प्रणाम उनको किया। अब शिव के स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं कि शिव शब्द रूप ब्रह्म के तनु वाले हैं और उसके स्वय ही साक्षात् प्रकाश करने वाले हैं। वर्ण ही जिस तनु के अवयव हैं और अनेक रूप से स्थित होते हुए भी अव्यक्त रूप वाले हैं ॥१३॥

॥ ब्रह्माण्डरूप लिंग का सृष्टिस्थिलय कथन ॥

आलिंगो लिंगमूल तु अव्यक्त लिंगमुच्यते ।
अलिंग शिव इत्युक्तो लिंग शैवमिति स्मृतम् ॥१॥
प्रधान प्रकृतिश्चे ति यदाहुर्लिगमुत्तमम् ।
गधवर्णरसैर्हीन शब्दस्पर्शादिवर्जितम् ॥२॥

अगुणं ध्रुवमक्षय्यमलिंगं शिवलक्षणम् ।
गंधवर्णरसैयुक्तं शब्दस्पर्शादिलक्षणम् ॥३॥
जगद्योनि महाभूतं स्थूलं सूक्ष्मं द्विजोत्तमाः ।
विग्रहो जगता लिंगमलिंगादभवत्स्वयम् ॥४॥
सप्तधाचाष्टधा चैव तथैकादशधा पुनः ।
लिंगान्यलिंगस्य तथा मायया विततानि तु ॥५॥
तेभ्यः प्रधानदेवानां त्रयमासीच्छिवात्मकम् ।
एकस्मात्त्रिष्वभूद्विश्वमेकेन परिरक्षितम् ॥६॥
एकेनैव हृतं विश्वं व्याप्तं त्वेवं शिवेन तु ।
अलिंगं चैव लिंग च लिंगालिंगानि मूर्तयः ॥७॥

अब ब्रह्माण्ड रूप लिङ्ग का सृष्टि, स्थिति, लय का कथन किया जाता है। सूतजी ने कहा—यह अलिङ्ग अर्थात् चिन्ह रहित है, निर्गुण है और लिङ्ग के मूल का कारण अव्यक्त अर्थात् प्रकृति लिङ्ग कही जाती है। अलिङ्ग शिव इस नाम से कहे गये हैं और शैव लिङ्ग कहा जाता है ॥१॥ प्रधान और प्रकृति उत्तम लिङ्ग कहा गया है जो गन्ध, वर्ण रस से हीन और शब्द एवं स्पर्श आदि से वर्जित है ॥२॥ शिव के लक्षण वाला अलिङ्ग, अगुण ध्रुव और अक्षण्य है या गन्ध वर्ण और रस से युक्त एव शब्द तथा स्पर्श के स्वरूप वाला है ॥३॥ हे द्विजो मे श्रेष्ठगण। जगत् की योनि, महाभूत, स्थूल और सूक्ष्म, समस्त जगतो के लिङ्ग विग्रह अलिङ्ग से ही स्वय हुआ था ॥४॥ सात प्रकार से, आठ प्रकार से और एकादश प्रकार से अर्थात् छब्बीस तत्वों के रूप मे रहने वाले लिङ्ग उस अलिङ्ग की माया से वितत हुए थे ॥५॥ उनसे प्रधान देवो का शिवात्मक त्रय हुआ था। उन तीनो मे एक से यह विश्व उत्पन्न हुआ था, एक से यह परिरक्षित हुआ और एक से इस विश्व का सहार हुआ था। इस प्रकार से यह शिव से व्याप्त है। इसकी अलिङ्ग, लिङ्ग और लिङ्गालिङ्ग मूर्त्तियाँ है ॥६॥७॥

यथावत्कथिताश्चैव तस्माद्ब्रह्म स्वयं जगत् ।
अलिंगी भगवान् बीजी स एव परमेश्वरः ॥८॥
बीजं योनिश्च निर्बीजं निर्बीजो बीजमुच्यते ।
बीजयोनिप्रधानानामात्माख्या वर्तते त्विह ॥९॥
परमात्मा मुनिर्ब्रह्मा नित्यबुद्धस्वभावतः ।
विशुद्धोयं तथा रुद्रः पुराणे शिव उच्यते ॥१०॥
शिवेन दृष्टा प्रकृतिः शैवी समभवद्विजाः ।
रागादौ सा गुणैर्युक्ता पुराव्यक्ता स्वभावतः ॥११॥
अव्यक्तादिविशेषान्तं विश्वं तस्याः समुत्थितम् ।
विश्वधात्री त्वजाख्या च शैवी सा प्रकृतिः स्मृता ॥१२॥
तामजा लोहिता शुक्लां कृष्णामेका बहुप्रजाम् ।
जनित्रीमनुशेते स्म जुषमाणः स्वरूपिणीम् ॥१३॥
तामेवाजामजोऽन्यस्तु भुक्तभोगां जहाति च ।
अजा जनित्री जगतां साजेन समधिष्ठिता ॥१४॥

ये मूर्त्तियाँ यथावत् कह दी गई हैं । इससे ब्रह्म ही स्वयं जगत् स्वरूप वाला है । वह ही परमेश्वर अलिङ्गी और बीजी होता है । बीज ब्रह्मा है, योनि विष्णु है और जिससे बीज निकला है वह निर्बीज रुद्र निर्बीज अर्थात् कारण शून्य जगत् का बीज अर्थात् कारण कहा जाता है । बीज, योनि और प्रधानों की अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रों की आत्माख्या विश्व,प्राज्ञ तैजस संज्ञा यहाँ पर है ॥८॥९॥ यह रुद्र परमात्मा, मुनि, ब्रह्मा और नित्य बुद्ध स्वभाव से विशुद्ध तथा पुराणों में शिव कहा जाता है ॥१०॥ हे द्विजो ! शिव के द्वारा देखी गई यह प्रकृति पहिले सर्ग के आदि में स्वभाव से ही गुणों से युक्त अर्थात् व्यक्त शैवी हुई थी ॥११॥ अव्यक्त से आदि लेकर महत्व से आरम्भ करके विशेषान्त तक यह विश्व उसका समुच्छ्रित है । यह शैवी प्रकृति विश्वधात्री और अजाख्या कही गई है ॥१२॥ उस अजा को जो लोहित, शुक्ल और कृष्ण है अर्थात् रज, सत्व और तमो गुणात्मिका है तथा एक ही है और बहुत

सी अनेक प्रकार की प्रजाओं की स्वरूप वाली जनयित्री है अर्थात् जनन करने के स्वभाव वाली है उसी को परम प्रीति से सेवन करता हुआ यह अजन्मा बद्धजीव अनुसरण किया करता है ।।१३।। यह रागी जीव के विषय मे कहा है अब विरागी के विषय मे कहते हैं कि अन्य अज विरक्त उसी अजा का रसास्वादन करके फिर उसको त्याग देता है । यह परमेश्वर के द्वारा अधिष्ठिता होती हुई अनन्त ब्रह्माण्डो के जनन करने वाली हुई थी ।।१४।।

प्रादुर्बभूव स महान् पुरुषाधिष्ठितस्य च ।
अज्ञाज्ञया प्रधानस्य सर्गकाले गुणैस्त्रिभिः ।।१५।।
सिसृक्षया चोद्यमानः प्रविश्याव्यक्तमव्ययम् ।
व्यक्तसृष्टिं विकुरुते चात्म नाधिष्ठितो महान् ।।१६।।
महतस्तु तथा वृत्तिः संकल्पाध्यवसायिका ।
महतस्त्रिगुणस्तस्मादहंकारो रजोधिकः ।।१७।।
तेनैव चावृतः सम्यगहंकारस्तमोधिकः ।
महतो भूततन्मात्रं सर्गकृद्वै बभूव च ।।१८।।
अहंकाराच्छब्दमात्रं तस्मादाकाशमव्ययम् ।
सशब्दमावृणोत्पश्चादाकाशं शब्दकारणम् ।।१९।।
तन्मात्राद्भूतसर्गश्च द्विजास्त्वेवं प्रकीर्तितः ।
स्पर्शमात्रं तथाकाशात्तस्माद्वायुर्महान्मुने ।।२०।।
तस्माच्च रूपमात्रं तु ततोग्निश्च रसस्ततः ।
रसादापः शुभास्ताभ्यो गंधमात्रं धरा ततः ।।२१।।

ईश्वर की इच्छा तथा आज्ञा से सर्ग काल में तीनो गुणो से त पुरुष अर्थात् परमेश्वर के द्वारा अधिष्ठित प्रधान से महत्तत्व प्रादु-त हुआ था ।।१५।। सृजन करने की इच्छा मे प्रेरित होकर अव्यय व्यक्त मे प्रवेश करके आत्मा से अधिष्ठित महत्तत्व व्यक्त सृष्टि को शेष रूप से करता है ।।१६।। फिर महत्तत्व से सङ्कल्पाध्यवसायिका त्ति सात्विक अहङ्कार तथा महत् से त्रिगुण रजोऽधिक अहङ्कार का

प्रादुर्भाव हुआ था ॥१७॥ और फिर उस रजोगुण से ही भली-भाँति आवृत तमोऽधिक अहङ्कार हुआ था। फिर उस महत्तत्व जन्य अहङ्कार से सर्ग करने वाला भूत तन्मात्र शब्द रूप हुआ था ॥१८॥ अहङ्कार से शब्द तन्मात्र और उससे अव्यय आकाश हुआ था। इस सशब्द एवं शब्द का कारण स्वरूप आकाश को पीछे आवृत्त कर लिया था ॥१९॥ हे द्विजगण ! इस प्रकार से तन्मात्रों से भूतों का सर्ग हुआ था जिसका कि प्रकीर्त्तन किया गया है। आकाश से स्पर्श मात्र अर्थात् स्पर्श और उससे हे मुने ! महान् वायु हुआ था ॥२०॥ उससे रूप मात्र हुआ और फिर उससे अग्नि, उससे रस और रस से जल और जल से गन्धमात्र धरा हुई थी ॥२१॥

आवृणोद्धि तथाकाशं स्पर्शमात्रं द्विजोत्तमाः ।
आवृणोद्रूपमात्रं तु वायुर्वाति क्रियात्मकः ॥२२॥
आवृणोद्रसमात्रं वै देवः साक्षाद्विभावसुः ।
आवृण्वाना गंधमात्रमापः सर्वरसात्मिकाः ॥२३॥
क्ष्मा सा पंचगुणा तस्मादेकोना रससंभवाः ।
त्रिगुणो भगवान्वह्निर्द्विगुणः स्पर्श संभवः ॥२४॥
अवकाशस्ततो देव एकमात्रस्तु निष्फलः ।
तन्मात्राद्भूतसर्गश्च विज्ञेयश्च परस्परम् ॥२५॥
वैकारिकः सात्त्विको वै युगपत्संप्रवर्तते ।
सर्गस्तथाप्यहंकरादेवमत्र प्रकीर्तितः ॥२६॥
पंच बुद्धीद्रियाण्यस्य पंच कर्मेंद्रियाणि तु ।
शब्दादीनामवाप्त्यर्थं मनश्चैवोभयात्मकम् ॥२७॥

हे द्विजोत्तमो ! स्पर्श मात्र आकाश को आवृत्त करता है और रूपमात्र को क्रियात्मक वायु वहन करता है ॥२२॥ साक्षात् देव विभावसु ने रसमात्र को आवृत्त किया है। तथा सर्व रसात्मक जल गन्धमात्र आवृत्त किए हुए हैं ॥२३॥ यह भूमि पाँचों गुणों वाली होती है, जल

चार गुण वाले हैं, भगवान् वह्नि मे तीन गुण है, वायु मे दो गुण रहा करते हैं तथा अवकाश देव निष्कल एक मात्र ही होते हैं। इस प्रकार से तन्मात्राओ और भूतो का परस्पर मे सर्ग समझ लेना चाहिए। ॥२४॥२५॥ वैकारिक राजस और तामस तथा सात्विक सर्ग एक साथ ही प्रवृत्त होता है तो भी अहङ्कार से यहाँ लिङ्ग पुराण मे कहा गया है ॥२६॥ इसके पाँच बुद्धीन्द्रिय हैं अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने वाली इन्द्रियाँ है और पाँच कर्म करने वाली इन्द्रियाँ हैं । शब्दादि की प्राप्ति करने के लिये मन उभयेन्द्रिय होता है ॥२७॥

महदादिविशेषांता ह्यंडमुत्पादयंति च ।
जलबुद्बुदवत्तस्मादवतीर्णः पितामहः ॥२८॥
स एव भगवान् रुद्रो विष्णुर्विश्वगत. प्रभुः ।
तस्मिन्नंडे त्विमे लोका अंतर्विश्वमिदं जगत् ॥२९॥
अंड दशगुणेनैव वारिणा प्रावृतं बहिः ।
आपो दशगुणेनैव तद्बाह्ये तेजसा वृताः ॥३०॥
तेजो दशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम् ।
वायुर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसा वृतः ॥३१॥
आकाशेनावृतो वायुरहंकारेण शब्दजः ।
महता शब्दहेतुर्वै प्रधानेनावृतः स्वयम् ॥३२॥
सप्ताडावरणान्याहुस्तस्यात्मा कमलासन. ।
कोटिकोटियुतान्यत्र चाडानि कथितानि तु ॥३३॥
तत्रतत्र चतुर्वक्त्रा ब्रह्माणो हरयो भवा ।
सृष्टा. प्रधानेन तदा लब्ध्वा शंभोस्तु सन्निधिम् ॥३४॥

महत् तत्व से लेकर विशेषान्त पर्यन्त ब्रह्माण्ड का उत्पादन करते हैं। उस ब्रह्माण्ड मे एक जल के बुलबुले के समान पितामह अवतीर्ण हुये थे ॥२८॥ वह ही भगवान् रुद्र हैं तथा विश्व मे व्याप्त रहने वाले भगवान् विष्णु हैं। उसी अण्ड मे उसके अन्दर ये समस्त लोक और यह जगत्

तथा विश्व रहता है ॥२६॥ इस ब्रह्माण्ड से दश गुना जल होता है जिसके द्वारा यह बाहिर से प्रावृत्त है। और जल से दश गुना तेज है जिसने उसको बाह्य भाग मे प्रावृत्त कर रक्खा है ॥३०॥ तेज से दश गुनी वायु और वायु से दश गुना आकाश है जिन्होने इस अण्ड को इसी क्रम से वाहिर से आवृत्त कर रक्खा था ॥३१॥ आकाश से वायु आवृत्त है और अहंकार से आकाश आवृत्त है तथा महतत्व से प्रधानतया शब्द हेतु स्वयं आवृत्त होता है ॥३२॥ इस प्रकार से उस अण्ड की आत्मा भगवान् कमलासन ब्रह्मा सात आवरणो से युक्त कहे गये हैं। तात्पर्य यह है कि अण्ड के सात आवरण होने है। ऐसे अड एक, दो नही करोड़ो-करोडो अयुत कहे गये हैं ॥३३॥ उन-उन प्रत्येक ब्राह्माण्डों मे चार मुख वाले ब्रह्मा, हरि और भव भी होते है। उस समय भगवान् शम्भु की सन्निधि प्राप्त करके ये सब प्रधान के द्वारा ही सृष्ट हुए है ॥३४॥

लयश्चैव तथान्योन्यमांद्यतमिति कीर्तितम् ।
सर्गस्य प्रतिसर्गस्य स्थितेः कर्ता महेश्वरः ॥३५॥
सर्गे च रजसा युक्तः सत्वस्थः प्रतिपालने ।
प्रतिसर्गे तमोद्रिक्तः स एव त्रिविधः क्रमात् ॥३६॥
आदिकर्ता च भूतानां संहर्ता परिपालकः ।
तस्मान्महेश्वरो देवो ब्रह्मणोधिपतिः शिवः ॥३७॥
सदाशिवो भवो विष्णुर्ब्रह्मा सर्वात्मको यतः ।
एतदंडे तथा लोका इमे कर्ता पितामहः ॥३८॥
प्राकृतः कथितस्त्वेप पुरुषाधिष्ठितो मया ।
सर्गश्चाबुद्धिपूर्वस्तु द्विजाः प्राथमिकः शुभः ॥३९॥

और उनका परस्पर मे आद्यन्त लय होता है, यह भी कहा गया है। सर्ग, प्रतिसर्ग और स्थिति का महेश्वर कर्ता हैं ॥३५॥ यह ही क्रम से तीन प्रकार के स्वरूप वाले हैं। सर्ग करने के समय मे वह रजोगुण से युक्त होते हैं, प्रतिपालन करने की स्थिति में सत्वगुण मे स्थित हैं और प्रतिसर्ग की दशा मे तमोगुण के उद्रेक वाले होते हैं ॥३६॥

यह भूतों के आदि कर्त्ता, संहर्त्ता और परिपालक हैं। इसी कारण से महेश्वर देव शिव ब्रह्मा के भी अधिपति होते हैं ॥३७॥ सदाशिव भव विष्णु और ब्रह्मा हैं क्योंकि सर्वात्मक होते हैं। इस अण्ड मे पितामह कर्त्ता जिस तरह से रहते हैं वैसे ही ये लोक भी रहा करते हैं ॥३८॥ मैंने यह पुरुषाधिष्ठित प्राकृत कहा है। हे द्विजगण! अबुद्धिपूर्व प्राथमिक सर्ग शुभ होता है ॥३९॥

॥ कालमान और ब्रह्माण्ड निरूपण ॥

अथ प्राथमिकस्येह य कालस्तदह स्मृतम् ।
सर्गस्य तादृशी रात्रि प्राकृतस्य समासत ॥१॥
दिवा सृष्टि विकुरुते रजन्या प्रलय विभु ।
औपचारिकमस्यैतदहोरात्र न विद्यते ॥२॥
दिवा विकृतय सर्वे विकारा विश्वदेवता ।
प्रजाना पतय सर्वे तिष्ठन्त्यन्ये महर्षय ॥३॥
रात्रौ सर्वे प्रलीयते निशाते सभवति च ।
अहस्तु तस्य वैकल्पो रात्रिस्तादृग्विधा स्मृता ॥४॥
चतुर्युगसहस्राते मनवस्तु चतुर्दश ।
चत्वारि तु सहस्राणि वत्सराणा कृत द्विजा ॥५॥
तावच्छती च वै सध्या सध्याशश्च कृतस्य तु ।
त्रिशती द्विशती सध्या तथा चैकशती क्रमात् ॥६॥
अ शक षट्शत तस्मात्कृतसध्याशक विना ।
त्रिद्व्येकसाहस्रमितो विना सध्याशके न तु ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—यहाँ प्राथमिक सर्ग का जो काल होता है वह अह कहा गया है। प्राकृत सर्ग की वैसी ही सक्षेप से रात्रि हुआ करती है ॥१॥ विभु दिन मे तो सृजन कार्य किया करते हैं और जब

दिन समाप्त होकर रात्रि आती है उस समय प्रलय करते हैं। यह इसका औपचारिक कार्यक्रम है और अहोरात्र नहीं है ॥२॥ दिवा में समस्त विकृतियाँ, विकार, विश्वदेवता, प्रजापतिगण और अन्य सब महर्षि गण स्थित रहा करते है। रात्रि के समय जब आता है तो सभी प्रलीन हो जाते हैं तथा पुनः निशा के अन्त होने पर उत्पन्न हो जाया करते हैं। उसका यह वैकल्प होता है तथा रात्रि भी उसी प्रकार की कही गई है। ॥३॥४॥ ब्रह्मा का दिन का काल चारो (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलि-युग (युगों के एक सहस्र हो जाने पर होता है और उस काल मे चौदह मनु हुआ करते है। चार सहस्र वत्सरों का कृत है ॥५॥ उतनी सौ ही कृत की सन्ध्या और सन्ध्यांश हैं। क्रम से त्रिशती, द्विशती और एक शती सन्ध्या हुआ करती है ॥६॥ कृत सन्ध्यांशक के बिना उससे षट् शत अशक होता है। तीन, दो और एक साहस्र की मिति मे सन्ध्यांशक के बिना होते है ॥७॥

त्रेताद्वापरतिष्याणां कृतस्य कथयामि वः ।
निमेषपंचदशका काष्ठा स्वस्थस्य सुव्रताः ॥८॥
मर्त्यस्य चाक्ष्णोस्तस्याश्च ततस्त्रिंशतिका कला ।
कलात्रिंशतिको विप्रा मुहूर्त इति कल्पितः ॥९॥
मुहूर्तपंचदशिका रजनी तादृश त्वहः ।
पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुन ॥१०॥
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषा शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ।
त्रिंशद्ये मानुषा मासाः पित्र्यो मासस्तु स स्मृतः ॥११॥
शतानि त्रीणि मासाना षष्ट्या चाप्यधिकानि वै ।
पित्र्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ॥१२॥
मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छत भवेत् ।
पितणा त्रीणि वर्षाणि सख्यातानीह तानि वै ॥१३॥
दश वै ह्यधिका मासाः पितृसंख्येह संस्मृता ।
लौकिकेनैव मानेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः ॥१४॥

अब मैं आप लोगों के सामने त्रेता, द्वापर और तिष्यों के युग के

विषय मे वर्णन करता हूँ । हे सुव्रत वालो ! स्वस्थ पुरुष के पन्द्रह निमेषो की एक काष्ठा होती है ॥८॥ मनुष्य के नेत्रो के जो पलक खुलते- मुंदते हैं वह निमेष हैं और त्रिशातिक निमेषो की एक कला होती है । हे विप्रगण ! त्रिशातिक कलाओ का एक मुहूर्त कहा जाता है ॥९॥ पन्द्रह मुहूर्त्तों की रजनी होती है और उतना दिन होता है । तात्पर्य दो घडी का एक मूहूर्त्त होता है और तीस-तीस घडी के दिन-रात हुआ करते हैं । पितृगणो के रात-दिन और मास तथा उनका प्रविभाग पुन. होता है ॥१०॥ पितृगण का कृष्ण पक्ष दिन कहा जाता है और मास का शुक्ल पक्ष उनके स्वप्न के लिये रात्रि होती है । मनुष्यो के तीस मास का समय पितृगण का एक मास होता है ॥११॥ तीन सौ साठ मासो का यह पितृगण का सम्वत्सर मानुप के द्वारा विभावित किया जाता है ॥१२॥ मानुपमान के द्वारा ही जो एक सौ वर्ष होते है वे पितृगणो के यहाँ तीन ही वर्ष गिने जाते है ॥१३॥ लौकिक मान के द्वारा जैसा मानुप अब्द [वर्ष] कहा गया है वैसे ही पितृगणो के यहाँ पर भी बारह मास सख्यात होते हैं ॥१४॥

एतद्दिव्यमहोरात्रमिति लैंगेऽत्र पठ्यते ।
दिव्ये रात्र्यहनी वर्ष प्रविभागस्तयोः पुनः ॥१५॥
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ।
एते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसख्याते विशेषतः ॥१६॥
त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ।
मानुषं तु शत विप्रा दिव्यमासास्त्रयस्तु ते ॥१७॥
दश चैव तथाहानि दिव्यो ह्येष विधि स्मृतः ।
त्रीणी वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि तु ॥१८॥
दिव्यः सवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषाणि प्रमाणतः ॥१९॥
त्रिंशदन्यानि वर्षाणि मत. सप्तर्षिवत्सरः ।
नव यानि सहस्राणि वर्षाणा मानुषाणि तु ॥२०॥

अन्यानि नवतीश्चैव ध्रौव मवत्सरस्तु स ।
षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि वर्षाणा मानुषाणि तु ॥२१॥
वर्षाणा तच्छत ज्ञेय दिव्यो ह्येष विधि स्मृत ।
त्रीण्येव नियुतान्याहु र्वर्षाणा मानुषाणि तु ॥२२॥
षष्टिश्चैव सहस्राणि सख्यातानि तु सख्यया ।
दिव्य वर्षसहस्र तु प्राहु सख्याविदो जना ॥२३॥

यहाँ लिङ्ग महा पुराण म ये दिव्य अहोरात्र पढ़े जाते हैं। इसी प्रकार दिव्य रात्रि, दिन और वर्ष आदि भी होते है। उनका प्रविभाग पुन किया जाता है ॥१५॥ पितृगण का दिन उत्तरायण काल होता है अर्थात् जब सूर्य उत्तरायण होते हैं उसी समय को पैत्र्य दिन कहा जाता है। तथा जब सूर्य जितने समय तक दक्षिणायन रहा करते हैं उतना समय पितृगण की रात्रि कही जाती है। विशेष रूप से ये ही दिव्य रात्रि और दिन प्रसख्यान होते हैं ॥१६॥ तब तीस वर्ष हो जाते है तब दिव्य का समय पूरा होता है, ऐसा ही कहा गया है। मनुष्यो के जब सौ वर्ष पूरे होते हैं तब दिव्य तीन मास पूर्ण हुआ करते हैं ॥१७॥ और उसी प्रकार से दश अह होते हैं। यह दिव्य विधि कही गई है। तीन लाख साठ मानुष वर्ष हुआ करते हैं। और अन्य नवती का ध्रौव सम्वत्सर होता है। सख्या के ज्ञेता विद्वानो द्वारा सख्या के द्वारा इस तरह दिव्य सहस्र वर्ष सख्या किये जाते हैं ॥१८॥१९॥२०॥२१॥२२॥ ॥२३॥

दिव्येनैव प्रमाणेन युगसख्याप्रकल्पनम् ।
पूर्वं कृतयुग नाम ततस्त्रेता विधीयते ॥२४॥
द्वापरश्च कलिश्चैव युगान्येतानि सुव्रता ।
अथ सवत्सरा दृष्टा मानुषेण प्रमाणत ॥२५॥
कृतस्याद्यस्य विप्रेन्द्रा दिव्यमानेन कीर्तितम् ।
सहस्राणा शतान्यासश्चतुर्दश च सख्यया ॥२६॥

चत्वारिंशत्सहस्राणि तथान्यानि कृतं युगम् ।
तथा दशसहस्राणां वर्षाणां शतसंख्यया ॥२७॥
अशीतिश्च सहस्राणि कालस्त्रेतायुगस्य च ।
सप्तैव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषाणि तु ॥२८॥

इस तरह दिव्य प्रमाण के द्वारा ही युगों की संख्या प्रकल्पित होती है । सबसे प्रथम कृत युग होता है और सत्ययुग के पश्चात् त्रेता युग होता है ॥२४॥ हे सुव्रतगण ! फिर त्रेता के पीछे द्वापर युग और इसके अनन्तर कलियुग होता है । इस रीति से मानुष प्रमाण के द्वारा सम्वत्सर देखे गये हैं ॥२५॥ अब स्फुट बोध प्राप्त करने के लिये इस कृत युग आदि के वर्षों की संख्या जो कि दिव्य मान से कही गई है पुनः उस संख्या को बताया जाता है । कृत युग की संख्या एक लाख चौबीस सहस्र होती है ॥२६॥ त्रेतायुग के संवत्सरों की संख्या दश लाख अस्सी सहस्र होती है ॥२७॥२८॥

विंशतिश्च सहस्राणि कालस्तु द्वापरस्य च ।
तथा शतसहस्राणि वर्षाणां त्रीणि संख्यया ॥२९॥
षष्ठिश्चैव सहस्राणि कालः कलियुगस्य तु ।
एवं चतुर्युगः काल ऋते संध्यांशकात्स्मृतः ॥३०॥
नियुतान्येव षट्त्रिंशन्निरंशानि तु तानि वै ।
चत्वारिंशत्तथा त्रीणि नियुतानीह संख्यया ॥३१॥
विंशतिश्च सहस्राणि संध्यांशश्च चतुर्युगः ।
एवं चतुर्युगाख्याना साधिका ह्येकसप्ततिः ॥३२॥
कृतत्रेतादियुक्ताना मनोरंतरमुच्यते ।
मन्वन्तरस्य संख्या च वर्षाग्रेण प्रकीर्तिता ॥३३॥
त्रिंशत्कोट्यस्तु वर्षाणां मानुषेण द्विजोत्तमाः ।
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतान्यधिकानि तु ॥३४॥

विंशतिश्च सहस्राणि कालोयमधिकं विना ।
मन्वतरस्य सख्यैपा लैगेस्मिन्कीर्तिता द्विजा ॥३५॥

द्वापर युग के वर्षों की सख्या सात लाख बीस सहस्र होती है और कलियुग के वर्षों की सख्या तीन लाख साठ हजार है। इस प्रकार से इन चारो युगो की सख्या सन्ध्याशक के बिना कही गई है ॥२६॥ ॥३०॥ ये निरश छत्तीस लाख होते हैं। चारो युगो का सन्ध्याश तेतालीस लाख बीस सहस्र होता है और इस प्रकार से चारो युगो की साधिका सख्या इकहत्तर होती है ॥३१॥३२॥ अब कृत त्रेता आदि से युक्तो का मन्वन्तर कहा जाता है। मन्वन्तर की सख्या वर्षाग्र के द्वारा कही गई है ॥३३॥ हे द्विजोत्तमगण ! मानुष वर्षों के हिसाब से तीस करोड सडसठ लाख बीस सहस्र अधिक के बिना काल होता है। यह मन्वन्तर की सख्या इस लिङ्ग महापुराण मे कही गई है ॥३४॥३५॥

चतुर्युगस्य च तथा वर्षसख्याप्रकीर्तिता ।
चतुर्युगसहस्रं वै कल्पश्चैको द्विजोत्तमा ॥३६॥
निशाते सृजते लोकान् नश्यते निशि जतव ।
तत्र वैमानिकाना तु अष्टाविंशतिकोटय ॥३७॥
मन्वतरेषु वै सख्या सातरेषु यथातथा ।
त्रीणि कोटिशतान्यासन् कोट्यो द्विनवतिस्तथा ॥३८॥
कल्पेतीऽन्ते तु वै विप्रा सहस्राणा तु सप्तति ।
पुनस्तथाष्टसाहस्रं सर्वनैव समासत ॥३९॥
कल्पावसानिकास्त्यक्त्वा प्रलये समुपस्थिते ।
महर्लोकात् प्रयात्येते जनलोक जनास्तत ॥४०॥
कोटीना द्वे सहस्रे तु अष्टौ कोटिशतानि तु ।
द्विपष्टिश्च तथा कोट्यो नियुतानि च सप्तति ॥४१॥
कल्पार्धसख्या दिव्या वै कल्पमेव तु कल्पयेत् ।
कल्पाना वै सहस्रं तु वर्षमेकमजस्य तु ॥४२॥

अब तक कुनाहि चारो युगो की सख्या बनाई गई है। हे द्विजोत्तमो ! जब इन चारो युगो की चौकडी का एक सहस्र समाप्त हो जाता है तब एक कल्प हुआ करना है ॥३६॥ निशा के अन्त मे लोको का सृजन करते हैं और वे सब जन्तुगण निशा मे नष्ट हो जाया करते हैं। वैमानिको के अट्ठाईस करोड होते हैं ॥३७॥ सान्तर मन्वन्तरो मे जो सख्या होनी है वह तीन सौ बानवे करोड होती है ॥३८॥ कल्प के अतीत हो जाने पर सर्वत्र ही अठहत्तर सहस्र सक्षेप से कही गई है ॥३६॥ जो ऐसे हैं कि कल्प के अवसान मे भी लय नही होता है उनको छोड कर जिस समय प्रलय का काल उपस्थित होता है उस समय ये जन्तु महर्लोक से जनलोक को चले जाया करते हैं ॥४०॥ दिव्य कल्पार्ध की सख्या आठ सौ दो सहस्र बासठ करोड सात लाख होती है। इसी प्रकार से कल्प की सख्या प्रकल्पित करनी चाहिए। इस तरह से एक सहस्र कल्प का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है ॥४१॥४२॥

वर्षाणामष्टसाहस्रं ब्राह्मं वै ब्रह्मणो युगम्।
सवन युगसाहस्रं सर्वं देवोद्भवस्य तु ॥४३॥
सवनानां सहस्रं तु त्रिविध त्रिगुण तथा।
ब्रह्मणस्तु तथा प्रोक्तः कालः कालात्मन. प्रभोः ॥४४॥
भवोद्भवस्तपश्चैव भव्यो रभः क्रतु पुनः।
ऋतुर्वह्निर्हव्यवाहः सावित्र. शुद्ध एव च ॥४५॥
उशिक. कुशिकश्चैव गाधारो मुनि सत्तमाः।
ऋषभश्च तथा षड्जो मज्जालीयश्च मध्यम. ॥४६॥
वैराजो वै निषादश्च मुख्यो वै मेघवाहन.।
पञ्चमश्चित्रकश्चैव आकूतिर्ज्ञान एव च ॥४७॥
मनः सुदर्शो बृंहश्च तथा वै श्वेतलोहित.।
रक्तश्च पीतवासाश्च असितः सर्वरूपक. ॥४८॥
एवं कल्पास्तु सख्याता ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन.।
कोटिकोटिसहस्राणि कल्पाना मुनिसत्तमाः ॥४६॥

अट्ठारह सहस्र ब्राह्म वर्षों का ब्रह्मा का युग होता है और सबके उद्भव के स्थान स्वरूप भगवान् विष्णु का एक ब्रह्म युग का साहस्र अर्थात् ब्रह्मा के एक हजार युग एक सवन अर्थात् दिन होता है ॥४३॥ विष्णु सवनो का त्रिविध त्रिगुण अर्थात् नौ सहस्र कालात्मा प्रभु रुद्र का काल अर्थात् दिन कहा गया है ॥४४॥ अब कल्पो के नाम बतलाये जाते है कि किन-किन नामों वाले कल्प होते है—भवोद्भव, तप, भव्य, रम्भ क्रतु, ऋतु, वह्नि, हव्य वाह, सावित्र, शुद्ध ये कल्पो के नाम है ॥४५॥ और उशिक, कुशिक, गान्धार, ऋषभ, षड्ज, मजालीय, मध्यम ये भी कल्पो के ही नाम हैं ॥४६॥ वैराज, निषाद, मुख्य, मेघ वाहन, पञ्चम, चित्रक, आकूति, ज्ञान ये सब कल्पो के नाम होते है ॥४७॥ मन, सुदर्श, वृह, श्वेतलोहित, रक्त, पीतवासा, असित और सर्व रूपक हे मुनि सत्तमगण ! ये सब तेतीस कल्पो के नाम हैं। करोडो-करोडो सहस्र कल्प होते है उनमे ये अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा के कल्प ही सख्यात किये गये हैं ॥४८॥४६॥

गतानि तावच्छेषाणि अहर्निश्यानि वै पुनः ।
पराते वै विकाराणि विकार याति विश्वतः ॥५०॥
विकारस्य शिवस्याज्ञावशेनैव तु सत्दतिः ।
संस्द्रते तु विकारे च प्रधाने चात्मनि स्थिते ॥५१॥
साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ ।
गुणाना चैव वैषम्ये विप्राः सृष्टिरिति स्मृता ॥५२॥
साम्ये लयो गुणानां तु तयोर्हेतुर्महेश्वरः ।
लीलया देवदेवेन सर्गास्त्वीदृग्विधाः कृता ॥५३॥
असख्याताश्च सक्षेपात् प्रधानादन्वधिष्ठितात् ।
असंख्याताश्च कल्पाख्या ह्यसख्यताः पितामहाः ॥५४॥
हरयश्चाप्यसंख्यातास्त्वेक एव महेश्वरः ।
प्रधानादिप्रवृत्तानि लीलया प्राकृतानि तु ॥५५॥

गुणात्मिका च तद्वृत्तिस्तस्य देवस्य वै त्रिधा ।
अप्राकृतस्य तस्यादिर्मध्यान्तं नास्ति चात्मनः ॥५६॥
पितामहस्याथ परः परार्धद्वयसमितः ।
दिवा सृष्टं तु यत्सर्वं निशि नश्यति चास्य तत् ॥५७॥

महाप्रलय के समय मे अहर्निश मे होने वाले शेष विकार युक्त विश्व विकार अर्थात् प्रलय को प्राप्त होते हैं ॥५०॥ उस विकार स्वरूप प्रलय की भी सहृति भगवान् शिवकी आज्ञा के वश से ही होती है जब कि प्रधान आत्मा मे स्थित होता है और विकार सहृत होता है ॥५१॥ प्रधान और पुरुष दोनो ही साधर्म्य से स्थित रहा करते हैं । हे विप्रगण ! जिस समय गुणो का वैषम्य होता है उसी समय सृष्टि होती है, ऐसा कहा जाता है ॥५२॥ गुणो की साम्य दशा होने पर ही लय हुआ करता है । लय और सृजन इन दोनो का हेतु महेश्वर ही होते हैं । देवो के भी देव के द्वारा लीला से ही इस प्रकार के सर्ग किये गये हैं ॥५३॥ वे सर्ग प्रधान से अन्वधिष्ठित सक्षेप से असंख्यात होते जिनको कल्प कहा जाता है वे भी असख्यात हैं और पितामह भी अगणित हुआ करते हैं ॥५४॥ इसी प्रकार हरि अर्थात् विष्णु भी पालन करने वाले असख्यो ही होते हैं केवल भगवान् महेश्वर ही एक होते हैं । ये सब लीला से प्रधानादि के द्वारा प्रवृत्त होते हैं और प्राकृत स्वरूप वाले हैं ॥५५॥ उस देव की तीन प्रकार से गुणात्मिका वृत्ति हुआ करती है अर्थात् एक ही देव भिन्न गुण-कर्म के कारण ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के तीनो रूप होते हैं । जो अप्राकृत आत्मा है उसका कभी भी आदि, मध्य और अन्त नहीं होता है ॥५६॥ पितामह ब्रह्मा का परार्द्धद्वय समित पर हुआ करता है । इसके द्वारा दिन मे जो कुछ सृजन किया जाता है वह इसकी समस्त सृष्टि निशा के समय मे नष्ट हो जाया करती है ॥५७॥

भूर्भुवः स्वर्महस्तत्र नश्यते चोर्ध्वतो न च ।
रात्रौ चैकार्णवे ब्रह्मा नष्टे स्थावरजंगमे ॥५८॥

सुप्त्वापाम्भसि यस्तस्मान्नारायण इति स्मृत ।
शर्वर्यंते प्रबुद्धो वै दृष्ट्वा शून्य चराचरम् ॥५९॥
स्रष्टुं तदा मतिं चक्रे ब्रह्मा ब्रह्मविदा वर ।
उदकैराप्लुता क्ष्मा ता समादाय सनातन. ॥६०॥
पूर्ववत्स्थापयमास वाराह रूपमास्थितः ।
नदीनदसमुद्रांश्च पूर्ववच्चाकरोत्प्रभुः ॥६१॥
कृत्वा धरा प्रयत्नेन निम्नोन्नतिविवर्जिताम् ।
धराया सोचिनोत्सर्वान् गिरीन् दग्धान् पुराग्निना ॥६२॥
भूराद्याश्चतुरो लोकान् कल्पयामास पूर्ववत् ।
स्रष्टुं च भगवाश्चक्रे तदा स्रष्टा पुनर्मतिम् ॥६३॥

भूर्लोक, भुव , स्व. और महर्लोक ऊर्ध्व से नष्ट नही होते हैं। रात्रि का समय होने पर जब कि समस्त स्थावर और जङ्गम नष्ट हो जाते हैं तब एकार्णव मे वह ब्रह्मा सागर के जलो मे शयन कर जाता है। इसीलिए उसका "नारायण" यह नाम कहा गया है। जब वह रात्रि समाप्त हो जाती है तो उसके अन्त मे वही क्षीरसागर मे शयन करने वाले नारायण प्रवुद्ध हो जाया करते हैं और इस चराचर सबको शून्य देखते हैं ॥५८॥५९॥ उस समय मे ब्रह्म के वेत्ताओ मे परम श्रेष्ठ ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना करने का विचार किया था। सनातन प्रभु ने जलो मे डुबी हुई इस भूमि को जल से निकालकर ऊपर कर दिया था ॥६०॥ प्रभु ने वाराह के स्वरूप मे स्थित होकर अर्थात् वाराह अवतार धारण करके इस भूमि को पूर्व की भाँति ही स्थापित कर दिया था और जितने भी नदी, नद तथा समुद्र आदि थे उन सब को भी पहली ही स्थिति मे कर दिया था ॥६१॥ फिर पृथ्वी को यथास्थान स्थिर करके उसे ऊँचाई-निचाई से रहित समान किया था तथा पहिले अग्नि से जले हुए पर्वतो को सबको एकत्रित करके स्थिर किया था ॥६२॥ भूर्लोक से आदि जो

चार लोक हैं उन चारों को पूर्व की ही भाँति कल्पित किया था। इसके अनन्तर सृजन करने वाले भगवान् ने पुनः सृष्टि करने की अपनी बुद्धि की थी ॥६३॥

॥ ब्रह्म द्वारा ऋषि, देव आदि की सृष्टि ॥

यदा स्रष्टुं मतिं चक्रे मोहश्चासीन्महात्मनः ।
द्विजाश्च बुद्धिपूर्वं तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥१॥
तमो मोहो महामोहो ह्यतामिस्रश्चांधसंज्ञितः ।
अविद्या पञ्चधा ह्येषा प्रादुर्भूता स्वयंभुवः ॥२॥
अविद्यया मुनेर्ग्रस्तः सर्गो मुख्य इति स्मृतः ।
असाधक इति स्मृत्वा सर्गो मुख्यः प्रजापतिः ॥३॥
अभ्यमन्यत सोऽन्यं वै नगा मुख्योद्भवाः स्मृताः ।
त्रिधा कंठो मुनेस्तस्य ध्यायतो वै ह्यवर्तत ॥४॥
प्रथमं तस्य वै जज्ञे तिर्यक्स्रोतो महात्मनः ।
ऊर्ध्वस्रोतः परस्तस्य सात्विकः स इति स्मृतः ॥५॥
अर्वाक्स्रोतोऽनुग्रहश्च तथा भूतादिकः पुनः ।
ब्रह्मणो महतस्त्वाद्यो द्वितीयो भौतिकस्तथा ॥६॥
सर्गस्तृतीयश्चैंद्रियस्तुरीयो मुख्य उच्यते ।
तिर्यग्योन्यः पञ्चमस्तु षष्ठो दैविक उच्यते ॥७॥

सूत जी ने कहा—अविद्या के बिना देहों का सृजन करने पर भी जीवों का कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व सम्भव नहीं होता है इसलिए पहिले विद्या के प्रादुर्भाव मूल को कहते हैं कि अव्यक्त से जन्म ग्रहण करने ब्रह्मा को जिस समय सृजन करने का विचार किया था बुद्धि पूर्वक मोह हुआ था ॥१॥ तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्ध संज्ञा वाली ये पांच प्रकार की अविद्या हैं सो स्वयम्भू को उस समय में उत्पन्न हुई

थी ॥२॥ ब्रह्मा मुख्य प्रथम सर्ग अविद्या से ग्रस्त था। इसलिए वह अमुख्य कहा गया है। प्रजापति ने मुख्य सर्ग साधक नहीं है, ऐसा स्मरण करके अन्य ही मान लिया था। मुख्य सर्ग मे नग और वृक्ष प्रथमोद्भव होते है। ध्यान करते हुए ब्रह्मा का कण्ठ सत्त्व, रज, स्तमोरूप तीन प्रकार का हो गया था ॥३॥४॥ महान् आत्मा वाले ब्रह्मा से पहिले तिर्यक् गति वाले पशु आदि ने जन्म ग्रहण किया था। इसके पश्चात् ऊर्ध्व स्रोत देवादि उत्पन्न हुए जो कि सात्विक सर्ग कहा जाता है ॥५॥ फिर ईश्वर के अनुग्रह से जन्य विपर्यासादि शक्ति विशेष मनुष्य रूप सर्ग हुआ और इसके अनन्तर अर्वाक् स्रोत भूतादिक उत्पन्न हुए थे। ब्रह्मा से महत्तत्त्व सबसे पहिला सर्ग है फिर दूसरा भूत-तन्मात्राओं का सर्ग है ॥६॥ इसके पश्चात् श्रवणादि का ऐन्द्रिय तृतीय सर्ग होता है। चतुर्थ मुख्य सर्ग कहा जाता है। तिर्यग् योनी वालो का पञ्चम सर्ग होता है और दैविक सर्ग छटा कहा जाता है ॥७॥

सप्तमो मानुषो विप्रा अष्टमोऽनुग्रह स्मृतः।
नवमश्चैव कौमार. प्राकृता. वैकृतास्त्विमे ॥८॥
पुरस्तादसृजद्देव सनद सनक तथा।
सनातन मुनिश्रेष्ठा नैष्कर्म्येण गता परम् ॥९॥
मरीचिभृग्वङ्गिरस. पुलस्त्य पुलह क्रतुम्।
दक्षमत्रिं वसिष्ठ च सोऽसृजद्योगविद्यया ॥१०॥
नवैते ब्रह्मण पुत्रा ब्रह्मज्ञा ब्रह्मणोत्तमा.।
ब्रह्मवादिन एवते ब्रह्मण सदृशा स्मृता ॥११॥
सङ्कल्पश्चैव धर्मश्च ह्यधर्मो धर्मसंनिधि.।
द्वादशैव प्रजास्त्वेता ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥१२॥
ऋभुं सनत्कुमार च ससर्जादौ सनातन·।
तावूर्ध्वरेतसौ दिव्यौ चाग्रजौ ब्रह्मवादिनौ ॥१३॥
कुमारौ ब्रह्मणस्तुल्यौ सर्वज्ञौ सर्वभाविनौ।
वक्ष्ये भार्याकुल तेषा मुनीनामग्रजन्मनाम् ॥१४॥

हे विप्रगण ! सप्तम मानुष सर्ग हुआ था और अष्टम अनुग्रह नामक सर्ग था। नवम कौमार सर्ग था। ये सब प्राकृत तथा वैकृत सर्ग थे ॥८॥ देव ब्रह्मा ने सर्व प्रथम मुनि श्रेष्ठ सनक, सनन्द और सनातन का सृजन किया था जो कि निष्कर्म भाव मे रत होकर परम गति को प्राप्त हो गये थे ॥९॥ इसके उपरान्त ब्रह्मा ने मरीचि, भृगु, अङ्गिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ को योग विद्या के द्वारा सृष्ट किया था ॥१०॥ ये नौ ब्रह्मा के पुत्र, ब्रह्म के ज्ञाता, उत्तम ब्राह्मण, ब्रह्मवादी थे जो कि सब ये ब्रह्मा के ही समान कहे गये है ॥११॥ संकल, धर्म सन्निधि अधर्म ये कुल बारह अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा जी की ही प्रजा अर्थात् सन्तति हैं ॥१२॥ सनातन ने आदि मे ऋभु और सनत्कुमार की सृष्टि की थी। वे दोनो ऊर्ध्वरेता, अग्रज, दिव्य और ब्रह्म वादी थे ॥१३॥ ये दोनो कुमार सर्वज्ञ और सर्व भावी ब्रह्मा के ही तुल्य थे। अब उन अग्रजन्मा मुनियो के भार्या कुल का वर्णन किया जायगा ॥१४॥

समासतो मुनिश्रेष्ठाः प्रजासभूतिमेव च।
शतरूपा तु वै राज्ञी विराजमसृजत्प्रभु. ॥१५॥
स्वायभुवात्तु वै राज्ञी शतरूपा त्वयोनिजा।
लेभे पुत्रद्वय पुण्या तथा कन्याद्वयं च सा ॥१६॥
उत्तानपादो ह्यवरो धीमाञ्ज्येष्ठ: प्रिय व्रतं ।
ज्येष्ठा वरिष्ठा त्वाकूतिः प्रसूतिश्चानुजा स्मृता ॥१७॥
उपयेमे तदाकूति रुचिर्नाम प्रजापति.।
प्रसूति भगवान्दक्षो लोकधात्री च योगिनीम् ॥१८॥
दक्षिणासहित यज्ञमाकूतिः सुषुवे तथा।
दक्षिणा जनयामास दिव्या द्वादश पुत्रिका. ॥१९॥
प्रसूतिः सुषुवे दक्षाच्चतुर्विशतिकन्यकाः।
श्रद्धां लक्ष्मी धृति पुष्टि तुष्टि मेधा क्रिया तथा ॥२०॥

बुद्धि लज्जा वपुःशांति सिद्धि कीर्ति महातपाः ।
ख्याति शांति च सभूति स्मृति प्रीति क्षमा तथा ॥२१॥
सन्नति चानसूया च ऊर्जां स्वाहा सुरारणिम् ।
स्वधा चैव महाभागा प्रददौ च यथाक्रमम् ॥२२॥

हे मुनिश्रेष्ठो ! समास म यह कहते है कि प्रजा की सम्भूति अर्थात् सन्तति को जन्म देने वाली राज्ञा शतरूपा और वैराज अर्थात् स्वायम्भुव मनु को प्रभु ब्रह्मा ने सृष्ट किया था ॥१५॥ स्वायम्भुव मनु से अयोनि से जन्म ग्रहण करने वाली शत रूपा राज्ञी ने, जो कि परम पुण्यमयी थी, दो पुत्र और दो कन्यायें प्राप्त की थी ॥१६॥ परम बुद्धिमान् प्रिय व्रत ज्येष्ठ पुत्र था और उत्तानपाद नाम धारी कनिष्ठ पुत्र था । दो कन्याओ मे आकृति ज्येष्ठ एव वरिष्ठ थी तथा प्रसूति छोटी कन्या थी ॥१७॥ रुचि नाम वाले प्रजापति ने आकूति के साथ विवाह किया था । लोको की धात्री और योगिनी प्रसूति के साथ दक्ष भगवान् ने विवाह किया था ॥१८॥ आकूति ने दक्षिणा के सहित यज्ञ को प्रसूत किया था । फिर उस दक्षिणा ने परम दिव्य बारह पुत्रियो को जन्म दिया था ॥१९॥ प्रसूति ने दक्ष प्रजापति अपने पति से चौबीस कन्याओ को जन्म ग्रहण कराया था । श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि, कीर्त्ति- महातपा, ख्याति, शान्ति, सभूति, स्मृति प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा, सुरारणि और महाभागा स्वधा ये उन चौबीसो के शुभ नाम थे । इन सबको यथाक्रम सुयोग्य वरो को दान कर दे दिया था ॥२०॥२१॥२२॥

श्रद्धाद्यास्त्वैव कीर्त्यंतास्त्रयोदश सुदारिका ।
धर्मं प्रजापति जग्मु पति परमदुर्लभा ॥२३॥
उपयेमे भृगुर्धीमान् ख्याति ता भार्गवारणिम् ।
सभूति न मरीचिस्तु स्मृति चैवागिरा मुनि. ॥२४॥

प्रीतिं पुलस्त्यः पुण्यात्मा क्षमां तां पुलहो मुनिः ।
क्रतुश्च सन्नतिं धीमानत्रिस्तां चानसूयकाम् ॥२५॥
ऊर्जां वसिष्ठो भगवान्वरिष्ठो वारिजेक्षणाम् ।
विभावसुस्तथा स्वाहा स्वधां वै पितरस्तथा ॥२६॥
पुत्रीकृता सती या सा मानसी शिवसंभवा ।
दक्षेण जगतां धात्री रुद्रमेवास्थिता पतिम् ॥२७॥
अर्धनारीश्वरं दृष्ट्वा सर्गादौ कनकांडजः ।
विभजस्वेति चाहादौ यदा जाता तदाभवत् ॥२८॥
तस्याश्चैवांशजाः सर्वाः स्त्रियस्त्रिभुवने तथा ।
एकादशविधा रुद्रास्तस्य चांशोद्भवास्तथा ॥२६॥

श्रद्धा से आदि लेकर कीर्त्ति पर्यन्त परम दुर्लभ जो अच्छी पुत्रियाँ थी उन्होने प्रजापति धर्म को अपना पति प्राप्त किया था ॥२३॥ धीमान् भृगु ने ख्याति के साथ विवाह किया था । मरीचि ने भार्गवारणि और सम्भूति को अपनी पत्नियाँ बनाया था । अङ्गिरा मुनि ने स्मृति का पाणिग्रहण किया था ॥२४॥ पुण्यात्मा पुलस्त्य ने प्रीति के साथ और प्रलह मुनि ने क्षमा के साथ विवाह किया था । क्रतु नामक महा-मुनि ने सन्नति को पत्नी बनाया था और परम मनीषी अत्रि मुनि ने अनुसूया का पाणिग्रहण किया था ॥२५॥ भगवान् वसिष्ठ ने ऊर्जा के साथ विवाह किया था । वह ऊर्जा पद्म दल के समान सुन्दर नेत्रों वाली थी जिसका परम वरिष्ठ वसिष्ठ ने अपनी पत्नी बनाया । विभावसु अग्निदेव ने स्वाहा के साथ और पितृगण ने स्वधा के साथ विवाह किया था ॥२६॥ सती जो शिव सम्भवा मानसी पुत्री कृता थी उस जगतों की धात्री जगदम्बा का दक्ष ने रुद्र ही को पति बनाया था ॥२७॥ सर्ग के आदि मे कनकाण्डज ने अर्ध नारीश्वर को देखकर, आदि मे विभाग करो—यह कहा था । जिस समय हुई थी तभी हुआ था ॥२८॥ उसी के अंश से जन्म ग्रहण करने वाली त्रिभुवन मे समस्त

स्त्रियाँ हैं। उसके अंश से उद्भव प्राप्त करने वाले ग्यारह प्रकार के रुद्र हैं ॥२९॥

स्त्रीलिंगमखिलं सा वै पुल्लिंगं नीललोहितः।
तं दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा दक्षमालोक्य सुव्रताम् ॥३०॥
भजस्व धात्रीं जगतां ममापि च तवापि च।
पुन्नाम्नो नरकात्त्राति इति पुत्रेत्विहोक्तितः ॥३१॥
प्रशस्ता तव कातेयं स्यात् पुत्री विश्वमातृका।
तस्मात् पुत्री सती नाम्ना तवैषा च भविष्यति ॥३२॥
एवमुक्तस्तदा दक्षो नियोगाद्ब्रह्मणो मुनिः।
लब्ध्वा पुत्रीं ददौ साक्षात् सतीं रुद्राय सादरम् ॥३३॥
धर्मस्य पत्न्यः श्रद्धाद्याः कीर्तिता वै त्रयोदश।
तासु धर्मप्रजां वक्ष्ये यथाक्रममनुत्तमम् ॥३४॥
कामो दर्पोऽथ नियमः सन्तोषो लोभ एव च।
श्रुतस्तु दडः समयो बोधश्चैव महाद्युतिः ॥३५॥
अप्रमादश्च विनयो व्यवसायो द्विजोत्तमाः।
क्षेमं सुखं यशश्चैव धर्मपुत्राश्च तासु वै ॥३६॥

यह समस्त स्त्रीलिङ्ग है और नील लोहित पुलिङ्ग है। ब्रह्मा ने उस दक्ष को देखकर तथा सुव्रता का अवलोकन करके कहा था कि इस जगतों की धात्री की सेवा करो। यह तुम्हारी भी है और मेरी भी है। पुन्नामक नरक से जो त्राण करता है वह पुत्र होता है, ऐसी यहाँ पर उक्ति है ॥३०॥३१॥ यह परम सुन्दरी एवं प्रशस्त तथा विश्व की जननी आपकी पुत्री है। इसी कारण से सती के नाम से यह तुम्हारा पुत्री होगी ॥३२॥ इस प्रकार से कहे गये दक्ष ने उस समय ब्रह्माजी के आदेश से पुत्री को प्राप्त किया था और साक्षात् सती को आदर पूर्वक भगवान् रुद्र को दे दिया था ॥३३॥ धर्म की श्रद्धा आदि तेरह पत्नियों का कीर्तन किया गया है। उन तेरह पत्नियों में धर्म से

सन्तति समुत्पन्न हुई थी उस परम उत्तम सन्तति समुदाय का यथाक्रम वर्णन करूंगा ।।३४।। धर्म के पुत्रो के नाम बताते है, काम, दर्प, नियम, सन्तोष, लोभ, श्रुत, दण्ड, समय, महाद्युति बोध, अप्रमाद, विनय, व्यवसाय, क्षेम, सुख और यश ये सर्व उन तेरह पत्नियो मे धर्म के पुत्र समुत्पन्न हुए थे ।।३५।।३६।।

धर्मस्य वै क्रियाया तु दंड: समय एव च ।
अप्रमादस्तथा बोधो बुद्धेर्धर्मस्य तौ सुतौ ।।३७।।
तस्मात्पंचदशैवैते तासु धर्मात्मिजास्त्विह ।
भृगुपत्नी च सुषुवे ख्यातिर्विष्णोः प्रिया श्रियम् ।।३८।।
धातारं च विधातारं मेरोर्जामातरौ सुतौ ।
प्रभूतिर्नाम या पत्नी मरीचेः सुषुवे सुतौ ।।३९।।
पूर्णमासं तु मारीच तत' कन्याचतुष्टयम् ।
तुष्टिर्ज्येष्ठा च वै दृष्टि: कृपिश्चापचितिस्तथा ।।४०।।
क्षमा च सुषुवे पुत्रान् पुत्री च पुलहाच्छुभाम् ।
कर्दमं च वरीयासं सहिष्णु मुनिसत्तमाः ।।४१।।
तथा कनकपीतां स पीवरी पृथिवीसमाम् ।
प्रीत्यां पुलस्त्यश्च तथा जनयामास वै सुतान् ।।४२।।
दत्तोर्णं वेदबाहु च पुत्री चान्या दृषद्वतीम् ।
पुत्राणां षष्टिसाहस्रं सन्नतिः सुषुवे शुभा ।।४३।।

क्रिया नाम धारिणी धर्म की पत्नी मे दण्ड और समय उत्पन्न हुए थे । अप्रमाद और बोध नामक पुत्रो ने धर्म की बुद्ध पत्नी में जन्म ग्रहण किया था ।।३७।। इस प्रकार से ये पन्द्रह ही उन पत्नियो मे धर्म के पुत्र प्रसूत हुये थे । भृगु मुनि की पत्नी ख्याति ने भगवान् विष्णु की परम प्रिया श्री को जन्म दिया था ।।३८।। प्रभूति नाम वाली पत्नी ने मरीचि से महा मुनीन्द्र से दो पुत्र प्रसूत किये थे जिनका नाम धाता और विधाता था और जो मेरु के जामाता थे ।।३९।। मरीचि की पूर्ण-

मासी पत्नी ने चार कन्याओं को जन्म ग्रहण कराया था जिनके नाम-तुष्टि, दृष्टि, कृषि और अपचिति थे। इनमे तुष्टि सबसे बडी थी ॥४०॥ क्षमा नाम धारिणी पत्नी ने पुलह नामक ऋषि से पुत्रो को प्रसव दिया था और एक परम शुभ कन्या को भी जन्म ग्रहण कराया था और अति वरिष्ठ एव सहिष्णु कदम को उत्पन्न किया था ॥४१॥ पुलस्त्य ऋषि ने प्रीति नाम वाली अपनी पत्नी मे पृथिवी के तुल्य पीवर कनक पीता को जन्म दिया था तथा पुत्रों को उत्पन्न किया था ॥४२॥ परम शुभा सन्नति ने दत्तोर्ण और वेदवाहु नामक पुत्रो को और अन्य दृपद्वती पुत्री को जन्म दिया था। एव साठ सहस्र पुत्रो को समुत्पन्न किया था ॥४३॥

क्रतोस्तु भार्या सर्वे ते वालखिल्या इति श्रुता ।
सिनीवाली कुहू चैव राका चानुमति तथा ॥४४॥
स्मृतिश्च सुपुवे पत्नी मुनेश्चागिरसस्तथा ।
लब्धानुभावमग्नि च कीर्तिमत च सुव्रता ॥४५॥
अत्रेर्भार्यानसूया वै सुपुवे पट्प्रजास्तु या ।
तास्वेका कन्यका नाम्ना श्रुति सा सूनुपचकम् ॥४६॥
सत्यनेत्रो मुनिर्भव्यो मूर्तिराप शनैश्चर ।
सोमश्च वै श्रुति पष्ठी पचात्रेयास्तु सूनव ॥४७॥
ऊर्जा वसिष्ठाद्वै लेभे सुताश्च सुतवत्सला ।
ज्यायसी पुडरीकाक्षान्वासिष्ठान्वरलोचना ॥४८॥
रज सुहोत्रो बाहुश्च सवनश्चानघस्तथा ।
सुतपा शुक्र इत्येते मुनेर्नै सप्त सूनव ॥४९॥
यश्चाभिमानी भगवान् भवात्मा पैतामहो वह्निरसु प्रजानाम् ।
स्वाहा च तस्मात्सुपुवे सुताना त्रय त्रयाणा जगता हिताय ॥५०॥

ये साठ सहस्र पुत्र क्रतु की भार्या ने पैदा किए थे जो सब बाल खिल्य — इस नाम से प्रसिद्ध हुये थे। आङ्गिरस की पत्नी ने जिसका शुभ

नाम स्मृति या सिनी वाली, कुहू, राका अनुमति को उत्पन्न किया था और उस सुव्रता ने लब्धानुभाव, अग्नि तथा कीर्तिमान को भी जन्म दिया था ।।४४।।४५।। अत्रि महा मुनि की पत्नी अनसूया ने छः सन्ततियों को समुत्पन्न किया था उनमे एक श्रुति नाम धारिणी कन्या थी और पाँच पुत्र थे ।।४६।। पुत्रो के नाम—सत्यनेत्र, मुनिर्भव्य, मूर्त्तिराप, शनैश्चर और सोम थे। इनमे छटी श्रुति कन्या थी। ऐसे ये पाँच आत्रेय पुत्र हुये थे ।।४७।। ऊर्जा नाम वाली सुतो पर अत्यन्त वात्सल्य रखने वाली पत्नी मे वसिष्ठ मुनि से पुत्रों की प्राप्ति की थी। श्रेष्ठ नेत्रो वाली ज्यायसी पत्नी ने वसिष्ठ पुण्डरीकाक्ष पुत्रो को जन्म दिया था। मुनि के सात पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके शुभ नाम—रज, सुहोत्र, बाहु, सवन, अनघ, सुतपा और शुक्र ये थे ।४८।४९। जो परम अभिमानी, भव की आत्मा, भगवान् वह्नि थे जो कि प्रजाओ के प्राण और पितामह के पुत्र थे उनसे तीनो लोको के हित सम्पादन के लिये स्वाहा नामधारिणी पत्नी ने तीन पुत्रो को प्रसव दिया था ।।५०।।

।। वह्नि, पितृ, रुद्र सृष्टि ।।

पवमान. पावकश्च शुचिरग्निश्च ते स्मृता ।
निर्मथ्यः पवमानस्तु वैद्युतः पावकः स्मृतः ।।१।।
शुचिः सौरस्तु विज्ञेय स्वाहापुनास्त्रयस्तु ते ।
पुत्रैः पौत्रैस्त्विहैतेषा सख्या सक्षेपतः स्मृता ।।२।।
विसृज्य सप्तक चादौ चत्वारिशन्नवैव च ।
इत्येते वह्नय. प्रोक्ताः प्रणीयंतेऽध्वरेषु च ।।३।।
सर्वे तपस्विनस्त्वेते सर्वे व्रतभृतः स्मृताः ।
प्रजाना पतयः सर्वे सर्वे रुद्रात्मका. स्मृता ।।४।।
अयज्वानश्च यज्वान. पितर प्रीतिमानसा ।
अग्निष्वात्ताश्च यज्वान· शेषा बर्हिषदः स्मृता ।।५।।

मेना तु मानसी तेषा जनयामास वै स्वधा ।
अग्निष्वात्तात्मजा मेना मानसी लोकविश्रुता ॥६॥
असूत मेना मैनाक क्रौञ्च तस्यानुजामुमाम् ।
गगा हैमवती जज्ञे भवागाश्लेषपावनीम् ॥७॥

इस छठे अध्याय मे वह्नि से समुत्पन्न सृष्टि, पितृगण से उत्पन्न होने वाली सृष्टि और भगवान् रुद्र से समुत्पन्न होने वाली परम अद्भुत सृष्टि का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—वे पवमान, पावक, शुचि और अग्नि नाम से कहे जाते है। वे तीन प्रकार के हैं—एक तो निर्मथ्य हैं जो अरणी आदि के सघर्ष से समुत्थ होते है, दूसरे विद्युत् से सम्बन्ध रखने वाले हैं और तृतीय सौर परम शुचि हैं जो सूर्य से सम्बन्ध रखने वाले है। ये तीन ही स्वाहा के पुत्र थे। यहाँ पर पुत्र और पौत्रो के द्वारा इनकी सख्या सक्षेप मे बताई गई है। आदि मे सतक का त्याग करके उनचास वह्नि कही गई है जो कि अध्वरो मे प्रणीत होती है ॥१॥२॥३॥ ये सभी महान् तपस्वी थे तथा समस्त व्रत भूत कहे गये है। ये सब प्रजाओ के पति और भगवान् रुद्र की आत्मा कहे गये हैं ॥४॥ अगज्वान, यज्वान, पितर, प्रीति मानस, अग्निष्ठान्त और यज्वान शेष सब वर्हिपद कहे गये हैं ॥५॥ उनमे स्वधा ने मेना को मानसी समुत्पन्न किया था। इसलिये अग्निष्वात्त त्मजा मेना लोक मे मानसी के नाम से ही प्रसिद्ध है ॥६॥ मेना ने मैनाक और क्रौञ्च को, उसकी अनुजा उमा को और भगवान् भव के अग के श्लेष को पाकर परम पावन हो जाने वाली हैमवती गगा को समुत्पन्न किया था ॥७॥

धरणी जनयामास मानसी यज्ञयाजिनीम् ।
स्वधा सा मेरुराजस्य पत्नी पद्मसमानना ॥८॥
पितरोऽमृतपा प्रोक्तास्तेषा चैवेह विस्तर ।
ऋषीणा च कुल सर्व शृणुध्व तत्सुविस्तरम् ॥९॥
वदामि पृथगध्यायसस्थित वस्तदूर्ध्वत ।
दाक्षायणी सती याता पार्श्व रुद्रस्त पार्वती ॥१०॥

पश्चाद्दक्षं विनिंद्यैषां पति लेभे भवं तथा ।
तां ध्यात्वा व्यसृजद्रुद्रानानेकान्नीललोहितः ॥११॥
आत्मनस्तु समान्सर्वान्सर्वलोकनमस्कृतान् ।
याचितो मुनिशार्दूला ब्रह्मणा प्रहसन् क्षणात् ॥१२॥
तैस्तु संच्छादितं सर्वं चतुर्दशविधं जगत् ।
तान्दृष्ट्वा विविधान्रुद्रान्निर्मलान्नीललोहितान् ॥१३॥
जरामरणनिर्मुक्तान् प्राह रुद्रान्पितामहः ।
नमोऽस्तु वो महादेवास्त्रिनेत्रा नील लोहिताः ॥१४॥

उस मेहराज की पत्नी स्वधा ने जिसका मुख पद्म के समान सुन्दर था यज्ञ याजिनी मानसी धरणी को जन्म दिया था ॥८॥ पितर अमृतर कहे गये है। उनका यहाँ पर विस्तार दिया जाता है। यह समस्त ऋषियो का ही कुल है। आप लोग उसका सविस्तृत वर्णन श्रवण करो ॥९॥ मैं ऊपर से ही आप सबके समक्ष मे पृथक् अध्याय मे सस्थित इसका वर्णन करता हूँ। सती दाक्षायणी जिसका शुभ नाम पार्वती है भगवान् रुद्र के पास चली गई थी ॥१०॥ फिर इसी सती ने अपने पिता दक्ष का यज्ञ विध्वस्त करके अपना देह त्याग दिया था और पुनः भगवान् भव को ही अपना पति बनाया था। उसका ध्यान करके भगवान् नील लोहित ने अनेक रुद्रो का विसजन किया था ॥११॥ हे मुनि शार्दूलो ! ये रुद्र भगवान् भव की आत्मा के ही तुल्य थे और सबके सब समस्त लोको के नमस्कृत अर्थात् परम वन्द्यमान हुए थे। ब्रह्मा के द्वारा प्रहसन करते हुये क्षण भर के लिये याचना की गई थी ॥१२॥ उन्होने इन चौदह लोको को सबको पूर्णतय सछादिन कर दिया था। उन विविध भाँति के नील लोहित रुद्रो को ब्रह्मा ने देखा था ॥१३॥ जो रुद्र जरा और मरण से बिल्कुल निर्मुक्त थे, ब्रह्मा ने उनका दर्शन कर उनसे प्रार्थना की थी कि हे महादेवो ! आप तो नील लोहित और तीन नेत्रों के धारण करने वाले हैं। मैं आप सबको प्रणाम करता हूँ ॥१४॥

सर्वज्ञाः सर्वगा दीर्घा ह्रस्वा वामनकाः शुभाः।
हिरण्यकेशा दृष्टिघ्ना नित्या बुद्धाश्च निर्मलाः ॥१५॥
निर्द्वंद्वा वीतरागाश्च विश्वात्मानो भवात्मजाः ।
एवं स्तुत्वा तदा रुद्रान्रुद्रं चाह भवं शिवम् ।
प्रदक्षिणीकृत्य तदा भगवान्कनकांडजः ॥१६॥
नमोऽस्तु ते महादेव प्रजा नार्हसि शंकर ।
मृत्युहीना विभो स्रष्टुं मृत्युयुक्ताः सृज प्रभो ॥१७॥
ततस्तमाह भगवान्न हि मे तादृशी स्थितिः ।
स त्वं यथाकामं मृत्युयुक्ताः प्रजाः प्रभो ॥१८॥
लब्ध्वा ससर्ज सकलं शंकराच्च तुराननः ।
जरामरणसंयुक्तं जगदेतच्चरा चरम् ॥१९॥
शंकरोऽपि तदा रुद्रैर्निवृत्तात्मा ह्यधिष्ठितः ।
स्थाणुत्वं तस्य वै विप्राः शंकरस्य महात्मनः ॥२०॥
निष्कलस्यात्मनः शंभोः स्वेच्छाधृतशरीरिणः ।
शं रुद्रः सर्वभूतानां करोति घृणया यतः ॥२१॥

ब्रह्माजी ने उन रुद्रों से प्रार्थना की थी कि आप तो सर्वज्ञ हैं और आपका सर्वत्र गमन होता है। आप दीर्घ, ह्रस्व और बौना के स्वरूप वाले परम शुभ हैं। आप हिरण्यकेश, दृष्टि का हनन करने वाले, नित्य, बुद्ध और निर्मल हैं ॥१५॥ आप निर्द्वन्द्ववीतराग, विश्व की आत्मा स्वरूप और भगवान् भव के आत्मज हैं। इस प्रकार से बहुत भाँति का उन रुद्रों का ब्रह्मा जी ने स्तवन किया था और फिर भव-एव शिव स्वरूप रुद्र से ब्रह्मा ने कहा—सबसे प्रथम कनकाण्डज ब्रह्मा ने भगवान् शिव की प्रदक्षिणा की थी फिर प्रार्थना की ॥१६॥ हे महादेव ! आपको मेरा प्रणाम है । हे शङ्कर ! आप प्रजा का सृजन करने के योग्य नहीं हैं । हे विभो ! आपने तो इन समस्त रुद्रों का ऐसा सृजन कर दिया है जिनकी कभी भी मृत्यु होगी ही नहीं । हे प्रभो ! मेरी यह विनती है कि आप सृजन करने की अनुकम्पा करें तो जिनकी

मृत्यु भी होती हो ऐसों का सृजन करें ॥१७॥ ब्रह्माजी की इस प्रार्थना को श्रवण कर भगवान् भव ने उनसे कहा था कि मेरी उस प्रकार की स्थिति नहीं है। शङ्कर ने कहा—हे प्रभो ! ऐसी मृत्यु से युक्त रहने वाली प्रजा का यथेच्छया आप ही सृजन करें ॥१८॥ भगवान् चतुरानन ब्रह्मा ने शङ्कर की इस आज्ञा को प्राप्त कर सबका सृजन किया था जो कि यह चराचर जगत् जरा और मरण से युक्त है ॥१९॥ भगवान् शङ्कर भी उस समय दर्शे से निवृत्त आत्मा वाले होकर अधिष्ठित हो गये थे। हे विप्रो ! उन महान् आत्मा वाले भगवान् शङ्कर को स्थाणुत्व हो गया था ॥२०॥ भगवान् शम्भु की आत्मा निष्काम और अपनी ही इच्छा से शरीर धारण करने वाली है। क्योंकि यह रुद्र तो अनुकम्पा करके समस्त प्राणियों का कल्याण किया करते हैं अर्थात् सर्वदा भला ही चाहने वाले हैं ॥२१॥

शंकरश्चाप्रयत्नेन तदात्मा योग विद्यया ।
वैराग्यस्यं विरक्तस्य विमुक्तिर्संच्छ्रमुच्यते ॥२२॥
ज्ञानांस्तु विषयत्यागः संसारभयतः क्रमात् ।
वैराग्याज्जायते पुंसो विरागो दर्शनांतरे ॥२३॥
विमुक्तो विगुणत्यागो विज्ञानस्याविचारतः ।
तस्य चास्य न संधानं प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥२४॥
धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं शंकरादितः ।
स एव शंकरः साक्षात्पिनाकी नीललोहितः ॥२५॥
ये शंकराश्रिताः सर्वे मुच्यन्ते ते न संशयः ।
न गच्छन्त्येव नरकं पापिष्ठा अपि दारुणम् ॥२६॥
आश्रिताः शंकरं तस्मात्प्राप्नुवन्ति च शाश्वतम् ।
सायुज्यमेव घोरस्य [illegible] च ॥२७॥

विरक्त की विमुक्ति ही जिसका शम् कहा जाता है ।।२२।। अणु अर्थात् स्वल्प का विषय त्याग ससार के भय से, क्रम से, वैराग्य से पुरुष को दर्शनान्तर मे विराग होता है ।।२३।। समार निवर्त्तक विशिष्ट ज्ञान अर्थात् आत्मानात्मविवेक के स्वरूप वाले ज्ञान का अविचार से त्याग विगुण त्याग होता है अर्थात् उसमे ज्ञान रूप गुण नही होता है अतएव विमुख्य है । उस प्रकार के विचार का और इस त्याग का सन्धान अर्थात् मेलन भगवान् परमेष्ठी शिव के ही परम प्रसाद से हुआ करता है ।।२४।। यहाँ पर धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य जीवो के अन्दर भगवान् शङ्कर से ही अर्थात् शङ्कर की परम कृपा से ही होते हैं । वह ही साक्षात् शङ्कर है अर्थात् निरतिशय सुख के करने वाले निराकार परमात्मा ही शङ्कर इस शुभ नाम से कहे जाते हैं । वह पिनाक नामक धनुष धारण करने वाले और नील लोहित है ।।२५।। जो जीव भगवान् शङ्कर के आश्रय मे स्थित हो जाते है अर्थात् शरणागति 'मे जाकर प्राप्त हो जाते है वे निश्चय ही मुक्त हो जाया करते है, इसमे कुछ भी सशय नही है । भगवान् शङ्कर के भक्त हो जाने पर चाहे वे कितने ही महापापी क्यो न हो उनको दारुण नरक की कभी भी प्राप्ति नही होती है, यह भगवान् शङ्कर की शरणागति की महिमा है ।।२६।। शङ्कर के समाश्रय ग्रहण करने वाले प्राणी निश्चय ही शाश्वत पद की प्राप्ति किया करते है । ऋषियो ने कहा—अट्ठाईश नरक मायान्त अर्थात् अन्त मे अविद्या वाले और घोराद्य अर्थात् जिनके आदि मे घोर अहङ्कार भरा हुआ है ऐसे ही होते है ।।२७।।

कोटयो नरकाणा तु पच्यंते तासु पापिनः ।
अनाश्रिता: शिव रुद्र शकरं नीललोहितम् ।।२८।।
आश्रय सर्वभूतानामव्ययं जगता पतिम् ।
पुरुष परमात्मानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।।२९।।
तमसा कालरुद्राख्य रजसा कनकांडजम् ।
सत्वेन सर्वग विष्णु निर्गुणत्वे महेश्वरम् ।।३०।।

केन गच्छंति नरकं नराः केन महामते ।
कर्मणाकर्मणा वापि श्रोतुं कौतूहल हि नः ॥३१॥

इन अट्ठाईश नरको के करोडो भेद-प्रभेद होते हैं जिनमें पाप-कर्म करने वाले प्राणी अहर्निश घोरातिघोर यातनायें भोगा करते हैं किन्तु ये वे ही प्राणी होते हैं जिन्होने परम शिव, नील लोहित, रुद्र और भगवान् शङ्कर का आश्रय ग्रहण नही किया है ॥२८॥ भगवान् शङ्कर समस्त भूतो के आश्रय हैं, अन्वय है और समस्त जगतो के पति है । भगवान् शिव परमात्मा पुरुष, पुरुहूत और पुरुष्टुत है ॥२९॥ तमोगुण की विशेषता से यह कालरुद्र नाम वाले प्रलयङ्कर स्वरूप वाले होते है । रजोगुण से कनकाण्डज प्रजा का सृजन करने ब्रह्मा के स्वरूप मे स्थित होते है और जब सत्वगुण से युक्त होते हैं तो वही सर्वत्र गमन करने वाले विष्णु के रूप मे रहा करते हैं । ये तो तीनों गुणो की प्रधानता से इनका स्वरूप होता है किन्तु जब कोई भी गुण का प्रभाव नही रहता है तो निर्गुण होने पर इनका महेश्वर स्वरूप होता है । ऋषियो ने कहा— हे महान् मति वाले ! प्राणी किस कर्म के करने से नरक मे जाया करते हैं, इसके श्रवण करने का हम लोगो के हृदय मे बड़ा कौतूहल हो रहा है । सो आप कृपा करके यह हमे बताइये । हमारे ऊपर आपका बडा ही अनुग्रह होगा ॥३०॥३१॥

॥ अष्टाङ्गयोग द्वारा शिवाराधना ॥

संक्षेपतः प्रवक्ष्यामि योगस्थानानि सांप्रतम् ।
कल्पितानि शिवेनैव हिताय जगतां द्विजाः ॥१॥
गलादधो वितस्त्या यन्नाभेरुपरि चोत्तमम् ।
योगस्थानमधो नाभेरावर्तं मध्यमं भ्रुवोः ॥२॥

सर्वार्थज्ञाननिष्पत्तिरात्मनो योग उच्यते ।
एकाग्रता भवेच्चैव सर्वदा तत्प्रसादतः ॥३॥
प्रसादस्य स्वरूप यत्स्वसवेद्यं द्विजोत्तमाः ।
वक्तुं न शक्य ब्रह्माद्यैः क्रमशो जायते नृणाम् ॥४॥
योगशब्देन निर्वाण माहेशं पदमुच्यते ।
तस्य हेतुर्ऋषेर्ज्ञानं ज्ञानं तस्य प्रसादतः ॥५॥
ज्ञानेन निर्दहेत्पाप निरुध्य विषयान् सदा ।
निरुद्धेंद्रियवृत्तेस्तु योगसिद्धिर्भविष्यति ॥६॥
योगो निरोधो वृत्तेषु चित्तस्य द्विजसत्तमाः ।
साधनान्यष्टधा चास्य कथितानीह सिद्धये ॥७॥

सूतजी ने कहा—अब मैं हे द्विजगण ! चित्त की वृत्ति के निरोध स्वरूप योग का सक्षेप मे वर्णन करता हू । योग के अष्टाङ्ग साधन होते हैं जिनका यम-नियमादि नाम हैं । उन सबका क्रम बतलाया जायगा । इन योग के स्थानो की कल्पना भगवान् शिव ने ही जगनो के हित के सम्पादन के लिए की है ॥१॥ गले से नीचे के भाग मे एक वितस्ति परिमाण वाला और नाभि के ऊपर वह हृत्पुण्डरीक अत्युत्तम योग का स्थान है जिसको मूलाधार कहते हैं । भृकुटियो के मध्य मे होने वाला आवर्त त्रिकूट सज्ञा वाला स्थान होता है ॥२॥ समस्त अर्थों से सम्बन्ध रखने वाले ज्ञान की निष्पत्ति ही आत्मा का योग कहा जाता है । इसीलिए योगज धर्म रूप एक अतिरिक्त सन्निकर्ष ज्ञान में स्वीकार किया जाता है वह योगज युक्त और युञ्जान के भेद से दो प्रकार का होता है । जो युक्त होता है उसे तो सर्वदा सभी कुछ का भान होता रहता है और युञ्जान योगी जिस समय भी ध्यान करता है उसी समय उसे भान हुआ करता है । उसके प्रसाद से सर्वदा एकाग्रता अर्थात् मन का एक ही स्थान पर उसके लक्ष्य पर स्थिरता हो जाती है ॥३॥ उसके प्रसाद का जो स्वरूप होता है वह तो हे द्विजगण ! ऐसा है जो अपने ही आपके द्वारा जानने के योग्य होता है। उसको ब्रह्मादि

भी वर्णित नहीं कर सकते है। तात्पर्य यह है कि वह अनिर्वचनीय सुख होता है जिसे कोई भी किसी प्रकार से कभी कह ही नही सकता है। मनुष्यो को वह सुख क्रम से अभ्यास करने पर कुछ समय मे हुआ करता है ॥४॥ योग शब्द के द्वारा निर्वाणख्य तुरीय महेश के पद को कहा जाता है। उसका हेतु ऋषि भगवान् रुद्र का ही ज्ञान होता है और वह ज्ञान भी भगवान् शङ्कर की ही कृपा से हुआ करता है। उनकी कृपा का कारण भी उनकी कृपा ही है। जिस ज्ञान से इस अगाध संसार रूपी सागर से तारण हो जाता है ॥५॥ चित्त वृत्ति के निरोध का तात्पर्य यह है कि बहिर्मुख जो वृत्तियाँ होती है उनकी परिणति के विच्छेद होने से उन वृत्तियो का अन्तर्मुखता से परिणाम होकर स्व-कारण मे लय हो जाता है। इसी को योग कहा जाता है। इससे जो ज्ञान होता है वह पापो को निर्दग्ध करके विषयो का सदा निरोध कर देता है। जिसकी इन्द्रिय वृत्ति का निरोध हो जाता है उसको ही योग की सिद्धि हो जायगी ॥६॥ हे द्विजश्रेष्ठो! वृत्तो मे चित्त के निरोध को ही योग कहते हैं और उसकी सिद्धि के लिए आठ साधन कहे गये हैं ॥७॥

यमस्तु प्रथमः प्रोक्तो द्वितीयो नियमस्तथा ।
तृतीयमासनं प्रोक्तं प्राणायामस्ततः परम् ॥८॥

प्रत्याहारः पंचमो वै धारणा च ततः परा ।
ध्यानं सप्तममित्युक्तं समाधिस्त्वष्टमः स्मृतः ॥९॥

तपस्युपरमश्चैव यम इत्यभिधीयते ।
अहिंसा प्रथमो हेतुर्यमस्य यमिनां वराः ॥१०॥

सत्यमस्तेयमपरं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ।
नियमस्यापि वै मूलं यम एव न संशयः ॥११॥

आत्मवत्सर्वभूतानां हितायैव प्रवर्तनम् ।
अहिंसैषा समाख्याता या चात्मज्ञानसिद्धिदा ॥१२॥

दृष्ट श्रुत चानुमित स्वानुभूत यथार्थत ।
कथन सत्यमित्युक्त परपीडाविवर्जितम् ॥१३॥
नाश्लील कीर्तयेदेव ब्राह्मणानामिति श्रुति ।
परदोषान् परिज्ञाय न वदेदिति चापरम् ॥१४॥

उन आठ साधनो के विषय मे कहते हैं कि यम प्रथम साधन कहा गया है। दूसरा साधन नियम होता है। तृतीय उस योग का साधन आसन बताया गया है और इसके अनन्तर चतुर्थ साधन का नाम प्राणायम होता है ॥८॥ प्रत्याहार पाँचवा साधन है और इसके अनन्तर छटवाँ साधन धारणा नाम से प्रसिद्ध है। ध्यान सप्तम योग का साधन होता है और अष्टम साधन समाधि है जो कि परमोपादेय मुख्य है ॥९॥ तप म उपरम का होना ही यम इस नाम से कहा जाता है। यम करने वालो के यम का हेतु सब प्रथम अहिंसा होती है ॥१०॥ इसके अतिरिक्त सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह भी हेतु होते हैं। नियम का मूल भी यम ही होता है। इसमे कुछ भी सशय नही है ॥११॥ अपने ही समान सुख-दुखादि की सब प्रकार की दृष्टि से समस्त प्राणियो को समझकर उनका हित सम्पादन करना ही अहिंसा कही गई है जो कि आत्म ज्ञान की सिद्धि प्रदान करने वाली होती है ॥१२॥ जो कुछ देखा है सुना है, अनुमान द्वारा ज्ञान प्राप्त किया है तथा अपना अनुभव प्राप्त किया है उसका यथाथ कथन कर देना ही सत्य कहा गया है किन्तु वह पराई पीडा से रहित ही होना चाहिए। इसलिए अप्रिय सत्य के कथन न करने को धम माना गया है क्योकि उस अप्रिय स भी मानस पीडा उत्पन्न होती है ॥१३॥ अश्लील अर्थात् लज्जाजनक बात को कभी नही कहना चाहिये, ऐसी ब्राह्मणो की श्रुति है। पराये दोषो को जान कर भी दूसरो को उन्हे नही कहना चाहिए ॥१४॥

अनादान परस्वानामापद्यपि विचारत ।
मनसा कर्मणा वाचा तदस्तेय समामत ॥१५॥

मैथुनस्याप्रवृत्तिर्हि मनोवाक्कायकर्मणा ।
ब्रह्मचर्यमिति प्रोक्त यतीना ब्रह्मचारिणाम् ॥१६॥
इह वैखानसाना च विदाराणा विशेषत ।
सदाराणा गृहस्थाना तथैव च वदामि व ॥१७॥
स्वदारे विधिवत्कृत्वा निवृत्तिश्चान्यत सदा ।
मनसा कर्मणा वाचा ब्रह्मचर्यमिति स्मृतम् ॥१८॥
मेध्या स्वनारो सभोग कृत्वा स्नान समाचरेत् ।
एव गृहस्थो युक्तात्मा ब्रह्मचारी न सशय ॥१९॥
अहिंसाप्येवमेवैषा द्विजगुर्वग्निपूजने ।
विधिना यादृशी हिंसा सात्व हिंसा इति स्मृता ॥२०॥
स्त्रिय सदा परित्याज्या सग नैव च कारयेत् ।
कुणपेषु यथा चित्त तथा कुर्याद्विचक्षण ॥२१॥

आपत्ति के समय मे भी विचार पूर्वक पराये धनो का ग्रहण नही करना और वह भी मन, वाणी और कर्म के द्वारा नही लेना अस्तेय कहा जाता है । सक्षेप से यही अस्तेय का लक्षण होता है ॥१५॥ मन, वाणी और कर्म के द्वारा ब्रह्मचारी और यतिमो की मैथुन की अप्रवृत्ति ही का ब्रह्मचय कहा गया है ॥१६॥ यही नियम वैखानसो के लिए और विशेष करके स्त्री रहितो के लिये होना है। जो स्त्री से युक्त गृहस्थ होत हैं उनके लिये भी ब्रह्मचय व्रत के पालन का यही नियम होना है जिसको मैं तुमको बता रहा हू ॥१७॥ गृहस्थ को अपनी ही पत्नी के साथ शास्त्रोक्त विधि का व्यवहार करना चाहिए और मन, वाणी तथा कम के द्वारा सदा अन्य से या अन्य काल में निवृत्ति रखनी चाहिये । इस प्रकार व्यवहार का भी ब्रह्मचर्य ही कहा जाता है ॥१८॥ परम पवित्र अपनी स्त्री के साथ सम्भोग करके स्नान करना चाहिये । इस प्रकार से युक्त आत्मा वाला गृहस्थ ब्रह्मचारी ही होता हैं, इसम कुछ भी सशय नही है ॥१९॥ इसी प्रकार से यह द्विज, गौ और अग्नि के पूजन में अहिंसा होती है । विधि से जैसी हिंसा होती है उसका

अभाव ही अहिंसा कही गई है ॥२०॥ स्त्रियों का सदा परित्याग कर देना चाहिए और उनका सङ्ग कभी भी न करे। कुणपों में जैसा चित्त होता है वैसा ही विचक्षण पुरुष को रखना चाहिये ॥२१॥

विण्मूत्रोत्सर्गकालेषु बहिर्भूमौ यथा मतिः ।
तथा कार्या रतौ चापि स्वदारे चान्यतः कुतः ॥२२॥
अङ्गारसदृशी नारी घृतकुंभसमः पुमान् ।
तस्मान्नारीषु संसर्गं दूरतः परिवर्जयेत् ॥२३॥
भोगेन तृप्तिर्नैवास्ति विषयाणां विचारतः ।
तस्माद्विरागः कर्तव्यो मनसा कर्मणा गिरा ॥२४॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥२५॥
तस्मात्त्यागः सदा कार्यस्त्वमृतत्वाय योगिना ।
अविरक्तो यतो मर्त्यो नानायोनिषु वर्तते ॥२६॥

बहिर्भूमि में मल और मूत्र के त्याग करने के समय में जैसी मति होती है वैसी अपनी स्त्री के साथ रति में भी अपनी भावना रखनी चाहिये। अन्य का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता है ॥२२॥ नारी सर्वदा जलते हुये अङ्गारे के समान होती है और पुरुष घृत से पूर्ण कुम्भ के तुल्य होता है। इसलिये नारियों में संसर्ग दूर से ही परिवर्जित कर देना चाहिये ॥२३॥ विषयों के भोग करने से उसका समास्वादन करके मन ऊब जायगा, ऐसा सोचना गलत है क्योंकि विषयों के साथ इन्द्रियों का सम्पर्क करते रहने से विरक्ति कभी नहीं हुआ करती है क्योंकि विषयों से तृप्ति होती ही नहीं अतः विचार से ही विषयों का त्याग करना चाहिये। इसलिये मन, वाणी और कर्म के द्वारा विराग करना चाहिये ॥२४॥ काम की वासना कामों के उपभोग करने से कभी शान्त नहीं हुआ करती है प्रत्युत उपभोग करते रहने से वह और अधिक बढ़ जाती है जिस तरह से अग्नि हवि के डालते रहने से विशेष प्रज्वलित

हो जाया करती है ।।२५।। इसलिये योगी को अमृतत्व की प्राप्ति के लिये विषयोपभोग का त्याग ही सर्वदा कर देना चाहिये। जो मनुष्य विरक्त न होकर विषयों में ही सदा लिप्त रहता है वही नानायोनियों में जन्म लेकर आवागमन की असह्य पीडा को सहा करता है ।।२६।।

त्यागेनैवामृतत्व हि श्रुतिस्मृतिविदा वराः ।
कर्मणा प्रजया नास्ति द्रव्येण द्विजसत्तमाः ।।२७।।
तस्माद्विरागः कर्तव्यो मनोवाक्कायकर्मणा ।
ऋतौ ऋतां निवृत्तिस्तु ब्रह्मचर्यमिति स्मृतम् ।।२८।।
यमाः संक्षेपतः प्रोक्ता नियमाश्च वदामि वः ।
शौचमिज्या तपो दान स्वाध्यायोपस्थनिग्रहः ।।२९।।
व्रतोपवासमौन च स्नान च नियमा दश ।
नियमः स्यादनीहा च शौच तुष्टिस्तपस्तथा ।।३०।।
जपः शिवप्रणीधान पद्मकाद्यं तथासनम् ।
बाह्यमाभ्यतरं प्रोक्तं शौचमाभ्यंतर वरम् ।।३१।।
बाह्यशौचेन युक्तः संस्तथा चाभ्यंतरं चरेत् ।
आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं कर्तव्यं शिवपूजकैः ।।३२।।

श्रुति और स्मृतियों के वेत्ता श्रेष्ठ विद्वद्गण का यही कथन है कि विषयों के उपभोगों के त्याग से ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है। हे द्विजो मे श्रेष्ठो ! अग्नि होम आदि सहस्र सम्वत्सरान्त सत्रों से, पितृगण के ऋण के मोचन के लिये पुत्रादि की उत्पत्ति से और अत्यधिक धनादि के दान देने से अमृतत्व की प्राप्ति नहीं होती है यदि विषयोपभोगों में बराबर रति बनी रहती है ।।७२।। इसलिये मन, वाणी और कर्म के द्वारा विराग करना चाहिए। ऋतुकाल जिस समय हो उसी समय सदा निवृत्ति रति में करनी चाहिये। स्मरण, कीर्तन, केलि प्रेक्षण, गुह्यभाषण, सङ्कल्प, अध्यवसाय और क्रिया निवृत्ति यह आठ प्रकार का मैथुन होता है। इसके विपरीत ही आठ तरह का ब्रह्मचर्य होता है। इस तरह की रति करने पर भी ब्रह्मचर्य ही कहा जाता है।

॥२८॥ मैंने यमो का वर्णन तो सक्षेप से कर दिया है और अब नियमों के विषय मे वर्णन तुम्हारे सामने करता हूं। शौच, इज्या, तप, दान, स्वाध्याय, उपस्थ (प्रस्रावेन्द्रिय) का निग्रह, व्रत, उपवास, मौन और स्नान ये दश नियम होते हैं। अनीहा, शौच, तुष्टि, तप, जप, शिव प्रणीधान तथा पद्म दण्ड स्वास्तिक आदि आसन भी नियम हैं किन्तु ये नियम वाह्य और आम्यन्तर दो प्रकार के होते हैं। आम्यान्तर शौच अति श्रेष्ठ होता है ॥२६॥३०॥३१॥ बाह्य शौच से युक्त होकर फिर आम्यन्तर शौच करना चाहिये। शिव पूजको के द्वारा आग्नेय (भस्म-स्नान) वारुण (उदकस्नान) और ब्राह्म अर्थात् मन्त्र स्नान करना चाहिए ॥३२॥

स्नानं विधानतः सम्यक् पश्चादाभ्यं तरं चरेत् ।
आदेहांतं मृदालिप्य तीर्थतोयेषु सर्वदा ॥३३॥
अवगाह्यापि मलिनो ह्यंतश्शौचविवर्जितः ।
शैवला झषका मत्स्याः सत्त्वा मत्स्योपजीविनः ॥३४॥
सदावगाह्यः सलिले विशुद्धाः किं द्विजोत्तमाः ।
तस्मादाभ्यतरं शौच सदा कार्यं विधानतः ॥३५॥
आत्मज्ञानाम्भसि स्नात्वा सकृदालिप्य भावतः ।
सुवैराग्यमृदा शुद्ध शौचमेवं प्रकीर्तितम् ॥३६॥
शुद्धस्य सिद्धयो दृष्टाः नैवाशुद्धस्य सिद्धयः ।
न्यायेनागतया वृत्त्या सतुष्टो यस्तु सुव्रतः ॥३७॥
सतोपस्तस्य सततमतीतार्थस्य चास्मृतिः ।
चान्द्रायणादिनिपुणस्त पासि सुशुभानि च ॥३८॥

इसके अनन्तर पीछे से विधि-विधान से भली भाँति आम्यन्तर स्नान करना चाहिये। सर्वदा तीर्थों के जल से पूरे देह मे मृत्तिका का लेपन करके स्नान करे ॥३३॥ अहर्निश जल में ही स्थित रहने के कारण अवगाहन बराबर करके भी अन्तश्शौच से रहित मलिन रहने वाले शैवल, झषक, मत्स्य और मत्स्योप जीवी प्राणी होते हैं ॥३४।

हे द्विजोत्तमो ! क्या जल में सदा अवगाहन करके ही विशुद्ध हो जाया करते हैं ? अर्थात् केवल अवगाहन मात्र से शुद्धि नहीं होती है। इसलिये विधि-विधान से सदा आभ्यन्तर शौच अवश्य ही करना चाहिये। ॥३५॥ आत्म ज्ञान रूपी जल मे भावना से ही एक बार आलेपन करके स्नान करे और सुन्दर वैराग्य रूपी मृत्तिका से लेपन करना चाहिए। इस प्रकार से भी शुद्धि होती है और वह भी शौच कहा गया है ॥३६॥ जो शुद्ध होता है उसी को सिद्धियाँ होती है और जो अशुद्ध रहता है उसको सिद्धियाँ कभी नहीं देखी गई है। न्याय से समागत वृत्ति से जो सुव्रत सन्तुष्ट होता है उसको सिद्धियाँ हुआ करती हैं ॥३७॥ उस पुरुष को निरन्तर सन्तोष होता है और अतीत् अर्थात् अविद्यमान अर्थ की अस्मृति हुआ करती है। चान्द्रायण आदि मे निपुण होना ही सुशुभ तप होते हैं ॥३८॥

स्वाध्यायस्तु जपः प्रोक्तः प्रणवस्य त्रिधा स्मृतः।
वाचिकश्चाधमो मुख्य उपांशुश्चोत्तमोत्तमः ॥३९॥
मानसो विस्तरेणैव कल्पे पचाक्षरे स्मृतः।
तथा शिवप्रणीधानं मनोवाक्कायकर्मणा ॥४०॥
शिवज्ञानं गुरोर्भक्तिरचला सुप्रतिष्ठिता।
निग्रहो ह्यपहृत्याशु प्रसक्तानीन्द्रियाणि च ॥४१॥
विषयेषु समासेन प्रत्याहारः प्रकीर्तितः।
चित्तस्य धारणा प्रोक्ता स्थानबंधः समासतः ॥४२॥
तस्याः स्वास्थ्येन ध्यानं च समाधिश्च विचारतः।
तत्रैकचित्तता ध्यानं प्रत्ययांतरवर्जितम् ॥४३॥
चिद्भासमर्थमात्रस्य देहशून्य मिव स्थितम्।
समाधिः सर्वहेतुश्च प्राणायाम इति स्मृतः ॥४४॥
प्राणः स्वदेहजो वायुर्यमस्तस्य निरोधनम्।
त्रिधा द्विजैर्यमः प्रोक्तो मंदो मध्योत्तमस्तथा ॥४५॥

प्रणव के जप को ही स्वाध्याय कहा गया है। वह जप तीन प्रकार का होता है। वाचिक, मुख्य और उपांशु ये तीन प्रकार हैं। वाचिक जप तो अधम श्रेणी का होता है और उपांशुजप उत्तमोत्तम होता है ॥३६॥ पञ्चाक्षर कल्प मे विस्तार से ही मानस कहा गया है तथा मन, वाणी और कर्म के द्वारा शिव का ज्ञान तथा शिव का प्रणीधान और गुरु की अचल भक्ति सुप्रतिष्ठित होती है। विषयो में प्रसक्त इन्द्रियो को उनसे शीघ्र ही हटाकर रखना ही निग्रह कहा जाता है। ॥४०॥४१॥ इसी निग्रह अर्थात् नियम न सक्षेप मे प्रत्याहार कहा गया है। चित्त का नियमन सक्षेप मे ही धारणा कही गई है ॥४२। उस धारणा का स्वास्थ्य से ध्यान और विचार से समाधि होती है। प्रत्ययान्तर से वर्जित एक चित्तता के हो जाने को ही ध्यान कहते हैं ॥४३॥ अर्थमात्र का चित् अर्थात् चैतन्य ही जिसमे भास मान होता है वह चिद्भास है और स्थूल-लिङ्ग तथा सूक्ष्म देह जिसमे लीन हो जाया करते हैं वह देह शून्य है। इस प्रकार की तुरीय अवस्थिति का नाम ही समाधि है और सर्व हेतु प्राणायाम होता है ॥४४॥ अपने देह से उत्पन्न होने वाला जो प्राण वायु है उसका निरोधन करना ही यम कहा जाता है। द्विजों ने उस यम को मन्द, मध्यम और उत्तम तीन प्रकार का कहा है ॥४५॥

प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायामः प्रकीर्तितः।
प्राणायामस्य मान तु मात्राद्वादशकं स्मृतम् ॥४६॥

नीचो द्वादशमात्रस्तु उद्घातो द्वादशः स्मृतः।
मध्यमस्तु द्विरुद्धातश्चतुर्विंशतिमात्रकः ॥४७॥

मुख्यस्तु यस्त्रिरुद्धातः षट्त्रिंशन्मात्र उच्यते।
प्रस्वेदकम्पनोत्थानजनकश्च यथाक्रमम् ॥४८॥

आनंदोद्भवयोगार्थं निद्राघूर्णिस्तथैव च।
रोमाञ्चध्वनिसंविद्धस्वाङ्गमोटनकंपनम् ॥४६॥

भ्रमणं स्वेदजन्या सा संविन्मूर्च्छा भवेद्यदा ।
तदोत्तमोत्तमः प्रोक्तः प्राणायामः सुशोभनः ॥५०॥

प्राण और अपान दोनों प्रकार की वायुओं का निरोध प्राणायाम कहा गया है। उस प्राणायाम का मान द्वादश मात्रात्मक होता है, ऐसा कहा गया है ॥४६॥ नीच संज्ञा वाला प्राणायाम द्वादश मात्रात्मक है क्योंकि उद्धात द्वादश कहा गया है। जो मध्यम प्राणायाम होता है वह दो उद्धात वाला है और उसमें चौबीस मात्रायें होती हैं ॥४७॥ जो मुख्य नामक प्राणायाम है उसमें तीन उद्धात होते हैं और छत्तीस मात्रायें होती हैं। वह यथाक्रम से नीच मध्यम और मुख्य नाम वाले भेदों में स्वेद, कम्पन और उत्थान के उत्पन्न करने वाले होते हैं ॥४८॥ यह आनन्द से उद्भव और योग की प्राप्ति के लिए निद्रा व घूर्णि वाला होता है। इससे भ्रामरी कुम्भक बन या गया है। रोमाञ्च, ध्वनि अर्थात् भ्रमरी के गुञ्जार की ध्वनि से संविद्ध (व्याप्त) अपने अङ्ग को मोटन और कम्पन इसमें हुआ करता है। इससे भ्रामरी संज्ञा वाला कुम्भक सूचित किया गया है ॥४६॥ इसमें जिस समय प्राणायाम के श्रम से स्वेद और उससे उत्पन्न होने वाली समाधि संज्ञा वाली मूर्च्छा होती है तो उसे उत्तमोत्तम परम श्रेष्ठ प्राणायाम कहा गया है। इस से भ्रामरी नामक कुम्भक बताया गया है ॥५०॥

सगर्भोऽगर्भ इत्युक्तः सजपो विजपः क्रमात् ।
इभो वा शरभो वापि दुराधर्षोऽथ केसरी ॥५१॥
गृहीतो दम्यमानस्तु यथास्वस्थस्तु जायते ।
तथा समीरणोऽस्वस्थो दुराधर्षश्च योगिनाम् ॥५२॥
न्यायतः सेव्यमानस्तु स एवं स्वस्थतां व्रजेत् ।
यथैव मृगराड् नागः शरभो वापि दुर्मदः ॥५३॥
कालान्तरवशाद्योगाद्दम्यते परमादरात् ।
तथा परिचयात्स्वास्थ्यं समत्वं चाधिगच्छति ॥५४॥

योगादभ्यसते यस्तु व्यसनं नैव जायते ।
एवमभ्यस्यमानस्तु मुनेः प्राणो विनिर्दहेत् ।।५५।।
मनोवाक्कायजान् दोषान् कर्तु र्देहं च रक्षति ।
संयुक्तस्य तथा सम्यक्प्राणायामेन धीमतः ।।५६।।
दोषात्तस्माच्च नश्यंति निश्वासस्तेन जीर्यते ।
प्राणायामेन सिध्यंति दिव्याः शात्यादयः क्रमात् ।।५७।।

हठ योग मे आठ प्रकार के कुम्भक प्राणायाम बताये गये हैं—सूर्य भेदन, उज्जयि, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लावनी ये उनके नाम होते हैं। पूरक रेचक सहित सगर्भ, अगर्भ अर्थात् केवल सजप, विजप, इभ अथवा शरभ, दुराधर्ष, केशरी, गृहीत और दम्यमान स्वस्थ के अनुसार हुआ करता है। उसी प्रकार से वायु अस्वस्थ होता है तो योगियों को भी यह दुराधर्ष हो जाया करता है ।।५१।।५२।। न्याय से जब यह सेव्यमान किया जाता है तो वह स्वस्थता को प्राप्त होता है। जिस प्रकार से दुर्मद मृगराज, नाग अथवा शरभ को रीति पूर्वक ही अपने वश मे किया जाना है उसी तरह से प्राणायाम के अभ्यास मे विधि पूर्वक ही वायु को स्वस्थ दशा मे लाया जाता है ।।५३।। कुछ काल पर्यन्त परमादर के साथ योग का अभ्यास करने से इसका दमन किया जाता है और फिर भली भाँति ज्ञान हो जाने से यह प्राण वायु स्वस्थता और समता को प्राप्त हो जाया करता है ।।५४।। योग से अर्थात् योगाभ्यास की प्रक्रिया से जो अभ्यास करता है तो कुछ भी व्यसन नहीं उत्पन्न होता है। इस प्रकार से अभ्यास करने वाले मुनि का प्राण, मन, वाणी और शरीर के समुत्पन्न दोषो को विशेष रूप से निर्दग्ध कर दिया करता है। तथा कर्त्ता के देह की रक्षा किया करता है जबकि कोई बुद्धिमान् प्राणायाम से भली भाति संयुक्त हुआ करता है ।।५५।।५६।। इससे जितने भी दोप होते हैं वे सब नष्ट हो जाते है और निश्वास जीर्यमाण हो जाया करते हैं। प्राणायाम की क्रिया पूर्ण-

तया सिद्ध हो जाती है तो इसके द्वारा क्रम से दिव्य शान्ति प्रादि सबकी क्रम से सिद्धि हो जाया करती हैं ॥५७॥

शांतिः प्रशांतिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च तथा क्रमात् ।
आदौ चतुष्टयस्येह प्रोक्ता शांतिरिह द्विजाः ॥५८॥
सहजागतुकानां च पापाना शातिरुच्यते ।
प्रशातिः संयमः सम्यग्वचसामिति संस्मृता ॥५९॥
प्रकाशो दीप्तिरित्युक्तःसर्वतः सर्वदा द्विजाः ।
सर्वेंद्रियप्रमादस्तु बुद्धेर्वे मरुतामपि ॥६०॥
प्रसाद इति संप्रोक्तः स्नाते त्विह चतुष्टये ।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥६१॥
नागः कूर्मस्तु कृकलो देवदत्तो धनंजयः ।
एतेषां यः प्रसादस्तु मरुतामिति संस्मृतः ॥६२॥
प्रयाणं कुरुते तस्माद्वायुः प्राण इति स्मृतः ।
अपानयत्यपानस्तु आहारादीन् क्रमेण च ॥६३॥
व्यानो व्यानामयत्यगं व्याध्यादीना प्रकोपकः ।
उद्वेजयति मर्माणि उदानोऽय प्रकीर्तितः ॥६४॥

हे द्विजगण ! आदि मे शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद क्रम से इन चारो को शान्ति के नाम से कहा गया है ॥५८॥ सहज और आगन्तुक पापो के प्रशमन को शान्ति कहा जाता है । वचनो का प्रकर्ष रूप से जो सयम होता है उसको प्रशान्ति कहा गया है ॥५९॥ सर्वदा सभी ओर मे प्रकाश का हो जाने को ही दीप्ति कहा गया है । समस्त इन्द्रियो का, बुद्धि का और मरुतो का भी जो प्रसाद होता है उसी को प्रसाद कहा गया है ॥६०॥ मरुतो के प्रसाद से यह तात्पर्य होता है कि दश प्रकार के वायुओं का प्रसाद होना चाहिए । इस चतुष्टय मे जो प्रसाद शब्द का प्रयोग है वह स्वान्त से सम्बद्ध है और मरुतो का प्रसाद वायुओं से सम्बद्ध होता है । प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय ये दश मरुत हैं इनका प्रसाद भी

होता है ॥६१॥६२॥ जो वायु शरीर का त्याग करके प्रयाण कर जाता है इसी से उसका नाम प्राण होता है। जो क्रम से ग्रहारादि को अपानीत किया करता है इसीलिये इसका नाम अपान वायु होता है। अङ्ग को व्यानामपित करके व्याधि आदि का प्रकोपक होने से इसका नाम व्यान वायु होता है और मर्मों के उद्वेजन करने के कारण यह उदान नाम से कहा गया है ॥६३॥६४॥

सम नयति गानाणि समान पच वायव ।
उद्गारे नाग आख्यात कूर्म उन्मीलनें तु स ॥६५॥
कृकल क्षुतकायैव देवदत्तो विजृंभणे ।
धनजयो महाघोप सर्वग स मृतेऽपि हि ॥६६॥
इति यो दशवायूना प्राणायामेन सिध्यति ।
प्रसादोऽस्य तुरीया तु सज्ञा विप्राश्चतुष्टये ॥६७॥
विस्वरस्तु महान् प्रज्ञा मनो ब्रह्माचिति स्मृति ।
ख्याति सवित्तात पश्चादीश्वरो मतिरव च ॥६८॥
बुद्धेरेता द्विजा सज्ञा महत परिकीर्तिता ।
अस्या बुद्धे प्रसादस्तु प्राणायामेन सिद्धचति ॥६९॥
विस्वरो विस्वरीभावो द्वद्वाना मुनिसत्तमा ।
अग्रज सर्व तत्त्वाना महान्य परिमाणत ॥७०॥
यत्प्रमाणगुहा प्रज्ञा मनस्तु मनुते यत ।
बृहत्वाद्बृहणत्वाच्च ब्रह्मा ब्रह्मविदावरा ॥७१॥

जो वायु गात्रो को सम रूप से नयन किया करता है वह समान नाम से प्रसिद्ध है। उद्गार (उगार) म नाग और उन्मीलन के कम को करने वाला वायु कूम मनर होता है ॥६५॥ क्षुतक लिए कृकल नामक वायु होता है और विजृम्भण के करने म देवदत्त नामक वायु की क्रिया हुआ करती है। धनञ्जय वायु महाघोप तथा सवगामी होता है। वह प्राणो के निकल जाने पर विद्यमान रहता है और सपान भञ्जन करने पर निकला करता है ॥६६॥ हे विप्रगण ! इस प्रकार से

प्राणायाम के द्वारा जो प्रसाद सिद्ध होता है चतुष्टय में इसकी तुरीया संज्ञा होती है ।।६७।। महान् विस्वर अर्थात् विरुद्ध द्वन्द्वोप ताप से शून्य होता और उस महत्तत्व रूपा बुद्धि के प्रज्ञा, मन, ब्रह्मापचिति, स्मृति, ख्याति और संवित् तथा पीछे ईश्वर एवं मति ये नाम हैं जो कि परि-कीर्तित हुए हैं। इस बुद्धि का प्रसाद प्राणायाम से सिद्ध होता है ।।६८।। ।।६९।। हे मुनिश्रेष्ठो ! द्वन्द्वों का विस्वरी भाव ही विस्वर होता है। यह समस्त भूतों का अग्रज है अर्थात् सबसे पूर्व उत्पन्न होने वाला है और परिमाण से महान् है ।। ७०।। जिसके प्रमाण को गुहा प्रज्ञा होती है जिससे मन अब बुद्ध होता है। बृहत् और बृहण होने से ब्रह्म के वेत्ताओं मे श्रेष्ठ ब्रह्मा है ।।७१।।

सर्वकर्माणि भोगार्थं यच्चिनोति चितिः स्मृता ।
स्मरते यत्स्मृतिः सर्वं संविद्धि विंदते यतः ।।७२।।
ख्यायते यत्त्विति ख्यातिर्ज्ञाना दिभिरनेकशः ।
सर्वतत्त्वाधिपः सर्वं विजानाति यदीश्वरः ।।७३।।
मनुते मन्यते यस्मान्मतिर्मतिमतावराः ।
अर्थं बोधयते यच्च बुद्ध्यते बुद्धिरुच्यते ।।७४।।
अस्या बुद्धेः प्रसादस्तु प्राणायामेन सिद्ध्यति ।
दोषान्विनिर्दहेत्सर्वान् प्राणायामादसौ यमी ।।७५।।
पातकं धारणाभिस्तु प्रत्याहारेण निर्दहेत् ।
विषयान्विषवद्ध्यात्वा ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ।।७६।।
समाधिना यतिश्रेष्ठाः प्रज्ञावृद्धिं विवर्धयेत् ।
स्थानं लब्ध्वैव कुर्वीत योगाष्टांगानि वै क्रमात् ।।७७।।
लब्ध्वासनानि विधिवद्योगसिद्ध्यर्थमात्मवित् ।
आदेशकाले योगस्य दर्शनं हि न विद्यते ।।७८।।

जो भोग करने के लिये समस्त कर्मों का चयन किया करती है। इसीलिये इसका नाम चिति कहा गया है। जो सब स्मरण किया जाता है अतएव उसका स्मृति नाम है और जिससे सबका लाभ होता है

उसे सम्विद् कहते है ॥७२॥ जो ख्यात होती है। इसीलिये उसे ख्याति कहा जाता है क्योंकि अनेक ज्ञानादि से ख्यात होती है। समस्त तत्वो का स्वामी सबको जानता है अतः ईश्वर है ॥७३॥ अवबोधन करती है और मन्यमान होती है। इसी से मतिमानो मे श्रेष्ठ मति होती है। जो अर्थ का बोधन करती है और बुद्ध्यमान होती है। इसलिये बुद्धि कही जाती है ॥७४॥ इस बुद्धि का प्रसाद प्राणायाम के द्वार सिद्ध होता है। यह यम का प्रतिपालक पुरुष प्राणायाम से समस्त दोषो को विशेष रूप से निर्दग्ध कर देता है ॥७५॥ धारणाओ के द्वारा पातक नष्ट होता है और प्रत्याहार से विषयो को तथा अनीश्वर गुणों को विष की भाँति ध्यान करके ध्यान के द्वारा विनष्ट कर देता है ॥७६॥ यतियो मे परम श्रेष्ठ पुरुष समाधि के द्वारा प्रज्ञा की वृद्धि को विशेष रूप से वर्धित किया करते हैं। योगो के आठो अङ्गो को क्रम से स्थान को प्राप्त कर के ही करना चाहिए। ॥७७॥ आत्मवेत्ता पुरुष को आसन प्राप्त करके योग की सिद्धि के लिए विधि पूर्वक अभ्यास करना चाहिए। अदेश और अकाल मे किये हुए अभ्यास मे योग के वास्तविक दर्शन नही होते हैं ॥७८॥

अग्न्यभ्यासे जले वापि शुष्कपर्णचये तथा।
जन्तुव्याप्ते श्मशाने च जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ॥७९॥

सशब्दे सभये वापि चैत्यवल्मीकसंचये।
अशुभे दुर्जनाक्रान्ते मशकादिसमन्विते ॥८०॥

नाचरेद्देहबाधायां दौर्मनस्यादिसंभवे।
सुगुप्ते तु शुभे रम्ये गुहायां पर्वतस्य तु ॥८१॥

भवक्षेत्रे सुगुप्ते वा भवारामे वनेपि वा।
गृहे तु सुशुभे देशे विजने जन्तुवर्जिते ॥८२॥

अत्यन्तनिर्मले सम्यक् सुप्रलिप्ते विचित्रिते।
दर्पणोदरसंकाशे कृष्णागरुसुधूपिते ॥८३॥

नानापुष्पसमाकीर्णे वितानोपरि शोभिते ।
फलपल्लवमूलाढ्ये कुशपुष्पसमन्विते ॥८४॥
समासनस्थो योगाङ्गान्यभ्यसेद्धृषितः स्वयम् ।
प्रणिपत्य गुरुं पश्चाद्भवं देवीं विनायकम् ॥८५॥

अब यह बताया जाता है कि योग के अङ्गों का अभ्यास किन स्थानों पर करना चाहिए और कहां पर नहीं करना चाहिए, जिन स्थानों स्थलों में नहीं करना चाहिये वे ये हैं—अग्नि के समीप में, जल में, शुष्क पत्तों के ढेर में, जन्तुओं से व्याप्त स्थान में, श्मशान, जीर्णगोष्ठ और चतुष्पथ अर्थात् चौराहे में, ध्वनि से परिपूर्ण स्थान में, भय से युक्त स्थान में, चैत्य और वल्मीक के सञ्चय वाले स्थल में, अशुभ स्थान में, दुष्ट लोगों से घिरे हुए तथा मशक आदि से समन्वित स्थान में कभी योग के यमादि अङ्गों का अभ्यास नहीं करना चाहिये। अभ्यासी के देह में किसी भी प्रकार की बाधा हो तब भी उस दशा में तथा किसी कारण से दौर्मनस्य हो तो उस हालत में भी अभ्यास नहीं करे। ॥७६॥८०॥ अभ्यास करने के उपयुक्त स्थल ये हैं—सुगुप्त, शुभ, रम्य, स्थान, पर्वत की गुहा, सुगुप्त भव क्षेत्र, भवाराम, वन, गृह, सुशुभ देश, एकान्त जहां कोई भी मनुष्य न हो, जीव जन्तुओं से रहित स्थान, अत्यन्त निर्मल स्थल, भली भाँति लिपा पुता तथा विचित्रित स्थान जो कि दर्पण के उदर के समान हो, कृष्ण गूगल से धूपित स्थल, विभिन्न भाँति के पुष्पों से समाकीर्ण स्थल जिसमें ऊपर वितान की शोभा हो, फल, पल्लव तथा मूल से युक्त स्थान, कुश पुष्पों से युक्त स्थल में भली भाँति से आसन पर स्थित होकर स्वयं परम प्रसन्न होते हुए, योग के अङ्गों का अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास करने के प्रारम्भ में पहिले गुरु चरण को प्रणाम करे और इसके अनन्तर शिव, देवी जगदम्बा तथा विघ्न-विनाशक गणेश को प्रणाम करना चाहिए ॥८१॥८२॥८३॥८४॥८५॥

योगीश्वरान् सशिष्यांश्च योगं युञ्जीत योगवित् ।
आसनं स्वस्तिकं बध्वा पद्ममर्धासनं तु वा ॥८६॥

समजानुस्तथा धीमानेकजानुरथापिवा।
सम दृढासनो भूत्वा सहृत्य चरणावुभौ ॥८७॥
सवृतास्योपवद्धाक्ष उरो विष्टभ्य चाग्रत.।
पार्ष्णिभ्या वृषणौ रक्षस्तथा प्रजनन पुन ॥८८॥
किंचिदुन्नामितशिरा दतैर्दंतान्न सस्पृशेत्।
सप्रेक्ष्य नासिकाग्र स्व दिशश्चानवलो कयन् ॥८९॥
तम प्रच्छाद्य रजसा रज सत्त्वेन छादयेत्।
तत. सत्त्वस्थितो भूत्वा शिवध्य न समभ्यसेत् ॥९०॥
ॐकारवाच्य परम शुद्ध दीपशिखाकृतिम्।
ध्यायेद्वै पु डरीकस्य कर्णिकाया समाहित ॥९१॥
नाभेरधस्ताद्वा विद्वान् ध्यात्वा कमलमुत्तमम्।
त्र्यगुले चाष्टकोण वा पञ्चकोणमथापि वा ॥९२॥

योग के वेत्ता को शिष्यो के सहित योगीश्वरो को प्रणाम करके फिर योग मे युक्त होना चाहिए। योगाभ्यास मे स्वस्तिक नाम वाला अथवा पद्मासन या अर्धासन बाँधकर बैठना चाहिए ॥८६॥ धीमान्-पुरुष को समजानु होकर अथवा एक जानु होकर आसन पर सम एव सुदृढ स्थित होना चाहिए और दोनों चरणो को सहृत कर लेवे ॥८७॥ मुख वन्द किये हुए उप वद्ध नेत्रो वाला रहे तथा अपने उर स्थल को आगे की ओर विष्टम्भित कर लेवे। दोनो पार्ष्णियो से अपने वृषणों को तथा जननेंद्रियो की रक्षा करते हुए स्थित होना चाहिए ॥८८॥ अभ्यासी पुरुष को अपना शिर कुछ उन्नमित रखना चाहिए और दाँतो से दाँतो का स्पर्शन करे। किसी भी प्र र न देखते हुए अपनी नासिका के अग्र भाग पर ही दृष्टि रक्खे ॥८९॥ तमोगुण को रजोगुण से और रजोगुण को सत्त्व गुण से छादित कर देना चाहिए। इस तरह जिस समय शुद्ध सत्त्वगुण मे स्थिति हो जावे तो भगवान शिव के ध्यान का अभ्यास करे ॥९०॥ योग के अभ्यासी को ॐकार से वाच्य-परम शुद्ध स्वरूप दीप की शिखा की आकृति वाले शिव का समाहित होकर

कमल की कर्णिका में ध्यान करना चाहिए ॥९१॥ अथवा विद्वान् अभ्यासी पुरुष को अपनी नाभि के नीचे उत्तम कमल का ध्यान करना चाहिए। वह तीन अंगुल मे अष्टकोण अथवा पञ्चकोण का ध्यान करे ॥९२॥

त्रिकोण च तथाग्नेय सौम्यं सौरं स्वशक्तिभिः ।
सौरं सौम्यं तथाग्नेयमथ वानुक्र मेण तु ॥९३॥
आग्नेयं च ततः सौरं सौम्यमेव विधानतः ।
अग्नेरधः प्रकल्प्यैवं धर्मादीना चतुष्टयम् ॥९४॥
गुणत्रयं क्रमेणैव मडलोपरि भावयेत् ।
सत्त्वस्थं चिंतयेद्रु द्रं स्वशक्त्या परिमडितम् ॥९५॥
नाभौ वाथ गले वापि भ्रूमध्ये वा यथाविधि ।
ललाट फलिकाया वा मूर्ध्नि ध्यानं समाचरेत् ॥९६॥
द्विदले षोडशारे वा द्वादशारे क्रमेण तु ।
दशारे वा षडस्रे वा चतुरस्रे स्मरेच्छिवम् ॥९७॥
कनकाभे तथागारसन्निभे सुसितेऽपि वा ।
द्वादशादित्यसंकाशे चंद्रबिंबसमेऽपि वा ॥९८॥
विद्यु त्कोटिनिभे स्थाने चिंतयेत्परमेश्वरम् ।
अग्निवर्णेऽथ वा विद्यु द्वलयाभे समाहितः ॥९९॥
वज्रकोटिप्रभे स्थाने पद्मरागनिभेऽपि वा ।
नीललोहितबिंबे वा योगी ध्यान समभ्य सेत् ॥१००॥

वह त्रिकोण अपनी शक्तियों से युक्त आग्नेय, सौम्य तथा सौर हो अथवा सौर, सौम्य और आग्नेय हो। इस अनुक्रम से रखकर फिर आग्नेय-सौर और सौम्य का विधान से रक्खे। अग्नि के निचले भाग मे इस प्रकार से धर्म,ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य को प्रकल्पित करें ॥९३॥९४॥ क्रम से ही तीनों गुणों को मण्डल के ऊपर के भाग मे भावित करना चाहिए। सत्व मे स्थित अपनी शक्ति से परिमण्डित भगवान् रुद्र का चिन्तन करना चाहिए ॥९५॥ नाभि मे, गले मे, भ्रूओं के मध्य भाग में,

ललाट की कर्णिका में अथवा मूर्द्धा में यथाविधि ध्यान करना चाहिए। ॥९६॥ द्विदल मे, षोडशार में तथा क्रम से द्वादशार में, दशार में, षडस्त्र मे अथवा चतुरस्र में शिव का स्मरण करना चाहिए ॥९७॥ सुवर्ण के समान आभा वाले, जलते हुए अङ्गार के तुल्य, सुसित, द्वादश आदित्यों के समान, चन्द्र के बिम्ब के सदृश अथवा विद्युत् कोटि के समान स्थान मे परमेश्वर का चिन्तन करना चाहिए। अग्नि के वर्ण वाले, विद्युत् के वलय की आभा से युक्त, वज्र कोटि की प्रभा से संयुत, पद्मराग मणि के सदृश अथवा नीललोहित बिम्ब मे समाहित होकर योगी को ध्यान या अभ्यास करना चाहिए ॥९८॥९९॥१००॥

महेश्वरं हृदि ध्यायेन्नाभिपद्मे सदाशिवम्।
चंद्रचूडं ललाटे तु भ्रूमध्ये शंकरं स्वयम् ॥१०१॥
दिव्ये च शाश्वतस्थाने शिवध्यानं समभ्यसेत्।
निर्मलं निष्कलं ब्रह्म सुशांतं ज्ञानरूपिणम् ॥१०२॥
अलक्षणमनिर्देश्यमणोरल्पतरं शुभम्।
निरालंबमनवर्यं च विनाशोत्पत्तिवर्जितम् ॥१०३॥
कैवल्यं चैव निर्वाणं निःश्रेयसमनूपमम्।
अमृतं चाक्षरं ब्रह्म ह्यपुनर्भव मद्भुतम् ॥१०४॥
महानंद परानंद योगानंदमनामयम्।
हेयोपादेयरहितं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं शिवम् ॥१०५॥
स्वयवेद्यमवेद्यं तच्छिवं ज्ञानमयं परम्।
अतींद्रियमनाभासं परं तत्त्वं परात्परम् ॥१०६॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं ध्यानगम्यं विचारतः।
अद्वयं तमसश्चैव परस्तात्संस्थितं परम् ॥१०७॥

हृदय मे महेश्वर का ध्यान करे—नाभि के नीचे पद्म मे भगवान् सदाशिव का ध्यान करे—ललाट पटिका मे चन्द्र चूड शिव का ध्यान करे और भृकुटी के मध्य भाग त्रिकुटी मे स्वयं भगवान् शङ्कर का ध्यान करना चाहिए ॥१०१॥ दिव्य भूमि के स्थान मे जो

कि शाश्वत है शिव के ध्यान करने का अभ्यास करे जिनका स्वरूप निर्मल, निष्कल, ब्रह्ममय, सुशान्त और ज्ञान के रूप वाला है ॥१०२॥ वह लक्षण रहित, अनिर्देश्य, अणु से भी अल्प तर, शुभ, निरालम्ब, अतर्क्य और विनाश तथा उत्पत्ति से वर्जित है ॥१०३॥ उनका रूप कैवल्य, निर्वाण, निःश्रेयस, अनूपम, अमृत, अक्षर, ब्रह्म, अपुनर्भव और अद्भुत है ॥१०४॥ शिव का स्वरूप शिव (मङ्गलमय), महानन्द, परानन्द, योगानन्द, अनामय, हेय तथा उपादेयता से रहित, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर होता है ॥१०५॥ शिव स्वयं संवेद्य, अवेद्य, पर, ज्ञानमय, इन्द्रियों की पहुँच से परे, अनाभास, परात्पर, परतत्त्व है ॥१०६॥ भगवान् शिव समस्त उपाधियों से विशेष रूप से निर्मुक्त, विचार अर्थात् भावना से ही ध्यान गम्य, अद्वय और तमोगुण से परे सस्थित एव पर हैं ॥१०७॥

मनस्येवं महादेवं हृत्पद्मे वापि चिंतयेत् ।
नाभौ सदाशिव चापि सर्वदेवात्मकं विभुम् ॥१०८॥
देहमध्ये शिवं देवं शुद्धज्ञानमयं विभुम् ।
कन्यसेनैव मार्गेण चोद्घातेनापि शङ्करम् ॥१०९॥
क्रमशः कन्यसेनैव मध्यमेनापि सुव्रतः ।
उत्तमेनापि वै विद्वान् कुंभकेन समभ्यसेत् ॥११०॥
द्वात्रिंशद्रेचयेद्धीमान् हृदि नाभौ समाहितः ।
रेचकं पूरकं त्यक्त्वा कुंभकं च द्विजोत्तमाः ॥१११॥
साक्षात्समरसेनैव देहमध्ये स्मरेच्छिवम् ।
एकीभाव समेत्यैव तत्र यद्रससंभवम् ॥११२॥
आनंदं ब्रह्मणो विद्वान् साक्षात्समरसे स्थितः ।
धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादश धारणम् ॥११३॥
ध्यानं द्वादशकं यावत्समाधि रभिधीयते ।
अथवा ज्ञानिनां विप्राः संपर्कादेव जायते ॥११४॥

प्रयत्नाद्वा तयोस्तुल्य चिराद्वा ह्यचिराद्द्विजाः ।
योगांतरायास्त स्याथ जायंते युञ्जतः पुनः ॥११५॥
नश्यत्यभ्यासतस्तेऽपि प्रणिधानेन वै गुरोः ॥११६॥

इस प्रकार के उक्त स्वरूप वाले महादेव का मन में ही अथवा हृदय के पद्म मे चिन्तन करना चाहिए । नाभि के नीचे के भाग में सर्व देवो के स्वरूप वाले विभु सदा शिव का ध्यान करे ॥१०८॥ देह के मध्य मे शुद्ध ज्ञान मय, विभु, देव शिवका चिन्तन करे । सुषुम्ना नाडी रूप मार्ग के द्वारा और द्वादश मात्रक कुम्भक के द्वारा शङ्कर का ध्यान करे ॥१०९॥ इस प्रकार से चिन्तन का अभ्यास करना चाहिए । आरम्भ मे कन्यस (सुषुम्ना नाडी रूप मार्ग) से ही अभ्यास करे फिर सुव्रत पुरुष को मध्यम चौवीस मात्रा वाले कुम्भक के द्वारा और इसके अनन्तर उत्तम कुम्भक से जो छत्तीस मात्रा वाला होता है ध्यान करने का अभ्यास करना चाहिए ॥११०॥ धीमान् पुरुष को बत्तीस रेचन करना चाहिए । हे द्विजोत्तम गण ! रेचक और पूरक का त्याग करके केवल कुम्भक के द्वारा ही अभ्यास करे ॥१११॥ देह के मध्य मे समरस के द्वारा ही साक्षात् शिव का स्मरण करना चाहिए । इस प्रकार से एकीभाव को प्राप्त होकर वहा पर रस का सम्भव हो जाता है ॥११२॥ समरस मे स्थित होने वाला विद्वान् साक्षात् ब्रह्म के आनन्द को प्राप्त होता है । जिसमें द्वादश प्राणायाम होते हैं वह धारणा होती है अर्थात् धारणा के नाम से कही जाती है और द्वादश धारणा वाला ध्यान कहा जाता है । बारह ध्यान जब तक होते हैं तब वह समाधि कही जाती है । हे विप्रगण ! अथवा ज्ञानियो के सम्पर्क होने से ही समाधि हो जाया करती है ॥११३॥११४॥ प्रयत्न अर्थात् अभ्यास करने से उन दोनो का तुल्य ही फल होता है । जिसने पूर्व जन्म में भी कुछ अभ्यास किया है उसको अल्प काल मे ही समाधि हो जाया करती है और जो नवीन अभ्यास करने वाला व्यक्ति है उसको चिर काल में सिद्धि होती है क्योंकि उस योगाभ्यास करने वाले को योग मे अनेक

अन्तराय (विघ्न) होते हैं ॥११५॥ वे विघ्न भी गुरु के सन्निधान होने से और सतत अभ्यास करते रहने से नष्ट हो जाया करते हैं ॥११६॥

॥ योग मार्ग के विघ्न ॥

आलस्यं प्रथमं पश्चाद्व्याधिपीडा प्रजायते।
प्रमादः संशयस्थाने चित्तस्येहानवस्थितिः ॥१॥
अश्रद्धादर्शनं भ्रांतिर्दुःख च त्रिविधं ततः।
दौर्मनस्यमयोग्येषु विषयेषु च योगता ॥२॥
दशधाभिप्रजायते मुनेर्योगांतरायकाः।
आलस्यं चाप्रवृत्तिश्च गुरुत्वात्कायचित्तयो. ॥३॥
व्याधयो धातुवैषम्यात् कर्मजा दोषजास्तथा।
प्रमादस्तु समाधेस्तु साधनाना मभावनम् ॥४॥
इदं वेत्युभय पृक्त विज्ञानं स्थानसंशयः।
अनवस्थितचित्तत्वमप्रतिष्ठा हि योगिनः ॥५॥
लब्धायामपि भूमौ च चित्तस्य भवबंधनात्।
अश्रद्धाभावरहिता वृत्तिर्वै साधनेषु च ॥६॥
साध्ये चित्तस्य हि गुरौ ज्ञानाचारशिवादिषु।
विपर्ययज्ञान मिति भ्रांतिदर्शनमुच्यते ॥७॥

है। प्रमाद, सशय के स्थान मे चित्त की अवस्थिति न होना, श्रद्धा का अभाव, भ्रान्ति, तीन प्रकार के दु ख जिनके नाम आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक है। आध्यात्मिक दु ख शारीरिक और मानसिक दो प्रकार का होता है, अन्य प्राणियो के द्वारा किया हुआ दु ख आधिभौतिक होता है और शीतोष्णादि से होने वाला दु ख आधिदैविक कहा जाता है। दुर्मनस्कता और सेवन के अयोग्य विषयो मे योग का रहना ये दश प्रकार के विघ्न हुआ करते हैं जो मुनियो के योगाभ्यास मे बाधक होते हैं। आलस्य तो किसी भी कर्म म अप्रवृत्त होने का नाम है ॥१॥२॥३॥ शरीर मे मास मज्जादि जो सात धातुयें होती हैं उनकी विषमता के होने से व्याधियाँ उत्पन्न हुआ करती है जो दोषज और कर्मज दो प्रकार की होती हैं। समाधि के साधनो के अभाव का नाम प्रमाद है ॥४॥ ऐसा है या ऐसा है—इस प्रकार का उभय स्पर्शी विज्ञान को स्थान सशय कहते हैं। चित्त अवस्थित न होना योग की अप्रतिष्ठा होनी है ॥५॥ समुचित भूमि के प्राप्त होने पर भी सासारिक विषय व धनो के कारण से साधनो म चित्त की वृत्ति का श्रद्धा के भाव से रहित होना ही अश्रद्धा दशन होना है ॥६॥ चित्त के साध्र होने पर गुरु, ज्ञान, आचार और शिव आदि म विपरीत ज्ञान का समुत्पन्न होना ही भ्रान्ति दशन के नाम से कहा जाता है ॥७॥

अनात्मन्यात्मविज्ञानमज्ञानात्तस्य सनिधौ ।
दु खमाध्यात्मिक प्रोक्त तथा चैवाधिभौतिकम् ॥८॥
आधिदैविकमित्युक्त त्रिविध सहज पुन ।
इच्छाविघातात्सक्षोभश्चेतसस्तदुदाहृतम् ॥९॥
दौर्मनस्य निरोद्धव्य वैराग्येण परेण तु ।
तमसा रजसा चैव सस्पृष्ट दुर्मन स्मृतम् ॥१०॥
तदा मनसि सजात दौर्मनस्यमिति स्मृतम् ।
हठात्स्वीकरण कृत्वा योग्यायोग्य विवेक्त. ॥११॥

विषयेषु विचित्रेषु अतोविषयलोलता ।
अतरायाः इति ख्याता योगस्यैते हि योगिनाम् ॥१२॥
अत्यतोत्साह युक्तस्य नश्यति न च सशय ।
प्रनष्टेष्वतरायेषु द्विजा पश्चाद्धि योगिन ॥१३॥
उपसर्गा प्रवर्तंते सर्वे तेऽसिद्धिसूचका ।
प्रतिभा प्रथमा सिद्धिर्द्वितीया श्रवणा स्मृता ॥१४॥

अनात्मा म आत्म विज्ञान और अज्ञान से उसकी सन्निधि म प्राप्त होना आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक तथा सहज तीन प्रकार का दु ख बताया गया है । वह इच्छा क विघात होने से हाने वाला चित्त का सक्षोम कहा गया है ॥८॥९॥ दौमनस्य दोष को परम वैराग्य के द्वारा निरुद्ध करना चाहिए । यह तभी होता है जब मन तमोगुण और रजोगुण से सस्पृष्ट हुआ करता है ॥१०॥ उस समय म जो एक प्रकार की विकृति मन मे होती है उसे ही दौमनस्य कहा जाता है । योग्य अथवा अयोग्य क विवेक से हठ पूवक किसी को भी स्वीकार कर लिया जाता है ॥११॥ विषय बहुत ही अद्भुत प्रकार के आकर्षण रखने वाले होते हैं उनम जीवो की स्वाभाविक चञ्चलता हुआ ही करती है कि उन का समास्वादन प्राप्त करे—योगियो के ये ही योगाभ्यास मे अन्तराय हुआ करते हैं ॥१२॥ जो योगाभ्यासी अत्यन्त उत्साह वाला होता है उसके ये सभी विघ्न नष्ट हो जाया करते हैं—इसमे तनिक भी सशय नही है । हे द्विजगण ! जब सभी विघ्नो का नाश हो जाता है तो फिर व्यक्ति अभ्यास से पूर्ण योगी हो जाया करता है ॥१३॥ जो उपसर्ग होते हैं वे समाधि मे असिद्धि के सूचक उपद्रव हुआ करते हैं और व्युत्थान मे सिद्धि रूप होते हैं। उनमे प्रतीभा प्रथम सिद्धि है और द्वितीया सिद्धि श्रवणा मानी गई है ॥१४॥

वार्ता तृतीया विप्रेंद्रास्तुरीया चेह दर्शना ।
आस्वादा पञ्चमी प्रोक्ता वेदना पष्ठिका स्मृता ॥१५॥

स्वल्पषट् सिद्धिसत्यागात्सिद्धिदा सिद्धयो मुने ।
प्रतिभा प्रतिभावृत्ति प्रतिभाव इति स्थिति ॥१६॥
बुद्धिर्विवेचना वेद्य बुद्धयते बुद्धिरुच्यते ।
सूक्ष्मे व्यवहितेतीते विप्रकृष्टे त्वनागते ॥१७॥
सर्वत्र सर्वदा ज्ञान प्रतिभानुक्रमेण तु ।
श्रवणात्सर्वशब्दानामप्रयत्नेन योगिन ॥१८॥
ह्रस्वदीर्घप्लुतादीना गृह्याना श्रवणादपि ।
स्पर्शस्याधिगमो यस्तु वेदना तूपपादिता ॥१९॥
दर्शनाद्दिव्यरूपाणा दर्शन चाप्रयंम्नत ।
सविद्दिव्यरसे तस्मिन्नाम्वादो ह्यप्रयत्नत ॥२०॥
वार्ता च दिव्यगधाना तन्मात्रा बुद्धिसविदा ।
विन्दते योगिनस्तस्मादाब्रह्मभुवन द्विजा ॥२१॥

हे विप्रेन्द्र गण ! वार्त्ता तृतीया, दर्शना चतुर्थी, आस्वादा और वेदना छठी होती है ॥१५॥ ये पूर्वोक्त स्वल्प छः सिद्धियो के त्याग से भोग से व्यावृत्त मननशील मुनि को अणिमादि सिद्धियाँ होती हैं। अब प्रतिभादि सिद्धियो का विवरण करते हैं। प्रतिभा, प्रतिभावृत्ति और प्रतिभाव इनकी स्थिति होती है ॥१६॥ विवेचना को बुद्धि कहते है। इसके द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के योग्य का ज्ञान प्राप्त किया जाता है अतएव इसे बुद्धि कहते हैं। सूक्ष्म मे व्यवधान मे युक्त मे, अतीत मे, विप्रकृष्ट मे और अनागत मे प्रतिभा के अनुक्रम से सर्वत्र सर्वदा ज्ञान होता है। योगियो को बिना ही प्रयत्न के समस्त शब्दो के श्रवण से ही ज्ञान हो जाता है ॥१७॥१८॥ ह्रस्व-दीर्घ और प्लुत आदि गुणो का श्रवण से ही ज्ञान हो जाता है। जो स्पर्श का अधिगम होता है वह वेदना उपपादित की गई है ॥१९॥ दिव्य रूपो का बिना किसी प्रयत्न के ही जिसमे दर्शन होता है वह दर्शना कही जाती है। सविद् दिव्यरस मे प्रयत्न के बिना आस्वादन होने से आस्वादा कही जाती है ॥२०॥ बुद्धि सविदा दिव्य गन्धो की तन्मात्रा को वार्त्ता कहते है।

हे द्विजगण ! इसी कारण से योगी लोग ब्रह्म भुवन पर्यन्त का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं ॥२१॥

जगत्यस्मिन् हि देहस्थं चतुःषष्टिगुणं समम् ।
औपसर्गिकमेतेषु गुणेषु गुणितं द्विजाः ॥२२॥
संत्याज्यं सर्वथा सर्वमौपसर्गिकमात्मनः ।
पैशाचे पार्थिवं चाप्यं राक्षसानां पुरे द्विजाः ॥२३॥
याक्षे तु तैजसं प्रोक्तं गान्धर्वे श्वसनात्मकम् ।
ऐन्द्रे व्योमात्मकं सर्वं सौम्ये चैव तु मानसम् ॥२४॥
प्राजापत्ये त्वहंकारं ब्राह्मे बोधमनुत्तमम् ।
आद्ये चाष्टौ द्वितीये च तथा षोडशरूपकम् ॥२५॥
चतुर्विंशत्तृतीये तु द्वात्रिंशच्च चतुर्थके ।
चत्वारिंशत् पञ्चमे तु भूतमात्रात्मकं स्मृतम् ॥२६॥
गंधो रसस्तथा रूपं शब्दः स्पर्शस्तथैव च ।
प्रत्येकमष्टधा सिद्धं पञ्चमेतच्छतक्रतोः ॥२७॥
तथाष्टचत्वारिंशच्च षट्पञ्चाशत्तथैव च ।
चतुः षष्टिगुणं ब्राह्मं लभते द्विजसत्तमाः ॥२८॥

हे द्विजो ! इस जगत् में चौंसठ देह में रहने वाले औपसर्गिक मायिक सब आगे कहे जाने वाले गुणों में ग्रथित है ॥२२॥ सच्चिदानन्द रूप आत्मा के सब औपसर्गिक दुःख के प्रयोजक है अतएव सब प्रकार से त्याग कर देने के योग्य है। पिशाचों के लोक में पार्थिव, राक्षसों के पुर में उदकमय, यक्षों के पुर में तैजस और गन्धर्वों के पुर वायुस्वरूप कहे गये है । ऐन्द्रपुर में व्योमात्मक, सौम्य में सब मानस हैं ॥२३॥२४॥ प्राजापत्य में अहङ्काररूप और ब्राह्म में उत्तम ज्ञान रूप है । आद्य अर्थात् पार्थिव में आठ गुण हैं और द्वितीय में सोलह रूप वाले होते हैं ॥२५॥ तृतीय में चौबीस और चतुर्थ में बत्तीस एवं पञ्चम में चालीस है जो कि भूत मात्रात्मक कहे गये हैं ॥२६॥ गन्ध, रस, रूप शब्द और स्पर्श प्रत्येक इनमें आठ-आठ प्रकार के हैं और शतक्रतु के पचम में भी आ-

प्रकार हैं । इस प्रकार से अड़तालीस तथा छप्पन है। ये चौंसठ गुण ब्रह्म के ऐश्वर्य को प्राप्त करते है ॥२७॥२८॥

औपसर्गिकमाब्रह्मभुवनेषु परित्यजेत् ।
लोकेष्वालोक्य योगेन योगवित्परमं सुखम् ॥२९॥
स्थूलता ह्रस्वता बाल्यं वार्धक्यं यौवनं तथा ।
नानाजातिस्वरूपं च चतुर्भिर्देहधारणम् ॥३०॥
पार्थिवांशं विना नित्यं सुरभिर्गंधसंयुतः ।
एतदष्टगुणं प्रोक्तमैश्वर्यं पार्थिवं महत् ॥३१॥
जले निवसनं यद्वद्भूम्यामिव विनिर्गमः ।
इच्छेच्छक्तः स्वयं पातुं समुद्रमपि नातुरः ॥३२॥
यत्रेच्छति जगत्यस्मिस्तत्रास्य जलदर्शनम् ।
यद्यद्वस्तु समादाय भोक्तुमिच्छति कामतः ॥३३॥
तत्तद्रसान्वितं तस्य त्रयाणां देहधारणम् ।
भांडं विनाथ हस्तेन जलपिंडस्य धारणम् ॥३४॥
अव्रणत्वं शरीरस्य पार्थिवेन समन्वितम् ।
एतत् षोडशकं प्रोक्तमाप्यमैश्वर्यमुत्तमम् ॥३५॥

जो ब्रह्म पर्यन्त भुवनो मे लोको मे योग के द्वारा औपसर्गिक का विचार करके परित्याग कर देता है वह योग का वेत्ता निरवधिक परम सुख को प्राप्त किया करता है ॥२९॥ अब पार्थिवादि आठ ऐश्वर्यों को बताते है—स्थूलता, ह्रस्वता, बाल्य, वार्धक्य, यौवन और चारो के द्वारा अनेक जाति स्वरूप नाना देह का धारण करना जो पार्थिवांश के विना नित्य सुरभि और गन्ध से सयुत है । इन आठ गुणो से युक्त यह महत् पार्थिव ऐश्वर्य होता है ॥३०॥३१॥ जिस प्रकार से जल मे निवास है वैसे ही भूमि की तरह विनिगम होता है । यदि चाहे तो समुद्र का भी पान करने मे समर्थ होता है और आतुर नही होता है ॥३२॥ इस जगत् मे जहा पर भी चाहता है वहा पर ही इसको जल का दर्शन होता है । कामना से जो-जो भी वस्तु वह चाहता है उन्हे लाकर खाने की

इच्छा करता है ॥३३॥ उसको वे सब उसी-उसी रस से युक्त होती हैं और तीनों का देह धारण होता है। बिना पात्र के हाथ के द्वारा ही जल के पिण्ड को धारण कर लेता है ॥३४॥ शरीर मे व्रण नही होते हैं जो कि पार्थिव से समन्वित हैं। यह सोलह प्रकार का उदक भय ऐश्वर्य कहा गया है जो कि अत्युत्तम है ॥३५॥

देहादग्निविनिर्माण तत्तापभयवर्जितम् ।
लोक दग्धमपीहान्यददग्ध स्वविधानत ॥३६॥
जलमध्ये हुतवह चाधाय परिरक्षणम् ।
अग्निनिग्रहण हस्ते स्मृतिमात्रेण चागमः ॥३७॥
भस्मीभूतविनिर्माण यथापूर्व सकामत ।
द्वाभ्या रूपविनिष्पत्तिर्विना तैस्त्रिभिरात्मन ॥३८॥
चतुर्विंशात्मक ह्येतत्तैजस मुनिपुङ्गवा ।
मनोगतित्व भूतानामर्तानिवसन तथा ॥३९॥
पर्वतादिमहाभारस्कधेनोद्वहन पुन ।
लघुत्व च गुरुत्व च पाणिभ्या वायुधारणम् ॥४०॥
अगुल्यग्रनिघातेन भूमे सर्वत्र कपनम् ।
एकेन देहनिष्पत्तिर्वातैश्वर्यं स्मृत बुधै. ॥४१॥
छायाविहीननिष्पत्तिरिन्द्रियाणा च दर्शनम् ।
आकाशगमन नित्यमिंद्रियार्थे समन्वितम् ॥४२॥

देह से अग्निका विशेष रूप से निर्माण करना जिसमें उसके ताप का भय भी नहीं होता है और दग्ध लोक को योग से ऐश्वर्य के प्रभाव से दाह शून्य कर देना है ॥३६॥ जल के मध्य मे अग्नि का आधान करके उसका परिरक्षण करना, हाथ मे अग्नि का निग्रहण और स्मरण मात्र से उसका आगम हो जाना, भस्मी भूत का विशेष निर्माण जैसा कि कामना से पूर्व मे था। दो से अर्थात् वायु और आकाश से देह की निष्पत्ति बिना उन तीनो के करना ये चौबीस प्रकार का

तैजस ऐश्वर्य होता है। मन के अनुसार गति प्राप्त करना तथा भूतों का अन्त निवसन करना, पर्वत आदि के महान् भार को कन्धे के द्वारा उद्वहन करना, लघुत्व, गुरुता और हाथों से वायु को धारण कर लेना, अङ्गुलि के अग्रभाग के निधान से समस्त भूमि मे कम्पन उत्पन्न कर देना और एक के द्वारा शरीर की निष्पत्ति कर देना ये सब बुधों के द्वारा वातैश्वर्य कहे गये हैं ॥३७॥३८॥३९॥४०॥४१॥ छाया विहीन की निष्पत्ति और इन्द्रियों का दर्शन, इन्द्रियों के अर्थों से समन्वित नित्य आकाश का गमन ऐन्द्र ऐश्वर्य है ॥४२॥

दूरे च शब्दग्रहणं सर्वशब्दावगाहनम् ।
तन्मात्रलिगग्रहणं सर्वप्राणिनिदर्शनम् ॥४३॥
ऐंद्रमैश्वर्यमित्युक्तमेतैरुक्तः पुरातनः ।
यथाकामोपलब्धिश्च यथाकाम विनिर्गमः ॥४४॥
सर्वत्राभिभवश्चैव सर्वगुह्यनिदर्शनम् ।
कामानुरूपनिर्माणं वशित्व प्रियदर्शनम् ॥४५॥
संसारदर्शनं चैव मानसं गुणलक्षणम् ।
छेदनं ताडनं वधं संसारपरिवर्तनम् ॥४६॥
सर्वभूतप्रसादश्च मृत्युकालजयस्तथा ।
प्राजापत्यमिदं प्रोक्तमाह ङ्कारिकमुत्तमम् ॥४७॥
अकारणजगत्सृष्टिस्तथानुग्रह एव च ।
प्रलयश्चाधिकारश्च लोकवृत्तप्रवर्तनम् ॥४८॥
असादृश्यमिद व्यक्तं निर्माणं च पृथक्पृथक् ।
संसारस्य च कर्तृत्वं ब्राह्ममेतदनुत्तमम् ॥४९॥

दूर मे शब्द का ग्रहण, समस्त शब्दों का अवगाहन, तन्मात्र लिंग का ग्रहण और समस्त प्राणियों का निदर्शन यह ऐन्द्र ऐश्वर्य कहा गया है और इनके द्वारा अर्थात् इन पाँच प्रकारों से पुरातन कहा गया है। यथा काम उपलब्धि करना और जैसी इच्छा हो वैसा ही विनिर्गम

करना सर्वत्र अभिभव, सर्व गुह्यों का निदर्शन, इच्छानुसार रूप का निर्माण वशित्व, प्रियदर्शन और समार का दर्शन ये सब मानस गुण के लक्षण है। छेदन, ताडन, बन्ध, ससार का परिवर्त्तन समस्त भूतो का प्रसाद, मृत्यु के काल पर जय प्राप्त करना और प्राजापत्य यह उत्तम आह्लारिक कहा गया है ॥४३॥४४॥४५॥४६॥४७॥ अकारण जगत् की सृष्टि तथा अनुग्रह, प्रलय, अधिकार, लोक वृत्त का प्रवर्तन, पृथक्-पृथक् निर्माण और वह भी सादृश्य से रहित और इस समस्त ससार का कर्त्ता होना यह सब उत्तम ब्राह्म गुण है ॥४८॥४९॥

एतावत्तत्त्वमित्युक्त प्राधान्यं वैष्णव पदम् ।
ब्रह्मणा तद्गुण शक्य वेत्तुमन्यैर्न शक्यते ॥५०॥
विद्यते तत्पर शैव विष्णुना नावगम्यते ।
असख्येयगुण शुद्ध को जानीयाच्छिवात्मकम् ॥५१॥
व्युत्थाने सिद्धयश्चैता ह्युपसर्गाश्च कीर्तिता. ।
निरोद्धव्या प्रयत्नेन वैराग्येण परेण तु ॥५२॥
नाशातिशयता ज्ञात्वा विपयेपु भयेपु च ।
अश्रद्धया त्यजेत्सर्वं विरक्त इति कीर्तित. ॥५३॥
वैतृष्ण्य पुरुषे ख्यात गुणवैतृष्ण्यमुच्यते ।
वैराग्येणैव सत्याज्या· सिद्धयश्चौपसर्गिका ॥५४॥
औपसर्गिक माब्रह्मभुवनेपु परित्यजेत् ।
निरुद्ध्यैव त्यजेत्सर्वं प्रसीदति महेश्वर ॥५५॥
प्रसन्ने विमला मुक्तिर्वैराग्येण परेण, वै ।
अथवानुग्रहार्थं च लीलार्थं वा तदा मुनि ॥५६॥

इतना ब्राह्मैश्वर्य का तत्व कहा गया है। यह मुख्य कारण है। इसलिए प्राधान्य वैष्णव पद होता है। उसके गुण को ब्रह्मा के द्वारा ही जाना जा सकता है अन्य किसी के द्वारा नहीं ॥५०॥ उससे भी पर शैव तत्त्व होता है जिसको विष्णु भी नहीं जानते है । शिवात्मक ऐश्वर्य असख्येय गुण वाला और शुद्ध होता है उसे कौन जान सकता

है ? अर्थात् कोई भी नही जान पाता है ॥५१॥ ये जो सब चौंसठ सिद्धियाँ कही गई हैं वे सब व्यवहार काल मे ही सिद्धियाँ होती हैं अर्थात् सिद्धि के नाम से पुकारी जाती हैं किन्तु समाधि के समय मे ये सब विघ्न स्वरूप होती हैं—ऐसा कहा गया है। इनका निरोध परमोत्कृष्ट वैराग्य के द्वारा ही प्रयत्न पूर्वक उस दशा में करना चाहिए ॥५२॥ विषयो मे और भयों मे नाश की अतिशयता को समझकर विरक्त पुरुष को अश्रद्धा के द्वारा इन सबका त्याग कर चाहिए ॥५३॥ पुरुष मे तृष्णा का अभाव होना प्रसिद्ध है और वह वितृष्णा का भाव गुणो का ही कहा जाता है। इन औपसर्गिक अर्थात् विघ्न कारक सिद्धियों का त्याग ही उत्कृष्ट वैराग्य के द्वारा कर देना चाहिए ॥५४॥ ब्रह्मभुवन पर्यन्त औपसर्गिक सबका त्याग कर देने और निरोध करके ही सबका त्याग कर देना चाहिए तभी भगवान् महेश्वर प्रसन्न होते हैं ॥५५॥ इन सिद्धियो मे भगवान् महेश्वर के अनुग्रह एव लीला के प्राप्तार्थ अजासक्ति मुनि की होनी चाहिए। परमोत्कृष्ठा वैराग्य के द्वारा महेश्वर के प्रसन्न हो जाने पर ही विमल मुक्ति की प्राप्ति हुआ करती है ॥५६॥

अनिरुद्धय विचेष्टेद्यः सोप्येवं हि सुखी भवेत् ।
क्वचिद्भूमि परित्यज्य ह्याकाशे क्रीडते श्रिया ॥५७॥
उद्गिरेच्च क्वचिद्वेदान् सूक्ष्मानर्थान् समासतः ।
क्वचिच्छ्रुते तदर्थेन श्लोकबंधं करोति सः ॥५८॥
क्वचिद्दंडकबंधं तु कुर्याद्बंधं सहस्रशः ।
मृगपक्षिसमूहस्य रुतज्ञानं च विंदति ॥५९॥
ब्रह्माद्यं स्थावरान्तं च हस्तामलकवद्भवेत् ।
बहुनात्र किमुक्तेन विज्ञानानि सहस्रशः ॥६०॥
उत्पद्यंते मुनिश्रेष्ठा मुनेस्तस्य महात्मनः ।
अभ्यासेनैव विज्ञानं विशुद्धं च स्थिरं भवेत् ॥६१॥
तेजोरूपाणि सर्वाणि सर्वं पश्यति योगवित् ।
देवविंबान्यनेकानि विमानानि सहस्रशः ॥६२॥

पश्यति ब्रह्मविष्ण्वींद्रयमाग्निवरुणादि कान् ।
ग्रहनक्षत्रताराश्च भुवनानि सहस्रशः ॥६३॥

जो इन औपसर्गिक सिद्धियों का निरोधन करके उन्हें प्राप्त कर लेने की चेष्टा किया करता है वह भी इस प्रकार का सुख प्राप्त करके सुखी हो जाता है कि किसी भूमि का त्याग करके आकाश में श्री के साथ क्रीडा किया किया करता है ॥५७॥ वह कहीं पर वेदों का उद्गिरण करता है तथा परम सूक्ष्म अर्थों को संक्षेप मे बता दिया करता है और किसी समय शास्त्र में उसके अर्थ के द्वारा श्लोको का बन्ध कर दिया करता है ॥५८॥ किसी समय में दण्डक छन्दो में सहस्रों प्रकार के विज्ञानों को कह देता है । वह पशु और पक्षियों की आवाज का ज्ञान प्राप्त कर लेता है । उसे ब्रह्म से आदि लेकर स्थावर पर्यन्त सभी वस्तुओं का ज्ञान हस्ता मलक रहता है । अधिक कहां तक कहा जाने उसे सभी प्रकार के सहस्रो ज्ञान रहा करते हैं ॥५९॥ ॥६०॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! उस महान् आत्मा वाले मुनि को अनेक प्रकार के विशेष ज्ञान प्राप्त होते हैं और अभ्यास के द्वारा ही विशुद्ध विज्ञान स्थिर हुआ करता है ॥६१॥ सब तेजो रूप होते हैं, योग का वेत्ता पुरुष उस सबको देखता है । जो कि अनेको देवो के बिम्ब और सहस्रो ही विमान होते हैं ॥६२॥ वह योगी ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, यम, अग्नि और वरुण आदि सब को तथा ग्रह, नक्षत्र और समस्त तारागण को एवं सहस्रो भुवनों को भी देखता है ॥६३॥

पातालतलसंस्थाश्च समाधिस्थः स पश्यति ।
आत्मविद्याप्रदीपेन स्वस्थेनाचलनेन तु ॥६४॥
प्रासादामृतपूर्णेन सत्त्वपात्रस्थितेन तु ।
तमो निहत्य पुरुषः पश्यति ह्यात्मनीश्वरम् ॥६५॥
तस्य प्रसादाद्धर्मश्च ऐश्वर्यं ज्ञानमेव च ।
वैराग्यमपवर्गश्च नात्र कार्या विचारणा ॥६६॥

न शक्यो विस्तरो वक्तुं वर्षाणामयुतैरपि ।
योगे पाशुपते निष्ठा स्थातव्यं च मुनीश्वरा: ॥६७॥

समाधि मे स्थित होने वाला योगी परम स्वस्थ एवं अविचल आत्मा-विद्या के प्रदीप के द्वारा समस्त पाताल तल में संस्थित लोकों को भी देख लेता है ॥६४॥ प्रसाद रूप अमृत से पूर्ण जो सत्त्व स्वरूप पात्र हैं उसमें स्थित पुरुष अज्ञान स्वरूप नभ का ध्वंस करके आत्मा में भगवान् शिव का साक्षात्कार प्राप्त किया करता है ॥६५॥ भगवान् महेश्वर के प्रसाद से उस योगी को धर्म, ऐश्वर्य, ज्ञान, वैराग्य और अपवर्ग सभी प्राप्त हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नही करना चाहिए ॥६६॥ यहाँ इसका वर्णन मैंने संक्षेप से किया है । यदि इसका विस्तार पूर्वक कथन किया जावे तो दश सहस्र वर्षों मे भी नही किया जा सकता है । हे मुनी श्वरगण ! सबका सार यही है कि पाशुपत योग मे अपनी निष्ठा करके स्थिति अवश्य ही करनी चाहिए ॥६७॥

॥ शिव भक्ति भाव कथन ॥

सतां जितात्मनां साक्षाद्द्विजातीनां द्विजोत्तमा: ।
धर्मज्ञानां च साधूनामाचार्याणां शिवात्मनाम् ॥१॥
दयावतां द्विजश्रेष्ठास्तथा चैव तपस्विनाम् ।
संन्यासिनां विरक्तानां ज्ञानिनां वशगात्मनाम् ॥२॥
दानिना चैव दान्ताना त्रयाणां सत्यवादिनाम् ।
अलुब्धानां सयोगानां श्रुति स्मृतिविदां द्विजा: ॥३॥
श्रौतस्मार्ताविरुद्धानां प्रसीदति महेश्वर: ।
सद्विति ब्रह्मणः शब्दस्तदंते ये समंततु ॥४॥
सायुज्यं ब्रह्मणो यांति तेन संत: प्रचक्षते ।
दशात्मके ये विषये साधने चाष्टलक्षणे ॥५॥

न क्रुध्यंति न हृष्यंति जितात्मानस्तु ते स्मृताः ।
सामान्येषु च द्रव्येषु तथा वैशेषिकेषु च ॥६॥
ब्रह्मक्षत्रविशो यस्माद्युक्तास्तस्माद्द्विजातयः ।
वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गादिसुखकारिणः ॥७॥

सूतजी ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! जो सत्यपुरुष हैं और अपने आपको संयम में रखने वाले हैं तथा साक्षात् द्विजाति हैं, धर्म के ज्ञान रखने वाले, साधु, आचार्य और शिव की आत्मा होते हैं उन पर भवगात् शिव प्रसन्न हुआ करते हैं ।।१।। जो परम दया वाले हैं, तपस्वी हैं, सन्यासी, विरक्त और आत्मा को वश मे रखने वाले ज्ञानी पुरुष होते हैं उन्ही पर भगवान् महेश्वर प्रसन्न होते हैं ।।२।। जो दानी, अति-दान, सत्य भाषण करने वाले, सयोगो के लुब्धक नही हैं और श्रुति तथा स्मृतियो के ज्ञाता पुरुष होते हैं और श्रौत तथा समार्त धामो मे कोई भी विरोध नही करते हैं उन पर प्रभु शिव अपनी प्रसन्नता किया करते हैं । सत्, यह ब्रह्म का वाचक शब्द है उसके अन्त मे ये लोग प्राप्त हो जाते हैं ।।३।।४।। वे ब्रह्म के सायुज्य को प्राप्त कर लेते हैं इसी से सन्त कहे जाते हैं । दश इन्द्रियो के द्वारा साध्य विषयो मे और आठ प्रकार के पहिले बताये हुए ऐश्वर्यों मे वे लोग कभी भी हर्ष और क्रोध नही किया करते हैं । इसीलिए ये लोग जितात्मा कहे जाते हैं । सामान्य द्रव्यो मे तथा विशेष द्रव्यो मे भी उनका अपनी आत्मा को जीत लेने वाले पुरुषो का कोई आकर्षण या विकर्षण नही हुआ करता है ।।५।।६।। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के धर्मों मे युक्त हैं अतएव वे द्विजाति कहे जाते हैं । वर्णों और आश्रमों मे जो युक्त होता है उसको ही स्वर्ग आदि सुख करने वाले होते हैं ।।७।।

श्रौतस्मार्तस्य धर्मस्य ज्ञानाद्धमर्ज्ञ उच्यते ।
विद्यायाः साधनात्साधुर्ब्रह्मचारी गुरोर्हितः ॥८॥
क्रियाणा साधनाच्चैव गृहस्थः साधुरुच्यते ।
साधनात्तपसोऽरण्ये साधुर्वैखानसः स्मृतः ॥९॥

यतमानो यतिः साधुः स्मृता यागस्य साधनात् ।
एवमाश्रमधर्माणां साधनात्साधवः स्मृताः ॥१०
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
धर्माधर्माविह प्रोक्तौ शब्दावेतौ क्रियात्मकौ ॥११
कुशलाकुशलं कर्म धर्माधर्माविति स्मृतौ ।
धारणार्थे महान् ह्येष धर्मशब्द प्रकीर्तित. ॥१२॥
अधारणे महत्त्वे च अधर्म इति चोच्यते ।
अनेष्टप्रापको धर्म आचार्यैरुपादिश्यते ॥१३॥
अधर्मश्चानिष्टफलो ह्याचार्यैरुपदिश्यते ।
वृद्धाश्चालोलुपाश्चैव आत्मवंतो ह्यदाम्भिकाः ॥१४॥
सम्यग्विनीता ऋजवस्तानाचार्यान्प्रचक्षते ।
स्वयमाचरते यस्मादाचारे स्थाप यत्यपि ॥१५॥

श्रुति द्वारा प्रतिपादित और स्मृतियों के द्वारा प्रतिपादित धर्म के पूर्ण ज्ञान होने से पुरुष धर्मज्ञ कहा जाता है । विद्या की साधना से साधु होता है और गुरु का हित करने के कारण ब्रह्मचारी कहा जाता है ।।८।। क्रियाओं के साधन करने से गृहस्थ भी साधु कहा जाता है । अरण्य में तप की साधना करने के कारण वैखानस (सन्यासी) साधु कहा गया है ।।९।। योग के साधन करने से यत्न करने वाला यति साधु कहा गया है । इस प्रकार से अपने-अपने आश्रमों के धर्मों का साधन करने ही के कारण सब साधु कहे गये हैं ।।१०।। गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और यति ये चार आश्रम होते हैं । ये आश्रमों के वाचक शब्द क्रियात्मक होते हैं और इनके द्वारा यहाँ पर धर्म एवं अधर्म कह दिया गया है ।।११।। कुशल अर्थात् कल्याण कारक और अकुशल कर्म ही धर्म और अधर्म कहे गये हैं । लौकिक और पारलौकिक कल्याण सम्पादन करने के लिये जिसे अर्थात् जिस साधन को धारण किया जाता है वही धारण के अर्थ में यह महान् धर्म शब्द कहा गया है ।।१२।। जिसका कोई महत्व नहीं होता है और अकल्याण कर होने से जिसे धारण नहीं

किया जाता है उसे ही अधर्म कहा जाता है। यहां पर जो अभीष्ट को प्राप्त कराने वाला होता है उसी को आचार्यों ने धर्म कह कर उपदिष्ट किया है ॥१३॥ जो अनिष्ट फल को प्रदान किया करता है उसे ही आचार्यों के द्वारा अधर्म कहा जाता है। जो वृद्ध, अलोलुप, आत्मवान् और दम्भ से रहित होते हैं तथा भली-भाँति विनयशील हैं एवं अति सरल होते हैं वे आचार्य कहे जाते हैं। ये स्वयं भी वैसा ही धर्मानुकूल आचरण किया करते हैं और अन्य समस्त लोगों को भी धर्म के साधनों मे स्थापित किया करते हैं ॥१४॥१५॥

आचिनोति च शास्त्रार्थनाचार्यस्तेन चोच्यते।
विज्ञेयं श्रवणाच्छ्रौतं स्मरणात्स्मार्तमुच्यते ॥१६॥
इज्या वेदात्मकं श्रौतं स्मार्तं वर्णाश्रमात्मकम्।
दृष्ट्वानुरूपमर्थं यः पृष्टो नैवापि गूहति ॥१७॥
यथादृष्टप्रवादस्तु सत्यं लैंगेऽत्र पठ्यते।
ब्रह्मचर्यं तथा मौनं निराहारत्वमेव च ॥१८॥
अहिंसा सर्वतः शान्तिस्तप इत्यभिधीयते।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हितायाहिताय च ॥१९॥
वर्तते त्वसकृद्वृत्ति कृत्स्ना ह्येषा दया स्मृता।
यद्यदिष्टतमं द्रव्यं न्यायेनैवागतं क्रमात् ॥२०॥
तत्तद्गुणवते देयं दातुस्तद्दानलक्षणम्।
दानं त्रिविधमित्येतत्कनिष्ठज्येष्ठमध्यमम् ॥२१॥

जो शास्त्रों के अर्थों का सब ओर से चयन करता है वह आचार्य कहा जाता है। श्रवण करने से श्रौत और स्मरण से स्मार्त कहा जाया करता है ॥१६॥ इज्या वेदात्मक श्रौत होता है और वर्णाश्रम के स्वरूप वाला स्मार्त होता है। जो पूछा गया अनुरूप योग्य अर्थ को देख कर भी नही छिपाता है ॥१७॥ यथादृष्ट प्रवाद जो सत्य है वही इस लिङ्ग पुराण मे पढा जाता है। ब्रह्मचर्य व्रत का परिपालन-न व्रत का धारण और निराहार रहना ये तीनो कार्य तप कहे जाते

हैं ॥१८॥ इनके अतिरिक्त अहिंसा व्रत का पालन और सभी प्रकार से शान्ति धारण करना भी तप इस नाम से कहे जाया करते हैं। अपनी आत्मा के समान की समस्त प्राणियों मे उनके हित अहित के लिए बरताव करता है और असकृत् वृत्ति वाला होता है यह समस्त दया कही गई है। जो-जो अत्यन्त अभीष्ट द्रव्य क्रम से न्याय के द्वारा आया है, वही-वही किसी गुण गण गरिष्ठ व्यक्ति को जो कि उसका समुचित पात्र हो देना चाहिए—यही दाता के दान का लक्षण होता है। इस प्रकार से दान कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ के नाम वाला तीन प्रकार का होता है ॥१९॥२०॥२१॥

कारुण्यात्सर्वभूतेभ्यः संविभागस्तु मध्यमः।
श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मकः ॥२२॥
शिष्टाचाराविरुद्धश्च स धर्मः साधुरुच्यते।
मायाकर्मफलत्यागी शिवात्मा परि कीर्तितः ॥२३॥
निवृत्तः सर्वसंगेभ्यो युक्तो योगी प्रकीर्तितः।
असक्तो भयतो यस्तु विषयेषु विचार्य च ॥२४॥
अलुब्धः संयमी प्रोक्तः प्रार्थितोपि समंततः।
आत्मार्थं वा परार्थं वा इंद्रियाणीह यस्य वै ॥२५॥
न मिथ्या संप्रवर्तंते शमस्यैव तु लक्षणम्।
अनुद्विग्नो ह्यनिष्टेषु तथेष्टानाभिनंदति ॥२६॥
प्रीतितापविषादेभ्यो विनिवृत्तिर्विरक्तता।
संन्यासः कर्मणा न्यासः कृतानामकृतैः सह ॥२७॥
कुशलाकुशलानां तु प्रहाणं न्यास उच्यते।
अव्यक्ताद्यविशेषान्ते विकारेऽस्मिन्नचेतने ॥२८॥

कारुण्य के कारण समस्त प्राणियों के लिये समान रूप से विभाग कर देना मध्यम होता है। श्रुति और स्मृतियों के द्वारा जो विहित धर्म होता है वह वर्णों आश्रमों के स्वरूप वाला होता है ॥२२॥ जो धर्म शिष्टों के आचार से अविरुद्ध होता है वही साधु धर्म कहा जाता

है। इससे अन्य कनिष्ठ होता है। मायामय कर्मों के फल को त्यागने वाला शिव की आत्मा कहा गया है ॥२३॥ समस्त सङ्गों से निवृत्त होने वाला युक्त योगी कहा गया है। जो जन्म-मृत्यु के भय से सबकी अनित्यता का विमर्श करके विषयों मे आसक्ति नही करता है वह अलुब्ध सयमी पुरुष बताया गया है। सभी ओर से प्रार्थना किया हुआ भी अपने लिये परार्थ जिसकी इन्द्रियाँ मिथ्या प्रवृत्त नही होती हैं उसके दाम का यही लक्षण होता है। अनिष्ट फलों के सामने आने पर भी उद्विग्नता से रहित रहता है तथा अभीष्ट फलों का जो कभी हर्षातिरेक पूर्वक अभिनन्दन नही करता है और प्रीति, ताप तथा विषादों से जिसकी विशेषरूप से निवृत्ति रहा करती है उसे ही विरक्त कहा जाता है। कृत कर्मों का अकृत कर्मों के साथ जो न्यास अर्थात् त्याग होता है वह सन्यास कहा जाता है ॥२४॥२५॥२६॥२७॥ कुशल और अकुशलों के प्रहाण को ही न्यास कहा जाया करता है ॥२८॥

चेतनाचेतनान्यत्व विज्ञान ज्ञानमुच्यते।
एव तु ज्ञानयुक्तस्य श्रद्धायुक्तस्य शङ्कर ॥२९॥
प्रसीदति न सदेहो धर्मश्चाय द्विजोत्तमा।
किं तु गुह्यतम वक्ष्ये सर्वत्र परमेश्वरे ॥३०॥
भवे भक्तिर्न सदेहस्तया युक्तो विमुच्यते।
अयोग्यस्यापि भगवान् भक्तस्य परमेश्वर ॥३१॥
प्रसीदति न सदेहो निगृह्य विविध तम।
ज्ञानमध्यापन होमो ध्यान यज्ञस्तप श्रुतम् ॥३२॥
दानमध्ययन सर्व भवभक्त्यै न सशय।
चान्द्रायणसहस्रैश्च प्राजापत्यशतैस्तथा ॥३३॥
मासोपवासैश्चान्यैर्वा भक्तिमुं निवरोत्तमा।
अभक्ता भगवत्यस्मिँल्लोके गिरिगुहाशये ॥३४॥
पतति चात्मभोगार्थं भक्तो भावेन मुच्यते।
भक्ताना दर्शनादेव नृणा स्वर्गादयो द्विजा ॥३५॥

अव्यक्त से आदि लेकर विशेषान्त तक इस अचेतन विकार मे चेतन और अचेतन के अन्यत्व का जो विशेष ज्ञान होता है उसको ज्ञान कहा जाता है । इस प्रकार के ज्ञान से जो युक्त होना है और श्रद्धा से पूर्ण होता है उसी पर भगवान् शङ्कर प्रसन्न हुआ करते है—इसमे कुछ भी सन्देह नही है । हे द्विजगण ! यही धर्म है । अब मैं अतिशय गोपनीय विषय कहता हू कि समस्त प्राणियो मे भक्ति अर्थात् समस्त प्राणियो की सेवा परमेश्वर शिव मे भक्ति होती है । इस प्रकार की भक्ति से युक्त विमुक्त हो जाया करता है इसमे सन्देह नही है। भगवान् शिव का कोई भक्त अयोग्य भी होता है तो भी उसके अनेक प्रकार के तम का निग्रह करके परमेश्वर उस पर प्रसन्न होते है—इसमे सन्देह नही है ॥२९॥३०॥३१॥ ज्ञान, अध्यापन, होम ध्यान, यज्ञ, तप, श्रुत, दान, अध्ययन सब भव की भक्ति के लिये ही होते हैं—इसमे कुछ भी सशय नही है। सहस्रो चान्द्रायण व्रतो से, सैकडो प्राजापत्य व्रतो से और अन्य मासो के उपवासो से हे मुनिवरो मे श्रेष्ठ गण ! भव मे भक्ति हुआ करती है। जो इस लोक मे भगवान् के अभक्त होते हैं वे आत्म भोग के लिये गिरि की गुहा के समान गम्भीर ससार मे ससरण किया करते हैं और जो भगवान् भव का भक्त होता है वह अपने दृढ निश्चयात्मक भाव के द्वारा मुक्त हो जाया करता है । भक्तो के दर्शन मात्र से ही मानवो को स्वर्गादि उत्तम स्थानो की प्राप्ति हो जाया करती है ॥३२॥३३॥३४॥ ॥३५॥

न दुर्लभा न सन्देहो भक्ताना किं पुनस्तथा ।
ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राणा तथान्येषामपि स्थिति ॥३६॥
भक्त्या एव मुनीना च वलसौभाग्यमेव च ।
भवेन च तथा प्रोक्त सप्रेक्ष्योमा पिनाकिना ॥३७॥
देव्यै देवेन मधुर वाराणस्या पुरा द्विजा. ।
अविमुक्ते समासीना रुद्रेण परमात्मना ॥३८॥

रुद्राणी रुद्रमाहेदं लब्ध्वा वाराणसीं पुरीम् ।
केन वश्यो महादेव पूज्यो दृश्यस्त्वमीश्वरः ॥३९॥
तपसा विद्यया वापि योगेनेह वद प्रभो ।
निशम्य वचनं तस्यास्तथा ह्यालोक्य पार्वतीम् ॥४०॥
आह बालेंदुतिलकः पूर्णेन्दुवदनां हसन् ।
स्मृत्वाथ मेनया पत्न्या गिरेर्गां कथितां पुरा ॥४१॥
चिरकालस्थितिं प्रेक्ष्य गिरौ देव्या महात्मनः ।
देवि लब्धा पुरी रम्या त्वया यत्प्रष्टुमर्हसि ॥४२॥

भव के भक्तो के दर्शन से स्वर्गादि की प्राप्ति का कुछ भी दुर्लभ नही होता है—इसमे कोई भी सन्देह नही है तो फिर भक्तो का तो कहना ही क्या है। भक्ति से ही ब्रह्मा, विष्णु और सुरेन्द्रों की तथा अन्य देवो की स्थिति हुआ करती है। मुनिगो का बल और सौभाग्य भी भक्ति के द्वारा ही हुआ करता है। पिना की भव ने उमा का सम्प्रोक्षण करके इसी प्रकार से कहा था ॥३६॥३७॥ हे द्विजगण ! पहिले देवी जगदम्बा से वाराणसी में देव ने मधुरता पूर्वक कहा था। परमात्मा रुद्र के साथ अवियुक्त पर आसीन रुद्राणी ने वाराणसी पुरी को प्राप्त करके भगवान् रुद्र से कहा था। श्री जगम्बा देवी ने कहा—हे महादेव ! आप तो ईश्वर हैं कृपा करके यह बताइये कि किस-किस साधन से आप पूज्य दृश्य और वश्य होते हैं ? ॥३८॥३९॥ हे प्रभो ! आप यह बतलाइये कि तप, विद्या अथवा योग इनमे से किससे आपकी वश्यता होती है ? सूत जी ने कहा—उसका यह वचन श्रवण करके और पार्वती को देखकर गिरिराज हिमालय की पत्नी मेनका के द्वारा पहिले कही हुई भूमि का स्मरण करके पूर्णचन्द्र के सामन मुख वाली पार्वती से हँसते हुए बालेन्दुतिलक शिव ने कहा— ॥४०॥४१॥ महान् आत्मा वाले गिरिराज की देवी गिरि मे चिर काल पर्यन्त स्थिति को देखकर हे देवि ! तुमने परम रम्य पुरी प्राप्त करली है जिसको तुम पूछने के योग्य होती हो ॥४२॥

स्थानार्थं कथितं मात्रा विस्मृ तेह विलासिनि ।
पुरा पितामहेनापि पृष्टः प्रश्नवत्तां वरे ॥४३॥
यथा त्वयाद्य वै पृष्टो द्रष्टुं ब्रह्मात्मकं त्वहम् ।
श्वेते श्वेतेन वर्णेन दृष्ट्वा कल्पे तु मां शुभे ॥४४॥

सद्योजातं तथा रक्ते रक्तं वामं पितामहः ।
पीते तत्पुरुषं पीतमघोरे कृष्णमीश्वरम् ॥४५॥
ईशानं विश्वरूपाख्यो विश्वरूपं तदाह माम् ॥४६॥

वाम तत्पुरुषाघोर सद्योजात महेश्वर ।
दृष्टो मया त्वं गायत्र्या देवदेव महेश्वर ।
केन वश्यो महादेव ध्येयः कुत्र घृणानिधे ॥४७॥

दृश्यः पूज्यस्तथा देव्या वक्तुमर्हसि शङ्कर ।
अवोचं श्रद्धयैवेति वश्यो वारिजसंभव ॥४८॥
ध्येयो लिंगे त्वया दृष्टे विष्णुना पयसां निधौ ।
पूज्यः पञ्चास्यरूपेण पवित्रै· पञ्चभि द्विजैः ॥४९॥

हे विलासिनि ! स्थान के लिए अर्थात् स्थान के निर्माण करने के लिए आपकी माता ने जो कहा था क्या इस समय पर यहा तुम उसे भूल गई हो ? हे प्रश्न करने वालो मे परम श्रेष्ठे ! पहिले पितामह के द्वारा भी पूछा गया था ॥४३॥ जिस प्रकार से ब्रह्मात्मक मुझे देखने के लिए आज तुमने मुझ से पूछा है। श्वेत कल्प मे हे शुभे ! श्वेत वर्ण से युक्त मुझको देखकर पितामह ने उसी प्रकार से रक्त मे सद्योजात रक्त वाम, पीत मे पीत तत्पुरुष और अघोर मे कृष्ण ईश्वर को देखकर विश्वरूपाख्य ने विश्वरूप ईशान मुझसे उस समय मे कहा था ॥४४॥ ॥४५॥॥४६॥ पितामह ने कहा—हे वाम ! हे तत्पुरुष ! आप तो अघोर हैं—सद्योजात और महेश्वर हैं। हे देवो के देव !· हे महेश्वर ! मैंने आपको गायत्री से देखा है। आप किसके द्वारा वश्य होते हैं और कृपा

की खान । आप किस स्थान पर ध्यान करने के योग्य है ? ।।४७।। हे शङ्कर ! देवी के द्वारा दृश्य और पूज्य होते हैं वह आप कहने के योग्य हैं । श्री भगवान् ने कहा—हे वारिज (कमल) से उत्पन्न होने वाले ! मैं केवल श्रद्धा से ही वश्य एवं दृश्य होता हू—ऐसा मैं बोला था ।।४८।। पयोनिधि मे विष्णु के द्वारा दृष्ट लिङ्ग में तेरे द्वारा द्वारा ध्येय हू । पश्चात्य रूप से पाँच पवित्र सद्योजातादि मन्त्रो के द्वारा द्विजो से मैं पूजा के योग्य होता हू ।।४६।।

भवभक्त्याद्य दृष्टोहं त्वयांडज जगद्गुरो ।
सोपि मामाह भावार्थं दत्त तस्मै मया पुरा ।।५०।।
भावं भावेन देवेशि दृष्टवान्मा त्हृदीश्वरम् ।
तस्मात्तु श्रद्धया वश्यो दृश्यः श्रेष्ठगिरेः सुते ।।५१।।
पूज्यो लिंगे न संदेहः सर्वदा श्रद्धया द्विजैः ।
श्रद्धा धर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धा ज्ञानं हुत तपः ।।५२।।
श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च दृश्योहं श्रद्धया सदा ।।५३।।

हे जगत् गुरु अण्डज ! आज आपने भव की भक्ति के द्वारा ही मुझे देखा है । वह भी भाव के लिए मुझसे बोला जोकि मैंने पहिले उसको दिया था ।।५०।। हे देवेशि ! भाव से भावस्वरूप हृदीश्वर मुझको देखा था । इससे हे श्रेष्ठ गिरि की पुत्रि ! मैं श्रद्धा के द्वारा ही वश्य और दर्शन के योग्य होता हूँ ।।५१।। द्विजो के द्वारा सर्वदा श्रद्धा के भाव से लिङ्ग मे मैं पूज्य हू—इसमे कुछ भी सन्देह नही है । श्रद्धा पर एव सूक्ष्म धर्म है और श्रद्धा ही ज्ञान, हुन और तप है । श्रद्धा ही स्वर्ग है और मोक्ष है । मैं सदा श्रद्धा के द्वारा ही दर्शन के योग्य होता हूँ अर्थात् श्रद्धा के भाव से ही लोग मेरा दर्शन प्राप्त कर सकते है अन्य किसी भी प्रकार से मैं दृश्य नही होता हूँ ।।५२।।५३।।

॥ तत्पुरुष गायत्री उद्भव ॥

एकत्रिंशत्तमः कल्पः पीतवासा इति स्मृतः ।
ब्रह्मा यत्र महाभागः पीतवासा बभूव ह ॥१॥
ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारः पीतवस्त्रस्रक् ॥२॥
पीतगंधानुलिप्ताङ्गः पीतमाल्यावरो युवा ।
हेमयज्ञोपवीतश्च पीतोष्णीषो महाभुजः ॥३॥
त दृष्ट्वा ध्यानसंयुक्तो ब्रह्मा लोकमहेश्वरम् ।
मनसा लोकधातारं प्रपेदे शरणं विभुम् ॥४॥
ततो ध्यानगतस्तत्र ब्रह्मा माहेश्वरी वराम् ।
गां विश्वरूपां ददृशे महेश्वरमुखाच्च्युताम् ॥५॥
चतुष्पदां चतुर्वक्त्रां चतुर्हस्तां चतुःस्तनीम् ।
चतुर्नेत्रां चतुः शृङ्गी चतुर्दंष्ट्रां चतुर्मुखीम् ॥६॥
द्वात्रिंशद्गुणसंयुक्तामी श्वरी सर्वतोमुखाम् ।
स तां दृष्ट्वा महातेजा महादेवी महेश्वरीम् ॥७॥
पुनराह महादेवः सर्वदेवनमस्कृतः ।
मतिः स्मृतिर्बुद्धिरिति गायमानः पुनः पुनः ॥८॥

सूत जी ने कहा—इकतीसवाँ कल्प पीत वासा इस नाम से कहा गया है जिसमे महाभाग पीता वासा हुए थे ॥१॥ परमेष्ठी ब्रह्मा जिस समय पुत्र की कामना से ध्यान मग्न हो रहे थे उस समय पीत वस्त्र धारण करने वाले महान् तेजस्वी एक कुमार प्रादुर्भूत हुआ था ॥२॥ वह कुमार पीलगन्ध से अनुलिप्त अङ्गो वाला था और वह युवा पीत माल्यो से तथा पीत वस्त्रो से सुशोभित था। वह महान् भुजाओ वाला पीत उष्णीष (शिरोवेष्टन-पगडी) वाला और सुवर्ण का यज्ञोपवीत धारण किये हुए था ॥३॥ ध्यान मे सयुक्त ब्रह्मा ने लोक महेश्वर उसको देखकर लोको के धाता विभु की मन के द्वारा धारण ग्रहण की थी

॥४॥ इसके अनन्तर ध्यान में मग्न ब्रह्मा जी ने महेश्वर के मुख से च्युत, परम श्रेष्ठ, विश्वरूप वाली माहेश्वरी गौ को देखा था ॥५॥ उस गौ के चार पैर थे, वह चार मुखों वाली थी, चार हस्त वाली, चार स्तनों से युक्त, चार नेत्रों से सम्पन्न, चार शृङ्ग वाली, चार दाढ़ों वाली और वह चतुर्मुखी थी ॥६॥ वह बत्तीस गुणों से समन्वित, सर्वतोमुख और ईश्वरी थी। महान् तेज वाले उसने महादेवी महेश्वरी उसको देख कर समस्त देवों के द्वारा वन्द्यमान महादेव मति-स्मृति और बुद्धि यह गान करते हुए पुनः बोले— ॥७॥८॥

एह्येहीति महादेवि सातिष्ठत्प्रांजलिर्विभुम् ।
विश्वमावृत्य योगेन जगत्सर्वं वशीकुरु ॥९॥
अथ तामाह देवेशो रुद्राणी त्वं भविष्यसि ।
ब्राह्मणानां हितार्थाय परमार्था भविष्यसि ॥१०॥
तथैनां पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः ।
प्रददौ देवदेवेशः चतुष्पादां जगद्गुरुः ॥११॥
ततस्तां ध्यानयोगेन विदित्वा परमेश्वरीम् ।
ब्रह्मा लोकगुरोः सोथ प्रतिपेदे महेश्वरीम् ॥१२॥
गायत्री तु ततो रौद्री ध्यात्वा ब्रह्मानुयंत्रितः ।
इत्येतां वैदिकीं विद्यां रौद्रीं गायत्रिमीरिताम् ॥१३॥
जपित्वा तु महादेवीं ब्रह्मा लोकनमस्कृताम् ।
प्रपन्नस्तु महादेवं ध्यानयुक्तेन चेतसा ॥१४॥

करके उस ब्रह्मा ने लोक गुरु से महेश्वरी को प्राप्त कर लिया था ॥१२॥ इसके उपरान्त अनुयन्त्रित, ब्रह्मा ने रौद्री गायत्री का ध्यान करके इस गायत्री के नाम से कथित वैदिकी रौद्री विद्या को जो समस्त लोकों के द्वारा नमस्कृत महादेवी थी ब्रह्मा ने जाप किया था और फिर ध्यान युक्त चित्त से महादेव की शरण में प्राप्त हुए थे ॥१३॥१४॥

ततस्तस्य महादेवो दिव्ययोगं बहुश्रुतम् ।
ऐश्वर्यं ज्ञानसंपत्तिं वैराग्य च ददौ प्रभुः ॥१५॥
ततोस्य पार्श्वतो दिव्याः प्रादुर्भूताः कुमारकाः ।
पीतमाल्यांबरधराः पीतस्रग नुलेपनाः ॥१६॥
पीताभोष्णीपशिरसः पीतास्याः पीतमूर्धजाः ।
ततो वर्षसहस्रात उपित्वा विमलौजसः ॥१७॥
योगात्मानस्त पोह्लादाः ब्राह्मणानां हितैषिणः ।
धर्मयोगवलोपेता मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् ॥१८॥
उपदिश्य महायोग प्रविष्टास्ते महेश्वरम् ।
एव मेतेन विधिना ये प्रपन्ना महेश्वरम् ॥१९॥
अन्येपि नियतात्मानो ध्यानयुक्ता जितेंद्रियाः ।
ते सर्वे पापमुत्सृज्य विमला ब्रह्मवर्चसः ॥२०॥
प्रविशन्ति महादेव रुद्रं ते त्वपुनर्भवाः ॥२१॥

इसके अनन्तर प्रभु महादेव ने उनको बहुश्रुत, दिव्य, योग, ऐश्वर्य, ज्ञान, सम्पत्ति और वैराग्य प्रदान किया था ॥१५॥ इसके अनन्तर इसके पार्श्व भाग से परम दिव्य कुमारों का प्रादुर्भाव हुआ था जो कि पीत मालायें और पीत वस्त्र धारण करने वाले पीतस्रगनुलेपन से समन्वित थे ॥१६॥ उनके सिर पर पीत ही उष्णीष थे, पीत ही उनके मुख थे और पीत वर्ण के ही उनके केश थे। इसके उपरान्त उनके एक सहस्र वर्ष पर्यन्त वहाँ रह कर योगात्मा, तपस्या विमल ओज वाले थे एव सहस्र वर्ष पर्यन्त वहाँ रह कर योगात्मा, तपस्या के आह्लाद वाले, ब्राह्मणों के हित चाहने वाले, दीर्घ सत्री मुनियों के धर्म और योग के बल से युक्त थे महायोग का उपदेश देकर महेश्वर में

प्रविष्ट हो गये थे। इस प्रकार से इस विधि के द्वारा वे महेश्वर को प्रपन्न हो गये थे ॥१७॥१८॥१६॥ इसी प्रकार से अन्य भी नियत आत्मा वाले, ध्यान से युक्त और जितेन्द्रिय हैं वे सब पापों का उत्सर्जन करके विमल वर्चस वाले होकर अपुनत्व होते हुए महादेव रुद्र के स्वरूप मे प्रवेश किया करते हैं ॥२०॥२१॥

॥ अघोरोत्पत्ति वर्णन ॥

ततस्तस्मिन्गते कल्पे पीतवर्णे स्वयंभुवः।
पुनरन्यः प्रवृत्तस्तु कल्पो नाम्नाऽसितस्तु सः ॥१॥
एकार्णवे तदा वृत्ते द्विव्ये वर्षसहस्रके।
स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिंतयामास दुःखितः ।२॥
तस्य चिंतयमानस्य पुत्रकामस्य वै प्रभोः।
कृष्णः समभव द्विर्णो ध्यायतः परमेष्ठिनः ॥३॥
अथापश्यन्महातेजाः प्रादुर्भूतं कुमारकम्।
कृष्णवर्णं महावीर्यं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥४॥
कृष्णांबरधरोष्णीष कृष्णयज्ञोपवीतिनम्।
कृष्णेन मौलिना युक्तं कृष्णस्रगनुलेपनम् ॥५॥
स तं दृष्ट्वा महात्मानमघोरं घोरविक्रमम्।
ववंदे देवदेवेशमद्भुतं कृष्णपिंगलम् ॥६॥
प्राणायामपरः श्रीमान् हृदि कृत्वा महेश्वरम्।
मनसा ध्यानयुक्तेन प्रपन्नस्तुतमीश्वरम् ॥७॥

श्री सूत जी ने कहा—इसके अनन्तर स्वयम्भू के पीत वर्ण वाले कल्प के व्यतीत हो जाने पर फिर अन्य कल्प प्रवृत्त हुआ था जिसका नाम असित कल्प था ॥१॥ जिस समय दिव्य एक सहस्र वर्ष तक एक ही अर्णव हो गया था तो उस समय सृष्टि की इच्छा रखने वाले ब्रह्मा

ने अत्यन्त दु खित होकर चिन्तन किया था ।।२।। पुत्रो की कामना रख कर चिन्तन करने वाले उस प्रभु का जो कि परमेष्ठी ध्यान कर रहे थे उनका कृष्ण वर्ण हो गया था ।।३।। इसके अनन्तर महान् तेज वाले ने प्रादुर्भूत हुए एक कुमार को देखा था जिसका कृष्ण तो वर्ण था, वह महान् वीर्य वाला था और अपने परमाद्भुत तेज से दीप्यमान हो रहा था ।।४।। उस कुमार के मस्तक पर कृष्ण वर्ण का उष्णीष था, कृष्ण वर्ण का ही यज्ञोपवीत धारण किए हुए था, वह कृष्ण मौलि से युक्त था और कृष्णस्रक् तथा अनुलेपन भी उसका कृष्ण ही था ।।५।। उस महान् आत्मा वाले, अघोर, घोर विक्रम से युक्त को देखकर उसने देवदेवेश अद्भुत कृष्ण पिङ्गल को नमस्कार किया था ।।६।। प्राणायाम मे तत्पर होकर श्रीमान् ने हृदय मे महेश्वर का ध्यान किया और ध्यान से युक्त मन के द्वारा उस ईश्वर की शरण मे प्राप्त हुआ था ।।७।।

अघोरं तु ततो ब्रह्मा ब्रह्मरूपं व्यचिंतयत् ।
तथा वै ध्यायमानस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।।८।।
प्रददौ दर्शनं देवो ह्यघोरो घोरविक्रमः ।
अथास्य पार्श्वतः कृष्णाः कृष्णस्रगनुलेपनाः ।।९।।
चत्वारस्तु महात्मानः संबभूवुः कुमारकाः ।
कृष्णाः कृष्णशिखश्चैव कृष्णास्यः कृष्णवस्त्रधृक् ।।१०।।
ततो वर्षसहस्रं तु योगतः परमेश्वरम् ।
उपासित्वा महायोगं शिष्येभ्यः प्रददुः पुनः ।।११।।
योगेन योगसंपन्नाः प्रविश्य मनसा शिवम् ।
अमलं निर्गुणं स्थानं प्रविष्टा विश्वमीश्वरम् ।।१२।।
एवमेतेन योगेन येपि चान्ये मनीषिणः ।
चिंतयंति महादेवं गंतारो रुद्रमव्ययम् ।।१३।।
ततस्तस्मिन् गते कल्पे कृष्णवर्णे भयानके ।
तुष्टाव देवदेवेशं ब्रह्मा तं ब्रह्मरूपिणम् ।।१४।।

अनुगृह्य ततस्तुष्टो ब्रह्माण मवदद्धरः।
अनेनैव तु रूपेण संहरामि न संशयः ॥१५॥

इसके अनन्तर ब्रह्मा ने अघोर ब्रह्म रूप का विशेष रूप से चिन्तन किया था और इस रीति से ध्यान करने वाले परमेष्ठी ब्रह्माजी को घोर विक्रम वाले अघोर देव ने दर्शन दिया था। इसके पश्चात् ब्रह्मा के पार्श्व से कृष्ण स्रक् और अनुलेपन वाले तथा कृष्ण वर्ण से युक्त महान् आत्मा वाले चार कुमार उत्पन्न हुए थे वे सब कृष्ण थे, कृष्ण शिखा वाले थे, कृष्ण मुख से युक्त और कृष्ण वस्त्र धारी थे ॥८॥९॥ ॥१०॥ एक सहस्र वर्ष तक वहां रह कर योग से परमेश्वर की उपासना करके फिर शिष्यों को महायोग दे दिया था ॥११॥ योग के द्वारा योग से सम्पन्न उन्होंने मन के द्वारा शिव मे प्रवेश करके अमल और निर्गुण स्थान विश्व ईश्वर में प्रविष्ट हो गये थे ॥१२॥ इस प्रकार से योग के द्वारा अन्य मनीषी लोग भी महादेव का चिन्तन करते हुए अव्यय रुद्र के निकट गमन किया करते हैं ॥१३॥ इसके अनन्तर भयानक कृष्ण वर्ण वाले कल्प के जाने पर ब्रह्मा जी ने ब्रह्मरूपी उस देवों के देवकी स्तुति की थी। इसके उपरान्त वह तुष्ट होकर अनुग्रह से युक्त हो गये और ब्रह्मा से बोले कि मैं इसी स्वरूप से सबका संहार किया करता हूं— इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१४॥१५॥

ब्रह्महत्यादिकान् घोरास्तथान्यानपि पातकान्।
हीनाश्चैव महाभाग तथैव विविधान्यपि ॥१६॥
उपपातकमप्येवं तथा पापानि सुव्रत।
मानसानि सुतीक्ष्णानि वाचिकानि पितामह ॥१७॥
कायिकानि सुमिश्राणि तथा प्रासंगिकानि च।
बुद्धिपूर्वं कृतान्येव सहजागतुकानि च ॥१८॥
मातृदेहोत्थितान्येवं पितृदेहे च पातकम्।
संहरामि न संदेहः सर्वं पातकजं विभो ॥१९॥

लक्ष जप्त्वा ह्यघोरेभ्यो ब्रह्महा मुच्यते प्रभो ।
तदर्धं वाचिके वत्स तदर्धं मानसे पुनः ॥२०॥

ब्रह्म हत्या आदि महाघोर तथा अन्य महापातकों का तथा हे महाभाग ! अन्य विविध प्रकार के पापों का और हीनो का मैं संहार करता हूँ ॥१६॥ हे सुव्रत ! इसी प्रकार से उपपातकों को तथा हे पितामह ! मानस पाप और सुतीक्ष्ण शारीरिक पापवाचिक पाप, सुमिश्र, प्रासङ्गिक पाप, बुद्धि पूर्वक किये हुए एवं सहज और आगन्तुक पापों को संहृत कर देता हूँ ॥१७॥१८॥ काल के देह में उत्थित पाप तथा पितृदेह मे होने वाले पाप का भी मैं संहार कर डालता हूं—इसमें सन्देह नहीं है । हे विभो ! समस्त पातकों से उत्पन्न होने वाले दोष को एक लक्ष जाप करके अघोरों से ब्रह्महा भी मुक्त हो जाता है । हे वत्स ! उससे आधा जप करके वाचिक पाप से और उसका आधा भी जप करके मानस पाप से छुटकारा पा जाया करता है ॥१९॥२०॥

ईशानोद्भव और पञ्च ब्रह्मात्मक स्तोत्र

अथान्यो ब्रह्मण. कल्पो वर्तते मुनिपुंगवा ।
विश्वरूप इति ख्यातो नामतः परमाद्भुतः ॥१॥
विनिवृत्ते तु संहारे पुन. सृष्टे चराचरे ।
ब्रह्मणः पुत्रकामस्य ध्यायत. परमेष्ठिनः ॥२॥
प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती ।
विश्वमाल्याम्बरधरा विश्वयज्ञोपवीतिनी ॥३॥
विश्वोष्णीषा विश्वगंधा विश्वमाता महोष्ठिका ।
तथाविधं स भगवानीशानं परमेश्वरम् ॥४॥

शुद्धस्फ टिकसंकाशं सर्वाभरणभूषितम् ।
अथ तं मनसा ध्यात्वा युक्तात्मा वै पितामहः ॥५॥
ववंदे देवमीशानं सर्वेश सर्वगं प्रभुम् ।
ओमीशान नमस्तेऽस्तु महादेव नमोस्तु ते ॥६॥
नमोस्तु सर्वविद्यानामीशान परमेश्वर ।
नमोस्तु सर्वभूतानामीशान वृषवा हन ॥७॥
ब्रह्मणोधिपते तुभ्यं ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे ।
नमो ब्रह्माधिपतये शिव मेऽस्तु सदाशिव ॥८॥
ओंकारमूर्ते देवेश सद्योजात नमोनमः ।
प्रपद्ये त्वा प्रपन्नोऽस्मि सद्योजाताय वै नमः ॥९॥

अब ईशवोद्भव पञ्च ब्रह्मात्मक स्तोत्र का वर्णन किया जाता है। सूत जी ने कहा—हे मुनि पुङ्गवो ! इसके अनन्तर अन्य ब्रह्मा का कल्प होता है। इसका विश्वरूप नाम प्रख्यात है और यह परम अद्भुत कल्प है ॥१॥ सृष्ट चराचर के संहार के विनिवृत्त हो जाने पर पुत्रों की कामना रखने वाले परमेष्ठी ब्रह्मा ध्यान कर रहे थे ॥२॥ उस समय महान् नाद वाली विश्वरूपा सरस्वती प्रादुर्भूत हुई थी। यह विश्व की माला और अवरी को धारण करने वाली थी तथा विश्व के ही उपवीत को धारण किये हुए थी ॥३॥ विश्व के उष्णीष वाली, विश्वगन्धा, विश्वमाता और महान् ओष्ठ वाली थी। उसने उस प्रकार के स्वरूप वाले भवानीशान परमेश्वर को जो शुद्ध स्फटिक मणि के सदृश और समस्त आभरणों से भूषित थे, युक्तात्मा पितामह ने मनके द्वारा ध्यान किया था और सबके स्वामी, सर्वत्र गमन करने वाले प्रभु देव की वन्दना की थी, हे ओमीशान ! आपको मेरा प्रणाम है। हे महादेव ! आपको मेरा नमस्कार है ॥४॥ ॥५॥६॥ हे समस्त विद्याओं को ईशान ! हे परमेश्वर ! आपको नमस्कार है। हे वृष वाहन ! समस्त प्राणियों के स्वामी आपको मेरा नमस्कार है ॥७॥ हे ब्रह्म के अधिपति ! ब्रह्मरूपी ब्रह्म आपको मेरा नमस्कार है।

ब्रह्म के अधिपति के लिए मेरा प्रणाम है। हे सदाशिव ! मेरा कल्याण होवे ।।८।। हे ओङ्कार मूर्ति वाले ! हे देवेश ! हे सद्योजात, आपके लिए मेरा बारम्बार नमस्कार है। मैं आपकी शरण मे आता हूं और मैं प्रपन्न हो गया हूं। सद्योजात आपके लिए नमस्कार है।।६।।

अभवे च भवे तुभ्यं तथा नातिभवे नमः।
भवोद्भव भवेशान मां भजस्व महाद्युते ।।१०।।
वामदेव नमस्तुभ्यं ज्येष्ठाय वरदाय च।
नमो रुद्राय कालाय कलनाय नमो नमः ।।११।।
नमो विक रणायैव कालवर्णाय वर्णिने।
बलाय बलिनां नित्यं सदा विकरणाय ते ।।१२।।
बलप्रमथनायैव बलिने ब्रह्मरूपिणे।
सर्वभूतेश्व रेशाय भूतानां दमनाय च।।१३।।
मनोन्मनाय देवाय नमस्तुभ्यं महाद्युते।
वामदेवाय वामाय नमस्तुभ्यं महात्मने ।।१४।।
ज्येष्ठाय चैव श्रेष्ठाय रुद्राय वरदाय च।
कालहन्त्रे नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं महात्मने ।।१५।।

अभव, भव और नातिभव मे आपके लिये मेरा नमस्कार है। हे भवोद्भव ! हे भवेशान ! हे महाद्युते ! मेरा भजन करें।।१०।। हे वामदेव ! ज्येष्ठ और वरद आपके लिये मेरा नमस्कार है। रुद्र, काल और कलन आपको बारम्बार नमस्कार है।।११।। विकरण, कालवर्ण और वर्णी, बलियों के बलस्वरूप तथा सदा विकरण रूप आपके लिए मेरा नित्य नमस्कार है।।१२।। बल के प्रमथन करने वाले, बली, ब्रह्मरूप वाले, समस्त भूतों के ईश्वर और भूतों के दमन करने वाले आपके लिए मेरा नमस्कार है।।१३।। हे महाद्युते ! मनोन्मन देव आपको मेरा नमस्कार है। वामदेव, वाम और महान् आत्मा वाले आपके लिए मेरा नमस्कार है

॥१४॥ ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, रुद्र और वरद, काल के हनन करने वाले महात्मा आपके लिए मेरा वारम्वार नमस्कार है ॥१५॥

इति स्तवेन देवेशं ननाम वृषभध्वजम् ।
यः पठेत् सकृदेवेह ब्रह्मलोकं गमिष्यति ॥१६॥
श्रावयेद्वा द्विजान् श्राद्धे स याति परमां गतिम् ।
एवं ध्यानगतं तत्र प्रणमंत पितामहम् ॥१७॥
उवाच भगवानीशः प्रीतोहं ते किमिच्छसि ।
ततस्तु प्रणतो भूत्वा वाग्विशुद्ध महेश्वरम् ॥१८॥
उवाच भगवान् रुद्र प्रीतं प्रीतेन चेतसा ।
यदिदं विश्वरूपं ते विश्वगौः श्रेयसीश्वरी ॥१९॥
एतद्वेदितुमिच्छामि यथेयं परमेश्वर ।
कैषा भगवती देवी चतुष्पादा चतुर्मुखी ॥२०॥
चतुःश्रृङ्गी चतुर्वक्का चतुर्दंष्ट्रा चतुस्तनी ।
चतुर्हस्ता चतुर्नेत्रा विश्वरूपा कथ स्मृता ॥२१॥

इस स्तव के द्वारा देवेश वृषभध्वज को ब्रह्मा ने प्रणाम किया था। जो इस स्तव का एक वार भी यहाँ पाठ कर लेगा वह ब्रह्मलोक को चला जायगा। अथवा श्रद्धा के भाव मे जो इसका द्विजो को श्रवण कराता है वह परमगति को प्राप्त किया करता है। इस प्रकार से ध्यान में स्थित पितामह को प्रणाम करते हुए देख कर भवानीश ने कहा कि मैं तुमसे परम प्रसन्न हूँ, बोल, तू अब क्या चाहता है ? इसके पश्चात् वाग्वि शुद्ध महेश्वर को ब्रह्मा ने प्रणाम किया था ॥१६॥१७॥ ॥१८॥ और फिर भगवान् ब्रह्मा ने प्रसन्न चित्त से युक्त परम प्रसन्न रुद्र से कहा कि यह जो आपका विश्वरूप है और श्रेय करने वाली यह विश्व गौ है। हे परमेश्वर ! मैं इसको जानना चाहता हूं कि जिस प्रकार से यह है। यह भगवती देवी कौन है जिसके चार पैर हैं, चार मुख हैं, चार सींग हैं और जो चतुर्वक्त्रा, चतुर्दंष्ट्रा और चतुस्तना है

तथा चतुर्हस्ता, चतुर्नेत्रा है। यह विश्वरूपा कैसे कही गई है ॥१६॥
॥२०॥२१॥

किंनामगोत्रा कस्येयं किंवीर्या चापि कर्मतः।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो वृषध्वजः ॥२२॥
प्राह देववृषं ब्रह्मा ब्रह्माणं चात्मसंभवम्।
रहस्यं सर्वमंत्राणां पावनं पुष्टिवर्धनम् ॥२३॥
शृणुष्वैतत्परं गुह्यमादिसर्गे यथा तथा।
एव यो वर्तते कल्पो विश्वरूपस्त्वसौ मतः ॥२४॥
ब्रह्मस्थानमिद चापि यत्र प्राप्तं त्वया प्रभो।
त्वत्तः परतरं देव विष्णुना तत्पदं शुभम् ॥२५॥
वैकुंठेन विशुद्धेन मम वामांगजेन वै।
तदाप्रभृति कल्पश्च त्रयस्त्रिंशत्तमो ह्ययम् ॥२६॥
शत शतसहस्राणामतीता ये स्वयंभुवः।
पुरस्तात्तव देवेश तच्छृणुष्व महामते ॥२७॥
आनंदस्तु स विज्ञेय आनंदत्वे व्यवस्थितः।
मांडव्यगोत्रस्तपसा मम पुत्रत्वमागतः ॥२८॥

इस देवी का क्या नाम और गोत्र है—यह किसकी है ? क्या इसका पराक्रम है और इसका कर्म क्या है ?। उस ब्रह्मा के इस वचन का श्रवण करके देवों के देव वृषध्वज देवों में श्रेष्ठ,आत्म सम्भव ब्रह्मा से बोले—यह समस्त मन्त्रों के मध्य में परम पावन एवं अत्यन्त गोपनीय रहस्य है ।२२।२३। तथापि इस परम गोपनीय का तुम श्रवण करो । आदि सर्ग में जिस प्रकार का भी यह कल्प है यह विश्वरूप कहा गया है ॥२४॥ हे प्रभो ! यह ब्रह्म स्थान है जिसको कि आपने प्राप्त किया है । आपसे भी परतर देव विष्णु हैं और उनका शुभ स्थान इससे भी ऊपर है । ॥२५॥ विशुद्ध वैकुण्ठ मेरे वामाङ्गज के द्वारा किया हुआ है । तबसे लेकर यह तेतीसवाँ कल्प है ॥२६॥ हे देवेश ! आपसे भी पहिले सात

सहस्रों के शत स्वयम्भू हो चुके हैं। हे महामते! अब तुम उनका श्रवण करो ॥२७॥ माण्डव्य गोत्र वाले तुम तप के द्वारा मेरे पुत्र हुए थे और आनन्द के रूप में व्यवस्थित हुए थे अतएव वह ब्रह्म रूप आनन्द जानने के योग्य हैं ॥२८॥

त्वयि योगं च सांख्यं च तपोविद्याविधिक्रियाः।
ऋतं सत्यं दया ब्रह्म अहिंसा सन्मतिः क्षमा ॥२९॥
ध्यानं ध्येयं दमः शांतिर्विद्याऽविद्या मतिर्धृतिः।
कांतिर्नीतिः प्रथा मेधा लज्जा दृष्टिः सरस्वती ॥३०॥
तुष्टिः पुष्टिः क्रिया चैव प्रसादश्च प्रतिष्ठिताः।
द्वात्रिंशत्सुगुणा ह्येषा द्वात्रिंशाक्षरसंज्ञया ॥३१॥
प्रकृतिर्विहिता ब्रह्मंस्त्वत्प्रसूति महेश्वरी।
विष्णोर्भगवतश्चापि तथान्येषामपि प्रभो ॥३२॥
सैषा भगवती देवी मत्प्रसूतिः प्रतिष्ठिता।
चतुर्मुखी जगद्योनिः प्रकृतिर्गौः प्रतिष्ठिता ॥३३॥
गौरी माया च विद्या च कृष्णा हैमवतीति च।
प्रधानं प्रकृतिश्चैव यामाहुस्तत्त्वचिंतकाः ॥३४॥
अजामेकां लोहितां शुक्लकृष्णां विश्वप्रजां सृजमाना सरूपाम्।
अजोहं मां विद्धि तां विश्वरूपं गायत्री गां विश्वरूपा हि बुद्धया ॥३५॥

उस समय में तुम मे बत्तीस गुण थे और उनके नाम ये हैं—योग, साख्य, कृच्छ्र आदि तप और उनकी विधि तथा क्रिया, ऋत [प्रिय भाषण], सत्य, दया, ब्रह्म [वेद], अहिंसा [पर पीडा का त्याग], सन्मति [अव्यभिचारिणी बुद्धि], क्षमा [पराई पीडा का सहन करना], ध्यान, ध्येय [ईश्वर का सन्निधान], दम, शान्ति, विद्या, अविद्या, मति, धृति, कान्ति, नीति, प्रथा [ख्याति], मेधा [धारणा करने वाली बुद्धि], लज्जा [लोको के अपवाद का भय], दृष्टि, [दिव्यज्ञान], सरस्वती, तुष्टि, पुष्टि, [इन्द्रियों की पटुता], क्रिया [वेद विहित धर्म और प्रसाद] बत्तीस

अक्षरो की संज्ञा से यह बत्तीस गुणों वाली यह विश्वरूपा महेश्वरी आपकी प्रसूति प्रकृति मैंने हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे ही लिए उत्पन्न की है। हे प्रभो ! यह भगवान् विष्णु और अन्य इन्द्र आदि की यह मेरी प्रसूति भगवती देवी जननी है। यह जगत् की योनि चतुर्मुखी प्रकृति गौ के स्वरूप मे प्रतिष्ठित है ॥२६॥३०॥३१॥३२॥३३॥ तत्त्वो के चिन्तन करने वाले जिस प्रकृति को गौरी, माया, विद्या, कृष्ण, हैमवती प्रधान और प्रकृति इन नामो से कहा करते हैं ॥३४॥ उसको अजा, एका, लोहिता, शुक्ल कृष्ण, विश्व प्रजा, सृजमाना, सरूपा, विश्वरूपा, गौ, गायत्री बुद्धि से समझो और मैं अज हूँ ऐसा मुझको भी जान लो ॥३५॥

एवमुक्त्वा महादेवः ससर्ज परमेश्वरः।
ततश्च पार्श्वगा देव्याः सर्वरूपकुमारकाः ॥३६॥
जटो मुंडी शिखंडी च अर्धमुंडश्च जज्ञिरे।
ततस्तेन यथोक्तेन योगेन सुमहौजसः ॥३७॥
दिव्यवर्षसहस्राते उपासित्वा महेश्वरम्।
धर्मोपदेशमखिल कृत्वा योगमयं दृढम् ॥३८॥
शिष्टाश्च नियतात्मानः प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम् ॥३९॥

इस प्रकार से परमेश्वर महादेव ने कह कर सृजन किया था। और इसके अनन्तर देवी के पार्श्व मे गमन करने वाले सर्वरूप कुमार जटी, मुण्डी, शिखण्डी और अर्घ मुण्ड उत्पन्न हुए थे। इसके अनन्तर यथोक्त योग के द्वारा महान् ओज वाले वे एक सहस्र दिव्य वर्ष तक वहा रह कर तथा महेश्वर की उपासना करके सम्पूर्ण योगमय दृढ धर्म का उपदेश करके वे शिष्ट नियत आत्मा वाले ईश्वर रुद्र मे प्रविष्ट हो गये थे ॥३६॥३७॥३८॥३९॥

श्री विष्णु नाभि कमल से ब्रह्मोत्पत्ति

कथं पाद्मे पुरा कल्पे ब्रह्मा पद्मोद्भवोऽभवत् ।
भवं च दृष्टवांस्तेन ब्रह्मणा पुरुषोत्तमः ॥१॥
एतत्सर्वं विशेषेण सांप्रतं वक्तुमर्हसि ।
आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम् ॥२॥
मध्ये चैकार्णवे तस्मिन् शङ्खचक्रगदाधरः ।
जीमूताभोऽम्बुजाक्षश्च किरीटी श्रीपतिर्हरिः ॥३॥
नारायणमुखोद्गीर्णसर्वात्मा पुरुषोत्तमः ।
अष्टबाहुर्महावक्षा लोकानां योनिरुच्यते ॥४॥
किमप्यचिन्त्यं योगात्मा योगमास्थाय योगवित् ।
फणासहस्रकलितं तमप्रतिमवर्चसम् ॥५॥
महाभोगपतेर्भोगं साध्वास्तीर्य महोच्छ्रयम् ।
तस्मिन्महति पर्यंके शेते चैकार्णवे प्रभुः ॥६॥
एवं तत्र शयानेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
आत्मारामेण क्रीडार्थं लीलयाक्लिष्टकर्मणा ॥७॥
शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यसन्निभम् ।
वज्रदंडं महोत्सेधं नाभ्यां सृष्टं तु पुष्करम् ॥८॥

ऋषियों ने कहा—पहिले पाद्म कल्प मे पद्मोद्भव ब्रह्मा कैसे हुए थे और उस ब्रह्मा के साथ पुरुषोत्तम ने भव को किस प्रकार से देखा था ? ॥१॥ यह सब अब हमारे सामने वर्णन करने के योग्य होते हैं। सूत जी ने कहा—उस समय एक ही समुद्र था जो महान् घोर, बिना विभाग वाला एकदम अन्धकार से परिपूर्ण था ॥२॥ उस एकार्णव के मध्य मे शङ्ख, चक्र, गदा के धारण करने वाले, मेघ के समान क्रान्ति से युक्त, कमल के सदृश नेत्रों से समन्वित किरीटधारी लक्ष्मी के पति हरि थे ॥३॥ नारायण के मुख से उद्गीर्ण सर्वात्मा पुरुषोत्तम आठ

बाहुओं वाले, महान् वक्ष स्थल वाले समस्त लोकों की योनि कहे जाते हैं।।४।। योग के पूर्ण ज्ञाता और योग की आत्मा किसी अचिन्त्य योग मे आस्थित होकर एक सहस्र फणो से युक्त उस अप्रतिम वर्चस वाला जो महा भोग पति शेष का भोग था जिसको महान उच्छ्रय वाले भोग को भली भाँति आस्तृत कर रक्खा था उस महान् पर्यङ्क पर प्रभु उस एकार्णव मे शयन कर रहे थे ।।५।।६।। इस प्रकार से वहाँ पर शयन करने वाले प्रभविष्णु विष्णु ने जो कि अपनी ही आत्मा मे रमण करने वाले हैं और अक्लिष्टकर्म करने वाले हैं क्रीडा करने के लिये लीला से एक सौ योजन के विस्तार से युक्त और तरुण सूर्य के समान, वज्र के दण्ड वाला महान् उत्सेध [ऊँचाई] से युक्त नाभि मे कमल का सृजन किया था ।।७।।८।।

तस्यैव क्रीडमानस्य समीप देवमीढुप ।
हेमगर्भाडजो ब्रह्मा रुक्मवर्णो ह्यतीद्रिय ।।६।।
चतुर्वक्त्रो विशालाक्ष समागम्य यदृच्छया ।
श्रिया युक्तेन दिव्येन सुशुभेन सुगधिना ।।१०।।
क्रीडमान च पद्मेन दृष्ट्वा ब्रह्मा शुभेक्षणम् ।
सविस्मयमथागम्य सौम्यसपन्नया गिरा ।।११।।
प्रोवाच को भवाञ्छेते ह्याश्रितो मध्यमभसाम् ।
अथ तस्याच्युत श्रुत्वा ब्रह्मणस्तु शुभ वच ।।१२।।
उदतिष्ठत पर्यंकाद्विस्मयोत्फुल्ललोचन ।
प्रत्युवाचोत्तर चैव कल्पेकल्पे प्रतिश्रय ।।१३।।
कर्तव्य च धृत चैव क्रियते यच्च किंचन ।
द्यौरतरिक्ष भूश्चैव पर पदमह भुव ।।१४।।

देवो म परम श्रेष्ठ क्रीडा करते हुए उस भगवान् विष्णु के समीप म हेमगर्भ अण्ड से जन्म ग्रहण करने वाला ब्रह्मा, जो रुक्म के समान

वर्ण वाला, अतीन्द्रिय, चार मुखों से युक्त और विशाल नेत्रों वाला था, यदृच्छा से आ गया था और उस ब्रह्मा ने वहाँ पर श्री से समान्न, सुगन्ध वाले, परम शुभ और दिव्य पद्म से क्रीडा करते हुए शुभ ईक्षण वाले शेषशायी को देखा था फिर विस्मय पूर्वक वहाँ आकर परम सौम्यता से युक्त वाणी से ब्रह्मा ने कहा ।।६।।१०।।११।। आप कौन हैं जो यहाँ समुद्र के जलों के मध्य आश्रय ग्रहण कर शयन कर रहे हैं ? इस ब्रह्मा के प्रश्न के अनन्तर भगवान् अच्युत ने ब्रह्मा के इस शुभ वचन का श्रवण कर वे विस्मय से उत्फुल्ल (खिले हुये) लोचन वाले अच्युत अपने शेष के पर्यङ्क से उठ खड़े हुये थे और उन्होंने उसके प्रश्न का उत्तर दिया था कि कल्प-कल्प मे कौन सा जगत् के निवास का स्थान रहता है ।।१२।। ।।१३।। दिवलोक, अान्तरिक्ष और भूमि इनमे जो भी कुछ कर्तव्य है और किया है तथा किया जा रहा है उसे बताया और कहा मैं भूलोक का परम पद हू ।।१४।

तमेवमुक्त्वा भगवान् विष्णुः पुनरथाब्रवीत् ।
कस्त्व खलु समायातः समीप भगवान्कुतः ।।१५।।
क्व वा भूयश्च गतव्यं कश्च वा ते प्रतिश्रयः ।
को भवान् विश्वमूर्तिर्वै कर्तव्यं किं च ते मया ।।१६।।
एवं ब्रु वंतं वकुंठं प्रत्युवाच पितामहः ।
मायया मोहितः शंभोरविज्ञाय जनार्दनम् ।।१७।।
मायया मोहितं देवमविज्ञातं महात्मनः ।
यथा भवांस्तथैवाहमादिकर्ता प्रजापतिः ।।१८।।
सविस्मयं वचः श्रु त्वा ब्रह्मणो लोकतन्त्रिणः ।
अनुज्ञातश्च ते नाथ वैकुंठो विश्वसम्भवः ।।१९।।
कौतूहलान्महायोगी प्रविष्टो ब्रह्मणो मुखम् ।
इमानष्टादश द्वीपान्ससमुद्रान् सपर्वतान् ।।२०।।
प्रविश्य सुमहातेजाश्चातुर्वर्ण्यसमाकुलान् ।
ब्रह्मणस्तवपर्यंतं सप्तलोकान् सनातनान् ।।२१।।

ब्रह्मणस्तूदरे दृष्ट्वा सर्वान्विष्णुर्महाभुजः ।
अहोस्य तपसो वीर्यमित्युक्त्वा च पुनः पुनः ॥२२॥
अटित्वा विविधाँल्लोकान् विष्णुर्नानाविधाश्रयान् ।
ततो वर्षसहस्रांते नांतं हि ददृशे यदा ॥२३॥

भगवान् विष्णु ने उस ब्रह्मा से यह इस प्रकार से कह कर फिर कहा — आप कौन हैं और कहाँ से मेरे समीप मे आये हैं ॥१५॥ अब आगे आपको कहाँ जाना है और आपके निवास का मुख्य स्थान कौन सा है। आप विश्वमूर्ति कौन हैं और मुझसे आपको क्या काम है ॥१६॥ इस तरह से बोलने वाले वैकुण्ठनाथ से पितामह ने कहा कि मैं जनार्दन का ज्ञान प्राप्त न करके भगवान् शम्भु की माया से मोहित हो गया हूं ॥१७॥ महात्मा की माया से मोहित देव को मैंने विज्ञात नही किया है। जिस प्रकार के आप हैं वैसा ही मैं आदि कर्त्ता प्रजापति हूँ ॥१८॥ ब्रह्मा के जो कि लोकतन्त्र का आश्रय है, विस्मय के साथ यह वचन श्रवण करके हे नाथ ! विश्व सम्भव वैकुण्ठ अनुज्ञात हो गये थे ॥१९॥ वह महायोगी कौतूहल से ब्रह्मा के मुख में प्रविष्ट हो गया था। वहाँ पर महाभुज महा तेज वाले विष्णु ने इन अठारह द्वीपो को जो पर्वतो से और समुद्रो से युक्त थे तथा चारो वर्णों से समाकुल थे, और ब्रह्मा से स्तम्ब पर्यन्त सनातन सातो लोको को सबको ब्रह्मा के उदर मे देखा था। वहाँ पर विष्णु को ये सब देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ और बार-बार यही कहते हुए कि "इसके तप की कैसी अद्भुत शक्ति है" विष्णु ने अनेक प्रकार के आश्रय वाले विविध लोको का ब्रह्मा के उदर में भ्रमण किया था किन्तु सहस्रो वर्ष तक अटन करने पर विष्णु ने उनका अन्त नही देखा था ॥२०॥२१॥२२॥२३॥

तदास्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेंद्रनिकेतनः ।
नारायणो जगद्धाता पितामहमथाब्रवीत् ॥२४॥
भगवानादिरंतश्च मध्य कालो दिशो नभः ।
नाहमंतं प्रपश्यामि उदरस्य तवानघ ॥२५॥

एवमुक्त्वाब्रवीद्भूय. पितामहमिद हरिः ।
भगवानेवमेवाह शाश्वत हि ममोदरम् ॥२६॥
प्रविश्य लोकान् पश्यंताननौपम्यान्सुरोत्तम ।
ततः प्राह्लादिनी वाणी श्रु त्वा तस्याभिनंद्य च ॥२७॥
श्रीपतेरुदर भूयः प्रविवेश पितामहः ।
तानेव लोकान् गर्भस्था नपश्यत्सत्यविक्रमः ॥२८॥
पर्यटित्वा तु देवस्य ददृशेऽन्त न वै हरेः ।
ज्ञात्वा गति तस्य पितामहस्य
द्वाराणि सर्वाणि पिधाय विष्णुः ।
विभुर्मनः कर्तु मियेष चाशु
सुख प्रसुप्तोहमिति प्रचिन्त्य ॥२९॥
ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि समीक्ष्य वै ।
सूक्ष्म कृत्वात्मनो रूपं नाभ्या द्वारमविदत ॥३०॥

जब कोई अन्त नही मिला तो पन्नगो के स्वामी शेष के निकेतन वाले, जगत् के धाता नारायण इस ब्रह्मा के मुख से बाहिर निकल आए और इसके पश्चात् पितामह से बोले ॥२४॥ हे अनघ ! आप तो आदि, मध्य और अन्त हैं तथा काल, दिशा और नभ हैं । मैं तो आपके उदर का कहीं भी अन्त नही देख रहा हू ॥२५॥ इतना कह कर हरि ने पितामह से पुन कहा—इस प्रकार से मैं भगवान् ही हूँ और मेरा उदर भी शास्वत है ॥२६॥ हे सुरोत्तम ! आप भी मेरे उदर मे प्रवेश करके अनुपम इन लोको को देख लेवें । इसके अनन्तर पितामह ने नारायण की प्राह्लादिनी वाणी का श्रवण करके और उनका अभिनन्दन करके वह पितामह पुन. श्रीपति के उदर मे प्रविष्ट हो गये थे । वहाँ पर सत्य विक्रम वाले परमेष्ठी ने गर्भस्थ उन्ही लोको को देखा था ॥२७॥२८॥ ब्रह्मा ने वहाँ पर पर्यटन किया था किन्तु देव हरि के अन्त को उनने नही देखा था । उस पितामह की गति को जानकर विष्णु ने

समस्त द्वारो को पिहित कर दिया था। फिर विभु ने मैं सुख पूर्वक प्रसुप्त हो गया हूँ। ऐसा चिन्तन करके शीघ्र ही मन मे इच्छा की थी ॥२९॥ इसके पश्चात् नारायण के शरीर मे समस्त द्वारो को बन्द देखकर पितामह ने अपना सूक्ष्म स्वरूप बनाया और नारायण की नाभि मे द्वारा प्राप्त किया था ॥३०॥

पद्मसूत्रानुसारेण चान्वपश्यत्पितामहः ।
उज्जहारात्मनो रूप पुष्कराच्चतुराननः ॥३१॥
विरराजारविदस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः ।
ब्रह्मा स्वयभूर्भगवाञ्जगद्योनिः पितामह. ॥३२॥
एतस्मिन्नंतरे ताभ्यामेकैकस्य तु कृत्स्नशः ।
वर्तमाने तु सघर्षे मध्ये तस्यार्णवस्य तु ॥३३॥
कुतोप्यपरिमेयात्मा भूताना प्रभुरीश्वरः ।
शूलपाणिर्महादेवो हेमवीरावरच्छदः ॥३४॥
अगच्छद्यत्र सोनतो नागभोगपतिर्हरिः ।
शीघ्रं विक्रमतस्तस्य पद्भ्यामाक्रांतपीडिता. ॥३५॥
उद्भूतास्तूर्णमाकाशे पृथुलास्तोयबिंदवः ।
अत्युष्णश्चातिशतिश्च वायुस्तत्र ववौ पुनः ॥३६॥
सदृष्ट्वा महदाश्चर्यं ब्रह्मा विष्णुमभ पत ।
अब्बिदवश्च शीतोष्णा. कपयत्यबुज भृशम् ॥३७॥

पितामह ने पद्म के सूत्र के अनुसार उस नाभि के द्वार को देखा था और फिर चतुरानन ने उस कमल से अपने स्वरूप को प्रकट किया था ॥३१॥ जगत् की योनि, भगवान् स्वयम्भू पितामह ब्रह्मा पद्म के गर्भ के समान द्युति वाला अरविन्द मे स्थित होता हुआ भ्राजमान हुआ था ॥३२॥ उस समुद्र के मध्य मे उन पद्म के पत्रो में प्रत्येक का ब्रह्मा के भार से आक्रान्त होने के कारण परस्पर मे सङ्घर्ष उत्पन्न हो गया था ॥३३॥ उस समय जहाँ पर जगभोग के पति अनन्त हरि थे

वहाँ कही से अपरिमेय आत्मा वाले भूतो के प्रभु, ईश्वर, श्रेष्ठ सुवर्ण के अम्बर छद वाले शूलपाणि महादेव जा पहुचे थे। शीघ्र चलने वाले उसके पैरों से आक्रान्त हुए एवं पीडित स्थूल जल की बूँदें शीघ्र ही आकाश मे उद्भूत हो गई थी। वहाँ उस समय मे अत्यन्त उष्ण और अत्यन्त शीत वायु फिर वहन होने लगी थी ॥३४॥३५॥३६॥ इस महान् आश्चर्य को देखकर ब्रह्मा ने विष्णु से कहा था कि ये जल के कण शीत और उष्ण है और यदि इस अम्बुज को अत्यन्त कम्पित कर रहे हैं ॥३७॥

एतन्मे संशयं ब्रूहि किं वा त्वन्यच्चिकीर्षसि ।
एतदेवंविधं वाक्यं पितामहमुखोद्गतम् ॥३८॥
श्रुत्वाप्रतिमकर्मा हि भगवानसुरांतकृत् ।
किं नु खल्वत्र मे नाभ्या भूतमन्यत्कृतालयम् ॥३९॥
वदति प्रियमत्यर्थं मन्युश्चास्य मया कृतः ।
इत्येवं मनसा ध्यात्वा प्रत्युवाचेदमुत्तरम् ॥४०॥
किमत्र भगवानद्य पुष्करे जातसंभ्रमः ।
किं मया च कृतं देव यन्मां प्रियमनुत्तमम् ॥४१॥
भाषसे पुरुषश्रेष्ठ किमर्थं ब्रूहि तत्त्वतः ।
एवं ब्रुवाणं देवेशं लोकयात्रानुगं ततः ॥४२॥
प्रत्युवाचाम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः ।
योऽसौ तवोदरं पूर्वं प्रविष्टोऽहं त्वदिच्छया ॥४३॥
यथा ममोदरे लोकाः सर्वे दृष्टास्त्वया प्रभो ।
तथैव दृष्टाः कात्स्न्येन मया लोकास्तवोदरे ॥४४॥

ब्रह्माजी ने विष्णु भगवान् से कहा कि मुझे बहुत संशय हो रहा है। इसे आप स्पष्ट बताइये। क्या आप कुछ और करना चाहते हैं? इस प्रकार के पितामह के मुख से उद्गत वाक्य का श्रवण करके अप्रतिम कर्म वाले तथा असुरो के अन्तकारी भगवान् ने सोचा कि मेरी

नाभि में अन्य के द्वारा आतप करने पर यह क्या हो गया है ॥३८॥३६॥ यह ब्रह्मा बोलता तो बहुत ही प्रिय है किन्तु इसका क्रोध मैंने किया है। इस प्रकार से मन मे सोचकर फिर विष्णु ने यह उत्तर दिया था ॥४०॥ आज इस कमल में आपको क्यों सम्भ्रम उत्पन्न हो गया है ? हे देव ! मैंने आपका क्या अपराध किया है कि आप मुझसे ऐसा अनुत्तम एवं अप्रिय वचन बोल रहे हैं। हे पुरुषों में श्रेष्ठ ! आप मुझे किसलिये ऐसा कहते हैं—इसे यथार्थ रूप से बताइये। इस प्रकार से बोलने वाले और लोकों की यात्रा का अनुगमन करने वाले तथा अम्बुज के समान नेत्रों वाले देवेश से वेदों के निधि ब्रह्मा ने कहा—मैं आपकी ही इच्छा से ही पहिले आपके उदर में प्रविष्ट हुआ था ॥४१॥४२॥४३॥ जिस प्रकार से हे प्रभो ! मेरे उदर मे आपने समस्त लोक देखे थे उसी भाँति आपके उदर मे मैंने पूर्णतया सब लोक देखे थे ॥४४॥

ततो वर्षसहस्रात्तु उपावृत्तस्य मेऽनघ ।
त्वया मत्सरभावेन मां वशीकर्तुमिच्छता ॥४५॥
आशु द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि समंततः ।
ततो मया महाभाग संचित्य स्वेन तेजसा ॥४६॥
लब्धो नाभिप्रदेशेन पद्मसूत्राद्विनिर्गमः ।
माभूत्ते मनसोऽल्पोपि व्याघातोऽस्य कथंचन ॥४७॥
इत्येषानुगतिर्विष्णो कार्याणामौपसर्पिणी ।
यन्मयानतरं कार्यं ब्रूहि किं करवाण्यहम् ॥४८॥
ततः परममेयात्मा हिरण्यकशिपो रिपुः ।
अनवद्यां प्रियामिष्टां शिवां वाणीं पितामहात् ॥४६॥
श्रुत्वा विगतमात्सर्यं वाक्यमस्मै ददौ हरिः ।
न ह्येवमीदृशं कार्यं मयाध्यवसितं तव ॥५०॥
त्वां बर्धयितुकामेन क्रीडापूर्वं यदृच्छया ।
आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि मयात्मनः ॥५१॥

हे अनघ ! इसके अनन्तर एक सहस्र वर्ष पर्यन्त भ्रमण करने वाला वहाँ आपके उदर मे रहा था । मत्सरता के भाव से मुझको वश्य करने की इच्छा रखने वाले आपने सभी ओर से बहुत शीघ्र समस्त द्वारा बन्द कर दिये थे । हे महाभाग ! मैंने अपने ही तेज से भली-भाँति चिन्तन करके नाभि के प्रदेश के द्वारा पद्म सूत्र से विनिर्गम अर्थात् निकलने का मार्ग प्राप्त किया था । आपके मन मे किसी भी प्रकार से थोडा सा भी यह व्याघात नही होवे ॥४५॥४६॥४७॥ यह विष्णु के कार्यों की अनुकूल अनुगति है । इसके अनन्तर जो कुछ भी मुझे करना चाहिए उसे बताइये कि मैं अब क्या करूँ ॥४८॥ इसके अनन्तर अमेर आत्मा वाले हिरण्यकशिपु दैत्य के शत्रु विष्णु ने पितामह से निर्दोष, प्रिय, अभीष्ट, मङ्गलमयी वाणी का श्रवण किया था और फिर हरि ने ब्रह्मा को मात्सर्य से रहित वाक्य कहा था । ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जो मैंने आपको करने के लिए निश्चित किया हो । ॥४९॥५०॥ आपको ज्ञान प्राप्त कराने के लिये ही मेरी इच्छा हुई थी और इसी से यदृच्छा वश क्रीडा पूर्वक मैंने अपने समस्त द्वार शीघ्र बन्द कर दिये थे ॥५१॥

न तेऽन्यथावगन्तव्यं मान्यः पूज्यश्च मे भवान् ।
सर्वं मर्षय कल्याण यन्मयापकृतं तव ॥५२॥
अस्मान् मयोह्यमानस्त्वं पद्मादवतर प्रभो ।
नाहं भवन्तं शक्नोमि सोढुं तेजोमयं गुरुम् ॥५३॥
सहोवाच वरं ब्रूहि पद्मादवतर प्रभो ।
पुत्रो भव ममारिघ्न मुदं प्राप्स्यसि शोभनम् ॥५४॥
सद्भाववचनं ब्रूहि पद्मादवतर प्रभो ।
स त्वं च नो महायोगी त्वमीड्यः प्रणवात्मकः ॥५५॥
अद्यप्रभृति सर्वेशः श्वेतोष्णीषविभूषितः ।
पद्मयोनिरिति ह्येवं ख्यातो नाम्ना भविष्यसि ॥५६॥

पुत्रो मे त्वं भव ब्रह्मन् सप्तलोकाधिपः प्रभो ।
ततः स भगवान्देवो वरं दत्वा किरीटिने ॥५७॥
एवं भवतु चेत्युक्त्वा प्रीतात्मा गतमत्सरः ।
प्रत्या सन्नमथायांतं बालार्काभं महाननम् ॥५८॥

इसके बिना अन्य किसी प्रकार से आपको यह ज्ञान नहीं हो सकता था । वैसे आप मेरे मान्य और पूज्य हैं । हे कल्याण ! इस सबको अब आप क्षमा कर दीजिए जो कुछ मैंने आपका अपकार किया है ॥५२॥ हे प्रभो ! इस समय आप मेरे द्वारा वहन किए जा रहे हो । इसलिये इस पद्म से आप नीचे उतर जाइये । आपका स्वरूप तेज से परिपूर्ण हैं और आप गुरु हैं । मैं आपको वहन नहीं कर सकता हूं । ॥५३॥ उस ब्रह्मा ने कहा—हे प्रभो ! आप मुझे इस पद्म से नीचे उतार दीजिए और स्थापित कर देवें तथा वरदान दीजिये। विष्णु ने कहा—हे अरिघ्न ! आप मेरे पुत्र हो जाओ । इससे आपको बहुत ही शोभन आनन्द प्राप्त होगा । हे प्रभो ! आप सद्भाव से पूर्ण वचन हम से बोलिये और इस पद्म से नीचे उतर जाइए । आप तो महान् योगी हैं । आप प्रणव रूप हैं और इसीलिए हमारे स्तवन करने के योग्य हैं ॥५४॥५५॥ आज से लेकर आप सबके ईश और श्वेत उष्णीष से विभूषित होंगे और 'पद्मयोनि'—इस नाम से लोकों में विख्यात होंगे ॥५६॥ हे प्रभो ! हे ब्रह्मन् ! आप मेरे पुत्र हो जाओ और सात लोकों के स्वामी बन जाओ । इसके अनन्तर भगवान् देव पितामह ने विष्णु को वरदान दिया और कहा कि ऐसा ही होगा और फिर परम प्रसन्न होकर मात्सर्य से रहित हो गए थे । इसके अनन्तर समीप में आते हुए बाल सूर्य के समान आभा से युक्त, महान् आनन (मुख) वाले अत्यन्त अद्भुत भव को देखकर पितामह नारायण से बोले ॥५७॥५८॥

भवमत्यद्भुतं दृष्ट्वा नारायणमथाब्रवीत् ।
अप्रमेयो महावक्त्रो दंष्ट्री ध्वस्तशिरोरुहः ॥५९॥

दशबाहुस्त्रिशूलाङ्को नयनैर्विश्वतः स्थितः ।
लोकप्रभुः स्वयं साक्षाद्विकृतो मुंजमेखली ॥६०॥
मेढ्रेणोर्ध्वेन महता नर्दमानोतिभैरवम् ।
कः खल्वेष पुमान् विष्णो तेजोराशिर्महाद्युतिः ॥६१॥
व्याप्य सर्वा दिशो द्या च इत एवाभिवर्तते ।
तेनैवमुक्तो भगवान् विष्णुर्ब्रह्माणमब्रवीत् ॥६२॥
पद्मा तलनिपातेन यस्य विक्रमतोर्णवे ।
वेगेन महताकाशेप्युत्थिताश्च जलाशयाः ॥६३॥
स्थूलद्भिर्विश्वतोत्यर्थं सिच्यसे पद्मसंभव ।
घ्राणजेन च वातेन कंप्यमान स्त्वया सह ॥६४॥
दोधूयते महापद्मं स्वच्छन्द मम नाभिजम् ।
समागतो भवानीशो ह्यनादिश्चातकृत्प्रभुः ॥६५॥

वराह की दंष्ट्राओं के भूषण वाला, अप्रमेय, महान् वक्त्र से युक्त, फैले हुए केशों वाला, दश बाहुओं से सयुत, त्रिशूल का चिन्ह धारी, सर्वदर्शी, भयङ्कर, मनोहर मेखला को धारण करने वाले स्वय साक्षात् लोकों का स्वामी, उन्नत एव स्थूल मेढ्र से अत्यन्त भीषण नर्दमान होता हुआ, महान् द्युति वाला तेज का पुञ्ज यह हे विष्णो ! कौन पुरुष है ॥५६॥६०॥६१॥ समस्त दिशाओं को व्याप्त करके यह इसी ओर वर्त्तमान हो रहा है। उस पितामह के द्वारा इस प्रकार से कहे गये भगवान् विष्णु ब्रह्मा से बोले ॥६२॥ अर्णव मे चलने वाले जिसके पैरों के तलो के निपात से जलाशय महान् वेग से आकाश मे भी उठ गये हैं ॥६३॥ हे पद्म सम्भव ! अत्यन्त स्थूल जलों के द्वारा यह समस्त विश्व को अत्यन्त अधिक सिञ्चित कर रहा है। इसकी नासिका से निकले हुये वायु से तुम्हारे सहित यह कमल एकदम कम्पित हो रहा है। मेरी नाभि मे उत्पन्न होने वाला यह स्वच्छन्द महा कमल कम्पमान हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि भवानी के स्वामी प्रभु आ

गये हैं जो स्वय तो अनादि हैं और समस्त विश्व का अन्त करने वाले हैं ॥६४॥६५॥

भवानहं च स्तोत्रेण उपतिष्ठाव गोध्वजम् ।
ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा प्रोवाच केशवम् ॥६६॥
भवान्न नूनमात्मानं वेत्ति लोकप्रभुं विभुम् ।
ब्रह्माणं लोककर्तारं मां न वेत्सि सनातनम् ॥६७॥
को ह्यसौ शङ्करो नाम आवयोर्व्यतिरिच्यते ।
तस्य तत्क्रोधजं वाक्यं श्रुत्वा हरिरभाषत ॥६८॥
मा मैवं वद कल्याण परिवादं महात्मनः ।
महायोगेंधनो धर्मो दुराधर्षो वरप्रदः ॥६६॥
हेतुरस्याथ जगतः पुराण पुरुषोऽव्ययः ।
बीजी खल्वेष बीजानां ज्योतिरेकः प्रकाशते ॥७०॥
बालक्रीडनकैर्देवः क्रीडते शङ्करः स्वयम् ।
प्रधानमव्ययो योनिरव्यक्तं प्रकृतिस्तमः ॥७१॥
मम चैतानि नामानि नित्यं प्रसवधर्मिणः ।
यः कः स इति दुःखार्तैर्दृश्यते यतिभिः शिवः ॥७२॥

अब आप और मैं दोनो ही स्तोत्र के द्वारा गो ध्वज (शिव) का स्तवन करें। इसके अनन्तर क्रुद्ध ब्रह्मा ने अम्बुजाक्ष केशव से कहा—आप अपनी आत्मा को नहीं जानते हैं कि आप स्वयं लोकों के स्वामी और विभु हैं और मुझको भी नहीं पहिचानते हैं कि मैं समस्त लोको की रचना करने वाला सनातन हूँ ॥६६॥६७॥ यह शङ्कर नाम वाला कौन है जो कि हम दोनो से भी व्यतिरिक्त हैं ? उस ब्रह्मा के क्रोध से उत्पन्न होने वाले वाक्य का श्रवण करके भगवान् हरि ने कहा—हे कल्याण ! ऐसा कभी मत बोलो। यह महान् आत्मा वाले शिव की निन्दा है। महा योग जिसको दीप न करने वाला है, दुरा धर्ष धर्म है और वर प्रदान करने वाला है ॥६८॥६६॥ यह शिव इस जगत् का

हेतु स्वरूप है। पुराण पुरुष, अव्यय, समस्त बीजो का भी यह बीजी है। यह एक ही ज्योनि है जो प्रकाशमान है। भगवान् शङ्कर स्वय इच्चो के खिलौनो से क्रीडा किया करते हैं। प्रधान, अव्यय योनि अव्यक्त, प्रकृतितम ये प्रसव के धर्म वाले मेरे नाम हैं। जो तुमने पूछा है कि यह कौन है वह शिव जन्म-मरणादि दुःख को देखकर विरक्त हो जाने वाले यतियो का द्वारा ही देखा जाया करता है ॥७०॥७१॥७२॥

एष बीजी भवान्बीजमह योनि सनातन ।
स एवमुक्तो विश्वात्मा ब्रह्मा विष्णुमपृच्छत ॥७३॥
भवान् योनिरह बीज कथ बीजी महेश्वर ।
एतन्मे सूक्ष्ममव्यक्त सशय छेत्तु महसि ॥७४॥
ज्ञात्वा च विविधोत्पत्ति ब्रह्मणो लोकतन्त्रिण ।
इम परमसादृश्य प्रश्नमभ्यवदद्धरि ॥७५॥
अस्मान्महत्तर भूत गुह्यमन्यन्न विद्यते ।
महत परम धाम शिवमध्यात्मिना पदम् ॥७६॥
द्विविध चैवमात्मान प्रविभज्य व्यवस्थित ।
निष्कलस्तत्र योऽव्यक्त सकलश्च महेश्वर ॥७७॥
यस्य मायाविधिज्ञस्य अगम्यगहनस्य च ।
पुरा लिंगोद्भव बीज प्रथम त्वादिसर्गिकम् ॥७८॥
मम योनौ समायुक्त तद्बीज कालपर्ययात् ।
हिरण्मयमकूपारे योन्यामडमजायत ॥७९॥
शतानि दशवर्षाणामडमप्सु प्रतिष्ठितम् ।
अन्ते वर्षसहस्रस्य वायुना तद्द्विधा कृतम् ॥८०॥

यह विश्वात्मा यह बीजी है आप बीज हैं और मैं सनातन योनि हूँ, इस प्रकार से कहा गया है। ब्रह्मा ने विष्णु भगवान् से पूछा था ॥७३॥ आप योनि हैं, मैं बीज हू और महेश्वर किस प्रकार से बीजी होते हैं ? यह मेरा सूक्ष्म और अव्यक्त सशय है। उसके छेदन

करने को आप योग्य होते है ।।७४।। लोक तन्त्री ब्रह्मा को विविध प्रकार की उत्पत्ति को जानकर इस परम साहस से शून्य प्रश्न का उत्तर हरि ने दिया था ।।७५।। इससे यह तत्त्व का सर्वोत्कृष्ट स्थान गुह्य भूत अन्य नही है । शिव अध्यात्मवादी ज्ञानियो का गम्य पद है ।।७६।। अपनी आत्मा को निर्गुण और सगुण रूप से दो प्रकारो में विभक्त कर के व्यवस्थित है । उसमे निष्कल निर्गुण अव्यक्त अगोचर है और सकल अर्थात् सगुण महेश्वर हैं ।।७७।। माया की विधि के ज्ञाता और अगम्य तथा गहन जिसका पहिले आदिसर्गिक लिङ्गोद्भव प्रथम बीज मम अर्थात् मेरी योनि से समायुक्त हुआ था और वह बीज काल के पर्यय से अपार योनि मे हिरण्मय अण्ड होकर उत्पन्न हुआ था । एक सहस्र वर्ष पर्यन्त वह अण्ड जल मे ही प्रतिष्ठित रहा था । अन्त में जब एक सहस्र वर्ष समाप्त हो गये तो वायु के द्वारा उसके दो भाग कर दिए गये थे ।।७८।।७९।।८०।।

कपालमेकं द्यौर्जज्ञे कपालमपरं क्षितिः ।
उल्बं तस्य महोत्सेधो योसौ कनकपर्वतः ।।८१।।
ततश्च प्रतिसंख्यात्मा देवदेवो वरः प्रभुः ।
हिरण्यगर्भो भगवांस्त्वभिजज्ञे चतुर्मुखः ।।८२।।
आताराऽर्केन्दुनक्षत्रं शून्यं लोकमवेक्ष्य च ।
कोहमित्यपि च ध्याते कुमारास्तेऽभवंस्तदा ।।८३।।
प्रियदर्शनास्तु यतयो यतीनां पूर्वजा स्तव ।
भूयो वर्षसहस्रान्ते तत एवात्मजास्तव ।।८४।।
भुवनानलसंकाशाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ।
श्रीमान्सनत्कुमारश्च ऋभुश्चवोर्ध्वरेतसौ ।।८५।।
सनकः सनातनश्चैव तथैव च सनंदनः ।
उत्पन्नाः समकाल ते बुद्ध्यातीन्द्रियदर्शनाः ।।८६।।
उत्पन्नाः प्रतिभात्मानो जगतां स्थितिहेतवः ।
नारप्स्यंते च कर्माणि तापत्रयविवर्जिताः ।।८७।।

उस अण्ड का एक ऊपर का जो भाग था उसके पाल से तो द्यौ उत्पन्न हुआ और उसके नीचे की ओर का जो कपाल का भाग था उससे भूमि की उत्पत्ति हुई थी। उस अपर कपाल का महान् उत्सेध वाला गर्भावरण था वह कनक पर्वत मेरु है ॥८१॥ उस भिन्न हुए अण्ड से उत्पद्यमान शरीर वाले देवो के देव हिरण्यगर्भ चतुर्मुख श्रेष्ठ प्रभु आप समुत्पन्न हुए थे ॥८२॥ जब आपने तारा, सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र वाला शून्य लोक को देखा था और मैं कौन हू, ऐसा ध्यान किया था तो फिर एक सहस्र वर्षों के अन्त मे तुम्हारे प्रिय दर्शन वाले, यत्नशील और यतियो के पूर्वज कुमार अवस्था से समन्वित आपके ही पुत्र उत्पन्न हुये थे ॥८३॥८४॥ वे सब एक ही काल मे उत्पन्न हुये थे और भुवन के अनल के समान तथा पद्म पत्र के सदृश दीर्घ नेत्रो वाले थे। श्री मान् सनत्कुमार और ऋभु ये दोनो ऊर्ध्व रेता थे। सनक, सनातन और सनन्दन बुद्धि से अतीन्द्रिय दर्शन वाले थे। ये सब ज्ञान, विशिष्ट और जगतों की स्थिति के हेतु स्वरूप तथा तीनो प्रकार के तापो से रहित थे ये कोई भी कर्मों का आरम्भ नही करेंगे ॥८५॥८६॥ ॥८७॥

अल्पसौख्य बहुक्लेश जराशोकसमन्वितम् ।
जीवन मरण चैव सभवश्च पुन: पुन. ॥८८॥
अल्पभूत सुख स्वर्गे दु खानि नरके तथा ।
विदित्वा चागम सर्वमवश्य भवितव्यताम् ॥८९॥
ऋभु सनत्कुमार च दृष्ट्वा तव वशे स्थितौ ।
त्रयस्तु त्रीन् गुणान् हित्वा चात्मजा. सनकादय: ॥९०॥
वैवर्तेन तु ज्ञानेन प्रवृत्तास्ते महौजस ।
ततस्तेषु प्रवृत्तेषु सनकादिषु वै त्रिषु ॥९१॥
भविष्यसि विमूढस्त्व मायया शङ्करस्य तु ।
एव कल्पे तु गौ वृत्ते सज्ञा नश्यति तेऽनघ ॥९२॥

कल्पे शेषाणि भूतानि सूक्ष्माणि पार्थिवानि च ।
सर्वेषां ह्यैश्वरी माया जागृतिः समुदाहृता ॥९३॥
यथैश्च पर्वतो मेरुर्देवलोको ह्युदाहृतः ।
तस्य चेदं हि माहात्म्यं विद्धि देववरस्य ह ॥९४॥

जीवन, मरण और बार-बार जन्म ग्रहण करना इसमे सुख तो बहुत कम हैं और क्लेश अधिक है तथा जरा और शोक से भी समन्वित हैं। स्वर्ग में भी अत्यन्त अल्प सुख होता है तथा नरक से दुःख ही भरे हुए हैं। इस समस्त आगम का ज्ञान प्राप्त करके और अवश्य होने वाली सम्पूर्ण भवितव्यता को जान लिया था। ऋभु और सनत्कुमार को आप के वश में स्थित देखकर सनकादि जो अन्य तीन आपके आत्मज थे वे तीनो गुणो का त्याग करके वे महान् ओज वाले अध्यात्म ज्ञान के द्वारा प्रवृत्त हो गए थे। इसके अनन्तर उन तीनो के सनकादिकों के अध्यात्म ज्ञान मे प्रवृत्त हो जाने पर आप भगवान् शङ्कर की माया से विमूढ़ हो जायेंगे। हे अनघ ! इस प्रकार से एक कल्प के व्यतीत हो जाने पर आपकी सज्ञा नष्ट होती है ॥८८॥८९॥९०॥९१॥९२॥ कल्प मे भी शेष सूक्ष्म भूत और पार्थिव हैं उन सबकी जागृति ही ऐश्वरी माया कही गई है ॥९३॥ जो यह मेरु पर्वत देवो के निवास का लोक कहा गया है अब आप देवो मे श्रेष्ठ उसके माहात्म्य का ज्ञान प्राप्त करें ॥९४॥

ज्ञात्वा चेश्वरसद्भावं ज्ञात्वा मामम्बुजेक्षणम् ।
महादेवं महाभूतं भूतानां वरदं प्रभुम् ॥९५॥
प्रणवेनाथ साम्ना तु नमस्कृत्य जगद्गुरुम् ।
त्वां च मा चैव संक्रुद्धो निःश्वसान्निदं हेदयम् ॥९६॥
एवं ज्ञात्वा महायोगमभ्युत्तिष्ठन्महाबलम् ।
अहं त्वामग्रतः कृत्वा स्तोष्याम्यनलसप्रभम् ॥९७॥

ईश्वर के सद्भाव का ज्ञान प्राप्त करके और अम्बुज के समान नेत्र वाले मुझको जानकर तथा समस्त प्राणियों को वर प्रदान करने

वाले महाभूत महादेव प्रभु का ज्ञान प्राप्त कर इन जगद्गुरु का प्रणव के तथा सामवेद के द्वारा नमस्कार करो अन्यथा यह संक्रुद्ध होकर आपको और मुझको दोनों को अपनी विश्वास की अग्नि से निर्दग्ध कर देंगे। ॥६५॥६६॥ इस प्रकार से उनके महान् बल और महान् योग को समझ कर आप उठकर खड़े हो जाइये। मैं आपको अपने आगे करके उस अग्नि के समान प्रभा वाले का स्तवन करूँगा ॥६७॥

रुद्रोत्पत्ति वर्णन

अत्यंतावनतौ दृष्ट्वा मधुपिंगायतेक्षणः ।
प्रहृष्टवदनोऽत्यर्थमभवत्तस्य कीर्तनात् ॥१॥
उमापतिर्विरूपाक्षो दक्षयज्ञविनाशन. ।
पिनाकी खंडपरशुः सुप्रीतस्तु त्रिलोचनः ॥२॥
तत· स भगवान्देव श्रु त्वा वागमृतं तयो. ।
जानन्नपि महादेव क्रीडापूर्वमथाब्रवीत् ॥३॥
को भवतो महात्मानौ परस्परहितैषिणौ ।
समेतावब्जाभाक्षावस्मिन्घोरे महाप्लवे ॥४॥
तावूचतुर्महात्मानौ सन्निरीक्ष्य परस्परम् ।
भगवन् किं तु यत्तोऽद्य न विज्ञातं त्वया विभो ॥५॥
विभो रुद्र महामाय इच्छया वा कृतौ त्वया ।
तयोस्तद्वचनं श्रु त्वा अभिनंद्याभिमान्य च ॥६॥
उवाच भगवान्देवो मधुरं श्लक्ष्णया गिरा ।
भो भो हिरण्य गर्भ त्वा त्वा च कृष्ण ब्रवीम्यहम् ॥७॥
प्रीतोऽहमनया भक्त्या शाश्वताक्षरयुक्तया ।
भवतो रहदयस्यास्य मम रहद्यतराबुभौ ॥८॥

सूतजी ने कहा—मधु के समान पिङ्ग तथा आयत नेत्रों वाले भगवान् महेश्वर ने ब्रह्मा और विष्णु दोनों को अत्यन्त विनम्र देखा था और उनके सत्य स्तवन करने से वह महेश्वर अत्यन्त प्रसन्न हो गए थे। ॥१॥ उमा के स्वामी विरूपाक्ष, दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विध्वंश करने वाले पिनाक धनुष को धारण करने वाले, खण्ड परशु और तीन नेत्रों को धारण करने वाले अत्यन्त प्रसन्न हो गए थे ॥२॥ इसके अनन्तर भगवान् महेश्वर देव ने उन दोनों ब्रह्मा और विष्णु की अमृतमयी वाणी का श्रवण किया था और महादेव सब कुछ का ज्ञान रखते हुए भी इसके अनन्तर क्रीडा पूर्वक बोले ॥३॥ आप दोनों परस्पर में एक दूसरे के हित के चाहने वाले कौन महात्मा हैं ? इस घोर महाप्लव में कमल के सदृश आभा से युक्त नेत्रों वाले यहाँ कैसे एकत्रित हुए हो ? ॥४॥ महान् आत्मा वाले वे दोनों आपस में एक दूसरे को देखकर बोले—हे विभो ! हे भगवन् ! क्या आज आपने यह सब नहीं जान लिया है ? हे विभो ! हे रुद्र ! हे महामाया वाले ! हम दोनों को आपने इच्छा से बनाया है। उन दोनों के इस वचन का श्रवण कर अभिनन्दन किया और इसको स्वीकार करके भगवान् महादेव मधुर एवं परम श्लक्ष्ण वाणी से बोले—हे हिरण्यगर्भ ! तुमको और हे कृष्ण ! तुमको मैं कहता हूँ कि अक्षर से युक्त और निरन्तर होने वाली भक्ति से मैं आप दोनों पर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। आप दोनों ही मेरे इस हृदय में अत्यधिक प्रिय हो गये हो ॥५॥ ॥६॥७॥८॥

युवाभ्यां किं ददाम्यद्य वराणां वरमीप्सितम् ।
अथोवाच महाभागो विष्णुर्भवमिदं वचः ॥९॥
सर्वं मम कृतं देव परितुष्टोऽसि मे यदि ।
त्वयि मे सुप्रतिष्ठा तु भक्तिर्भवतु शंकर ॥१०॥
एवमुक्तस्तु विज्ञाय सभावयत केशवम् ।
प्रददौ च महादेवो भक्तिं निजपदाम्बुजे ॥११॥

भवान्सर्वस्य लोकस्य कर्ता त्वमधिदैवतम् ।
तदेवं स्वस्ति ते वत्स गमिष्याम्यंबुजेक्षण ॥१२॥
एवमुक्त्वा तु भगवान् ब्रह्माणं चापि शंकरः ।
अनुगृह्याऽस्पृशद्देवो ब्रह्माणं परमेश्वरः ॥१३॥
कराभ्यां सुशुभाभ्या च प्राह हृष्टतरः स्वयम् ।
मत्समस्त्वं न सदेहो वत्स भक्तश्च मे भवान् ॥१४॥
स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि सज्ञा भवतु सुव्रत ।
एवमुक्त्वा तु भगवास्ततोन्तर्धानमीश्वरः ॥१५॥

मैं अब आप दोनो को वरदानो मे परम अभीष्ट क्या वरदान दूं ? इस महादेव के कथन के अनन्तर महाभाग विष्णु महादेव से यह वचन बोले—हे देव ! यदि आप मेरे इस सबके किए जाने पर परम प्रसन्न हैं तो हे शङ्कर ! मैं यही चाहता हू कि आपके अन्दर मेरी सुप्रतिष्ठित भक्ति हो जावे । इस प्रकार से कहे गये महादेव ने विशेष रूप से ज्ञान प्राप्त कर केशव को सम्भावपित किया और अपने चरण कमल मे भक्ति प्रदान की थी । ६॥१०॥११॥ आप समस्त लोक के कर्त्ता हैं और आप अधिदैवत हैं । हे वत्स ! हे अम्बुजेक्षण ! मैं आपके कल्याण के लिये ही गमन करूँगा । विष्णु से इस प्रकार से कहकर फिर भगवान् शङ्कर ने ब्रह्मा पर भी अनुग्रहण किया था और परमेश्वर देव ने ब्रह्मा का स्पर्श किया था । दोनो हाथो से ब्रह्मा के शरीर का स्पर्श परम हर्षित होते हुए स्वय बोले—हे ब्रह्मन् ! आप मेरे ही समान हैं—इसमे तनिक भी सदेह नही है और आप मेरे परम भक्त हैं ॥१२॥१३॥१४॥ हे सुव्रत ! आपका कल्याण होवे और आपको यह भी वरदान मैं देता हूँ कि आपके हृदय मे यथार्थ का ज्ञान हो जावे । अब मैं जाता हू । इस प्रकार से कहकर भगवान् ईश्वर इसके पश्चात् अन्तर्हित हो गये थे । ॥१५॥

गतवान् गणपो देवः सर्वदेवनमस्कृतः ।
अवाप्य संज्ञा गोविंदात् पद्मयोनिः पितामहः ॥१६॥
प्रजाः स्रष्टुमनाश्चक्रे तप उग्रं पितामहः ।
तस्यैव तप्यमानस्य न किंचित्समवर्तत ॥१७॥
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधो ह्यजायत ।
क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिंदवः ॥१८॥
ततस्तेभ्योऽश्रुबिंदुभ्यो वातपित्तकफात्मकाः ।
महाभागा महासत्त्वाः स्वस्तिकैरप्यलङ्कृता ॥१९॥
प्रकीर्णकेशाः सर्पास्ते प्रादुर्भूता महाविषाः ।
सर्पास्तानग्रजान्दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिंदयत् ॥२०॥
अहो धिक् तपसो मह्यं फलमीदृशकं यदि ।
लोकवैनाशिकी जज्ञे आदावेव प्रजा मम ॥२१॥

समस्त गणो के पति और सम्पूर्ण देवो के द्वारा वन्द्यमान देव चले गये थे । पद्म योनि पितामह ने गोविन्द से यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके प्रजाओ के सृजन करने के मन वाले पितामह ने उग्र तपस्या की थी । उसके इस प्रकार से तप्यमान होने पर भी कुछ भी परिणाम नही आया ॥१६॥१७॥ इसके अनन्तर जब बहुत लम्बा समय तप करते हुए हो गया तो पितामह को बडा दु ख हुआ था और उस दु ख से क्रोध उत्पन्न हो गया था । उस समय क्रोध में आविष्ट हुये ब्रह्मा के नेत्रो से अश्रुओ की बूँदें गिरने लगी थी ॥१८॥ इसके पश्चात् उन आँसुओं की बूँदो से वात, पित्त और कफ के स्वरूप वाले, महाभाग, स्वस्तिको मे अलङ्कृत, महा-सत्त्व उत्पन्न हो गये थे और वे प्रकीर्ण केशो वाले महा विषधारी सर्प प्रादुर्भूत हो गये थे । उन अग्रजा स्वरूप सर्पों को देखकर ब्रह्मा ने अपने आपकी निन्दा की थी ॥१९॥२०॥ ब्रह्मा ने कहा— अहो ! मेरे इस तप को धिक्कार है जिसका यह ऐसा फल हुआ है । आदि मे ही लोको के विनाश करने वाली यह ऐसी मेरी प्रजा उत्पन्न हुई है ॥२१॥

तस्य तीव्राभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा ।
मूर्च्छाभिपरितापेन जहौ प्राणान्प्रजापतिः ॥२२॥
तस्याप्रतिमवीर्यस्य देहात्कारुण्यपूर्वकम् ।
अथैकादश ते रुद्रा रुदतोऽभ्यक्रमंस्तथा ॥२३॥
रोदनात्खलु रुद्रत्वं तेषु वै समजायत ।
ये रुद्रास्ते खलु प्राणा ये प्राणास्ते तदात्मकाः ॥२४॥
प्राणाः प्राणवतां ज्ञेयाः सर्वभूतेष्ववस्थिताः ।
अत्युग्रस्य महत्त्वस्य साधुराचरितस्य च ॥२५॥
प्राणास्तस्य ददौ भूयस्त्रिशूली नीललोहितः ।
लब्ध्वासून् भगवान्ब्रह्मा देवदेवमुमापतिम् ॥२६॥
प्रणम्य संस्थितोऽपश्यद्गायत्र्या विश्वमीश्वरम् ।
सर्वलोकमयं देवं दृष्ट्वा स्तुत्वा पितामहः ॥२७॥
ततो विस्मयमापन्नः प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः ।
उवाच वचनं शर्वं सद्यादित्वं कथं विभो ॥२८॥ –

उस पितामह को अत्यन्त तीव्र मूर्छा हो गई थी जो कि क्रोध और अमर्ष के कारण उत्पन्न हुई थी। उस मूर्छा के कारण जो ब्रह्मा को अभि-परिताप हुआ उससे प्रजापति ने प्राणों का त्याग कर दिया था ॥२२॥ अप्रतिम रूप वाले उसके देह से करुणा के साथ रुदन करते हुये एकादश रुद्र निकल पड़े थे ॥२३॥ रोदन करने से ही उनमें रुद्रत्व उत्पन्न हो गया था। जो रुद्र थे वे ही निश्चय उसके प्राण थे और जो प्राण थे वे तत्स्वरूप वाले थे ॥२४॥ प्राण वालों के प्राण जानने के योग्य होते हैं जो कि समस्त प्राणियों में अवस्थित होते हैं। यह अति तीव्र सदाचार और महत्व के साधक हैं ॥२५॥ नील लोहित त्रिशूली ने फिर उसके प्राणों को दे दिया था। भगवान् ब्रह्मा ने प्राणों को प्राप्त करके देवों के देव उमा के पति को प्रणाम किया था और संस्थित होकर गायत्री के द्वारा विश्व रूप वाले ईश्वर को देखा था।

सर्व लोकमय देव का दर्शन करके पितामह ने उनका स्तवन किया।।।२६।।२७।। इसके पश्चात् ब्रह्मा को अत्यन्त विस्मय हुआ। उसने बार-म्बार प्रणिपात करके भगवान् शम्भु यह वचन कहा कि हे विभो! आपका सद्यादि रूपता कैसे हो गई है अर्थात् तुरन्त ही प्रादुर्भाव कैसे हो गया है? ।।२८।।

गायत्री-महिमा

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणो भगवान् भवः ।
ब्रह्मरूपी प्रबोधार्थं ब्रह्माणं प्राह सस्मितम् ।।१।।
श्वेतकल्पो यदा ह्यासीदहमेव तदाभवम् ।
श्वेतोष्णीषः श्वेतमाल्यः श्वेतांबरधरः सितः ।।२।।
श्वेतास्थिः श्वेतरोमा च श्वेतासृक् श्वेतलोहितः ।
तेन नाम्ना च विख्यातः श्वेतकल्पस्तदा ह्यसौ ।।३।।
मत्प्रसूता च देवेशी श्वेतांगा श्वेतलोहिता ।
श्वेतवर्णा तदा ह्यासीद्गायत्री ब्रह्मसंज्ञिता ।।४।।
तस्मादहं च देवेश त्वया गुह्येन वै पुनः ।
विज्ञातः स्वेन तपसा सद्योजातत्वमागतः ।।५।।
सद्योजातेति ब्रह्मैतद्गुह्यं चैतत्प्रकीर्तितम् ।
तस्माद्गुह्यत्वमापन्नं ये वेत्स्यंति द्विजातयः ।।६।।
मत्समीप गमिष्यंति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।
यदा चैव पुनस्त्वासील्लोहितो नाम नामतः ।।७।।

श्री सूतजी ने कहा—उस ब्रह्मा के उस वचन को सुनकर भगवान् भव जो कि ब्रह्म के रूप वाले हैं, प्रबोध कराने के लिए मन्द मुस्कान के साथ ब्रह्मा से बोले ।।१।। जिस समय श्वेत कल्प था उस

समय मे मैं ही हुआ था। मेरा उस समय श्वेत उष्णीष था, श्वेत ही माल्य था, श्वेत अम्बरों के धारण करने वाला, श्वेत-श्वेत अस्थियों से युक्त, श्वेत रोमों से सम्पन्न, श्वेत रुधिर वाला और मैं श्वेत लोहित था। अतएव उसी नाम से उसी समय मे यह श्वेत कल्प विख्यात हुआ था ॥२॥३॥ मुझसे समुत्पन्न देवेशी श्वेत अङ्गों वाली, श्वेत लोहिता तथा श्वेत वर्ण से युक्त उस समय मे गायत्री ब्रह्म संज्ञा वाली हुई थी ॥४॥ हे देवेश ! उससे गुह्य तुमने मुझे पुनः जान लिया है और अपने तप के प्रभाव से सद्यं जातत्व को प्राप्त हो गया है ॥५॥ सद्योजात यह ब्रह्म है जो कि अत्यन्त गुह्य कहा गया है। इससे गुह्यत्व को प्राप्त होने वाले उसको जो द्विजातिगण जान लेंगे वे मेरे ही समीप मे गमन करेंगे और फिर उनकी पुनरावृत्ति दुर्लभ है अर्थात् फिर इस संसार मे जन्म ग्रहण नहीं करेंगे। जिस समय यह पुन हुआ था जिसका लोहित नाम था वह मेरे किए हुये वर्ण से लोहित नामक कल्प कहा गया है ॥६॥७॥

मत्कृतेन च वर्णेन कल्पो वै लोहितः स्मृतः।
तदा लोहितमांसास्थिलोहितक्षीरसंभवा ॥८॥
लोहिताक्षी स्तनवती,गायत्री गौः प्रकीर्तिता।
ततोऽस्या लोहितत्वेन वर्णस्य च विपर्ययात् ॥९॥
वामत्वाच्चैव देवस्य वामदेवत्वमागतः ।
तत्रापि च महासत्त्वस्त्वयाहं नियतात्मना ॥१०॥
विज्ञातः स्वेन योगेन तस्मिन्वर्णान्तरे स्थितः।
ततश्च वामदेवेति ख्यातिं यातोऽस्मि भूतले ॥११॥
ये चापि वामदेवं त्वां ज्ञास्यन्तीह द्विजातयः।
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१२॥
यदाहं पुनरेवेह पीतवर्णो युगक्रमात् ।
मत्कृतेन च नाम्ना वै पीतकल्पोऽभवत्तदा ॥१३॥

मत्प्रसूता च देवेशी पीतांगी पीतलोहिता।
पीतवर्णा तदा ह्यासीद्गायत्री ब्रह्मसंज्ञिता ॥१४॥

उस समय मांस और अस्थि आदि सब लोहित थे और लोहित क्षीर से सम्भूत, लोहित नेत्रों वाली, स्तनों वाली गायत्री गौ कही गई थी। इसके अनन्तर इसके लोहितत्व से और वर्ण के विपर्यय होने से इसका इस प्रकार का नाम हुआ था ॥८॥९॥ देव के वामत्व होने से यह वाम देवत्व को प्राप्त हुआ था। वहाँ पर भी हे महासत्त्व! नियत आत्मा वाले आपने उस भिन्न वर्ण में स्थित मुझे अपने योग के बल से विज्ञात कर लिया था और इस कारण से भूतल में वामदेव—इस नाम की ख्याति को प्राप्त हुआ था ॥१०॥११॥ जो द्विजाति गण यहाँ वाम देवत्व के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेंगे वे सीधे रुद्र लोक को चले जायेंगे और फिर उनका दुबारा जन्म नहीं होगा ॥१२॥ जिस समय में पुनः यहा पर युग के क्रम से पीत वर्ण वाला हुआ था तब मेरे किए हुए नाम के द्वारा पीत वस्त्र हुआ था ॥१३॥ मुझसे प्रसूत होने वाली देवेशी, पीताङ्गी, पीत लोहिता, पीत वर्ण वाली उस समय में ब्रह्म संज्ञिता गायत्री हुई थी ॥१४॥

तत्रापि च महासत्त्व योगयुक्तेन चेतसा।
यस्मादहं तेविज्ञातो योगतत्परमानसैः ॥१५॥
तत्र तत्पुरुषत्वेन विज्ञातोऽहं त्वया पुनः।
तस्मात्तत्पुरुषत्वं वै ममैतत्कनकांडज ॥१६॥
ये मां रुद्रं च रुद्राणीं गायत्रीं वेदमातरम्।
वेत्स्यति तपसा युक्ता विमला ब्रह्मसंगताः ॥१७॥
रुद्रलोकं गमिष्यंति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
यदाहं पुनरेवासं कृष्णवर्णो भयानकः ॥१८॥
मत्कृतेन च वर्णेन संकल्पः कृष्ण उच्यते।
तत्राहं कालसंकाशः यातो लोकप्रकालकः ॥१९॥

विज्ञातोऽहं त्वया ब्रह्मन्घोरो घोरपराक्रमः।
मत्प्रसूता च गायत्री कृष्णांगी कृष्णलोहिता ॥२०॥
कृष्णरूपा च देवेश तदासीद्ब्रह्मसंज्ञिता ।
तस्माद्धोरत्वमापन्नं ये मां वेत्स्यंति भूतले ॥२१॥

हे महासत्व ! उस समय मे वहाँ पर भी योग युक्त चित्त के द्वारा योग मे तत्पर मानस वाले उनके द्वारा मैं पहिचान लिया गया था ॥१५॥ वहाँ पर आपने फिर मुझे तत्पुरुष रूप से विज्ञात किया था । हे कनकाण्डज ! मेरा यह तत्पुरुषत्व रूप है ॥१६॥ जो लोग तप से युक्त, विमल और ब्रह्म सज्ञक हैं मुझ रुद्र को और वेदो की मात रुद्राणी गायत्री को जान लेंगे अर्थात् ठीक ज्ञान प्राप्त कर लेंगे वे सब रुद्र लोक मे गमन करेंगे और उनकी इस संसार मे फिर दुबारा आवृत्ति दुर्लभ होगी। जिस समय मैं भयानक कृष्ण वर्ण वाला था तब मेरे द्वारा किये हुए वर्ण से वह कल्प कृष्ण कहा जाता है। वहाँ पर मैं काल के समान और लोकों को प्रकाशित करने वाला काल ही था ॥१७।१८॥ १९॥ हे ब्रह्मन् ! उस समय में तुमने मुझे घोर और घोर पराक्रम वाला विज्ञात किया था। मुझसे प्रसव ग्रहण करने वाली गायत्री कृष्णाङ्गी, कृष्ण लोहिता और हे देवेश ! ब्रह्म संज्ञिता कृष्ण रूपा उस समय मे थी। इससे घोरत्व को प्राप्त मुझको जो लोग भूतल मे जान जायेंगे उनको मैं अघोर और शान्त अव्यय हो जाऊंगा ॥२०॥२१॥

तेषामघोरः शांतश्च भविष्यादेम्हमव्ययः ।
पुनश्च विश्वरूपत्वं यदा ब्रह्मन्ममाभवत् । २२॥
तदाप्यहं त्वया ज्ञातः परमेण समाधिना ।
विश्वरूपा च संवृत्ता गायत्री लोकधारिणी ॥२३॥
तस्मिन्विश्वत्वमापन्नं ये मां वेत्स्यन्ति भूतले ।
तेषां शिवश्च सौम्यश्च भविष्यामि सदैव हि ॥२४॥

यस्माच्च विश्वरूपो वै कल्पोऽयं समुदाहृतः ।
विश्वरूपा तथा चेयं सावित्री समुदाहृता ॥२५॥
सर्वरूपा तथा चेमे संवृत्ता मम पुत्रकाः ।
चत्वारस्ते मया ख्याताः पुत्रा वै लोकसंमताः ॥२६॥
यस्माच्च सर्ववर्णत्वं प्रजाना च भविष्यति ।
सर्वभक्षा च मेध्या च वर्णतश्च भविष्यति ॥२७॥
मोक्षो धर्मस्तथार्थश्च कामश्चेति चतुष्टयम् ।
यस्माद्वेदाश्च वेद्यं च चतुर्धा व भविष्यति ॥२८॥

इसके पश्चात् फिर जिस समय मे मैं विश्व रूपत्व को हे ब्रह्मन् प्राप्त हुआ अर्थात् मेरी विश्व रूपता हो गई थी तब भी परमोत्कृष्ट समाधि के द्वारा तुमने मुझे जान लिया था और यह गायत्री लोकधारिणी विश्वरूपा हो गई थी ॥२२॥२३॥ उसमे भूतल में जो लोग मुझे विश्वरूपत्व को प्राप्त होने वाला जान लेंगे उनके लिए मैं शिवत्व और परम सौम्यत्व के स्वरूप वाला सदा ही हो जाऊँगा ॥२४॥ मैंने यह विश्व रूप कल्प समुदाहृत कर दिया है और इसी प्रकार से यह सावित्री विश्वरूपा बतादी है ॥२५॥ जिस प्रकार से समस्त रूप वाली गायत्री है वैसे ही ये सब मेरे पुत्र भी समुत्पन्न हुए हैं। मेरे द्वारा वे चार लोक सम्मत पुत्र ख्यात हैं ॥२६॥ जिससे प्रजाओं का सब वर्णत्व होगा। यह वर्ण से और चत्वार से अर्थ से सर्वभक्ष और यज्ञयोग्या होगी। यह गायत्री होगी इसीलिये प्रजाओं की सर्ववर्णता होगी ॥२७॥ धर्म अर्थ, काम और मोक्ष इनका चतुष्टय होता है जिससे वेद और वेद्य अर्थात् पुरुषार्थ स्वरूप चार प्रकार के होंगे। ॥२८॥

भूतग्रामाश्च चत्वार आश्रमाश्च तथैव च ।
धर्मस्य पादाश्चत्वारश्चत्वारो ममः पुत्रकाः ॥२९॥

तस्माच्चतुर्युगावस्थं जगद्वै सचराचरम् ।
चतुर्धावस्थितश्चैव चतुष्पादो भविष्यति ॥३०॥
भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकश्च महस्तथा ।
जनस्तपश्च सत्यं च विष्णुलोकस्ततः परम् ॥३१॥
अष्टाक्षरस्थितो लोकः स्थानेस्थाने तदक्षरम् ।
भूर्भुवः स्वर्महश्चैव पादाश्चत्वार एव च ॥३२॥
भूर्लोकः प्रथमः पादो भुवर्लोकस्ततः परम् ।
स्वर्लोको गो तृतीयश्च चतुर्थस्तु महस्तथा ॥३३॥
पंच मस्तु जनस्तत्र षष्ठश्च तप उच्यते ।
सत्यं तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्भवगामिनाम् ॥३४॥
विष्णुल'कः स्मृत स्थान पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।
स्कांदमोम तथा स्थानं सर्वसिद्धिसमन्वितम् ॥३५॥

भूतो अर्थात् प्राणियो के ग्राम अर्थात् समूह भी चार प्रकार के हैं जिनके नाम जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज हैं उसी प्रकार से ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यास ये आश्रम भी चार प्रकार के होते हैं। हे मेरे पुत्रो! धर्म के दया, दान, तप और सत्य ये चार पाद होते हैं ॥२६॥ इसीलिये यह जगत् समस्त चराचर चार युगो की अवस्था वाला है। चार प्रकार से अवस्थित यह चार पादो वाला होगा ॥३०॥ भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महार्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक और इस सबसे परे विष्णु लोक है ॥३१॥ अष्टाक्षर रूपलोक है और स्थान-स्थान मे वह अक्षर है। भूः, भुवः स्व. और महः ये चार ही पाद होते हैं ॥३२॥ भूर्लोक प्रथम पाद है, इसके पश्चात् भुवर्लोक द्वितीय पाद है, फिर स्वर्लोक तृतीय पाद है और उसी प्रकार महर्लोक चतुर्थ पाद होता है ॥३३॥ पञ्चम जनलोक, षष्ठ तपलोक कहा जाता है। सत्य सप्तम लोक है जो कि अपुनर्गामियो के ही लिये हैं अर्थात् इनमें पहुँचकर फिर यहाँ पुनरागमन नही होता है ॥३४॥ विष्णु लोक

तो एक ऐसा स्थान है जहाँ से पुनरावृत्ति का अत्यन्त दुर्लभ ही कही गई है । स्का द तथा ग्रौम उस प्रकार के स्थान हैं जो कि समस्त प्रकार की सिद्धियों से समन्वित होते हैं ॥३५॥

रुद्रलोक स्मृतस्तस्मात्पद तद्योगिना शुभम् ।
निर्ममा निरहङ्कारा कामक्रोध विवर्जिता ॥३६॥
द्रक्ष्यति तद्द्विजा युक्ता ध्यानतत्परमानसा ।
यस्माच्चतुष्पदा ह्येषा त्वया दृष्टा सरस्वती ॥३७॥
पादात विष्णु लोक वै कौमार शातमुत्तमम् ।
औम माहेश्वर चैव तस्माद्दृष्टा चतुष्पदा ॥३८॥
तस्मात्तु पशव सर्वे भविष्यति चतुष्पदा ।
ततश्चैषा भविष्यति चत्वारस्ते पयोधरा ॥३९॥
सोमश्च मन्त्रसयुक्तो यस्मान्मम मुखाच्च्युत ।
जीव प्राणभृता ब्रह्मन्पुन पोतस्तना स्मृता ॥४०॥
तस्मात्सोममय चैव अमृत जीवसज्ञितम् ।
चतुष्पादा भविष्यति श्वेतत्व चास्य तेन तत् ॥४१॥
यस्माच्चैव क्रिया भूत्वा द्विपदा च महेश्वरी ।
दृष्टा पुनस्तथैवैषा सावित्री लोकभाविनी ॥४२॥

उससे फिर रुद्र लोक कहा गया है, जो कि योगियों के लिए परम शुभ स्थान है । जो ममता से रहित, महङ्कार से शून्य और काम तथा क्रोध से वर्जित एव ध्यान मे परायण मन वाले युक्त द्विज हैं वे ही उस स्थान का दर्शन करेंगे । जिस कारण से तुमने यह सरस्वती चतुष्पाद वाली देखी है ॥३६॥३७॥ विष्णु लोक पादान्त है, कुमार स्कन्द का कौमार परम शान्त एव उत्तम है उमा का लोक औम और महेश्वर का माहेश्वर अर्थात् शैव लोक है इससे चतुष्पदा यह देखी गई है ॥३८॥ इससे समस्त पशुगण चतुष्पद अर्थात् चार पैर वाले होंगे। इसी कारण से इनके चार ही पयोधर होगे । मन्त्रों के द्वारा हुत सोम मेरे मुख से

च्युत हो गया था जो कि प्राण धारियों का जीव है। हे ब्रह्मन्! फिर ये पीतस्तन कहे गये हैं ॥३६॥४०॥ इससे सोममय अमृत जीव संज्ञा वाला है। चतुष्पादा होने इसी कारण से उसे श्वेतत्व होता है। दुग्ध को श्वेतत्व और सोम रूपत्व होने से ही होता है, यह तात्पर्य है ॥४१॥ जिस कारण से क्रिया होकर महेश्वरी द्विपदा देखी है फिर उसी प्रकार से यह लोक भाविनी सावित्री है ॥४२॥

तस्माच्च द्विपदाः सर्वे द्विस्तनाश्च नराः शुभाः ।
तस्माच्चेयमजा भूत्वा सर्ववर्णा महेश्वरी ॥४३॥
या वै दृष्टा महासत्त्वा सर्वभूतधरा त्वया ।
तस्माच्च विश्वरूपत्वं प्रजाना वै भविष्यति ॥४४॥
अजश्चैव महातेजा विश्वरूपो भविष्यति ।
अमोघरेताः सर्वत्र मुखे चास्य हुताशनः ॥४५॥
तस्मात्सर्वगतो मेध्यः पशुरूपो हुताशनः ।
तपसा भावितात्मानो ये मां द्रक्ष्यंति वै द्विजाः ॥४६॥
ईशित्वे च वशित्वे च सर्वगं सर्वतः स्थितम् ।
रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तास्त्यक्त्वा मानुष्यकं वपुः ॥४७॥
मत्समीपमुपेष्यंति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।
इत्येवमुक्तो भगवान्ब्रह्मा रुद्रेण वै द्विजाः ॥४८॥
प्रणम्य प्रयतो भूत्वा पुनराह पितामहः ।
य एव भगवान् विद्वान् गायत्र्या गौ महेश्वरम् ॥४९॥
विश्वात्मानं हि सर्वं त्वां गायत्र्यास्तव चेश्वर ।
तस्य देहि परं स्थानं तथास्त्विति च सोऽब्रवीत् ॥५०॥
तस्माद्विद्वान् हि विश्वत्वमस्याश्चास्य महात्मनः ।
स याति ब्रह्मसायुज्यं वचनाद्ब्रह्मणः प्रभोः ॥५१॥

और इसी कारण से समस्त मनुष्य शुभ दो पादों वाले हैं और दो स्तनों वाले होते हैं। और इसी कारण से यह अजा होकर

महेश्वरी सर्व वर्णा है ।।४३।। जो कि तुम्हारे द्वारा महान् सत्त्व वाली और समस्त भूतों को धारण करने वाली देखी गई है। इसी कारण से प्रजाओं का विश्वरूपत्व होगा ।।४४।। और महान् तेज वाला अज विश्व रूप होगा। यह सर्वत्र अमोघ रेतस वाला है और इसके मुख मे हुताशन है ।।४५।। इससे सर्वगत, मेध्य और पशु रूपी हुताशन होता है। तप के द्वारा भावित आत्मा वाले जो द्विज मुझको देखेंगे वे ईशित्व और वशित्व मे सर्वत्र गमन करने वाले और सर्वत्र स्थित रहने वाले तथा रजोगुण और तमोगुण से निर्मुक्त होते हुए इस मानुष शरीर का त्याग करके मेरे समीप मे प्राप्त होंगे और फिर इस संसार में उनका आगमन अत्यन्त दुर्लभ हो जायगा। हे द्विजगण ! इस प्रकार से रुद्र भगवान् के द्वारा ब्रह्माजी को कहा गया था ।।४६।।४७।।४८।। फिर पितामह ने प्रयत होकर महेश्वर को प्रणाम किया था और पुनः कहा— जो इस प्रकार से भगवान् गायत्री के साथ महेश्वर के विद्वान् हैं और आपको विश्वात्मा सर्व जानते हैं तो हे ईश्वर ! उनकी गायत्री का और आपका पर स्थान दीजिए। तथा वह 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही होगा—यह बोला ।।४९।। ।।५०।। इससे इस गायत्री का और इस महेश्वर का विश्व रूपत्व का जो विद्वान् है वह प्रभु ब्रह्मा के वचन से ब्रह्म सायुज्य को प्राप्त होता है ।।५१।।

।। योगावतार वर्णन ।।

श्रुत्वैवमखिलं ब्रह्मा रुद्रेण परिभाषितम् ।
पुनः प्रणम्य देवेशं रुद्रमाह प्रजापतिः ।।१।।
भगवन्देवदेवेश विश्वरूपं महेश्वर ।
उमाधवव महादेव नमो लोकाभिवंदित ।।२।।

विश्वरूप महाभाग कस्मिन्काले महेश्वर ।
या इमास्ते महादेव तनवो लोकवंदिताः ॥३॥
कस्यां वा युगसंभूत्यां द्रक्ष्यंतीह द्विजातयः ।
केन वा तपसा देव ध्यानयोगेन केन वा ॥४॥
नमस्ते वै महादेव शक्यो द्रष्टुं द्विजातिभिः ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शर्वः संप्रेक्ष्य तं पुरः ॥५॥
स्मयन्प्राह महादेवो ऋग्यजुःसामसं भवः ।
तपसा नैव वृत्तेन दानधर्मफलेन च ॥६॥
न तीर्थफलयोगेन ऋतुभिर्वातदक्षिणैः ।
न वेदाध्ययनैर्वापि न वित्तेन न वेदनैः ॥७॥
न शक्यं मानवैर्द्रष्टुमृते ध्यानादहं त्विह ।
सप्तमे चैव वाराहे ततस्तस्मिन्पितामह ॥८॥
कल्पेश्वरोऽथ भगवान् सर्वलोकप्रकाशनः ।
मनुर्वैवस्वतश्चैव तव पौत्रो भविष्यति ॥९॥
तदा चतुर्युगावस्थे तस्मिन्कल्पे युगांतिके ।
अनुग्रहार्थं लोकानां ब्राह्मणानां हिताय च ॥१०॥
उत्पत्स्यामि तदा ब्रह्मन्पुनरस्मिन्युगांतिके ।
युगप्रवृत्त्या च तदा तस्मिंश्च प्रथमे युगे ॥११॥

श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार से ब्रह्माजी ने रुद्र के द्वारा किए हुए समस्त परिभाषित का अवधारण करके प्रजा पति ने पुनः देवेश रुद्र को प्रणाम करके कहा ॥१॥ हे भगवन् ! आप तो देवों के भी देव हैं, विश्व के रूप और महान् ईश्वर हैं । हे उमा के स्वामिन् ! हे महादेव ! आप लोकों के द्वारा अभिवन्दित हैं आपको मेरा नमस्कार है ॥२॥ हे विश्वरूप ! आप महान् भाग वाले हैं और महान् ईश्वर हैं । आपके जो ये लोकवन्दित तनु हैं वे किस समय में अथवा किस युग की सम्भूति में यहाँ द्विजाति गण देखेंगे और किस तप के द्वारा तथा

हे देव ! किस ध्यान योग के द्वारा देखेंगे, यह बताइये ॥३॥४॥ हे महादेव ! आपको मेरा नमस्कार है । आप द्विजातियों के द्वारा देखे जा सकते हैं । उसके इस वचन का श्रवण कर शम्भु ने उसको अपने आगे देखकर महादेव ने मुस्कराते हुए कहा जो कि ऋक्, यजु और सामवेद से सम्भव है । श्री भगवान ने कहा—मैं यहाँ पर तप, वृत्त, दान और धर्म का फल, तीर्थों के फल का योग, आप्त दक्षिणा वाले क्रतु समुदाय, वेदों के अध्ययन, वित्त और शास्त्रों के ज्ञान से मानवों के द्वारा देखा नहीं जा सकता हूं अर्थात् इन उक्त किसी भी एक या समस्त साधनों से मनुष्य मुझे नहीं देख सकते है केवल ध्यान से ही मैं देखा जाने के योग्य होता हूँ । हे पितामह ! इसके पश्चात् सप्तम वाराह कल्प मे समस्त लोक का प्रकाश करने वाला कल्पेश्वर भगवान् मैं और वैवस्वत मनु आपके पौत्र होंगे ॥५॥६॥७॥८॥९॥ उस समय मे चतुर्युगावस्थ उस युगान्तिक कल्प मे लोकों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए तथा ब्राह्मणों के हित सम्पादन करने के लिए तब हे ब्रह्मन् ! युग की प्रवृत्ति से उस प्रथम युग मे मैं उत्पन्न हो जाऊँगा ॥१०॥ ॥११॥

योगात्मानो महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
प्राप्य माहेश्वरं योगं विमला ह्यूर्ध्वरेतसः ॥१२॥
रुद्रलोकं गमिष्यंति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।
एते पाशुपताः सिद्धा भस्मोद्धूलितविग्रहाः ॥१३॥
लिंगार्चनरता नित्यं बाह्याभ्यंतरतः स्थिताः ।
भक्त्या मयि च योगेन ध्यान निष्ठा जितेंद्रियाः ॥१४॥
संसारबंधच्छेदार्थं ज्ञानमार्गप्रकाशकम् ।
स्वरूपज्ञानसिद्धयर्थं योगं पाशुपतं महत् ॥१५॥

उस समय मे योगात्मा और महान् आत्मा वाले वेदों के पारगामी ब्राह्मण माहेश्वर योग की प्राप्ति करके परम विमल और ऊर्ध्व

रेतस हो जायेंगे और फिर वे रुद्र लोक को प्राप्त करेंगे जहाँ पहुँचकर पुनः इस ससार मे आवृत्ति होती ही नही है। ये पाशुवत सिद्ध है जिनका सम्पूर्ण शरीर भस्म से उद्धूलित रहा करता है ॥१२॥१३॥ ये नित्य ही लिङ्ग की अर्चना मे रत रहने वाले हैं जो बाहिर और भीतर उसी अर्चन मे स्थित रहा करते हैं। भक्ति की भावना के द्वारा मुझमे योग से ध्याननिष्ठ होते हैं और इन्द्रियो को जीतकर रखने वाले हैं ॥१४॥ इस ससार के बन्धन का छेदन करने के लिए ज्ञान के मार्ग को प्रकाशित करने वाला है तथा स्वरूप के ज्ञान की सिद्धि के लिए पाशुपत योग महान् होता है ॥१५॥

योगमार्गा अनेकाश्च ज्ञानमार्गास्त्वनेकशः ।
न निवृत्तिमुपायाति विना पचाक्षरी क्वचित् ॥१६॥
यदाचरेत्तपश्चाय सर्वद्वद्वविवर्जितम् ।
तदा स मुक्तो मतव्यः पक्वं फलमिव स्थितः ॥१७॥
एकाह यः पुमान्सम्यक् चरेत्पाशुपतव्रतम् ।
न साख्ये पञ्चरात्रे वा न प्राप्नोति गति कदा ॥१८॥
इत्येतद्वै मया प्रोक्तमवतारेषु लक्षणम् ।
मन्वादिकृष्णपर्यंतमष्टाविशद्युगक्रमात् ॥१९॥
तत्र श्रुतिसमूहाना विभागो धर्मलक्षणः ।
भविष्यति तदा कल्पे कृष्णद्वैपायनो यदा ॥२०॥
निशम्यैवं महातेजा महादेवेन कीर्तितम् ।
रुद्रावतारं भगवान् प्रणिपत्य महेश्वरम् ॥२१॥

यो तो योग के अनेक मार्ग हैं और बहुत से ज्ञान के भी मार्ग होते हैं। किन्तु 'ओ नमो शिवाय"—इस पञ्चाक्षरी मन्त्र की जप विद्या के बिना कोई भी निवृत्ति को प्राप्त नहीं होते हैं ॥१६॥ जो समस्त द्वन्द्वो से रहित इस तप का आचरण किया करता है सब उसे मुक्त ही मान लेना चाहिए। वह तो पके हुये फल की भाँति ही स्थित

होता है ।।१७।। जो पुष्प एक दिन वाले इस पाशुपत व्रत का भली-भाँति आचरण करता है वह साख्य अथवा पञ्चरात्र मे कही गति को प्राप्त नही होता है ।।१८।। यह मैंने अवतारो मे लक्षण कह दिया है जो अष्ठा विंशत युग के क्रम से मन्वादि कृष्ण पर्यन्त है ।।१९।। उस कल्प मे जबकि कृष्ण द्वैपायन होगे श्रुतियो के समूहो का धर्मानक्षण विभाग होगा ।।२०।। सूतजी ने कहा—इस प्रकार से महान् तेज वाले प्रजापति ने महादेव के द्वारा कहे गये इस सबका श्रवण करके रुद्रावतार महेश्वर को प्रणाम किया था ।।२१।।

तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः पुनः प्राह च शङ्करम् ।
सर्वे विष्णुमया देवाः सर्वे विष्णुमया गणाः ।।२२।।
न हि विष्णुसमा काचिद्गतिरन्या विधीयते ।
इत्येव सतत वेदा गायति नात्र सशयः ।।२३।।
स देवदेवो भगवास्तव लिगार्चने रतः ।
तव प्रणामपरमः कथ देवो ह्यभूतप्रभुः ।।२४।।
निशम्य वचन तस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिन ।
प्रपिबन्निव चक्षुर्भ्या प्रीतस्तत्प्रश्नगौरवात् ।।२५।।
पूजाप्रकरण तस्मै तमालोक्याह शङ्कर ।
भवान्नारायणश्चैव शक्र साक्षात्सुरोत्तमः ।।२६।।
मुनयश्च सदा लिग संपूज्य विधिपूर्वकम् ।
स्वस्व पद विभो प्राप्तास्तस्मात्सपूजयति ते ।।२७।।
लिङ्गार्चन विना निष्ठा नास्ति तस्माज्जनार्दनः ।
आत्मनो यजते नित्य श्रद्धया भगवान्प्रभुः ।।२८।।
इत्येवमुक्त्वा ब्रह्माणमनुगृह्य महेश्वरः ।
पुनः सप्रेक्ष्य देवेश तत्रैवातरधीयत ।।२९।।
तमुद्दिश्य तदा ब्रह्मा नमस्कृत्य कृताजलि ।
स्रष्टुं त्वशेष भगवाँल्लब्धसज्ञस्तु शङ्करात् ।।३०।।

और अभीष्ट वाणियों के द्वारा महेश्वर का स्तवन किया था। इसके पश्चात् भगवान शङ्कर से कहा था—पितामह ने कहा—समस्त देवता विष्णुमय हैं और सम्पूर्ण गण भी विष्णुमय हैं। विष्णु के समान अन्य कोई भी गति का विधान नहीं है। इसी प्रकार से समस्त वेद निरन्तर गान किया करते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२२॥ ॥२३॥ वह देवों का भी देव भगवान् विष्णु भी आपके लिङ्ग की अर्चना में निरत रहा करते हैं और निरन्तर आपको प्रणाम करने वाले होते हैं तो वह प्रभु कैसे देव हैं? ॥२४॥ सूतजी ने कहा—परमेष्ठी ब्रह्मा के इस वचन को सुनकर नेत्रों से मानों पान कर रहे हैं। इस तरह से उसके इस प्रश्न के गौरव से शङ्कर बहुत प्रसन्न हुए थे ॥२५॥ उसको देखकर उसके लिये शङ्कर ने पूजा का प्रकरण कहा था। भगवान् नारायण और शक्र (इन्द्र) साक्षात् सुरोत्तम हैं ॥२६॥ मुनिगण सदा विधि पूर्वक लिङ्ग का पूजन करके हे विभो! अपने-अपने पद को प्राप्त हुए हैं इससे वे पूजा किया करते हैं ॥२७॥ लिङ्ग की अर्चना के बिना निष्ठा नहीं होती है इससे जनार्दन भगवान् प्रभु नित्य श्रद्धा की भावना से आत्मा का यजन किया करते हैं ॥२८॥ इस प्रकार से इतना यह कह कर महेश्वर ब्रह्मा पर अनुग्रह करके और पुनः देवेश भली-भाँति देखकर वहाँ पर ही अन्तर्हित हो गये थे ॥२९॥ उस समय में ब्रह्माजी ने उनका उद्देश्य करके हाथ जोड़कर प्रणाम किया था क्योंकि भगवान् शङ्कर से समस्त का सृजन करने के लिए अनुज्ञा प्राप्त करली थी ॥३०॥

शिवोक्त स्नान विधि

कथं पूज्यो महादेवो लिंगमूर्तिर्महेश्वरः ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं रोमहर्षण सांप्रतम् ॥१॥

देव्या पृष्टो महादेवः कैलासे तां नगात्मजाम् ।
श्रंकस्थामाह देवेशो लिंगार्चनविधिं क्रमात् ॥२॥
तदा पार्श्वे स्थितो नंदी शालंकायनकात्मजः ।
श्रुत्वाखिलं पुरा प्राह ब्रह्मपुत्राय सुव्रताः ॥३॥
सनत्कुमाराय शुभं लिंगार्चनविधिं परम् ।
तस्माद्व्यासो महातेजाः श्रुतवाञ्छ्रुतिसम्मितम् ॥४॥
स्नानयोगोपचारं च यथा शैलादिनो मुखात् ।
श्रुतवान् तत्प्रवक्ष्यामि स्नानाद्यं चार्चनाविधिम् ॥५॥
अथ स्नानविधिं वक्ष्ये ब्राह्मणाना हिताय च ।
सर्वपापहरं साक्षाच्छिवेन कथितं पुरा ॥६॥
अनेन विधिना स्नात्वा सकृत्पूज्य च शङ्करम् ।
ब्रह्मकूर्चं च पीत्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥७॥

ऋषियो ने कहा--हे रोमहर्षण ! लिङ्ग की मूर्ति वाले महेश्वर किस प्रकार से पूजा के योग्य हुये है । अब आप हम लोगो को इसे बताने के योग्य होते हैं ॥१॥ सूतजी ने कहा—कैलास गिरि पर एक बार भवानी के द्वारा पूछे गये महादेव ने उस नगात्मजा को अपनी गोद मे स्थित करके देवेश ने लिङ्गार्चन की विधि को क्रम से कहा था ॥२॥ उस समय मे भगवान शङ्कर के समीप मे शालङ्कायन का पुत्र नन्दी स्थित था उसने इस सम्पूर्ण विधान का श्रवण करके पहिले हे सुव्रतो । ब्रह्मा के पुत्र के लिए कहा था ॥३॥ यह परम शुभ लिङ्ग के अर्चना की विधि जो सनत्कुमार से कही गई थी और उससे महान् तेज वाले व्यास ने इस श्रुति सम्मित का श्रवण किया था ।।४॥ शैलादि के मुख से जिस प्रकार से स्नान योगोपचार मैंने सुना था उसे स्नानादिक को और अर्चना की विधि को मैं बताता हूँ ॥५॥ शैलादि ने कहा—इसके अनन्तर मैं अब स्नान की विधि को बताता हूँ जो कि ब्राह्मणो के हित का सम्पादन करने के लिये ही कर रहा हूँ । यह समस्त प्रकार

के पापो का हरण करने वाला है और इसे पहले स्वय साक्षात् शिव ने कहा था ॥६॥ इस विधि विधान से स्नान करके और एक वार शङ्कर का पूजन करके तथा ब्रह्मकूर्च का पान करके मनुष्य सभी तरह के पापो से प्रमुक्त हो जाया करता है ॥७॥

त्रिविधं स्नानमाख्यातं देवदेवेन शंभुना ।
हिताय ब्राह्मणाद्यानां चतुर्मुखसुतोत्तम ॥८॥
वारुणं पुरतः कृत्वा ततश्चाग्नेयमुत्तमम् ।
मंत्रस्नान ततः कृत्वा पूजयेत्परमेश्वरम् ॥९॥
भावदुष्टोऽम्भसि स्नात्वा भस्मना च न शुद्धयति ।
भावशुद्धश्चरेच्छौचमन्यथा न समाचरेत् ॥१०॥
सरित्सरस्तडागेपु सर्वेष्वाप्रलयं नरः ।
स्नात्वापि भावदुष्टश्चेन्न शुध्यति संशयः ॥११॥
नृणा हि चित्तकमल प्रबुद्धमभवद्यदा ।
प्रसुप्तं तमसा ज्ञानभानोर्भासा तदा शुचिः ॥१२॥
मृच्छकृत्तिलपुष्पं च स्नानार्थं भसितं तथा ।
आदाय तीरे निःक्षिप्य स्नानतीर्थे कुशानि च ॥१३॥
प्रक्षाल्याचम्य पादौ च मल देहाद्विशोध्य च ।
द्रव्यैस्तु तीरदेशस्थैस्ततः स्नानं समाचरेत् ॥१४॥

देवो के भी देव भगवान् शम्भु ने तीन प्रकार का स्नान बताया है। हे चतुर्मुख के सुतो मे परम श्रेष्ठ ! यह ब्राह्मणादि के हित-सम्पादन करने के लिये ही कहा गया है ॥८॥ सर्व प्रथम वारुण अर्थात् जल का स्नान करे। इसके पश्चात् आग्नेय अर्थात् भस्म स्नान करे जो कि परम उत्तम स्नान कहा जाता है। इन दोनो स्नानो के पश्चात् मार्जन के स्वरूप वाला मन्त्र स्नान करना चाहिए। इनके अनन्तर परमेश्वर की पूजा करे ॥९॥ भावना की शुद्धि परम आवश्यक है। जो भाव से दुष्ट

हो तो जल मे स्नान करके तथा भस्म से भी स्नान कर लेने पर कभी शुद्ध नही होता है। अतएव भाव से शुद्ध होकर ही शुद्धि करनी चाहिये और अन्यथा कभी भी न करे ॥१०॥ सरित, सरोवर और तडागो मे सब मे प्रलय पर्यन्त भी मनुष्य स्नान करके भी यदि भाव दुष्ट है तो कभी शुद्ध नही होता है, यह सत्य सिद्धान्त है, इसमें तनिक भी संशय नही है ॥११॥ मनुष्यो का यह चित्त जो कमल के समान है जब प्रबुद्ध हो गया जो कि तम से प्रसुप्त हो रहा था। इसका विकास ज्ञान रूपी सूर्य की दीप्ति ही से होता है, तभी वह शुचि हो जाता है ॥१२॥ मृत्तिका, गोमय, तिल, पुष्प और भस्म स्नान के लिए तीर पर लाकर स्नान तीर्थ पर कुशाग्रो का प्रक्षेप करे ॥१३॥ पादों का प्रक्षालन करके आचमन करे और फिर देह से मल का विशोधन करना चाहिये। इसके अनन्तर तीर देश पर स्थित द्रव्यों से स्नान करना चाहिए ॥१४॥

उद्धृतासीतिमंत्रेण पुनर्देहं विशोधयेत् ।
मृदादाय ततश्चान्यद्वस्त्रं स्नात्वा ह्यनुल्बणम् ॥१५॥
गंधद्वारां दुराधर्षामिति मंत्रेण मंत्रवित् ।
कपिलागोमयेनैव खस्थेनैव तु लेपयेत् ॥१६॥
पुनः स्नात्वा परित्यज्य तद्वस्त्रं मलिनं ततः ।
शुक्लवस्त्रपरोधानो भूत्वा स्नानं समाचरेत् ॥१७॥
सर्वपापविशुद्धयर्थमावाह्य वरुणं तथा ।
सपूज्य मनसा देवं ध्यानयज्ञेन वै भवम् ॥१८॥
आचम्य त्रिस्तदा तीर्थे ह्यवगाह्य भवं स्मरन् ।
पुनराचम्य विधिवदभिमन्त्र्य महाजलम् ॥१६॥
अवगाह्य पुनस्तस्मिन् जपेद्वै चाघ मर्षणम् ।
तत्तोये भानुसोमाग्निमडलं च स्मरेद्वशी ॥२०॥
आचम्य च पुनस्तस्माज्जलादुत्तीर्य मंत्रवित् ।
प्रविश्य तीर्थमध्ये तु पुनः पुण्यविवृद्धये ॥२१॥

इसके उपरान्त "उद्धृतासिवराहेण" इस मन्त्र से पुन देह का शोधन करना चाहिए। मृत्तिका को लेकर अपने शरीर की भली-भाँति शुद्धि करे। इसके उपरान्त अन्य निर्मल वस्त्र धारण करे ॥१५॥ मन्त्र के वेत्ता पुरुष को "गन्ध द्वारा दुराधर्षाम्"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा कपिला गौ के गोमय से प्रलेपन करना चाहिए ॥१६॥ इसके उपरान्त पुन स्नान करके उस मलिन वस्त्र का त्याग कर देवे। शुक्ल वस्त्र का परिधान करके ही स्नान करना चाहिये ॥१७॥ समस्त पापो की विशुद्धि के लिए वरुण का आवाहन करे और ध्यान यज्ञ से मन के द्वारा देव भव का भली-भाँति पूजन करना चाहिये ॥१८॥ उस समय मे तीन बार आचमन करके भव का स्मरण करते हुए तीर्थ मे अवगाहन करे। फिर आचमन करके विधि के साथ महाजल को अभिमन्त्रित करे ॥१९॥ पुन उसमे अवगाहन करके अघमर्षण मन्त्र का जप करना चाहिए। "ऋत च सत्य च" इत्यादि अघमर्षण का मन्त्र होता है। उस जल मे वशी को सूर्य, सोम और अग्नि के मण्डल का स्मरण करना चाहिए। ॥२०॥ इसके पश्चात् पुन आचमन करके मन्त्र वेत्ता पुरुष को जल से उत्तरण करना चाहिये। फिर तीर्थ के मध्य मे पुन पुण्यो की विशेष वृद्धि के लिये प्रवेश करे ॥२१॥

शृ गेण पर्णपुटकै पालाशै क्षालितैस्तथा।
सकुशेन सपुष्पेण जलेनैवाभिषेचयेत् ॥२२॥
रुद्रेण पवमानेन त्वरितास्येन मत्रवित् ।
तरत्समदीवर्गाद्यै स्तथा शातिद्वयेन च ॥२३॥
शातिधर्मेण चैकेन पञ्चब्रह्मपवित्रकै ।
तत्तन्मत्राधिदेवाना स्वरूप च ऋषीन् स्मरन् ॥२४॥
एव हि चाभिषिच्याथ स्वमूर्ध्नि पयसा द्विजा ।
ध्यायेच्च त्र्यबक देव हृदि पञ्चास्यमीश्वरम् ॥२५॥

आचम्याचमनं कुर्यात्स्वसूत्रोक्तं समीक्ष्य च ।
पवित्रहस्तः स्वासीनः शुचौ देशे यथाविधि ॥२६॥
अभ्युक्ष्य सकुशं चापि दक्षिणेन करेण तु ।
पिबेत्प्रक्षिप्य त्रिस्तोयं चक्री भूत्वा ह्यतन्द्रितः ॥२७॥
प्रदक्षिणं ततः कुर्याद्धिसापापप्रशांतये ।
एव संक्षेपतः प्रोक्तं स्नानाचमनमुत्त मम् ॥२८॥
सर्वेषा ब्राह्मणाना तु हितार्थं द्विजसत्तमाः ॥२९॥

पलास के पत्तो के दोनो मे जो कि जल से क्षालित कर लिये गये हो जल लेकर जिसमे कुशा और पुष्प हो भृङ्ग मन्त्र के द्वारा उस जल से अभिषेक करना चाहिए ॥२२॥ फिर मन्त्रो के ज्ञाता पुरुष को स्वरितान्त्य पवमान 'यो रुद्र"—इत्यादि मन्त्र से "शनो मित्र" तरत्स-मदी वर्गाध मन्त्र और "शनोदेवी" इस शान्ति धर्म मन्त्र से तथा सद्योजातादि पञ्च ब्रह्म पवित्रक मन्त्रो से उन-उन मन्त्रो के अधिष्ठाता देवो का और उनके ऋषियो के स्वरूप का स्मरण करते हुए अभिषेक करना चाहिए ॥२३॥२४॥ हे द्विजगण ! इस प्रकार से जल के द्वारा अपने मस्तक पर अभिषिञ्चन करके हृदय मे पाँच मुख वाले ईश्वर त्र्यम्बक देव का ध्यान करना चाहिए ॥२५॥ आचमन करके अपने सूत्र मे उक्त का समीक्षण करके आचमन करना चाहिए । फिर पवित्र हाथो वाला होकर शुचि देश मे यथाविधि बैठकर कुशा के साथ अभ्युक्षण करके दाहिने हाथ से पान करे। तीन बार जल को प्रक्षिप्त कर चक्री होकर अतन्द्रित हो जाना चाहिए। इसके अनन्त हिंसा के पाप की प्रशान्ति के लिये प्रदक्षिणा करे । इस प्रकार से यह उत्तम स्नान और आचमन का विधान मैंने सक्षेप मे वर्णित कर दिया है ॥२६॥२७॥ ॥२८॥ मैंने यह समस्त ब्राह्मणों के हित के सम्पादन के लिए ही हे द्विजोत्तमो ! वर्णन किया है ॥२९॥

संध्या, नित्यकर्म, पंचयज्ञविधानम्

आवाह येत्ततो देवी गायत्री वेदमातरम् ।
आयातु वरदा देवीत्यनेनैव महेश्वरीम् ॥१॥
पाद्यमाचमनीयं च तस्याश्चार्घ्यं प्रदापयेत् ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा समासीनः स्थितोपि वा ॥२॥
सहस्र वा तदर्ध वा शतमष्टोत्तरं तु वा ।
गायत्री प्रणवेनैव त्रिविधेष्वेकमाचरेत् ॥३॥
अर्घ्यं दत्वा समभ्यर्च्य प्रणम्य शिरसा स्वयम् ।
उत्तमे शिखरे देवीत्युक्त्वोद्वास्य च मातरम् ॥४॥
प्राच्यालोक्याभिवंद्येशा गायत्री वेतमातरम् ।
कृतांजलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेद्भास्करं तथा ॥५॥
उदुत्यं च तथा चित्रं जातवेदसमेव च ।
अभिवद्य पुनः सूर्यं ब्रह्माणं च विधानतः ॥६॥
तथा सौराणि सूक्तानि ऋग्यजुः सामजानि च ।
जप्त्वा प्रदक्षिणं पश्चात्त्रिः कृत्वा च विभावसोः ॥७॥

नन्दी ने कहा—इसके पश्चात् वेदों की माता गायत्री देवी का आवाहन करे। "आयातु वरदा देवि"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा महेश्वरी का आवाहन करना चाहिए। फिर उस महादेवी गायत्री को अर्घ्य, पाद्य और आचमनीय देवे। इसके अनन्तर तीन प्राणायाम करे और पद्म आदि आसन मे बैठकर करे या स्थित होकर ही करे ॥१॥२॥ इसके उपरान्त एक सहस्र, पाँच सौ अथवा अष्टोत्तर शत बार प्रणव के सहित तीनो प्रकार के जपो मे से एक प्रकार का जाप करना चाहिये। यह तीन प्रकार के उत्तम, मध्यम और अधम जपो मे से जैसा भी समय प्राप्त हो एक तरह का जप करे। इसके पूर्व स्वय सूर्यदेव को अर्घ्य देवे, भली-भाँति अर्चन करे और शिर से प्रणाम करके ही जप करना चाहिये "उत्तमे शिखरे देवि"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा गायत्री माता का उद्वास

न करे ॥३॥४॥ पूर्व दिशा में देखकर और देवेशी वेदमाता गायत्री की अभिवन्दना करके फिर हाथ जोडकर भगवान् भुवन भास्कर की प्रार्थना करे ॥५॥ उदुत्य, चित्र तथा जात वेदा (अग्नि) को नमस्कार करके फिर सूर्य और ब्रह्मा की विधान पूर्वक अभिवन्दना करनी चाहिए ॥६॥ इसके अनन्तर सौर सूक्त तथा ऋक्, यजु और साम का जप अर्थात् पाठ करके फिर विभा वसुदेव की तीन प्रदक्षिणा करे ॥७॥

आत्मानं चांत रात्मानं परमात्मानमेव च ।
अभिवंद्य पुनः सूर्यं ब्रह्माणं च विभावसुम् ॥८॥
मुनीन्पितॄन् यथान्यायं स्वनाम्नावाहयेत्ततः ।
सर्वानावाहयामीति देवानावाह्य सर्वतः ॥९॥
तर्पयेद्विधिना पश्चात्प्राङ् मुखो वा ह्यु दङ् मुखः ।
ध्यात्वा स्वरूपं तत्तत्वमभिवंद्य यथाक्रमम् ॥१०॥
देवानां पुष्पतोयेन ऋषीणां तु कुशाम्भसा ।
पितॄणा तिलतोयेन गन्धयुक्तेन सर्वतः ॥११॥
यज्ञोपवीती देवाना निवीती ऋपितर्पणम् ।
प्राचीनावीती विप्रेन्द्र पितॄणा तर्पयेत् क्रमात् ॥१२॥
अंगुल्यग्रण वै धीमास्तर्पयेद्देवतर्पणम् ।
ऋषीन् कनिष्ठागुलिना श्रोत्रियः सर्वसिद्धये ॥१३॥
पितॄंस्तु तर्पयेद्विद्वान्दक्षिणांगुष्ठकेन तु ।
तथैव मुनिशार्दूल ब्रह्मयज्ञ यजेद्द्विजः ॥१४॥

फिर आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा की अभिवन्दना करके सूर्य, ब्रह्मा और विभावसु को तथा मुनिगण और पितरों को यथोचित विधि से अपने नाम से आवाहित करना चाहिये। अन्त में मैं सबका आवाहन करता हूँ, यह कहकर सभी ओर से देवों का आवाहन करे फिर विधि पूर्वक प्राङ् मुख अथवा उदङ् मुख होकर तर्पण करे। स्वरूप का ध्यान करके उनके तत्व को क्रम से अनुसार प्रणाम करे ॥८॥९॥

॥१०॥ देवों का पुष्प युक्त जल से, ऋषियों का कुश युक्त जल से और पितरों का गन्ध और तिलों से समन्वित जल से तर्पण करना चाहिये। ॥११॥ हे विप्रेन्द्र ! देवों का तर्पण यज्ञोपवीती होकर करे, ऋषियों का तर्पण निवीती होकर और पितरों का तर्पण प्राचीन वीती होकर करना चाहिए ॥१२॥ देवों का तर्पण अङ्गुली के अग्रभाग से करे और धीमान् श्रोत्रिय पुरुष को ऋषियों का तर्पण समस्त सिद्धि के लिये कनिष्ठ अङ्गुली से करना चाहिए ॥१३॥ विद्वान् पुरुष को पितृगण का तर्पण दक्षिण अङ्गुष्ठ से करना चाहिये। हे मुनि शार्दूल ! इसी भाँति से द्विज को ब्रह्म यज्ञ का यजन करना चाहिये ॥१४॥

देवयज्ञं च मानुष्यं भूतयज्ञं तथैव च।
पितृयज्ञं च पूतात्मा यज्ञकर्मपरायण ॥१५॥
स्वशाखाध्ययनं विप्र ब्रह्मयज्ञ इति स्मृत।
अग्नौ जुहोति यच्चान्नं देवयज्ञ इति स्मृत ॥१६॥
सर्वेषामेव भूताना बलिदानं विधानत।
भूतयज्ञ इति प्रोक्तो भूतिदः सर्वदेहिनाम् ॥१७॥
सदारान्सर्वतत्त्वज्ञान्ब्राह्मणान्वेदपारगान्।
प्रणम्य तेभ्यो यद्दत्तमन्नं मानुष उच्यते ॥१८॥
पितृनुद्दिश्य यद्दत्तं पितृयज्ञ स उच्यते।
एवं पञ्च महायज्ञान्कुर्यात् सर्वार्थसिद्धये ॥१९॥
सर्वेषां शृणु यज्ञानां ब्रह्मयज्ञ परः स्मृत।
ब्रह्मयज्ञरतो मर्त्यो ब्रह्मलोके महीयते ॥२०॥
ब्रह्मयज्ञेन तुष्यति सर्वे देवा सवासवा.।
ब्रह्मा च भगवान्विष्णु शंकरो नीललोहित ॥२१॥

देव यज्ञ मानुष्य, भूतयज्ञ और पितृयज्ञ—इनसे भूत आत्मा वाला यज्ञ कर्म मे परायण पुरुष जो वेद मे अपनी शाखा का अध्ययन करता है हे विप्र ! वही ब्रह्म यज्ञ कहा जाता है। अग्नि मे जो अन्न का

हवन करता है वह देव यज्ञ कहा गया है ॥१५॥१६॥ समस्त भूतों का विधान पूर्वक बलिदान जिसमें किया जाता है वह भूत यज्ञ कहा गया है जो कि समस्त देहधारियों के लिये भूति का प्रदान करने वाला होता है ॥१७॥ सम्पूर्ण तत्वों के ज्ञाता और वेदों के पारङ्गत पत्नी के सहित ब्राह्मणों को प्रणाम पूर्वक जो अन्न का दान दिया जाता है वह मानुष यज्ञ के नाम से कहा जाता है ॥१८॥ पितृगण का उद्देश्य करके जो कुछ भी दिया गया है वह पितृ यज्ञ कहा जाता है। इस प्रकार से ये पाँच महायज्ञ होते हैं। इनको सम्पूर्ण अर्थों की सिद्धि के लिये करना ही चाहिये ॥१९॥ इन समस्त यज्ञों में जो ब्रह्म यज्ञ होता है वह पर कहा गया है। ब्रह्म यज्ञ में अनुरत रहने रहने वाला मनुष्य ब्रह्म लोक में महिमान्वित होकर प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥२०। ब्रह्म यज्ञ से वासव (इन्द्र) के सहित समस्त देवगण सन्तुष्ट हुआ करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु भगवान् और नील लोहित शङ्कर ये सभी परम सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥२१॥

वेदाश्च पितरः सर्वे नात्र कार्या विचारणा ।
ग्रामाद्बहिर्गतो भूत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मयज्ञवित् ॥२२॥
यावत्त्वदृष्टमभवदुटजाना दृष्ट नरः ।
प्राच्यामुदीच्यां च तथा प्रागुदीच्यामथापि वा ॥२३॥
पुण्यमाचमन कुर्याद्ब्रह्मयज्ञार्थमेव तत् ।
प्रीत्यर्थं च ऋचा विप्राः त्रिः पीत्वाप्यप्राश्य च ॥२४॥
यजुषा परिमृज्यैव द्विः प्रक्षाल्य च वारिणा ।
प्रीत्यर्थं सामवेदानामुपस्पृश्य च मूर्धनि ॥२५॥
स्पृशेदथर्ववेदानां नेत्रे चाङ्गिरसां तथा ।
नासिके ब्राह्मणोऽङ्गानां क्षाल्यक्षाल्य च वारिणा ॥२६॥
अष्टादशपुराणानां ब्रह्माद्यानां तथैव च ।
तथा चोपपुराणानां सौरादीनां यथाक्रमम् ॥२७॥

पुण्यानामितिहासानां शैवादीनां तथैव च ।
श्रोत्रे स्पृशेद्धि तुष्ट्यर्थं हृद्देश्यं तु ततः स्पृशेत् ॥२८॥

वेद और समस्त पितृगण भी इस ब्रह्म यज्ञ से संतृप्त हो जाते है—इस विषय मे कुछ भी विचार नही करना चाहिए। अब उस ब्रह्म यज्ञ के करने के विधान को बताया जाता है कि ब्रह्म यज्ञ के वेत्ता ब्राह्मण को ग्राम से बाहिर जाकर रहना चाहिये ॥२२॥ जब तक अदृष्ट हो वहाँ पर मनुष्य को उटजो (झोपडियो) का छद होना चाहिये। प्राची (पूर्व दिशा) में और उदीची (उत्तर दिशा) मे अथवा प्रागुदीची मे स्थित होकर रहे ॥२३॥ ब्रह्म यज्ञ के ही लिये पुण्य आचमन करे। हे विप्रगण ! ऋचाओ को प्रीति के लिये प्लावित कर करके तीन बार पीवे ॥२४॥ इसी प्रकार से यजुषो का दो बार जल से प्रक्षालन करके परिमार्जन करे। तथा सामवेदो की प्रीति के लिये मस्तक मे उपस्पर्शन करना चाहिये ॥२५॥ अथर्व वेदो की प्रीति के अर्थ नेत्र मे करे तथा आङ्गिरसो की प्रीति के लिये नासिका मे जल से उपस्पर्शन करे। ब्राह्मण को वेदाङ्गो की प्रीति के लिये जल से क्षालन करना चाहिये ॥२६॥ अष्टादश पुराणो की तथा ब्रह्मादि की और उपपुराणो की सौरादि की प्रीति के लिए यथाक्रम करे ॥२७॥ पुण्य इतिहासो की तथा शैवादि की प्रीति के लिये श्रोत्र मे स्पर्श करे और इसके पश्चात् तुष्टि के लिये हृद्देश मे स्पर्श करना चाहिये ॥२८॥

कल्पादीनां तु सर्वेषां कल्पवित्कल्पवित्तमाः ।
एवमाचम्य चास्तीर्य दर्भपिंजूलमात्मनः ॥२९॥
कृत्वा पाणितलेधी मानात्मनो दक्षिणोत्तरम् ।
हेमांगुलीयसंयुक्तो ब्रह्मवधयुतोपि वा ॥३०॥
विधिवद्ब्रह्मयज्ञं च कुर्यात्सूत्री समाहितः ।
अकृत्वा च मुनिः पञ्च महायज्ञान्द्विजोत्तमः ॥३१॥
भुक्त्वा च सूकराणां तु योनौ वै जायते नरः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्याः शुभमिच्छता ॥३२॥

ब्रह्मयज्ञादथ स्नानं कृत्वादौ सर्वथात्मनः ।
तीर्थं सगृह्य विधिवत्प्रविशेच्छिबिरं वशी ॥३३॥
बहिरेव गृहात्पादौ हस्तौ प्रक्षाल्य वारिणा ।
भस्मस्नानं ततः कुर्याद्विधिवद्देहशुद्धये ॥३४॥
शोध्य भस्म यथान्याय प्रणवेनाग्निहोत्रजम् ।
ज्योतिः सूर्य इति प्रातर्जुहुयादुदिते यतः ॥३५॥

हे कल्प वित्तमो ! कल्प के वेत्ता पुरुष को समस्त कल्प आदि की प्रीति के लिये इस प्रकार से आचमन करके अपना दर्भ पिंजूल को आस्तृत करे। बुद्धिमान पुरुष अपने दक्षिण, उत्तर में पाणितल में करे। सुवर्ण की अङ्गुलीय (अँगूठी) से सयुक्त हो अथवा ब्रह्म बन्ध से युक्त होवे ॥२९॥३०॥ सूत्री अत्यन्त समाहित होता हुआ विधि विधान के साथ ब्रह्म यज्ञ का सम्पादन करे। द्विजो मे उत्तम मुनि इन पाँचो महायज्ञो को न करके भोजन कर लेता है तो वह मनुष्य सूकरो की योनि मे जाकर उत्पन्न होता है। इसलिये सम्पूर्ण प्रयत्नो के साथ शुभ की इच्छा रखने वाले मनुष्य को ये पाँच महायज्ञ अवश्य ही करने चाहिए ॥३१॥३२॥ ब्रह्मयज्ञ के अनन्तर अपने शरीर का निमज्जन स्वरूप स्नान चाहिय और इसके पश्चात् तीर्थ का सग्रहण करके शिविर मे विधिवत् वशी पुरुष को प्रवेश करना चाहिये ॥३३॥ घर के बाहिर ही जल से हाथो और पैरो का प्रक्षालन करके फिर भस्म स्नान विधि पूर्वक देह की शुद्धि के लिए करना चाहिये ॥३४॥ अग्निहोत्र से उत्पन्न होने वाली भस्म को प्रणव के द्वारा यथोचित रूप से शोधित करे। सूर्य ज्योति है अतः प्रातःकाल मे सूर्य के उदित होने पर हवन करना चाहिये ॥३५॥

ज्योतिरग्निस्तथा सायं सम्यक् चानुदिते मृषा ।
तस्मादुदितहोमस्य भसितं पावनं शुभम् ॥३६॥
नास्ति सत्यसमं यस्मादसत्यं पातकं च यत् ।
ईशानेन शिरोदेशं मुखं तत्पुरुषेण च ॥३७॥

उरोदेशमघोरेण गुह्यं वामेन सुव्रताः।
सद्येन पादौ सर्वांगं प्रणवेनाभिषेचयेत् ॥३८॥
ततः प्रक्षालयेत्पादं हस्तं ब्रह्मविदा वरः।
व्यपोह्य भस्म चादाय देवदेवमनुस्मरन् ॥३९॥
मंत्रस्नानं ततः कुर्यादापोहिष्ठादिभिः क्रमात्।
पुण्यैश्चैव तथा मंत्रैर्ऋग्यजुः सामसंभवैः ॥४०॥
द्विजानां तु हितार्यंवं कथित स्नानमद्य ते।
संक्षिप्य यः सकृत्कुर्यात्स याति परमं पदम् ॥४१॥

अग्नि ज्योति है अतः उसी प्रकार से भली-भाँति हवन करना चाहिये। अनुदिन मे करना मृगा होता है। इसलिये उदित मे किये हुए होम मे स्थित ही भस्म परम पावन एवं शुभ होता है ॥३६॥ जिस कारण से सत्य सर्वोपरि परम उत्तम है और इसके समान अन्य कुछ भी नही है और असत्य महान् पातक होता है। "ईशान" से शिरो देश का, "तत्पुरुष" से मुख का, "अघोर" से उर स्थल का और "वाम" से गुह्य का, "सद्य" से पैरो का और सर्वाङ्ग का प्रणव से अभिषिञ्चन करना चाहिए ॥३७॥३८॥ इसके अनन्तर ब्रह्म के वेत्ताओ मे श्रेष्ठ पुरुष को पाद और हस्त का प्रक्षालन करना चाहिये। भस्म को लाकर और व्यपोहित करके देवो के देव का अनुस्मरण करते हुए फिर क्रम से "आपोहिष्ठा मयो भुवः"--इत्यादि के द्वारा मन्त्र स्नान करना चाहिए जो कि परम पुण्य, पवित्र ऋक् यजु और साम वेदो के ये मन्त्र हैं ॥३९॥ ॥४०॥ द्विजो के हित के लिये इस प्रकार से आज मैंने तुमको इस स्नान का वर्णन करके सुना दिया है। जो एक बार भी सक्षेप मे कर लेगा वह भी परम पद को प्राप्त हो जाता है ॥४१॥

लिंगार्चन विधि

वक्ष्यामि शृणु संक्षेपाल्लिंगार्चनविधिक्रमम्।
वक्तुं वर्षशतेनापि न शक्यं विस्तरेण यत् ॥१॥

एवं स्नात्वा यथान्यायं पूजास्थानं प्रविश्य च ।
प्रोणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेद्देवं त्रियंबकम् ॥२॥
पञ्चवक्रं दश भुज शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।
सर्वाभरणसंयुक्तं चित्रांबरविभूषितम् ॥३॥
तस्य रूपं समाश्रित्य दाहनप्लावनादिभिः ।
शैवीं तनुं समास्थाय पूजयेत्परमेश्वरम् ॥४॥
देहशुद्धिं च कृत्वैव मूलमंत्रं न्यसेत्क्रमात् ।
सर्वत्र प्रणवेनैव ब्रह्माणि च यथाक्रमम् ॥५॥
सूत्रे नमः शिवायेति छंदांसि परमे शुभे ।
मंत्राणि सूक्ष्मरूपेण सस्थितानि यतस्ततः ॥६॥
न्यग्रोधबीजे न्यग्रोधस्तथा सूत्रे तु शोभने ।
महत्यपि महद्ब्रह्म संस्थितं सूक्ष्मवत्स्वयम् ॥७॥

शैलादि ने कहा—अब मैं लिंग के अर्चन की विधि क्रम से से कहता हूं उसे तुम श्रवण करो । यदि इसे विस्तार पूर्वक कहा जावे तो सौ वर्ष मे भी यह वर्णन नही की जा सकती है ॥१॥ इस प्रकार से जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है स्नान करके और न्याय पूर्वक पूजा के स्थान मे प्रवेश करके तीन प्राणायाम करे और फिर देव त्रियम्बक का ध्यान करना चाहिए ॥२॥ उनके ध्यान करने मे इन बातो का ध्यान रखे कि त्र्यम्बक भगवान् के पाँच मुख है, दश भुजाएं है और उनका अङ्ग शुद्ध स्फटिक मणि के समान दिव्य है । उन देव का वपु सम्पूर्ण आभूषणो से समन्वित है तथा चित्र-विचित्र अम्बर से समलङ्कृत है । दाहन और प्लावन आदि के द्वारा उनके रूप का समाश्रित करके स्वयं शैवी तनु मे समास्थित होकर फिर परमेश्वर का पूजन करना चाहिए ॥२॥३॥४॥ अपने देह की शुद्धि करके प्रणव से युक्त "नम शिवाय"—इस मूल मन्त्र का क्रम से न्यास करे । सर्वत्र प्रणव के द्वारा ही और यथा क्रम ब्रह्मो का न्यास करे ॥५॥ परम शुभ "नमः शिवाय"—इस सूत्र मे छन्द और मन्त्र सूक्ष्म रूप से सस्थित

रहा करते हैं। जिस प्रकार वट के फल मे जो अत्यन्त सूक्ष्म न्यग्रोध (वड) के वीज होते हैं उस एक वीज मे इतना विशाल न्यग्रोध का वृक्ष सूक्ष्म रूप से स्थित रहा करता है वैसे ही इस शोभन सूत्र मे महान् से महान् ब्रह्म स्वय सूक्ष्म वत् सस्थित रहा करता है ॥६॥७॥

सेचयेदर्चनस्थान गधचदनवारिणा ।
द्रव्याणि शोधयेत्पश्चात्क्षालनप्रोक्षणादिभि ॥८॥
क्षालन प्रोक्षण चैव प्रणवेन विधीयते ।
प्रोक्षणी चार्घ्यपात्र च पाद्यपात्रमनुक्रमात् ॥६॥
तथा ह्याचमनीयार्थं कल्पित पात्रमेव च ।
स्थापये द्विधिना धीमानवगुण्ठ्य यथाविधि ॥१०॥
दर्भैराच्छादयेच्चैव प्रोक्षयेच्छुद्धवारिणा ।
तेषु तेष्वथ सर्वेषु क्षिपेत्तोय सुशीतलम् ॥११॥
प्रणवेन क्षिपेत्तेषु द्रव्याण्यालोक्य बुद्धिमान् ।
उशीर चदन चैव पाद्ये तु परिकल्पयेत् ॥१२॥
जातिकक्कोलकर्पूरबहुमूलतमालकम् ।
चूर्णयित्वा यथान्याय क्षिपेदाचमनीयके ॥१३॥
एव सर्वेषु पात्रेषु दापयेच्चदन तथा ।
कर्पूर च यथान्याय पुष्पाणि विविधानि च ॥१४॥

देवार्चन करने का जो स्थान है उसका गन्ध, चन्दन से मिश्रित जल के द्वारा सेचन करे। इसके पश्चात् प्रक्षालन तथा प्रोक्षण आदि के द्वारा द्रव्यों का शोधन करना चाहिए ॥८॥ सबका क्षालन तथा प्रोक्षण प्रणव के द्वारा ही किया जाता है। प्रोक्षणी पात्र, अर्घ्य पात्र, और पाद्य पात्र इनका अनुक्रम से साधन करे ॥६॥ उसी प्रकार आचमनीय के लिए जो पात्र कल्पित किया है उसे धीमान् अर्चक को यथा विधि अवगुण्ठित करके स्थापित करना चाहिए ॥१०॥ दर्भो से आच्छादन करे और शुद्ध जल से प्रोक्षण करे। उन उन सबमें सुशीतल जल का क्षेप

करना चाहिए ॥११॥ बुद्धिमान् पुरुष द्रव्यों का आलोकन करके उन पर प्रणव से क्षेपण करे। पाद्य मे उशीर और चन्दन को परिकल्पित करना चाहिए ॥१२॥ जो आचमनीय के लिये पात्र हो उसके जल मे जाति, कक्कोल, कर्पूर, बहुमूल अर्थात् शतावर और तमालक—इन समस्त द्रव्यो का चूर्ण करके यथोचित रूप से क्षेपण करना चाहिए ॥१३॥ इस प्रकार स सभी पात्रो मे चन्दन दिलवाना चाहिए इसके अतिरिक्त कर्पूर तथा विविध भाँति के पुष्प भी डाल देने चाहिए ॥१४॥

कुशाग्रमक्षतांश्चैव यवव्रीहितिलानि च।
आज्यसिद्धार्थपुष्पाणि भसितं चार्घ्यपात्रके ॥१५॥
कुशपुष्पयवव्रीहिबहुमूलतमालकम् ।
दापयेत्प्रोक्षणीपात्रे भसितं प्रणवेन च ॥१६॥
न्यसेत्पंचाक्षरं चैव गायत्री रुद्रदेवताम् ।
केवलं प्रणवं वापि वेदसारमनुत्तमम् ॥१७॥
अथ संप्रोक्षयेत्पश्चाद् द्रव्याणि प्रणवेन तु।
प्रोक्षणीपात्रसंस्थेन ईशानाद्यैश्च पञ्चभिः ॥१८॥
पार्श्वतो देवदेवस्य नंदिनं मां समर्चयेत् ।
दीप्तानलायुतप्रख्यं त्रिनेत्रं त्रिदशेश्वरम् ॥१९॥
बालेंदुमुकुटं चैव हरिवक्त्रं चतुर्भुजम् ।
पुष्पमालाधरं सौम्यं सर्वाभरणभूषितम् ॥२०॥
उत्तरे चात्मनः पुण्यां भार्यां च मरुतां शुभाम्।
सुयशां सुव्रतां चाम्बापादमंडनतत्पराम् ॥२१॥

कुशा का अग्रभाग तण्डुल, यव, व्रीहि, तिल, घृत, सर्षप पुष्प और भस्म के द्रव्य अर्घ्य के पात्र में प्रक्षिप्त करे। प्रोक्षणी पात्र मे प्रणव के द्वारा जो कि वेद का सार है—कुशा, पुष्प, यव, व्रीहि, शता-वर, तमाल और भस्म डालने चाहिये ॥१५॥१६॥ पञ्चाक्षरी मन्त्र का और रुद्र देवता वाली गायत्री का न्यास करे। अथवा केवल समस्त वेदों

के सार स्वरूप तथा सर्वोत्तम प्रणव का न्यास करना चाहिए ।।१७।। इसके अनन्तर प्रणव से पश्चात् द्रव्यों का संप्रोक्षण करे जो कि 'ईशानः सर्व विद्यानाम्''—यहाँ से आरम्भ करके "रुद्राय नमः"—इसके अन्त तक यजुर्वेद के पाँच मन्त्र हैं उनसे प्रोक्षणी पात्र मे सस्थित है। उससे करना चाहिए ।।१८।। देवदेव के पार्श्व मे स्थित नन्दी मेरा अर्चन करे। नन्दी स्वय अपने स्वरूप को बतलाते हैं कि वह प्रदीप्त अग्नि के दश सहस्र गुणित प्रख्या वाले हैं. तीन नेत्रो से युक्त, देवो के ईश्वर, मुकुट मे बालचन्द्र को धारण करने वाले, वानर के सदृश मुख से युक्त, चार भुजाओं वाले, पुष्पों की माला धारण करने वाले, अति सौम्य तथा समस्त आभूषणों से समलङ्कृत हैं। महेश्वर के दक्षिण मे पार्श्व मे तो नन्दी स्वय विराजमान हैं और उत्तर पार्श्व मे अपनी भार्या नन्दी की भार्या हैं उनका अर्चन करना चाहिए। यह परम पुण्यमयी मरुता हैं जो अतिशुभा, सुयशा, सुव्रता और सर्वदा, जगदम्बा भवानी के बाँहों के अलङ्करण की क्रिया मे तत्पर रहने वाली है ।।१६।।२०।।२१।।

एवं पूज्य प्रविश्यांतर्भवनं परमेष्ठिनः ।
दत्वा पुष्पांजलिं भक्त्या पञ्चमूर्धसु पञ्चभिः ।।२२।।
गंधपुष्पैस्तथा धूपैर्विविधैः पूज्य शंकरम् ।
स्कंदं विनायकं देवीं लिंगशुद्धिं च कारयेत् ।।२३।।
जप्त्वा सर्वाणि मंत्राणि प्रणवादिनमोंतकम् ।
कल्पयेदासनं पश्चात्पद्माख्यं प्रणवेन तत् ।।२४।।
तस्य पूर्वदलं साक्षादणिमामयमक्षरम् ।
लघिमा दक्षिणं चैव महिमा पश्चिमं तथा ।।२५।।
प्राप्तिस्तथोत्तरं पत्रं प्राकाम्यं पावकस्य तु ।
ईशित्वं नैऋतं पत्र वशित्वं वायुगोचरे ।।२६।।
सर्वज्ञत्वं तथैशान्यं कर्णिका सोम उच्यते ।
सोमस्याधस्तथा सूर्यस्तस्याध पावकः स्वयम् ।।२७।।

धर्मादयो विदिक्ष्वेते त्वनंतं कल्पयेत्क्रमात् ।
अव्यक्तादिचतुर्दिक्षु सोमस्यांते गुणत्रयम् ॥२८॥

इस प्रकार नन्दी और उसकी भार्या का पूजन करके फिर भगवान् परमेष्ठी के भवन मे अन्दर प्रवेश करे । वहाँ उनके पाँचो मस्तको पर भक्ति की भावना से पुष्पाञ्जलि देवे ॥२२॥ फिर गन्धाक्षत, पुष्प, धूप, दीप आदि विविध प्रकार के उपचारों के द्वारा भगवान् शङ्कर की पूजा करे तथा स्कन्द, विनायक और देवी की अर्चना करके लिङ्ग शुद्धि करनी चाहिए ॥२३॥ प्रणव से आदि लेकर नमः—इसके अन्त तक अर्थात् "ॐ निधनप तपे"—यहाँ से आरम्भ करके "परम लिङ्गाय नमः" इसके अन्त तक समस्त मन्त्रो का जप करके पीछे प्रणव के द्वारा पद्म नामक आसन की कल्पना करे । अर्थात् पद्मासन लगा लेवे ॥२४॥ उसका पूर्व दल साक्षात् अणिमा सिद्धि रूप नाश से शून्य है । दक्षिण दल लघिमा सिद्धि के रूप वाला है, महिमा नामक सिद्धि के स्वरूप वाला पश्चिम दल है ॥२५॥ प्राप्ति सिद्धि स्वरूप उत्तर पत्र है, प्राकाम्य सिद्धि पावक का स्वरूप है, ईशत्व सिद्धि नैऋत पत्र है और वशित्व सिद्धि वायु कोण का पत्र है । सर्वज्ञत्व ऐशान्य है और कमल की कर्णिका अर्थात् मध्य भाग सोम कहा जाता है । सोम के नीचे सूर्य है और सूर्य के नीचे के भाग स्वय पावक है ॥२६॥२७॥ धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य रूप वाले चार आग्नेय आदि उपदिशाओं मे कल्पित क्रम से करने चाहिये । अव्यक्त, महत्तत्व, अहङ्कार और चित्त इन चारों को पूर्वादि दिशाओं मे सोम के अन्त मे और ऊपर मे सत्व, रज और तम इन तीनो गुणो को परिकल्पित करे ॥२८॥

आत्मत्रयं ततश्चोर्ध्वं तस्यान्ते शिवपीठिका ।
सद्योजातं प्रपद्यामीत्यावाह्य परमेश्वरम् ॥२९॥
वामदेवेन मंत्रेण स्थापयेदासनोपरि ।
सान्निध्यं रुद्रगायत्र्या अघोरेण निरोधयेत् ॥३०॥

ईशानः सर्वविद्यानामिति मंत्रेण पूजयेत् ।
पाद्यमाचमनीयं च विभोश्चार्घ्यं प्रदापयेत् ॥३१॥
स्नापयेद्विधिना रुद्रं गंधचंदनवारिणा ।
पञ्चगव्य विधानेन गृह्य पात्रेभिमंत्र्य च ॥३२॥
प्रणवेनैव गव्यैस्तु स्नापयेच्च यथाविधि ।
आज्येन मधुना चैव तथा चेक्षुरसेन च ॥३३॥
पुण्यैर्द्रव्यैर्महादेवं प्रणवेनाभिषेचयेत् ।
जलभांडैः पवित्रैस्तु मंत्रैस्तोय क्षिपेत्ततः ॥३४॥
शुद्धि कृत्वा यथान्यायं सितवस्त्रेण साधकः ।
कुशापामार्गकर्पूरजातिपुष्पकचंपकैः ॥३५॥
करवीरैः सितैश्चैव मल्लिकाकमलोत्पलैः ।
आपूर्य पुष्पैः सुशुभैः चंदनाद्यैश्च तज्जलम् ॥३६॥

उसके ऊपर विश्व, तैजस और प्राज्ञ रूप वाले आत्मत्रय को और उसके अन्त में अर्थात् आत्मत्रय के ऊपर शिवपीठिका वेदी की परिकल्पना करनी चाहिए। इसके पश्चात् मैं भगवान् सद्योजात की शरण में समागत हो गया हूँ, इससे परमेश्वर का आवाहन करे ॥२६॥ फिर वामदेव मन्त्र के द्वारा उन देवों के देव को आसन के ऊपर संस्थापित करना चाहिए। रुद्र गायत्री देव का सन्निधीकरण करे और अघोर मन्त्र से निरुद्धीकरण करना चाहिये। "ईशानः सर्व विद्यानाम्" इत्यादि मन्त्र के द्वारा पूजन करे और फिर विभु की सेवा में अर्घ्य, पाद्य तथा आचमनीय प्रस्तुत करने चाहिये ॥३०॥३१॥ इसके अनन्तर भगवान् रुद्र का गन्ध-चन्दन मिश्रित जल से विधि-विधान के सहित स्नान करना चाहिये। पञ्चगव्य को विधान पूर्वक बनाकर ग्रहण करे और पात्र में उसे अभिमन्त्रित करे। गाय का दूध, दधि, घृत, मूत्र और गोमय का पञ्चगव्य होता है। गाय का दूध, दधि घृत, मधु और शर्करा इन पाँचों का पञ्चामृत होता है ॥३२॥ प्रणव के द्वारा ही यथाविधि पञ्च गव्यों से स्नान करावे। आज्य (घृत) से, मधु से और ईख के रस

से तथा पुण्य द्रव्यो से महादेव का प्रणव के द्वारा अभिषेचन करना चाहिये। परम पवित्र मन्त्रो के द्वारा जल के भाण्डो से जल को शिव के ऊपर प्रक्षिप्त करना चाहिए ॥३३॥३४॥ श्वेत वस्त्र से यथोचित् रूप से साधक को जल की शुद्धि छानकर कर लेनी चाहिये। कुशा, अपामार्ग (औंगा), कपूर, जाति पुष्प, चम्पा के पुष्प, श्वेत-करवीर, मल्लिका पुष्प और कमलोत्पलो के शुभ पुष्पो से तथा चन्द-नादि से उस जल को आपूरित कर लेना चाहिये ॥३५॥३६॥

न्यसेन्मत्राणि तत्तोये सद्योजातादिकानि तु ।
सुवर्णकलशेनाथ तथा वै राजतेन वा ॥३७॥
ताम्रण पद्मपत्रेण पालाशेन दलेन वा ।
शखेन मृन्मयेनाथ शोधितेन शुभेन वा ॥३८॥
सकूर्चेन सपुष्पेण स्नापयेन्मत्रपूर्वकम् ।
मत्राणि ते प्रवक्ष्यामि शृणु सर्वार्थसिद्धये ॥३९॥
यैलिंग सकृदप्येवं स्नाप्य मुच्येत मानवः ।
पवमानेन मत्रज्ञाः तथा वामीयकेन च ॥४०॥
रुद्रेण नीलरुद्रेण श्रीसूक्तेन शुभेन च ।
रजनीसूक्तकेनैव चमकेन शुभेन च ॥४१॥
होतारेणाथ शिरसा अथर्वेण शुभेन च ।
शान्त्याचाथ पुन. शान्त्या भारुंडेनारुणेन च ॥४२॥
वारुणेन च ज्येष्ठेन तथा वेदव्रतेन च ।
तथातरेण पुण्येन सूक्तेन पुरुषेण च ॥४३॥
त्वरितेनैव रुद्रेण कपिना च कपर्दिना ।
आवोसजेति साम्ना तु बृहच्चद्रेण विष्णुना ॥४४॥
विरूपाक्षेण स्कदेन शतऋग्भि. शिवैस्तथा ।
पञ्चब्रह्मैश्च सूत्रेण केवलप्रणवेन च ॥४५॥
स्नापयेद्देवदेवेशं सर्वपापप्रशांतये ।
वस्त्रं शिवोपवीतं च तथा ह्याचमनीयकम् ॥४६॥

इसके अनन्तर सद्योजातादि मन्त्रो का उस जल में न्यास करे। फिर सुवर्ण के कलस से अथवा चाँदी के निर्मित पात्र से या ताम्र के पात्र से, पद्म पत्र, पलाश का पत्र अथवा दल, शङ्ख वा परम शोधित एव शुभ मिट्टी के पात्र से कूर्च के सहित एवं पुष्प के सहित मन्त्रो के साथ स्नपन करना चाहिये। उन मन्त्रो को अब मैं तुमको समस्त अर्थों की सिद्धि के लिये आपको बताऊँगा, उनका तुम श्रवण करो ॥३७॥३८॥ वे सब ऐसे मन्त्र है जिनके द्वारा इस प्रकार की विधि से लिंग का एक बार भी स्नपन कराने से मानव मुक्त हो जाया करता है। हे मन्त्रो के ज्ञाताओ! पवमान सज्ञा वाले तत्तत् शाखा के मन्त्र से तथा वामसूक्त से, रुद्राध्याय से, नील रुद्र अथर्व सज्ञा वाले सतत् मन्त्रो से, शुभ श्री सूक्त से, रजनी सूक्त से, शुभ चमक से, अथर्व के शुभ होतार शिर सम मन्त्रों से, शाति, भारुण्ड और आरुण मन्त्रो से, ज्येष्ठ वारुण मन्त्र से, वेद व्रत, पुरुष सूक्त से, त्वरित रुद्र, से कपर्दी, कपि से, आवोसज इस साम सूक्त से, बृहच्चन्द्र, विष्णु, विरूपाक्ष, स्कन्द, शिव-शत ऋचाओ से, पञ्च ब्रह्मो से, सूत्र और केवल प्रणव से इनमे किसी भी एक से देव देवेश का समस्त पापो की शान्ति के लिए स्नपन कराना चाहिये। अभिषेक सबसे उत्तम फल होता है। पूजा से अधिक होम, होम से भी उत्तम तर्पण, तर्पण से भी अधिक जप और सबसे अधिक एव श्रेष्ठ अभिषेक को बताया गया है। इस स्नपन के अनन्तर वस्त्र, शिवोपवीत और आचमनीय देना चाहिये ॥३९॥४०॥४१॥४२॥४३॥४४॥४५॥४६॥

गध पुष्पं तथा धूप दीपमन्नं क्रमेण तु ।
तोय सुगधित चैव पुनराचनीयकम् ॥४७॥
मुकुटं च शुभ छत्रं तथा वै भूषणानि च ।
दापयेत्प्रणवेनैव मुखवासादिकानि च ॥४८॥
ततः स्फटिकसंकाश देवं निष्कलमक्षरम् ।
कारण सर्वदेवाना सर्वलोकमय परम् ॥४९॥

ब्रह्म द्रविष्णुरुद्राद्यं ऋं पिदेवैरगोचरम्   ।
वेदविद्भिर्हि वेदान्तैस्त्वगोचरमिति श्रु ति. ॥५०॥
आदिमध्यातरहित भेषज   भवरोगिणाम् ।
शिवतत्त्वमिति ख्यात शिवलिंगे व्यवस्थितम् ॥५१॥
प्रणवेनैव मन्त्रेण पूजयेल्लिगमूर्धनि   ।
स्तोत्र जपेच्च विधिना नमस्कार प्रदक्षिणम् ॥५२॥
अर्घ्यं दत्वाय पुष्पाणि पादयोस्तु विकीर्य च ।
प्रणिपत्य च देवेशमात्मन्यारोपयेच्छिवम् ॥५३॥
एव सक्षिप्य कथित लिंगार्चनमनुत्तमम्   ।
आभ्यतर प्रवक्ष्यामि लिंगार्चनमिहाद्य ते ॥५४॥

फिर क्रम से गन्ध पुष्प धूप दीप, अन्न, सुगन्धित जल और पुन आचमनीय समर्पित करे ॥४७॥ मुकुट, शुभ छत्र तथा अन्य भूषण एव मुख वासादि द्रव्य प्रणव के द्वारा ही देव को समर्पित करना चाहिए ॥४८। इसके अनन्तर स्फटिक मणि के समान वर्ण वाले, निष्कल, अक्षर, समस्त देवों के कारण स्वरूप सर्व लोकमय, परम और ब्रह्मा रुद्र विष्णु आदि देवों तथा ऋषियों के अगोचर एव वेदों के वेत्ता तथा वेदान्तों के भी शिव अगोचर हैं—ऐसी श्रु ति है। लिङ्ग के मूर्द्धा में इस प्रकार का ही ध्यान करना चाहिए। यह ध्यान के प्रकार का वर्णन किया है। शिव तत्त्व आदि, मध्य और अन्त से रहित है तथा ससार के रोग से मुक्त कराने के लिए भेषज के स्वरूप वाला है, ऐसा ही शिव के लिङ्ग में व्यवस्थित करें। लिङ्ग के मस्तक में प्रणव के द्वारा ही पूजन करे। फिर विधि के साथ स्तोत्र पाठ करे तथा नमस्कार और प्रदक्षिणा करनी चाहिए। अर्घ्य देकर तथा चरणों में पुष्पों का विकरण करके देव को प्रणिपात करते हुए फिर उस शिव तत्त्व को अपने हृदय के कमल में स्थापित करना चाहिए। इस तरह से मैंने यह सर्वोत्तम लिङ्ग के अर्चन का विधान सक्षेप में बता दिया है। अब हृदय

के कमल में किया जाने वाला आभ्यन्त प्रकार लिंगार्चन का बताऊँगा ॥४६॥५०॥५१॥५२॥५३॥५४॥

शिवार्चन तत्व संख्या

आग्नेयं सौरममृत बिंबं भाव्य ततोपरि ।
गुणत्रय च हृदये तथा चात्मत्रय क्रमात् ॥१॥
तस्योपरि महादेव निष्कल सकलाकृतिम् ।
कातार्धारुढदेह च पूजयेद्धयानविद्यया ॥२॥
ततो वहुविधं प्रोक्त चिंत्य तत्रास्ति चेद्यतः ।
चिंतकस्य ततश्चिंता अन्यथा नोपपद्यते ॥३॥
तस्माद्धये यं तथा ध्यानं यजमानः प्रयोजनम् ।
स्मरेत्तत्रान्यथा जातु बुद्धयते पुरुषस्य ह ॥४॥
पुरे शेते पुरं देह तस्मात्पुरुष उच्यते ।
याज्यं यज्ञेन यजते यजमानस्तु स स्मृतः ॥५॥
ध्येयो महेश्वरो ध्यानं चिंतन निवृ त्तिः फलम् ।
प्रधानपुरुषेशानं याथातथ्यं प्रपद्यते ॥६॥
इह षड्विंशको ध्येयो ध्याता वै पञ्चविंशकः ।
चतुर्विंशकमव्यक्त महदाद्यास्तु सप्त च ॥७॥

अब इस अध्याय मे अपने हृदय के कमल मे मनोमयी शिव की मूर्त्ति के अर्चन का विधान बताया जाता है और उसके करने वाली की महिमा तथा तत्वों की सख्या का निरूपण किया जाता है। शैलादि ने कहा—साधक पुरुष को अपने हृदय मे एक कमल स्थित है उसमे आग्नेय, सौर, अमृत बिम्ब की भावना करनी चाहिये। फिर उसके ऊपर गुणत्रय और आत्मत्रय की क्रम से भावना करे। उसके ऊपर परम शुद्ध सम्पूर्ण आकृति वाले तथा कान्ता के द्वारा आधे शरीर पर आरूढ़

वपु वाले शिव का ध्यान की विद्या से अर्चन करे । चिन्तन साधक पुरुष के चिन्तन करने के योग्य बहुत से स्वरूप बताये गए हैं उन सभी स्वरूप को एक ही रूप समझना चाहिए तभी ध्यान करने वाले का चिन्तन ठीक प्रकार से हो सकता है अन्यथा भेद वृद्धि के प्रभाव चिन्तन उत्पन्न नहीं होता है । इसलिए ध्येय, ध्यान, यजमान और प्रयोजन उस शिव के रूप का स्मरण करना चाहिए अन्यथा यहाँ पर जीवात्मा के शरीर में वह साम्ब नाम वाला ब्रह्म किसी भी प्रकार से नहीं जाना जाता है । ॥१॥२॥३॥४॥ पुर यह शरीर है । इस देह के पुर में जो शयन करता है वह इसी कारण से पुरुष कहा जाता है । यज्ञ के द्वारा यजन करने के योग्य का यजन करने से ही यजमान कहा जाया करता है ॥५॥ ध्येय भगवान् महेश्वर हैं, ऐसा जो जानता है वही वस्तुतः शिव को प्राप्त किया करता है । उन महेश्वर का चिन्तन करना ही ध्यान कहा जाता है और निर्वृत्ति का होना ही उस चिन्तन का फल होता है । ऐसा समझने वाला पुरुष प्रधान पुरुष ईशान के याथातथ्य को प्राप्त करता है ॥६॥ अब छब्बीस तत्वों का निरूपण किया जाता है । यहाँ लिंग शरीर में षड्विंशात्मक शिव का ध्यान करना चाहिए । ध्येय षड्दशक है, ध्याता पञ्च विंशक है और अव्यक्त चतुर्विंशक है, तेईस महदादि होते हैं । महदादि सात हैं ॥७॥

महांस्तथा ह्यहंकारं तन्मात्रं पञ्चकं पुनः ।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा बुद्धीन्द्रियाणि च ॥८॥
मनश्च पञ्च भूतानि शिवः षड्विंशकस्ततः ।
स एव भर्ता कर्ता च विधेरपि महेश्वरः ॥९॥
हिरण्यगर्भं रुद्रोऽसौ जनयामास शंकरः ।
विश्वाधिकश्च विश्वात्मा विश्वरूप इति स्मृतः ॥१०॥
विना यथा हि पितरं मातरं तनयास्त्विह ।
न जायंते तथा सोमं विना नास्ति जगत्त्रयम् ॥११॥

कर्ता यदि महादेवः परमात्मा महेश्वरः ।
तथा कारयिता चैव कुर्वतोल्पात्मन स्तथा ॥१२॥
नित्यो विशुद्धो बुद्धश्च निष्कलः परमेश्वरः ।
त्वयोक्तो मुक्तिदः किं वा निष्कलश्चेत्करोति किम् ॥१३॥
कालः करोति सकल काल कलयते सदा ।
निष्कल च मनः सर्वं मन्यते सोपि निष्कलः ॥१४॥

महत्तत्व, अहङ्कार और पाँच तन्मात्राएँ इस तरह से ये सात होते हैं। पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और पाँच महाभूत हैं। इस प्रकार से शिव षड्विंशक होते हैं। वही महेश्वर विधि का भी कर्त्ता तथा भर्त्ता होता है ? ॥८॥९॥ इसी रुद्र शङ्कर ने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था। यह हिरण्यगर्भ विश्वाधिक, विश्वात्मा और विश्वरूप कहा गया है ॥१०॥ जिस प्रकार से माता और पिता के बिना ससार मे पुत्र उत्पन्न नही होते हैं। उसी भाँति सोम के बिना इस जगत्त्रय की उत्पत्ति भी नही होती है ॥११॥ सनत्कुमार ने कहा—महेश्वर परमात्मा महादेव यदि सबके कर्त्ता हैं और कराने वाले भी वही हैं तो अल्पात्मा समस्त जीवों के पराधीन होने से ईश्वर मे वैषम्य होने से बन्ध और मोक्ष की व्यवस्था का अभाव होने से महेश्वर मे मुक्ति दातृत्व सम्भव नही होता है। इसलिये महेश्वर को निष्क्रिय, विशुद्ध, बुद्ध, नित्य और परमेश्वर एव मुक्ति का दाता आपने बताया है और वह निष्कल है तो फिर क्या करता है ॥१२॥१३॥ शैलादि ने कहा—महेश्वर तो स्वय निष्कल हैं। सब कुछ काल किया करता है और वह महेश्वर सदा उस काल को प्रेरित करते है। निष्कल मन सब विश्व रूप शिव का साक्षात्कार करता है। इसलिये वह भी निष्कल है ॥१४॥

कर्मणा तस्य चवेह जगत्सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
किमत्र देवदेवस्य मूर्त्यष्टकमिद जगत् ॥१५॥

विनाकाशं जगन्नैव विना क्ष्मां वायुना विना ।
तेजसा वारिणा चैव यजमानं तथा विना ॥१६॥
भानुना शशिना लोकस्तस्यैतास्तनवः प्रभोः ।
विचारतस्तु रुद्रस्य स्थूमेतच्चराचरम् ॥१७॥
सूक्ष्म वदंति ऋषयो यन्न वाच्यं द्विजोत्तमाः ।
यतो वाचो निवर्तते अप्राप्य मनसा सह ॥१८॥
आनदं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन ।
न भेतव्यं तथा तस्माज्ज्ञात्वानंदं पिनाकिनः ॥१९॥
विभूतयश्च रुद्रस्य मत्वा सर्वत्र भावतः ।
सर्वं रुद्र इति प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥२०॥
नमस्कारेण सततं गौरवात्परमेष्ठिनः ।
सर्वं तु खल्विदं ब्रह्म सर्वो वै रुद्र ईश्वरः ॥२१॥

उसके कर्म से ही यहाँ समस्त जगत् प्रतिष्ठित है । देवदेव का यह चराचर स्थूल मायिक रूप भगवान् की अष्टमूर्त्ति के स्वरूप वाला है ॥१५॥ आकाश, क्ष्मा, वायु, तेज, जल और यजमान के बिना यह जगत् नहीं होता है ॥१६॥ भानु और चन्द्रमा से लोक होता है । ये सब उस प्रभु के ही तनु है । विचार पूर्वक देखने पर यह चर और अचर भगवान् रुद्र का ही स्वरूप है ॥१७॥ हे द्विजोत्तमो ! ऋषिगण कहते हैं किन्तु जो भगवान् का सूक्ष्म रूप है वह नहीं कहा जा सकने के योग्य होता है । वह ऐसा रूप है कि जहाँ से वाणी मन के साथ निवृत्त हो जाया करती है अर्थात् वाणी और मन की वहाँ तक पहुँच ही नहीं होती है ॥१८॥ ब्रह्मा के आनन्द का विद्वान कहीं भी भय नहीं खाता है उसी प्रकार से पिनाकी के आनन्द का ज्ञान प्राप्त करके भी उससे भय नहीं खाना चाहिए ॥१९॥ भावना से सर्वत्र रुद्र की विभूतियाँ हैं— ऐसा मानकर तत्त्वों के ज्ञाता मुनिगण सब रुद्र स्वरूप ही है, ऐसा कहते हैं ॥२०॥ परमेष्ठी के गौरव से निरन्तर नमस्कार के द्वारा यह निश्चय ही सम्पूर्ण ब्रह्म है और सब ईश्वर रुद्र हैं ॥२१॥

पुरुषो वै महादेवो महेशानः परः शिवः।
एवं विभुर्विनिर्दिष्टो ध्यानं तत्रैव चिंतनम् ॥२२॥
चतुर्व्यूहेण मार्गेण विचार्यालोक्य सुव्रत ।
संसारहेतुः संसारो मोक्षहेतुश्च निवृंतिः ॥२३॥
चतुर्व्यूहः समाख्यातश्चिन्तकस्येह योगिनः।
चिंता बहुविधा ख्याता सैकत्र परमेष्ठिना ॥२४॥
सुनिष्ठेत्यत्र कथिता रुद्रे रौद्री न संशयः।
ऐन्द्री चेन्द्रे तथा सौम्या सोमे नारायणी तथा ॥२५॥
सूर्ये वह्नौ च सर्वेषा सर्वत्रैवं विचारतः।
सैवाहं सोऽहमित्येव द्विधा संस्थाप्य भावतः ॥२६॥
भक्तोऽसौ नास्ति यस्तस्माच्चिता ब्राह्मी न संशय ।
एव ब्रह्ममयं ध्यायेत्पूर्वं विप्र चराचरम् ॥२७॥
चराचरविभागं च त्यजेदभिमतं स्मरन्।
त्याज्य ग्राह्यमलभ्य च कृत्य चाकृत्यमेव च ॥२८॥

महादेव पुरुष हैं और महेशान शिव सबसे पर हैं इस प्रकार से विभु का विभिर्देश किया है। अत. वहाँ पर ही ध्यान और चिन्तन किया जाता है ॥२२॥ हे सुव्रत ! इस चतुर्व्यूह मार्ग के द्वारा विचार करके और भली-भाँति देखकर यही निर्णय होना है कि ससार का हेतु ससार है और मोक्ष का हेतु निवृंति है। चतुर्व्यूह मे, अन्नमय कोश तो स्थूल रूप वाला है इससे उसका त्याग कर देते हैं केवल प्राण, मन विज्ञान आनन्दमय कोश को ग्रहण करते हैं। अथवा ध्येय, ध्यान, यजमान और प्रयोजन रूप हैं ॥२३॥ यहा पर चिन्तन करने वाले योगी का चतुर्व्यूह कहा गया है। एक स्थान पर यह चिन्ता बहुत प्रकार की परमेष्ठी के द्वारा कही गई है ॥२४॥ जन्म-मरण की निवृत्ति कराने वाली होने से यहा पर सुनिष्ठा कही गई है। रुद्र से सम्बद्ध रौद्री होती है, इसमें कोई भी संशय नहीं है। इन्द्र मे ऐन्द्री और सोम तथा नारा-

यण मे सोम्या निष्ठा होती है। इस प्रकार से सूर्य और वह्नि में सर्वत्र सबकी विचार से हुआ करती है कि यह (निष्ठा) ही मैं हूँ या यह मैं हूं, इस प्रकार से भाव से मन को सस्थापित करके दो प्रकार की होती है ॥२५॥२६॥ वह जो भक्त है उसको उस ईश्वर से अन्य नही है इसलिये यह चिन्ता ब्राह्मी है, इसमे कुछ भी संशय नही है। इस प्रकार से हे विप्र ! अर्थात् हे सनत्कुमार ! पहिले इस चराचर को ब्रह्म-मय ही ध्यान करना चाहिए ॥२७॥ अपने अभिमत का स्मरण करते हुए अर्थात् ब्रह्मात्मक शिव के रूप का स्मरण करके चराचर के विभाग को त्याग ही देना चाहिये। जो अकृत्य है वह त्याग करने के योग्य है और अलभ्य कृत्य ग्रहण करने के योग्य है। २८॥

यस्य नास्ति सुतृप्तस्य तस्य ब्राह्मी न चान्यथा।
आभ्यंतरं समाख्यातमेवमभ्यर्चनं क्रमात् ॥२९॥
आभ्यंतरार्चकाः पूज्या नमस्कारादिभिस्तथा।
विरूपा विकृताश्चापि न निंद्या ब्रह्मवादिनः ॥३०॥
आभ्यंतरार्चकाः सर्वे परीक्ष्या विजानता।
निंदका एव दुःखार्ता भविष्यंत्यल्पचेतसः ॥३१॥
यथा दारुवने रुद्रं विनिंद्य मुनयः पुरा।
तस्मात्सेव्या नमस्कार्याः सदा ब्रह्मविदस्तथा ॥३२॥
वर्णाश्रमविनिर्मुक्ता वर्णाश्रमपरायणैः ॥३३॥

जिसको चराचर का विभाग नही होता है उस सुतृप्त को ब्राह्मी होती है अन्यथा नही होती है। इस प्रकार से क्रम से आभ्यन्तर अर्चन कहा गया है ॥२९॥ जो आभ्यन्तर के अर्चन करने वाले हैं वे नमस्कारादि के द्वारा पूज्य होते हैं। ब्रह्मवादी लोग चाहे विरूप और विकृत भी हो तो भी वे निन्दा करने योग्य नही होते हैं ॥३०॥ विशेष रूप से ज्ञान रखने वाले पुरुष को आभ्यन्तर अर्चना करने वाले सबकी परीक्षा नही करनी चाहिये। जो अल्प अर्थात् क्षुद्रचित्त वाले निन्दक

होते है वेही दुःखार्त्त होंगे ॥३१॥ वे इस तरह दुःख से आर्त्त हो जायेंगे जैसे पहिले दारु वन मे, रुद्र की विनिन्दा करके मुनिगण परम दुःखित हुए थे। इससे ब्रह्म ज्ञाता लोग सर्वदा सेव्य और नमस्कार करने के योग्य होते हैं ॥३२॥ वर्णाश्रम परायण साधक वर्णाश्रम से विनिर्मुक्त होते हैं ॥३३॥

सुदर्शन व्याख्यान, क्रम सन्यास लक्षण

इदानी श्रोतुमिच्छामि पुरा दारुवने विभो।
प्रवृत्तं तद्वनस्थानां तपसा भावितात्मनाम् ॥१॥
कथं दारुवनं प्राप्तो भगवान्नीललोहितः।
विकृतं रूपमास्थाय चोर्ध्वरेता दिगंबरः ॥२॥
किं प्रवृत्तं वने तस्मिन् रुद्रस्य परमात्मनः।
वक्तुमर्हसि तत्त्वेन देवदेवस्य चेष्टितम् ॥३॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा श्रुतिसारविदां वरः।
शिलादसूनुर्भगवान्प्राह किंचिद्ध्रुवं हसन् ॥४॥
मुनयो दारुगहने तपस्तेपुः सुदारुणम् ।
तुष्ट्यर्थं देवदेवस्य सदारतनयाग्नयः ॥५॥
तुष्टो रुद्रो जगन्नाथश्चेकितानो वृषध्वजः ।
धूर्जटिः परमेशानो भगवान्नीललोहितः ॥६॥
प्रवृत्तिलक्षणं ज्ञानं ज्ञातुं दारुवनौकसाम् ।
परीक्षार्थं जगन्नाथः श्रद्धया क्रीडया च सः ॥७॥

सनत्कुमार ने कहा—हे विभो ! पहिले दारुवन मे तप से भावित आत्मा वाले उस वन में निवासियों को जो प्रवृत्त हुआ उसे अब श्रवण करने की मेरी इच्छा होती है ॥१॥ ऊर्ध्व रेता दिगम्बर भगवान् नील-लोहित विकृत रूप में आस्थित होकर दारुवन मे कैसे प्राप्त हुये

थे ? ।।२।। परमात्मा रुद्र भगवान् को उस वन मे क्या प्रवृत्त हुआ था ? उन देवो के देव के चेष्ठित को तात्विक रूप से आप वर्णन करने के योग्य होते हैं ।।३।। सूतजी ने कहा-- उसके उस वचन का श्रवणकर श्रुति के सार के ज्ञाताओ मे श्रेष्ठ शिलाद सूनु भगवान् भव का स्मरण कर कुछ हंसते हुए बोले ।।४।। शैलादि ने कहा—दारुवन मे मुनिगण, सुदागण तपस्या कर रहे थे जो कि अपनी स्त्री, पुत्र और अग्नि के सहित थे और देवो के देव भव की तुष्टि के लिये ही तप कर रहे थे ।।५।। माया के द्वारा अत्यन्त संशय को समुत्पन्न करने वाले, जगत् के नाथ, वृषध्वज, धूर्जटि, परमेशान, भगवान् नील लोहित रुद्र उनकी तपस्या से सतुष्ट हो गये थे ।।६।। किन्तु दारुवन के निवास करने वाले मुनियो के प्रवृत्ति स्वरूप ज्ञ न को जानने के लिये वह जगतो के नाथ श्रद्धा और क्रीडा से परीक्षा करने के हेतु ऐसे विकृत स्वरूप वाले हुए थे ।।७।।

निवृत्तिलक्षणज्ञानप्रतिष्ठार्थं च शङ्करः ।
देवदारुवनस्थानां प्रवृत्तिज्ञानचेतसाम् ।।८।।
विकृतं रूपमास्थाय दिग्वासा विषमेक्षणः ।
मुग्धो द्विहस्तः कृष्णांगो दिव्यं दारुवन ययौ ।।९।।
मंदस्मितं च भगवान् स्त्रीणा मनसिजोद्भवम् ।
भ्रविलास च गान च चकारातीव सुन्दरः ।।१०।।
संप्रेक्ष्य नारीवृंदं गै मुहुर्मुहुरनंगहा ।
अंनगवृद्धिमकरोदतीव मधुराकृतिः ।।११।।
वने त पुरुषं दृष्ट्वा विकृतं नीललोहितम् ।
स्त्रियः पतिव्रताश्चापि तमेवान्वयुरादरात् ।।१२।।
वनोटजद्वारगताश्च नार्यो
विस्रस्तवस्त्राभरणा विचेष्टाः
लब्ध्वा स्मितं तस्य
मुखारविंदाद्द्रुमालयस्थास्तमथान्वयुस्ताः ।।१३।।

दृष्ट्वा काश्चिद्भवं नार्यो मदघूर्णितलोचनाः ।
विलासबाह्यास्ताश्चापि भ्रूविलासं प्रचक्रिरे ॥१४॥

प्रवृत्ति के ज्ञान मे चित्त लगाने वाले दारुवन के निवासी मुनियो के निवृत्ति लक्षण ज्ञान की प्रतिष्ठा के लिये अर्थात् निवृत्ति के ज्ञान के महत्व को प्रतिष्ठित करने के वास्ते भगवान् शङ्कर ने अपना विकृत रूप आस्थित करके दिगम्बर (नग्न), विषम नेत्रों वाले, सुन्दर, दो हाथो वाले और कृष्ण के समान अङ्ग वाले होकर उस परम दिव्य दारुवन में गये थे ॥८॥९॥ वहाँ परम सुन्दर भगवान् ने स्त्रियो के कामदेव को उत्पन्न करने वाला मन्दस्मित, भ्रूओं का विलास और गान किया था ॥१०॥ अनङ्ग को भस्म कर देने वाले भगवान् रुद्र ने जोकि अत्यन्त मधुर आकृति वाले थे बारम्बार नारियों के समुदाय को देखकर उनके कामदेव की वृद्धि करदी थी ॥११॥ उस वन मे उस विकृत पुरुष को देखकर जो कि नील लोहित थे, पतिव्रता स्त्रियाँ भी आदर से उसके पीछे चल दी थी ॥१२॥ वन के उटजद्वार पर गई हुई नारियाँ अपने वस्त्र और आभरणो का त्याग करके विचेष्ट हो गईं थी। उसके मुखारविन्द से स्मित को प्राप्त कर द्रुमालयो मे रहने वाली वे सब उसका अनुगमन करने लगी थी ॥१३॥ जो विलास करने की अवस्था से बाह्य अर्थात् वृद्धा थी वे भी कुछ नारियाँ मद से घूर्णित नेत्रों वाली होती हुईं भव को देखकर भ्रूविलास कर रही थी ॥१४॥

अथ दृष्ट्वापरा नार्यः किंचित्प्रहसिताननाः ।
किंचिद्विस्रस्तवसनाः स्रस्तकांचीगुणा जगुः ॥१५॥
काश्चित्तदा तं विपिने तु दृष्ट्वा
विप्रांगनाः स्रस्तनवांशुकं वा ।
स्वान्स्वान्विचित्रान् वलयान्प्रविध्य
मदान्विता बंधुजनांश्च जग्मुः ॥१६॥

काचित्तदा तं न विवेद दृष्ट्वा
विवासना स्रस्तमहांशुका च ।
शाखाविचित्रान् विटपान्प्रसिद्धा-
न्मदान्विता बंधुजनांस्तथान्याः ॥१७॥
काश्चिज्जगुस्तं ननृतुर्निपेतुश्च धरातले ।
निपेदुर्गजवच्चान्या प्रोवाच द्विजपुंगवाः ॥१८॥
अन्योन्य सस्मितं प्रेक्ष्य चालिलिगुः समंततः ।
निरुध्य मार्गं रुद्रस्य नपुणानि प्रचक्रिरे ॥१९॥
को भवानिति चाहुस्तं आस्यतामिति चापराः ।
कुत्रेत्यथ प्रसीदेति जजल्पुः प्रीतमानसाः ॥२०॥
विपरीता निपेतुर्वै विस्रस्तांशुकमूर्धजाः ।
पतिव्रताः पतीनां तु सन्निधौ भवमायया ॥२१॥

इसके अनन्तर दूसरी नारियाँ अपने मुख पर कुछ हास्य का भान लाती हुई अपने वस्त्रों का कुछ त्याग करके काँचीगुण को छोड़कर गाने लगी ॥१५॥ कुछ विप्रों की नारियाँ वन मे उसको स्रस्त नयाँ शुक के सदृश देखकर अपने-अपने विचित्र वलयों को प्रविद्ध करके मदान्वित होती हुईं बन्धु जनो के पास चली गई थी ॥१६॥ कुछ उस समय में उसको देखकर अपने आपको न जान पाई थी और अपने महाँ शुक अर्थात् साड़ी का त्याग कर वस्त्र रहित हो गई थी । दूसरी ऐसी मद से युक्त हो गई थी कि शाखाओं से विचित्र प्रसिद्ध विटपों को तथा बन्धु-जनों को भी नहीं जान पाई थी ॥१७॥ कुछ नारियाँ उसके आगे गान करती थी, कुछ नृत्य कर रही थी और कुछ धरातल में गिर गई थी। हे द्विज पुङ्गवो ! दूसरी हाथी की भाँति बैठ गई थी और कुछ बोली ॥ ८॥ वे एक दूसरे के स्मित को देखकर परस्पर मे चारो ओर से आलिङ्गन करने लगी थी और रुद्र के मार्ग को रोककर विनाम कर रही थीं ॥१९॥ आप कौन हैं—यह उनसे पूछा था और अन्यों ने कहा बैठ जाओ, प्रसन्न मन वाली उन ने 'कहाँ पर', इसके अनन्तर 'प्रसन्न

हो जाओ', यह बातचीत करती थी ॥२०॥ भव की माया से वे पति-व्रताएँ पतियों की सन्निधि मे वेश और वस्त्र खुले हुए करके विपरीत होती हुईं गिर गईं थी ॥२१॥

दृष्ट्वा श्रुत्वा भवस्तासां चेष्टावाक्यानि चाव्ययः ।
शुभं वाप्यशुभं वापि नोक्तवान्परमेश्वरः ॥२२॥
दृष्ट्वा नारीकुलं विप्रास्तथाभूतं च शंकरम् ।
अतीव परुषं वाक्यं जजल्पुस्ते मुनीश्वराः ॥२३॥
तपांसि तेषां सर्वेषां प्रत्याहन्यंत शंकरे ।
यथादित्यप्रकाशेन तारका नभसि स्थिताः ॥२४॥
श्रूयते ऋषिशापेन ब्रह्मणस्तु महात्मन ।
समृद्धश्रेयसां योनिर्यज्ञो वै नाशमाप्तवान् ॥२५॥
भृगोरपि च शापेन विष्णुः परमवीर्यवान् ।
प्रादुर्भावान्दश प्राप्तो दुःखितश्च सदा कृतः ॥२६॥
इन्द्रस्यापि च धर्मज्ञ छिन्नं सवृषणं पुरा ।
ऋषिणा गौतमेनोर्व्यां क्रुद्धेन विनिपातितम् ॥२७॥
गर्भवासो वसूनां च शापेन विहितस्तथा ।
ऋषीणां चैव शापेन नहुषः सर्पतां गतः ॥२८॥

उस समय ब्राह्मणो ने नारियों के समूह को उस प्रकार की चेष्टा करते हुए देखकर तथा शङ्कर को उस स्वरूप मे अवलोकन करके उन मुनीश्वरो ने अत्यन्त ही कठोर वचन कहे थे। और शङ्कर ने उन नारियो के उस प्रकार के वचन श्रवण करके तथा उस तरह की चेष्टायें देखकर शुभ या अशुभ कुछ भी अव्यय परमेश्वर ने नही कहा था ॥२२॥ ॥२३॥ उक्त सबकी तपस्यायें जो शङ्कर के लिये की जा रही थी सूर्य के प्रकाश से आकाश मे स्थित तारकों की भाँति प्रति हन्यमान हो गई थी ॥२४॥ यह सुना जाता है कि ऋषि वशिष्ठ के शाप से ब्राह्मण और महात्मा के शाप से समस्त समृद्ध श्रेयों की योनि यज्ञ नाश को प्राप्त हो

गया था ॥२५॥ ये दोनों कथायें भारत मे विस्तृत रूपसे ही क गई हैं। भृगु ऋषि के शाप से परम वीर्य वाले विष्णु भगवान् भी दश प्रादुर्भावो को प्राप्त हुये और सदा दुःखित किये गये थे ॥२६॥ हे धर्मज्ञ ! पहिले इन्द्र के भी सवृषण छिन्न हो गये थे और क्रुद्ध गौत्तम ऋषि ने भूमि मे गिरा दिया था ॥२७॥ वसुओ का गर्भ वास शाप के द्वारा ही किया गया था और ऋषियो के शाप से राजा नहुष सर्प के स्वरूप को प्राप्त हो गया था ॥२८॥

क्षीरोदश्च समुद्रोसौ निवासः सर्वदा हरेः ।
द्वितीयश्चामृताधारो ह्यपेयो ब्राह्मणैः कृतः ॥२९॥
अविमुक्तेश्वरं प्राप्य वाराणस्या जनार्दनः ।
क्षीरेण चाभिषिच्येशं देवदेवं त्रियंबकम् ॥३०॥
श्रद्धया परया युक्तो देहाश्लेपामृतेन वै ।
निषिक्तेन स्वयं देवः क्षीरेण मधुसूदनः ॥३१॥
सेचयित्वाथ भगवान्ब्रह्मणा मुनिभिः समम् ।
क्षीरोदं पूर्ववच्चक्रे निवासं चात्मनः प्रभुः ॥३२॥
धर्मश्चैव तथा शप्तो माडव्येन महात्मना ।
वृष्णयश्चैव कृष्णेन दुर्वासाद्यैर्महात्मभिः ॥३३॥
राघवः सानुजश्चापि दुर्वासेन महात्मना ।
श्रीवत्सश्च मुनेः पादपतनात्तस्य धीमतः ॥३४॥
एते चान्ते च बहवो विप्राणां वशमागताः ।
वर्जयित्वा विरूपाक्षं देवदेवमुमापतिम् ॥३५॥

यह क्षीर सागर जो सर्वदा भगवान् हरि का निवास स्थान रहा है और दूसरे अमृत का आधार था यह भी ब्राह्मणों ने न पीने के योग्य कर दिया गया है ॥२९॥ जनार्दन ने वाराणसी में अविमुक्तेश्वर को प्राप्त करके वहाँ पर ईश त्रियम्बक देवदेव का क्षीर से अभिषेक किया था। परम श्रद्धा से मधुसूदन देव स्वयं उस निषिक्त अमृत क्षीर से देह

मे आश्लेप अर्थात् सयोग करके युक्त हुए थे ॥३०॥३१॥ ब्रह्मा और मुनियो के साथ भगवान् विष्णु ने इस तरह से सेचन कराकर अपने निवास स्थान क्षीर सागर को पूर्व की भाँति किया था ॥३२॥ भाण्डव्य महात्मा ने धर्म को भी शाप दे दिया और दुर्वासा आदि मुनियो ने कृष्ण के साथ समस्त यादवो को भी शाप दिया था ॥३३॥ अनुज के सहित श्री राघव भी महात्मा दुर्वासा के द्वारा शापित हुये थे । उस महात्मा धीमान् मुनि के भृगुलता प्रहार से श्री वत्स विष्णु शाप युक्त हुए थे ॥३४॥ इस तरह से ये और अन्य बहुत सारे ब्राह्मणो के वश मे आ गये थे केवल देवो के देव विरूपाक्ष उमा पति को छोडकर सभी देव ब्राह्मणो के शाप से प्राय. युक्त हुए हैं ॥३५॥

एव हि मोहितास्तेन नावबुध्यत शंकरम् ।
अत्युग्रवचन प्रोचुश्च ग्रोप्यतरधीयत ॥३६॥
तेपि दारुवनात्तस्मात्प्रात: सविग्नमानसा ।
पितामह महात्मानमासीन परमासने ॥३७॥
गत्वा विज्ञापयामासु. प्रवृत्तमखिल विभो: ।
शुभे दारुवने तस्मिन् मुनय: क्षीणचेतस: ॥३८॥
सोपि सचिन्त्य मनसा क्षणादेव पितामह: ।
तेपा प्रवृत्तमखिल पुण्ये दारुवने पुरा ॥३९॥
उत्थाय प्राजलिर्भूत्वा प्रणिपत्य भवाय च ।
उवाच सत्वर ब्रह्मा मुनीन्दारुवनालयान् ॥४०॥

इस प्रकार से वे मुनिगण भी मोहित हो गये थे और भगवान् शङ्कर को नही जान पाये थे। उन्होने अत्यन्त उग्र वचन कहे थे और शिव भी वही पर अन्तर्हित हो गये थे ॥३६॥ फिर वे सब मुनिगण अत्यन्त सविग्न मन वाले होते हुए उस दारुवन से प्रात काल ही मे परमासन पर विराजमान महात्मा पितामह के समीप में गये थे और विभु के इस समस्त प्रवृत्त को उन्होने वहाँ विज्ञापित किया था। उस परम शुभ दारुवन में मुनिगण क्षीण चित्त

वाले हो गये थे ॥३७॥३८॥ उस पितामह ने एक क्षण पर्यन्त मन से चिन्तन किया था जो कि पहिले उनके साथ परम पुण्य दारुवन मे पहिले समस्त प्रवृत्त हुआ था ॥३६॥ फिर ब्रह्माजी ने उठकर हाथ जोडकर भव को प्रणाम किया था। इसके अनन्तर शीघ्र ही ब्रह्मा ने दारुवन मे रहने वाले मुनियो से कहा था ॥४०॥

धिग्युष्मान्प्राप्तनिधनान्महानिधिमनुत्तमम् ।
वृथाकृत यतो विप्रा युष्माभिर्भाग्यवर्जितैः ॥४१॥
यस्तु दारुवने तस्मिंल्लिंगी दृष्टोप्यलिंगिभिः ।
युष्माभिर्विकृताकारः स एव परमेश्वरः ॥४२॥
गृहस्थैश्च न निंद्यास्तु सदा ह्यतिथयो द्विजाः ।
विरूपाश्च सुरूपाश्च मलिना श्चाप्यपडिता ॥४३॥
सुदर्शनेन मुनिना कालमृत्युरपि स्वयम् ।
पुरा भूमौ द्विजाग्रयेण जितो ह्यतिथिपूजय ॥४४॥
अन्यथा नास्ति सततं गृहस्थैश्च द्विजोत्तमैः ।
त्यक्त्वा चातिथिपूजा तामात्मनो भुवि शोधनम् ॥४५॥
गृहस्थोपि पुरा जेतु सुदर्शन इति श्रुतः ।
प्रतिज्ञामकरोज्जाया भार्यामाह पतिव्रताम् ॥४६॥
सुव्रते सुभ्रू सुभगे श्रृणु सर्वं प्रयत्नतः ।
त्वया वै नावमतव्या गृहे ह्यतिथयः सदा ॥४७॥

ब्रह्मा ने कहा कि प्राप्त निधन आपको धिक्कार है आपने तो सर्वोत्तम महानिधि को प्राप्त कर लिया था। आप सब लोग बहुत ही भाग्यहीन हैं और जो कुछ भी आपने किया है सब व्यर्थ कर दिया है। ॥४१॥ उस दारुवन मे आलिङ्गी आप लोगो ने देखा था वह विकृत आकार वाला साक्षात् परमेश्वर ही थे ॥४२॥ हे द्विजगण ! गृहस्थों को सदा अतिथियों की निन्दा नही करनी चाहिए। वे अतिथि चाहे विरूप हों या सुरूप हो, मलिन हों या अपण्डित हो, किसी भी रूप मे हों

अतिथि गृहस्थाश्रमी के सदा सत्कार के ही पात्र होते हैं ।।४३।। पहिले भूमि में सुदर्शन मुनि के द्वारा जो कि द्विजो मे परम शिरोमणि था स्वय काल मृत्यु भी अतिथि की पूजा के द्वारा जीत लिया था ।।४४।। द्विजोत्तम गृहस्थो के द्वारा सन्तरण करने का अन्य कोई साधन नही है । इस भूमण्डल मे इस अतिथि सत्कार को छोड़कर अन्य कोई भी आत्मा के शोधन का उपाय नही है ।।४५।। पहिले सुदर्शन के नाम वाले ने जो एक गृहस्थ था जीतने की प्रतिज्ञा की थी और अपनी पतिव्रता भार्या से उसने कहा था ।।४६।। हे सुव्रते ! हे सुभ्रु ! हे सुभगे ! मेरा सब उपदेश श्रवण करो तुमको अपने समस्त प्रयत्नो से सदा अतिथियों का सत्कार करना है और वे कभी भी तिरस्कृत नही होने चाहिये ।।४७।।

सर्व एव स्वयं साक्षादतिथिर्यत्पिनाकधृक् ।
तस्मादतिथये दत्वा आत्मानमपि पूजय ।।४८।।
एवमुक्त्वाथ संतप्ता विवशा सा पतिव्रता ।
पतिमाह रुदंती च किमुक्त भवता प्रभो ।।४९।।
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह सुदर्शनः ।।
देयं सर्वं शिव यार्ये शिव एवातिथिः स्वयम् ।।५०।।
तस्मात्सर्व पूजनीयाः सर्वेप्यतिथयः सदा ।
एवमुक्ता तदा भर्त्रा भार्या तस्य पतिव्रता ।।५१।।
शेषामिवाज्ञामादाय मूर्ध्ना सा प्राचरत्तदा ।
परीक्षितु' तथा श्रद्धां तयोः साक्षाद्द्विजोत्तमाः ।।५२।।
धर्मो द्विजोत्तमो भूत्वा जगामाथ मुनेर्गृहम् ।
तं दृष्ट्वाचार्चयामास सार्घार्घ्यं रनघा द्विजम् ।।५३।।
संपूजितस्तया तां तु प्राह धर्मो द्विज. स्वयम् ।
भद्रे कुतः पतिर्धीमास्तव भर्ता सुदर्शनः ।।५४।।
अनाद्यं रत्नमद्यार्ये स्वं दातुमिह चार्हसि ।
सा च लज्जावृता नारी स्मरंतो कथितं पुरा ।।५५।।

सुरतांतस्तु विप्रेन्द्र संतुष्टोहं द्विजोत्तम।
सुदर्शनस्ततः प्राह सुप्रहृष्टो द्विजोत्तमः ॥६०॥
भुंक्ष्व चैनां यथाकामं गमिष्येहं द्विजोत्तम।
दृष्टोथ दर्शयामास स्वात्मानं धर्मराट् स्वयम् ॥६१॥

अपने स्वामी की आज्ञा से उसने अपने नेत्रों को मूंद लिया था और वह पतिव्रता चलायमान हो गई थी। उसने धर्म मे उसने अपनी बुद्धि करली थी और वह पति की आज्ञा से उस अतिथि को अपना शरीर समर्पित करने के लिए उससे बोली थी। इसी अन्तर मे उस नारी का स्वामी सुदर्शन घर के द्वार पर पहुंच गया था। वह धीमान् महामुनि अपनी उस भार्या से बोला—हे भद्रे! आओ-आ जाओ, तुम कहाँ चली गई हो? फिर इसके अनन्तर अतिथि ने स्वयं उससे कहा कि मैं आज इस तुम्हारी भाया के साथ मैथुन करने मे स्थित हूं। हे महाभाग! सुदर्शन! अब क्या करना चाहिए? बतनाओ ॥५६॥५७॥५८॥५९॥ हे द्विजोत्तम विप्रेन्द्र! सुरत क्रीड़ा करने के पश्चात् मैं संतुष्ट होऊंगा। तब द्विजोत्तम सुदर्शन ने परम हर्षित होते हुए कहा ॥६०॥ हे द्विजोत्तम! आप इस नारी का उपभोग इच्छा पूर्वक करिये, मैं यहाँ से चला जाऊंगा। तब धर्मराज बहुत ही अधिक प्रसन्न हुए और उन्होने अपने स्वरूप को स्वय प्रकट करके दिखा दिया था ॥६१॥

प्रददौ चेप्सितं सर्वं तमाह च महाद्युतिः।
एपना भुक्ता विप्रेन्द्र मनसापि सुशोभना ॥६२॥
मया चैषा न संदेहः श्रद्धां ज्ञातुमिहागतः।
जितो वै यस्त्वया मृत्युर्धर्मेणैकेन सुव्रत ॥६३॥
अहोस्य तपसो वीर्यमित्युक्त्वा प्रययौ च सः।
तस्मात्तथा पूजनीयाः सर्वे ह्यतिथयः सदा ॥६४॥
बहुनात्र किमुक्तेन भाग्यहीना द्विजोत्तमाः।
तमेव शरणं तूर्णं गंतुमर्हथ शंकरम् ॥६५॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणो ब्राह्मणर्षभा. ।
ब्रह्माणमभिवद्यार्ताः प्रोचुराकुलितेक्षणाः ॥६६॥
नापेक्षित महाभाग जीवित विकृताः स्त्रियः ।
दृष्टोस्माभिर्महादेवो निंदितो यस्त्वनिंदितः ॥६७॥
शप्तश्च सर्वगः शूली पिनाकी नीललोहितः ।
अज्ञानाच्छापजा शक्तिः कुंठितास्य निरीक्षणात् ॥६८॥

धर्म ने उसका सम्पूर्ण अभीष्ट प्रदान किया था और महान् द्युति वाला धर्म उससे कहने लगा कि हे विप्रेन्द्र ! मैंने यह सुशोभना आपकी भार्या का मन से भी उपभोग नहीं किया था, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। मैं तो केवल तुम्हारी श्रद्धा की जाँच करने के ही लिए यहाँ आया था। हे सुव्रत ! तुमने एक ही धर्म के द्वारा जो मृत्यु है उस को भी जीत लिया है ॥६२॥६३॥ अहो ! इस तपस्या में बड़ी भारी शक्ति होती है, यह कहकर वह चला गया था। इस कारण से समस्त अतिथि गण सदा पूजा करने के योग्य हुआ करते हैं ॥६४॥ यहाँ पर अब अधिक कहने से क्या लाभ है। ब्रह्मा ने कहा कि हे द्विजगण ! तुम बहुत ही भाग्यहीन हो। अब तुम उसी शङ्कर की शरण में शीघ्र जाने के योग्य होते हो ॥६५॥ ब्रह्माजी के इस वचन का श्रवण करके उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने ब्रह्माजी की वन्दना की और आकुलित नेत्रों वाले दुःखित होकर वे बोले ॥६६॥ हे महाभाग ! जीवित की अपेक्षा नहीं की थी क्योंकि स्त्रियाँ विकृत हो गई थी। जो सर्वदा अनिन्दित स्वरूप वाले हैं उन महादेव का भी हमने निन्दन देखा था ॥६७॥ सर्वगामी, पिनाक को धारण करने वाले, नील लोहित शूली को शाप दिया गया था जो कि अज्ञान से दिया था। इसके निरीक्षण से यह शाप से उत्पन्न होने वाली शक्ति कुण्ठित हो गई थी ॥६८॥

यस्तुमर्हसि देवेश सन्यास यं क्रमेण तु ।
द्रष्टुं वै देवदेवेशमुग्रं भीम कपर्दिनम् ॥६९॥

आदौ वेदानधीत्यैव श्रद्धया च गुरोः सदा ।
विचार्यार्थं मुनेर्धर्मान् प्रतिज्ञाय द्विजोत्तमाः ॥७०॥
ग्रहणान्तं हि वा विद्वानथ द्वादश वार्षिकम् ।
स्नात्वाऽऽहृत्य च दारान्वै पुत्रानुत्पाद्य सुव्रतान् ॥७१॥
वृत्तिभिश्चानुरूपाभिस्तान्विभज्य सुतान्मुनिः ।
अग्निष्टोमादिभिश्चेष्ट्वा यज्ञैर्यज्ञेश्वरं विभुम् ॥७२॥
पूजयेत्परमात्मानं प्राप्यारण्यं विभावसौ ।
मुनिर्द्वादशवर्षं वा वर्षमात्रमथापि वा ॥७३॥
पक्षद्वादशकं वापि दिनद्वादशकं तु वा ।
क्षीरभुक् संयतः शांतः सर्वान् संपूजयेत्सुरान् ॥७४॥
इष्ट्वैव जुहुयादग्नौ यज्ञपात्राणि मन्त्रतः ।
अप्सु वै पार्थिवं न्यस्य गुरवे तैजसानि तु ॥७५॥

हे देवेश ! आप क्रम से सन्यास का वर्णन करने को योग्य होते हैं जो कि देवो के भी देवेश, उग्र, भीम, कपर्दी को देखने के लिये है ॥६६॥ पितामह ने कहा—सबसे प्रथम आदि मे सदा गुरु से श्रद्धा पूर्वक वेदों का अध्ययन करे। फिर हे द्विजोत्तम गण ! अर्थों का विचार करके मुनि के धर्मों की प्रतिज्ञा ग्रहण करे ॥७०॥ विद्वान् को ग्रहण के अन्त तक अथवा बारह वर्ष तक इस नियम का पालन करना चाहिए। स्नान करके अर्थात् समापवर्तन स्नान करके भार्याओ का आहरण करे और उनमे सुव्रत पुत्रो की उत्पत्ति करे ॥७१॥ इसके अनन्तर मुनि को चाहिये कि अनुरूप वृत्तियो से सुतो का विभाजन कर देवे और यज्ञेश्वर विभु का अग्निष्टोमादि यज्ञो के द्वारा यजन करना चाहिए ॥७२॥ विभा वसु मे मुनि को द्वादश वर्ष पर्यन्त अथवा केवल एक ही वर्ष तक अरण्य मे जाकर परमात्मा का पूजन करना चाहिये ॥७३॥ बारह पक्ष तक अथवा द्वादश दिन तक क्षीर का आहार करने वाला रहकर परम संयत एव शान्त होते हुए समस्त सुरों का भली-भाँति पूजन करे ॥७४॥ इस प्रकार से यजन करके अग्नि में हवन करे और मन्त्र से जो

यज्ञ पात्र हो उनमें पार्थिवों को तो जल मे विसर्जन कर देवे और जो तैजस हो उनका गुरु के लिए न्यास कर देना चाहिए ॥७५॥

स्वधनं सकलं चैव ब्राह्मणेभ्यो विशंकया ।
प्रणिपत्य गुरुं भूमौ विरक्तः संन्यसेद्यतिः ॥७६॥
निकृत्य केशान्सशिखानुपवीतं विसृज्य च ।
पञ्चभिर्जुहुयादप्सु भूः स्वाहेति विचक्षणः ॥७७॥
ततश्चोर्ध्वं चरेदेवं यतिः शिवविमुक्तये ।
व्रतेनानशनेनापि तोयवृत्त्यापि वा पुनः ॥७८॥
पर्णवृत्त्या पयोवृत्त्या फलवृत्त्यापि वा यतिः ।
एवं जीवन्मृतो नो चेत् षण्मासाद्वत्सरात्तु वा ॥७९॥
प्रस्थानादिकमायासं स्वदेहस्य चरेद्यतिः ।
शिवसायुज्यमाप्नोति कर्मण्येवमाचरन् ॥८०॥
सद्योऽपि लभते मुक्तिं भक्तियुक्तो दृढव्रतः ॥८१॥
त्यागेन वा किं विधिनाप्यनेन भक्तस्य रुद्रस्य शुभैर्व्रतैश्च ।
यज्ञैश्च दानैर्विविधैश्च होमलब्धैश्च शास्त्रैर्विविधैश्च वेदैः ॥८२॥
श्वेतेनैव जितो मृत्युं भवभक्त्या महात्मना ।
सोऽस्तु भक्तिर्महादेवे शंकरे परमात्मनि ॥८३॥

अपना सम्पूर्ण धन बिना किसी शङ्का के ब्राह्मणों के लिये भूमि मे गुरु को प्रणिपात करके विरक्त यति को त्याग देना चाहिये। ॥७६॥ शिखा के सहित केशों को बिल्कुल कटवा कर तथा उपवीत का भी त्याग करके "भूः स्वाहा" इत्यादि पाच स्वाहाओ से विचक्षण पुरुष को जल मे हवन करना चाहिये अर्थात् आहूतियां जल मे देवे ॥७७॥ इसके पश्चात् ऊपर इस प्रकार से यति को शिव-विमुक्ति के लिये आचरण करना चाहिये। व्रत के द्वारा, अनशन से, तोय वृत्ति से, पर्ण वृत्ति से, पयो वृत्ति और फल वृत्ति से यति को आचरण करना चाहिये। इस प्रकार से वह जीवित रहता हुआ मृत रहता है। अन्यथा छः मास मे या वत्सर मे मर जायेगा ॥७८॥७९॥ यति का कर्तव्य है कि

यह अपने देह के प्रस्थान आदि आयास का आचरण करे। इस प्रकार के कर्म के द्वारा आचरण करता हुआ मुनि शिव के सायुज्य की प्राप्ति कर लिया करता है ॥८०॥ हे दृढ़ व्रत वालो ! भक्ति से युक्त होने वाला मनुष्य तुरन्त भी मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥८१॥ त्याग क्या है और इस विधान से भी क्या लाभ है ? रुद्र के भक्त को शुभ व्रतों, यज्ञ, विविध भांति के दान, होम प्राप्त किये हुए विविध शास्त्र और वेदों से शिव सायुज्य प्राप्त हो जाता है ॥८२॥ महात्मा श्वेत ने इस प्रकार से भव की भक्ति के द्वारा मृत्यु को जीत लिया था। मैं तुमको आशीर्वाद देता हूं और शुभ कामना करता हूं कि आप सब की परमात्मा महान् देव शङ्कर में भक्ति होवे ॥८३॥

शिवाराधन से श्वेत मुनि की मृत्यु विजय

एवमुक्तास्तदा तेन ब्रह्मणा ब्राह्मणर्षभाः ।
श्वेतस्य च कथां पुण्यामपृच्छन्परमर्षयः ॥१॥
श्वेतो नाम मुनिः श्रीमान् गतायुर्गिरिगह्वरे ।
सक्तो ह्यभ्यर्च्य यद्भवत्य तुष्टाव च महेश्वरम् ॥२॥
रुद्राध्यानेन पुण्येन नमस्तेत्यादिना द्विजाः ।
ततः कालो महातेजाः कालप्राप्तं द्विजोत्तमम् ॥३॥
नेतुं संचिंत्य विप्रेन्द्रास्सान्निध्यमकरोन्मुनेः ।
श्वेतोपि दृष्ट्वा तं काल कालप्राप्तोपि शङ्करम् ॥४॥
पूजयामास पुण्यात्या त्रियंबकमनुस्मरन् ।
त्रियंबकं यजेदेवं सुगंधिं पुष्टिवर्धनम् ॥५॥
किं करिष्यति मे मृत्युर्मृत्योर्मृत्युरहं यतः ।
तं दृष्ट्वा सस्मितं प्राह श्वेतं लोकभयंकरः ॥६॥

एह्येहि श्वेत चानेन विधिना किं फलं तव ।
रुद्रो वा भगवान् विष्णुर्ब्रह्मा वा जगदीश्वरः ॥७॥
कः समर्थः परित्रातुं मया ग्रस्तं द्विजोत्तम ।
अनेन मम किं विप्र रौद्रेण विधिना प्रभोः ॥८॥

शैलादि ने कहा—उन पितामह ने जब इस प्रकार से श्रेष्ठ ब्राह्मणों से कहा तो उस समय में उन परमर्षियों ने श्वेत की परम पुण्य कथा को उनसे पूछा था ॥१॥ पितामह ने कहा—गतायु श्रीमान् श्वेत नामधारी मुनि गिरि की गह्वर में सक्त हो गया था अर्थात् निरन्तर निवास करने लगा था। वहाँ उसने देवेश की अभ्यर्चना की थी और उसने भक्ति के भाव से महेश्वर का स्तवन भी किया था ॥२॥ हे द्विजगण ! श्वेत ने 'नमस्ते रुद्रमन्यवे' इत्यादि याजुष चतुर्थ काण्डीय पञ्चम प्रश्न रूप रुद्राध्याय के द्वारा महेश्वर की स्तुति की थी। इसके अनन्तर काल प्राप्त अर्थात् गतायु द्विजोत्तम श्वेत को महान तेज वाले काल ने ले जाने की बात सोचकर हे विप्रेन्द्रो ! उस मुनि का सान्निध्य किया था। गत आयु वाले भी श्वेत ने उस काल स्वरूप शङ्कर को देखकर उस पुण्यात्मा त्रियम्बक का स्मरण करते हुए पूजा की थी इस प्रकार सुगन्धि पुष्टि वर्धन त्रियम्बक का यजन करना चाहिए। मृत्यु मेरा क्या करेगा क्योंकि मैं मृत्यु का मृत्यु हूं। मन्द मुस्कान से युक्त उस श्वेत को देखकर लोक को भय करने वाला श्वेत से बोला ॥३॥४॥५॥ ॥६॥ हे श्वेत ! आओ, आओ, इस विधि से तुझे क्या फल होता है। रुद्र, भगवान् विष्णु अथवा जगदीश्वर इनमें मेरे द्वारा ग्रस्त प्राणी को हे द्विजोत्तम ! कौन परित्राण करने में समर्थ है ? अर्थात् कोई भी नहीं बचा सकता है। हे विप्र ! प्रभु की इस रौद्र विधि से मेरा क्या हो सकता है ॥७॥८॥

नेतुं यस्योत्थितश्चाहं यमलोकं क्षणेन वै।
यस्माद्‌गतायुस्त्वं तस्मान्मुने नेतुमिहोद्यतः ॥९॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भैरवं धर्ममिश्रितम् ।
हा रुद्र रुद्ररुद्रेति ललाप मुनिपुंगवः ॥१०॥
तं प्राह च महादेव कालं सप्रेक्ष्य वै दृशा ।
नेत्रेण बाष्पमिश्रेण सम्भ्रातेन समाकुल. ॥११॥
त्वया किं काल नो नाथश्चास्ति चेद्धि वृषध्वजः ।
लिंगेऽस्मिन् शङ्करो रुद्रः सर्वदेवभवोद्भवः ॥१२॥
अतीव भवभक्ताना मद्विधाना महात्मनाम् ।
विधिना किं महाबाहो गच्छ गच्छ यथागतम् ॥१३॥
ततो निशम्य कुपितस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयङ्करः ।
श्रुत्वा श्वेतस्य तद्वाक्य पाशहस्तो भयावह ॥१४॥
सिंहनाद महत्कृत्वा चास्फाट्य च मुहुर्मुहु ।
बबंध च मुनिं कालः कालप्राप्तं तमाह च ॥१५॥

और मैं जिसको एक ही क्षण में यमलोक मे ले जाने के लिए उठकर खड़ा हो गया हूँ क्योकि हे मुने ! तू गत आयु वाला हो गया है इसी कारण से मैं तुझे लेने को यहाँ प्रस्तुत हुआ हू ॥९॥ उसके धर्म से मिश्रित भैरव उस वचन का श्रवण कर वह मुनियो मे श्रेष्ठ हा रुद्र, हा रुद्र, यह बार-बार चिल्लाने लगा था ॥१०॥ वह श्वेत अश्रु युक्त सम्भ्रान्त नेत्र से उस काल को देखकर घबराया हुआ होकर उस महादेव से बोला ॥११॥ श्वेत ने कहा—हे काल ! तुझसे हमको क्या होगा यदि वृषध्वज हमारा स्वामी है । समस्त देवो का उद्भव करने वाला भव रुद्र शङ्कर इस लिङ्ग मे वर्तमान है ॥१२॥ मेरे जैसे महान् आत्मा वाले भव के भक्तो का वह इस विधि से अत्यन्त रक्षा करने वाला देव है । हे महाबाहो ! आप जैसे आये हैं वैसे ही वापिस चले जाओ ॥१३॥ इसके अनन्तर श्वेत के इस वचन का श्रवण करके पाश हाथ मे लेने वाला, अत्यन्त भय प्रद और तीक्ष्ण दाढो वाला काल बहुत ही कुपित हो गया था ॥१४॥ उस काल ने महान् सिंहनाद करके और बार-बार

गर्जना करके उस मुनि को बाँध लिया था और आयु व्यतीत हो जाने वाले उससे बोला ॥१५॥

मया वद्धोसि विप्रर्षे श्वेत नेतुं यमालयम् ।
अद्य वै देवदेवेन तव रुद्रेण किं कृतम् ॥१६॥
क्व शर्वस्तव भक्तिश्च क्व पूजा पूजया फलम् ।
क्व चाहं क्व च मे भीतिः श्वेतः वद्धोसि वै मया ॥१७॥
लिंगेस्मिन् सस्थितः श्वेत तव रुद्रो महेश्वरः ।
निश्चेष्टोसौ महादेवः कथं पूज्यो महेश्वरः ॥१८॥
ततः सदाशिवः स्वयं द्विज निहन्तुमागतम् ।
निहन्तुमतकं स्मयन् स्मरारियज्ञहा हरः ॥१९॥
त्वरन् विनिर्गतः परः शिवः स्वयं त्रिलोचनः ।
त्रियंवकोऽम्बया समं सनंदिना गणेश्वरैः ॥२०॥
ससज जीवित क्षणाद्भुव निरोक्ष्य वै भयात् ।
पपात चाशु वै वली मुनस्तु सन्निधौ द्विजा ॥२१॥

हे विप्रर्षे ! यमालय तुझ श्वेत को ले जाने के लिये अब मैंने बाँध लिया है । आज देवों के देव तेरे रुद्र ने क्या किया है ? तेरा वह शङ्कर कहाँ है और तेरी भक्ति तथा पूजा कहाँ गई ? इस तेरी पूजा से क्या फल हुआ है ? कहाँ मैं और मेरा भय है ? हे श्वेत ! मेरे द्वारा अब तू बद्ध हो गया है ॥१६॥१७॥ हे श्वेत ! तेरे इस लिङ्ग में संस्थित रहने वाला तेरा महेश्वर रुद्र महादेव चेष्टाहीन हो रहा है । तेरा यह पूज्य महेश्वर कैसा है अर्थात् इसकी पूजा से तुझे क्या फल मिल रहा है ॥१८॥ उस समय भगवान् सदाशिव स्वयं ही उस द्विज को मारने के लिए आये हुए काल का निहनन करने के लिए यज्ञ का ध्वंस करने वाले, कामदेव का भस्म करने वाले हर परम शिव त्रिलोचन मुस्कराते हुए बड़ी शीघ्रता से वहाँ निकल आये थे । उस समय भगवान् त्रियम्बक के साथ भवानी जगदम्बा, नन्दी और गणेश्वर भी थे । भव को देखकर एक ही

क्षण मे भय से उस वली अन्तक ने जीव को छोड दिया था और हे द्विजगण ! वह शीघ्र ही मुनि की सन्निधि मे गिर पडा था ॥१९॥२०॥ ॥२१॥

ननाद चोर्ध्वमुच्चधीर्निरीक्ष्य चातकातकम् ।
निरीक्षणेन वै मृतं भवस्य विप्रपुंगवाः ॥२२॥
विनेदुरुच्चमीश्वराः सुरेश्वरा महेश्वरम् ।
प्रणेमुरम्बिकामुमा मुनीश्वरास्तु हर्षिताः ॥२३॥
ससर्जुरस्य मूर्ध्नि वै मुनर्भवस्य खेचरा. ।
सुशोभन सुशीतल सुपुष्पवर्षमंबरात् ॥२४॥
अहो निरीक्ष्य चातक मृतं तदा सुविस्मितः ।
शिलाशनात्मजोऽव्यय शिव प्रणम्य शंकरम् ॥२५॥
उवाच बालधीर्मृतः प्रसीद चेति वै मुनेः ।
महेश्वरं महेश्वरस्य चानुगो गणेश्वरः ॥२६॥
ततो विवेश भगवाननुगृह्य द्विजोत्तमम् ।
क्षणाद्गूढशरीरं हि ध्वस्त दृष्ट्वातकं क्षणात् ॥२७॥
तस्मान्मृत्युंजय चैव भक्त्या सपूजये द्विजाः ।
मुक्तिद भुक्तिद चैव सर्वेपामपि शंकरम् ॥२८॥

हे विप्रो मे श्रेष्ठो ! उत्तम बुद्धि वाला श्वेत ने भव के निरीक्षण मात्र से मृत उस काल को देखकर और अन्त करने वाले के भी अन्त करने वाले भगवान् शिव का दर्शन करके आनन्द से आनन्द को अव्यक्त ध्वनि की थी ।।२२।। उस समय मे ईश्वर और सुरेश्वर सभी ने आनन्द की बहुत उच्च ध्वनि की थी और परम हर्षित मुनीश्वर गण ने भगवान् महेश्वर और जगदम्बा उमा को प्रणाम किया था ॥२३॥ आकाश मे स्थित देवगण ने भगवान भव के तथा इस मुनि के मस्तक पर नभोमण्डल से सुन्दर एव सुशीतल पुष्पो की वृष्टि की थी ॥२४॥ उस समय मे उस अन्त करने वाले काल को मरा हुआ देखकर नन्दी

को बहुत ही विस्मय हुआ और वह शिलाशनात्मज नन्दी अव्यय शङ्कर भगवान शिव को प्रणाम करके बोले यह बालधी अर्थात् मन्द बुद्धि वाला मृत हो गया है । आप इस मुनि पर प्रसन्न हो जाइये, यह महेश्वर के अनुचर गणेश्वर ने महेश्वर से कहा था ।।२५।।२६।। इसके पश्चात् भगवान् ने द्विजोत्तम पर अनुग्रह करके और भूमि पर ध्वस्त शरीर वाले अन्तक को देखकर क्षण भर मे उसके गूढ शरीर मे प्रवेश किया था। यहाँ पर दर्शन से ही अन्तक उज्जीवित हो गया था । इस कारण से हे द्विजगण ! मृत्यु के ऊपर जय प्राप्त करने वाले भगवान् शङ्कर की भक्ति भाव से भली-भाँति पूजा करनी चाहिये । क्योंकि वह शङ्कर मुक्ति दाता, भोगो के देने वाले सबके होते हैं ।।२७।।२८।।

बहुना किं प्रलापेन सम्यग्याभ्यर्च्य वै भवम् ।
भक्त्या चापरया तस्मिन् विशोका वै भविष्यथ ।।२९।।
एवमुक्तास्तदा तेन ब्रह्मणा ब्रह्मवादिन' ।
प्रसीद भक्तिदवेशे भवेद्रुद्रे पिनाकिनि ।।३०।।
येन वा तपसा देव यज्ञनाप्यथ येन वा ।
व्रतैर्वा भगवद्भवता भविष्यन्ति द्विजातयः ।।३१।।
न दानेन मुनिश्रेष्ठास्तपसा च न विद्यया ।
यज्ञहोमैर्व्रतैर्वेदर्योगशास्त्रैर्निरोधनै ।।३२।।
प्रसादे नैव सा भक्ति शिवे परमकारणे ।
अथ तस्य वच. श्रुत्वा सर्वे ते परमर्षय. ।।३३।।
सदारतनया. श्राता. प्रणेमुश्च पितामहम् ।
तस्मात्पाशुपती भक्तिर्धर्मकामार्थसिद्धिदा ।।३४।।
मुनेर्विजयदा चैव सर्वमृत्युजयप्रदा ।
दधीचस्तु पुरा भक्त्या हरि जित्वामरैर्विभुम् ।।३५।।
क्षय जघान पादेन वज्रास्थित्वं च लब्धवान् ।
मयापि निर्जितो मृत्युर्महादेवस्य कीर्तनात् ।।३६।।

श्वेतेनापि गतेनास्यं मृत्योर्मुनिवरेण तु ।
महादेवप्रसादेन जितो मृत्युर्यथा मया ॥३७॥

अधिक प्रलाप करने से क्या लाभ है । सन्यास धारण करके शिव की अनन्य भाव से भक्ति पूर्वक अभ्यर्चना करके शोक रहित हो जाओगे ॥२६॥ शौनादि ने कहा—इस प्रकार से उस ब्रह्मा के द्वारा कहे हुए ब्रह्मवादि ऋषियों ने कहा—हे ब्रह्मन् ! प्रसन्न हो जाइये और यह बताइये कि देवेश पिनाकधारी रुद्र में किस तप से अथवा किस यज्ञ से अथवा किन व्रतों के द्वारा भक्ति होती है तथा द्विजातिगण भगवान के भक्त होंगे ? ॥३०॥३१॥ पितामह ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! शिव की भक्ति, दान, तप और विद्या से नहीं होती है यज्ञ, होम, व्रत, वेद योगशास्त्र और निरोधनों के द्वारा शिव के प्रसाद से ही परम कारण स्वरूप शिव में वह भक्ति हुआ करती है । इसके अनन्तर उनके वचन का श्रवण कर वे सब महर्षिगण भ्रान्त हो गये और स्त्री तथा पुत्रों के सहित उनने पितामह को प्रणाम किया था । उससे धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि प्रदान करने वाली पाशुपति भक्ति हो गई थी ॥३२॥३३॥ ॥३४॥ पाशुपती भक्ति मुनि को विजय के देने वाली और सब प्रकार की मृत्यु के जय को प्रदान करने वाली होती है । पहिले दधीच ने भक्ति से अमरों के साथ विभु हरि को जीतकर क्षय को पाद से मार दिया था और अपनी अस्थियों की वज्रता प्राप्त की थी । मैंने भी (नन्दी ने) महादेव के कीर्तन से मृत्यु को निर्जित कर दिया था । मुनियों में श्रेष्ठ और मृत्यु के मुख में गये हुए श्वेत ने भी महादेव के प्रसाद से मेरी ही भांति मृत्यु पर अपनी विजय प्राप्त की थी ॥३५॥ ॥३६॥३७॥

मुनियों द्वारा शिवाराधन

कथं भव प्रसादेन देवदारुवनौकसः ।
प्रपन्नाः शरणं देव वक्तुमर्हसि मे प्रभो ॥१॥

तानुवाच महाभागान्भगवानात्मभूः स्वयम् ।
देवदारुवनस्थांस्तु तपसा पावकप्रभान् ॥२॥
एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः ।
न तस्मात्परमं किंचित्पदं समधिगम्यते ॥३॥
देवानां च ऋषीणां च पितॄणां चैव स प्रभुः ।
सहस्रयुगपर्यंते प्रलये सर्वदेहिनः ॥४॥
संहरत्येष भगवान् कालो भूत्वा महेश्वरः ।
एष चैव प्रजाः सर्वाः सृजत्येकः स्वतेजसा ॥५॥
एष चक्री च वज्री च श्रीवत्सकृतलक्षणः ।
योगी कृतयुगे चैव त्रेतायां क्रतु रुच्यते ॥६॥
द्वापरे चैव कालाग्निर्धर्मकेतुः कलौ स्मृतः ।
रुद्रस्य मूर्तयस्त्वेता येऽभिध्यायति पंडिताः ॥७॥

सनत्कुमार ने कहा—हे प्रभो ! देवदारु अरण्य के अन्दर निवास करने वाले मुनिगण महादेव के प्रसाद से फिर कैसे उस देव के शरण मे प्राप्त हुए थे, यह आप बताने के योग्य हैं ॥१॥ शैलादि ने कहा—भगवान आत्म भू (ब्रह्मा) ने स्वयं तप के द्वारा अग्नि के समान प्रभा वाले देवदारु वन के निवासी उन महाभागो से बोले थे ॥२॥ पितामह ने कहा—यह देव सबसे बड़ा देव है अतः महेश्वर का विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। उससे परम अन्य कोई भी पद नही समधिगत होता है ॥३॥ देवो का, पितृगण का और ऋषियो का यह ही प्रभु है। यह भगवान् महेश्वर काल स्वरूप होकर एक सहस्र पर्यन्त प्रलय मे सम्पूर्ण देह धारियो का संहार किया करता है। और यह ही एक अपने तेज से समस्त प्रजा का सृजन करता है ॥४॥५॥ यह चक्री है अर्थात् चक्र को धारण करने वाला है, यह ही वज्री अर्थात् इन्द्र है और यह ही श्री वत्स का चिन्ह धारण करने वाला है। यह कृतयुग मे योगी है और त्रेता मे क्रतु के नाम वाला कहा जाता है। द्वापर मे कालाग्नि और कलियुग मे धर्म केतु कहा गया है। रुद्र

की ये इतनी मूर्तियां है । इनका पण्डित लोग अभिध्यान किया करते है ॥६॥७॥

चतुरस्रं बहिश्चांतरष्टास्रं पिंडिकाश्रये ।
वृत्तं सुदर्शनं योग्यमेवं लिङ्गं प्रपूजयेत् ॥८॥
तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुः प्रकाशकम् ।
मूर्तिरेका स्थिता चास्य मूर्तयः परिकीर्तिता. ॥९॥
यत्र तिष्ठति तद्ब्रह्म योगेन तु समन्वितम् ।
तस्माद्धि देवदेवेशमीशानं प्रभुमव्ययम् ॥१०॥
आराधयंति विप्रेन्द्रा जितक्रोधा जितेंद्रिया ।
लिंगं कृत्वा यथान्यायं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥११॥
अ गुष्ठमात्रं सुशुभं सुवृत्तं सर्वसंमतम् ।
समनाभं तथाष्टास्रं षोडशास्रमथापि वा ॥१२॥
सुवृत्तं मडलं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम् ।
वेदिका द्विगुणा तस्य समा वा सर्वसंमता ॥१३॥
गोमुखी च त्रिभागैका वेद्या लक्षणसंयुता ।
पट्टिका च समताद्वै यवमात्रा द्विजोत्तमा. ॥१४॥

बाहिर मे चतुरस्र और अन्दर अष्टास्र पिण्ड का श्रय में वृत्त और सुन्दर दर्शन वाला इस प्रकार से योग्य लिङ्ग का पूजन करना चाहिये । ॥८॥ तमोगुण अग्नि, रजोगुण ब्रह्मा और सत्त्व गुण प्रकाश करने वाला विष्णु है, इस प्रकार से ये परिकीर्त्तित मूर्तियाँ इस शिव की एक मूर्त्ति है ॥९॥ जिसमे वह ब्रह्म योग से समन्वित होकर स्थित रहा करता है । इस कारण से देवो के देवेश, ईशान अव्यय प्रभु का क्रोध को और इन्द्रियो को जीत लेने वाले विप्रेन्द्र आराधन किया करते हैं और विधान के नियम के अनुसार सम्पूर्ण लक्षणो से संयुक्त लिङ्ग का निर्माण करते हैं ॥१०॥११॥ वह लिङ्ग अ गुष्ठ के परिमाण वाला होना चाहिये इससे न्यून नही होवे । सुन्दर एवं शुभ, सुवृत्त, समनाभ, सर्व

सम्मत आठ अस्त्रो से युक्त या सोलह अस्रो वाला होना चाहिये ।।१२।। सब कामो के फल का देने वाला सुवृत्त एव दिव्य मण्डल होना चाहिये । उसकी वेदिका दुगुनी अथवा सम्मान ही सर्व सम्मत होती है । वेदी के लक्षण से सयुक्त एक तीन भाग वाली और गोमुखी होती है । हे द्विजोत्तम गण ! चारो ओर यव के परिमाण वाली पट्टिका होती है ।।१३।। ।।१४।।

सौवर्ण राजतं शैल कृत्वा ताम्रमय तथा ।
वेदकायाश्च विस्तार त्रिगुण वै समन्ततः ।।१५।।
वर्तुल चतुरस्र वा षडस्र वा त्रिरस्रकम् ।
समतान्निर्व्र ण शुभ्र लक्षणै स्तत्सुलक्षितम् ।।१६।।
प्रतिष्ठाप्य यथान्याय पूजालक्षणसयुतम् ।
कलश स्थापयेत्तस्य वेदिमध्ये तथा द्विजा. ।।१७।।
सहिरण्य सबीज च ब्रह्मभिश्चाभिर्मान्त्रितम् ।
सेचयेच्च ततो लिग पवित्रै. पञ्चभिः शुभैः ।।१८।।
पूजयेच्च यथालाभ ततः सिद्धिमवाप्स्यथ ।
समाहिता पूजयध्व सपुत्राः सह बधुभिः ।।१९।।
सर्वे प्राजलयो भूत्वा शूलपाणि प्रपद्यत ।
ततो द्रक्ष्यथ देवेश दुर्दर्शमकृतात्मभि ।।२०।।
य दृष्ट्वा सर्वमज्ञानमधर्मश्च प्रणश्यति ।
ततः प्रदक्षिण कृत्वा ब्रह्माणममितौजसम् ।।२१।।

सुवर्ण का, चाँदी का अथवा ताम्रमय एव शैल का निर्माण करे । वेदिका का चारों ओर त्रिगुण विस्तार होना चाहिए ।।१५।। यह वर्तुल, चतुरस्र, षडस्र अथवा तिरस्र और चारो ओर निर्व्रण, शुभ्र और लक्षणो के द्वारा सुलक्षित होना चाहिए ।।१६।। पूजा के लक्षणों से सयुत न्याय के अनुसार प्रतिष्ठापित करके उसकी वेदी के मध्य में हे द्विजगण ! कलश की स्थापना करनी चाहिये ।।१७।। हिरण्य के सहित तथा पञ्चाक्षर मन्त्र के सहित सद्योजातादि मन्त्रो के द्वारा अभि-

मन्त्रित लिङ्ग का पवित्र एवं शुभ पाँचो से सेचन करना चाहिए ॥१८॥ और यथा लाभ पूजन करे तो उस समय सिद्धि को प्राप्त करोगे। समाहित होकर पुत्रो के सहित और बन्धुओ से युक्त रहकर पूजन करो ॥१६॥ सब लोग प्राञ्जलि होकर अर्थात् हाथ जोडते हुये शूलपाणि भगवान् की शरण मे प्राप्त होओ। इसके करने पर फिर अकृतात्माओ के द्वारा दुर्दश देवेश का दर्शन प्राप्त करोगे ॥२०॥ जिस देवेश्वर का दर्शन प्राप्त करके सम्पूर्ण अज्ञान और अधर्म नष्ट हो जाता है। इसके अनन्तर अपरिमित ओज वाले ब्रह्माजी की प्रदक्षिणा की थी ॥२१॥

सप्रस्थिता वनौकास्ते देवदारुवनं ततः।
आराधयितुमारब्धा ब्रह्मणा कथितं यथा ॥२२॥
स्थडिलेपु विचित्रेपु पर्वताना गुहासु च।
नदीनां च विविक्तेपु पुलिनेपु शुभेपु च ॥२३॥
शैवालशोभनाः केचित्केचिदतर्जलेशयाः।
केचिद्दर्भावकाशास्तु पादागुष्ठाग्रघिष्ठिताः ॥२४॥
दतोलूखलिनस्त्वन्ये अश्मकुट्टास्तथा परे।
स्थानवीरासनास्त्वन्ये मृगचर्यारताः परे ॥२५॥
कालं नयति तपसा पूजया च महाधियः।
एव सवत्सरे पूर्णे वसंते समुपस्थिते ॥२६॥
ततस्तेषा प्रसादार्थं भक्तानामनुकपया।
देवः कृतयुगे तस्मिन्गिरौ हिमवतः शुभे ॥२७॥
देवदारुवनं प्राप्तः प्रसन्नः परमेश्वरः।
भस्मपासूपदिग्धांगो नग्नो विकृतलक्षणः ॥२८॥

फिर वे वनवासी मुनिगण देवदारु वन को प्रस्थान कर गये थे। यहा पर उन्होने ब्रह्माजी ने जिस रीति से आराधना क्रम एव विधान बताया था ठीक उसी के अनुसार आराधन आरम्भ कर दिया था ॥२२॥ उनकी तपस्या के विभिन्न से। विचित्र स्थण्डिलो मे, पर्वतो

गुफाओं मे और नदियो के परम एकान्त एवं शुभ पुलिनों मे उन दारुवन निवासी मुनियो ने तपस्या की थी। उनमे कुछ तो शैवाल के आसनो पर स्थित होने वाले थे। कुछ लोग जल मे अन्दर शयन करने वाले थे। कुछ दर्भों अर्थात् कुशाग्रो के मध्य मे स्थित थे, कुछ अपने पैर के अंगूठा के अग्रभाग पर अधिष्ठित थे, कुछ दन्तोलूखल वाले और अन्य अश्म कुट्ट थे, कुछ स्थान पर वीरासन मे स्थित थे और दूसरे मृगचर्या रत थे। इस प्रकार वे महाबुद्धि वाले सब पूजा और तप के द्वारा अपना काल यापन कर रहे थे। इस तरह से एक वर्ष पूर्ण हो जाने पर जब वसन्त ऋतु समुपस्थित हुआ तो उस समय में उन सबकी प्रसन्नता के लिये भक्तो पर अनुग्रह करके उस कृतयुग मे हिमालय के परम शुभ पर्वत पर अत्यन्त प्रसन्न होकर परमेश्वर देव दारुवन मे प्राप्त हुए थे जिनका स्वरूप भस्म और धूलि से उपदिग्ध अङ्गो वाला था और वे पूर्ण नग्न एवं विकृत लक्षणो से युक्त थे ॥२३॥२४॥२५॥२६॥२७॥२८॥

उल्मुकव्यग्रहस्तश्च रक्तपिंगललोचनः ।
क्वचिच्च हसते रौद्रं क्वचिद्गायति विस्मितः ॥२६॥
क्वचिन्नृत्यति श्रृंगारं क्वचिद्रौति मुहुर्मुहुः ।
आश्रमे ह्यटते भैक्ष्यं याचते च पुनः पुनः ॥३०॥
माया कृत्वा तथारूपा देवस्तद्वनमागतः ।
ततस्ते मुनयः सर्वे तुष्टुवुश्च समाहिताः ॥३१॥
अद्भिर्विविधमाल्यैश्च धूपैर्गन्धैस्तथैव च ।
सपत्नीका महाभागाः सपुत्राः सपरिच्छदाः ॥३२॥
मुनयस्ते तथा वाग्भिरीश्वरं चेदमब्रुवन् ।
अज्ञानाद्देवदेवेश यदस्माभिरनुष्ठितम् ॥३३॥
कर्मणा मनसा वाचा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ।
चरितानि विचित्राणि गुह्यानि गहनानि च ॥३४॥
ब्रह्मादीनां च देवानां दुर्विज्ञेयानि ते हर ।
अगतिं ते न जानीमो गतिं नैव च नैव च ॥३५॥

उनके हाथ उल्मुकों से व्यग्र थे और उनके नेत्र रक्त एवं पिङ्गल वर्ण वाले थे। वे किसी समय में तो रौद्र रूप मे हँसते थे और कभी विस्मित होकर गान करते थे ॥२६॥ किसी समय मे शृङ्गार का नृत्य करने लगते थे तो कही पर बार-बार रुदन करते थे। आश्रम मे भिक्षाटन करते हुए पुनः-पुनः याचना किया करते थे ॥३०॥ इस प्रकार से अपनी माया करके देव उस वन में आये थे। उस समय में उन समस्त मुनियो ने समाहित होकर उनका स्तवन किया था ॥३१॥ जल, विविध भाँति की माला, धूप, गन्धो के द्वारा अपनी पत्नियो के एवं पूर्ण परिच्छद तथा पुत्रों के साथ उन महाभाग मुनियों ने ईश्वर से यह कहा था—हे देव देवेश! अज्ञान पूर्वक हम लोगो ने जो भी कुछ आपका अपराध किया है वह कर्म के द्वारा मन से और वचन के द्वारा किया गया अपराध आप सब उसे क्षमा कर देने के योग्य होते हैं। आपके परम विचित्र, गुह्य और अत्यन्त गहन चरित्र हैं। हे हर! उन्हे हम लोग जैसे साधारण तो क्या समझ सकते है वे तो ब्रह्मादिक के द्वारा भी दुर्विज्ञेय होते हैं। हम आपकी अगति और गति को बिल्कुल भी नही जानते है ॥३२॥३३॥ ॥३४॥३५॥

विश्वेश्वर महादेव योसि सोसि नमोस्तु ते।
स्तुवंति त्वां महात्मानो देवदेवं महेश्वरम् ॥३६॥
नमो भवाय भव्याय भावनायोद्भवाय च।
अनंतबलवीर्याय भूतानां पतये नमः ॥३७॥
संहर्त्रे च पिशंगाय अव्ययाय व्ययाय च।
गंगासलिलधाराय आधाराय गुणात्मने ॥३८॥
त्र्यंबकाय त्रिनेत्राय त्रिशूलवरधारिणे।
कंदपार्यं हुताशाय नमोस्तु परमात्मने ॥३९॥
शंकराय वृषांकाय गणानां पतये नमः।
दंडहस्ताय कालाय पाशहस्ताय वै नमः ॥४०॥

वेदमंत्रप्रधानाय शतजिह्वाय वै नमः ।
भूतं भव्यं भविष्यं च स्थावरं जगमं च यत् ॥४१॥
तव देहात्समुत्पन्नं देव सर्वमिदं जगत् ।
पासि हसि च भद्रं ते प्रसीद भगवंस्ततः ॥४२॥

हे विश्व के ईश्वर ! हे महादेव ! आप जो भी हैं वह हैं। हम सब आपको नमस्कार करते हैं। महान् आत्मा वाले देवो के देव महेश्वर आपकी स्तुति करते हैं ॥३६॥ भव, भव्य, भावन और उद्भव आपके लिए नमस्कार है। अनन्त बल और वीर्य वाले तथा समस्त भूतो के स्वामी आपके लिए नमस्कार करते हैं। संहार करने वाले, पिशङ्ग स्वरूप, अव्यय, व्यय, गङ्गा के सलिल को धारण करने वाले, सबके आधार और आप गुण स्वरूप हैं। आप त्रिगुणा पार्वती वाले त्र्यम्बक हैं, तीन नेत्रो वाला आपका स्वरूप है, त्रिशूल के तथा वरदान के धारण करने वाले हैं, आप सुख से हर्षित करने वाले, हुताश एव परम आत्मा हैं ऐसे विभिन्न स्वरूपो के धारण करने वाले आपके लिए हम सबका नमस्कार है ॥३७॥३८॥३९॥ शङ्कर, वृषाङ्क और गणो के स्वामी आपको नमस्कार है। दण्ड हाथो मे धारण करने वाले, काल स्वरूप और पाश ग्रहण करने वाले आपको नमस्कार है ॥४०॥ वेद मन्त्रो मे परम प्रधान और शत जिह्वा वाले आपको नमस्कार है। भूत, भव्य और भविष्य स्थावर तथा जङ्गम जो यह जगत् है वह सम्पूर्ण हे देव ! आपके ही देह से समुत्पन्न हुआ है। आप ही उसका पालन करते हैं और आप ही संहार करने वाले हैं। हे भगवन् ! आपका भद्र हो, आप कृपा कर प्रसन्नता प्रकट करें ॥४१॥४२॥

अज्ञानाद्यदि विज्ञानाद्यत्किंचित्कुरुते नरः ।
तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया ॥४३॥
एव स्तुत्वा तु मुनयः प्रहृष्टैरंतरात्मभिः ।
याचन्त तपसा युक्ताः पश्यामस्त्वा यथापुरा ॥४४॥

ततो देवः प्रसन्नात्मा स्वमे वास्थाय शकरः ।
रूपं त्र्यक्ष च संद्रष्टुं दिव्य चक्षुरदात्प्रभुः ॥४५॥
लब्धदृष्ट्या तया दृष्ट्वा देवदेव त्रियम्बकम् ।
पुनस्तुष्टुवुरीशान देवदारुवनौकसः ॥४६॥

यदि मनुष्य अज्ञान से अथवा विशेष ज्ञान से जो कुछ भी करता है वह सब अपनी योग की माया के द्वारा आप ही किया करते हैं ।।४३।। अपनी परम प्रसन्न अन्तरात्माओ के द्वारा उन मुनियो ने इस प्रकार से भगवान् शङ्कर का स्तवन किया था और फिर उनसे याचना की थी कि हम सब तप से युक्त आपको जैसा कि पहले स्वरूप था वैसा ही देखें ।।४४।। तब उनके स्तवन के अनन्तर देव शङ्कर परम प्रसन्न हुये और अपने ही स्वरूप मे आस्थित हो गये थे तथा फिर प्रभु ने उन्हे त्र्यक्ष स्वरूप का दर्शन प्राप्त करने के लिए दिव्य चक्षु प्रदान किये थे । ।।४५।। प्राप्त हुई उस दिव्य दृष्टि के द्वारा देवों के देव उन त्रियम्बक का दर्शन करके देवदारु वन के निवासी उन मुनियो ने पुनः ईशान का स्तवन किया था ।।४६।।

नमो दिग्वाससे नित्यं कृतांताय त्रिशूलिने ।
विकटाय करालाय करालवदनाय च ॥१॥
अरूपाय सुरूपाय विश्वरूपाय ते नमः ।
कटंकटाय रुद्राय स्वाहाकाराय वै नमः ॥२॥
सर्वप्रणतदेहाय स्वयं च प्रणतात्मने ।
नित्यं नीलशिखण्डाय श्रीकण्ठाय नमोनमः ॥३॥
नीलकंठाय देवाय चिताभस्मांगधारिणे ।
त्वं ब्रह्मा सर्वदेवानां रुद्राणां नीललोहितः ॥४॥
आत्मा च सर्वभूतानां सांख्यैः पुरुष उच्यते ।
पर्वतानां महामेरुर्नक्षत्राणां च चन्द्रमा. ॥५॥

ऋषीणां च वसिष्ठस्त्वं देवानां वासव स्तथा ।
ओङ्कारः सर्ववेदानां श्रेष्ठं साम च सामसु ॥६॥
आरण्यानां पशूनां च सिंहस्त्वं परमेश्वरः ।
ग्राम्याणामृषभश्चासि भगवाँल्लोकपूजितः ॥७॥

दारुवन के निवासी ऋषियों ने पुनः स्तवन करते हुए कहा—नित्य ही दिशाओं के वस्त्र धारण करने वाले के लिए हमारा नमस्कार है। कृतान्त, त्रिशूली, विकट, कराल, कराल वदन वाले, बिना रूप वाले, सुरूप और विश्वरूप वाले आपको नमस्कार है। कटकट, रुद्र और स्वाहाकार आपके लिये नमस्कार है ॥१॥२॥ यह कृतान्त का अर्थ प्रलय का कारण है, विकट का अर्थ सुन्दर होता है, कराल का अर्थ संसार रूपी विटप के छेदन करने वाला कुठार अर्थ होता है। आप सबके द्वारा प्रणत देह वाले हैं और स्वय प्रणत आत्मा वाले हैं ऐसे आपको नमस्कार है। नित्य नील जटा जूट धारण करने वाले और श्री कण्ठ आपको हमारा प्रणाम है। नीलकण्ठ और चिता की भस्म को अङ्गों में धारण करने वाले आपको हमारा बार-बार नमस्कार है। आप समस्त देवो के ब्रह्मा हैं, रुद्रों के नील लोहित हैं। आप समस्त प्राणियों के आत्मा हैं और आप ही साख्य सिद्ध नितियों के द्वारा पुरुष कहे जाया करते हैं। आप पर्वतों मे महामेरु हैं और नक्षत्रों मे आप चन्द्रमा हैं। ऋषियों मे वसिष्ठ हैं और देवों मे इन्द्र हैं। आप समस्त वेदों मे ओङ्कार हैं तथा सामों मे आप श्रेष्ठ साम है। जङ्गली पशुओं में परमेश्वर आप सिंह हैं। ग्राम्य पशुओं मे आप ऋषभ हैं। आप तो समस्त लोकों के द्वारा पूजित हैं ॥३॥४॥५॥६॥७॥

सर्वथा वर्तमानोपि योयो भावो भविष्यति ।
त्वामेव तत्र पश्यामो ब्रह्मणा कथितं तथा ॥८॥
कामः क्रोधश्च लोभश्च विषादो मद एव च ।
एतदिच्छामहे बोद्धुं प्रसीद परमेश्वर ॥९॥

महासंहरणे प्राप्ते त्वया देव कृतात्मना ।
करं ललाटे संविध्य वह्निरुत्पादितस्त्वया ॥१०॥
तेनाग्निना तदा लोका अर्चिभिः सर्वतो वृता ।
तस्मादग्निसमा ह्येते बहवो विकृताग्नयः ॥११॥
कामः क्रोधश्च लोभश्च म हो दम उपद्रवः ।
यानि चान्यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥१२॥
दह्यंति प्राणिनस्ते तु त्वत्समुत्थेन वह्निना ।
अस्माकं दह्यमानानां त्राता भव सुरेश्वर ॥१३॥
त्वं च लोकहितार्थाय भूतानि परिषिंचसि ।
महेश्वर महाभाग प्रभो शुभनिरीक्षक ॥१४॥
आज्ञापय वयं नाथ कर्तारो वचनं तव ।
भूतकोटिसहस्रेषु रूपकोटिशतेषु च ॥१५॥
अन्तं गतुं न शक्ता. स्म देवदेव नमोऽस्तु ते ॥१६॥

वर्तमान भी जो जो भाव आपका स्वरूप होगा उसमे ब्रह्माजी ने सर्व स्वरूपत्व कहा था उसे उसी तरह सब प्रकार से हम देख रहे हैं ॥८॥ काम, क्रोध, लोभ, विषाद और मद इनका पञ्चक सबका दाहक कैसे होता है, इसे हम जानना चाहते हैं आप हे परमेश्वर ! प्रसन्न होइये ॥९॥ हे देव ! आपके द्वारा महा संहार के प्राप्त होने पर कृतात्मा आपने ललाट मे करके सविद्ध करके अग्नि उत्पन्न करदी थी ॥१०॥ उस समय उस अग्नि से सम्पूर्ण लोक अर्चियो के द्वारा सब ओर से वृत हो गये थे । उससे अग्नि के समान ये बहुत से विकृत अर्थात् छद्म रूप कामादि अग्नि उत्पन्न हो गई हैं । वे काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ उपद्रव ये अग्नि हैं । जो मनुष्यादि भूत हैं तथा अन्य स्थावर एवं चर हैं वे प्राणी आपकी उठी हुई अग्नि से दग्ध हो रहे हैं । दह्यमान हमारे आप हे सुरेश्वर ! त्राण करने वाले हो जाओ ॥११॥१२॥१३॥

और आप तो लोको के हित के लिये भूतो का परिपिश्चन करते हैं । हे महेश्वर ! आप महान् भाग्य वाले, प्रभु और शुभ के देखने वाले हैं। हे नाथ ! आप आज्ञा देवें, हम आपके वचनो का पालन करने वाले हैं। सहस्रो करोड भूतो मे और सैकडो करोड रूपो मे, हम अन्त तक जाने मे असमर्थ हैं । हे देवो के देव ! आपको हमारा नमस्कार है ।।१४।। ।।१५।।१६।।

शिव-ऋषिगण संवाद

ततस्तुतोष भगवाननुगृह्य महेश्वरः ।
स्तुतिं श्रुत्वा स्तुतस्तेषामिदं वचनमब्रवीत् ।।१।।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि युष्माभिः कीर्तितं स्तवम् ।
श्रावयेद्वा द्विजान्विप्रो गाणपत्यमवाप्नुयात् ।।२।।
वक्ष्यामि वो हितं पुण्यं भक्तानां मुनिपुंगवाः।
स्त्रीलिंगमखिलं देवी प्रकृतिर्मम देहजा ।।३।।
पुंल्लिगं पुरुषो विप्रा मम देहसमुद्भवः ।
उभाभ्यामेव वै सृष्टिर्मम विप्रा न संशयः ।।४।।
न निंदेद्यतिनं तस्माद्दिग्वाससमनुत्तमम् ।
बालोन्मत्तविचेष्टं तु मत्परं ब्रह्मवादिनम् ।।५।।
ये हि मां भस्मनिरता भस्मना दग्धकिल्विषाः ।
यथोक्तकारिणोदान्ता विप्रा ध्यानपरायणाः ।।६।।
महादेवपरा नित्यं चरंतो ह्यूर्ध्वरेतसः ।
अर्चयंति महादेवं वाङ्मनः कायसंयताः ।।७।।
रुद्रलोकमनुप्राप्य न निवर्तंति ते पुनः ।
यस्मादेतद्व्रतं दिव्यमव्यक्तं व्यक्तलिंगिनः ।।८।।

इस अध्याय मे ऋषियो के स्तव से परम प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर ने स्वयं शैव भक्तो के स्तव की महिमा का वर्णन किया

है। नन्दी ने कहा—इसके अनन्तर भगवान् शङ्कर परम संतुष्ट हो गये थे। ऋषियों के द्वारा स्तुत महेश्वर ने स्तुति का श्रवण करके और अनुग्रह करके उनसे यह वचन कहा था। भगवान् शङ्कर ने कहा था कि आपके द्वारा किए हुये इस स्तव को जो कोई भी पढ़ेगा या श्रवण करेगा अथवा ब्राह्मणों को श्रवण करावेगा वह विप्र गाणपत्य को प्राप्त होगा ॥१॥२॥ हे मुनियों में परम श्रेष्ठगण! मेरे भक्त आपको मैं आपका हित और पुण्य प्रद कहता हूँ। संसार में जो भी सम्पूर्ण स्त्री लिंग हैं वे सब मेरे देह से उत्पन्न होने वाली प्रकृति देवी हैं। हे विप्रो! जो पुल्लिग हैं वह मेरे देह से समुद्भव प्राप्त करने वाले पुरुष हैं। हे विप्रो! इन दोनों से ही मेरी यह सृष्टि होती है। इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३॥४॥ इसलिये यति जो कि दिशाओं के ही वस्त्र धारण करने वाले और सर्वोत्तम है उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए क्योंकि बालक और उन्मत्त की भांति विचेष्ट होते हैं तथा मुझको परायण और ब्रह्म-वादी होते हैं ॥५॥ जो मेरी भस्म में रति रखने वाले हैं वे भस्म के द्वारा अपने पापों को दग्ध कर देने वाले है। मेरे कथनानुसार करने वाले, दमनशील, ध्यान में परायण, महादेव को ही अपना परम इष्ट मानने वाले, नित्य चरण करने वाले, ऊर्ध्वरेता विप्र अपनी वाणी तथा मन और शरीर के द्वारा महादेव का अर्चन किया करते हैं एव संयत रहते हैं वे रुद्रलोक को प्राप्त किया करते हैं और वहाँ से फिर कभी नहीं लौटते हैं। इससे यह व्यक्त लिंग वाले का अव्यक्त एव दिव्य व्रत है ॥६॥७॥८॥

भस्मव्रताश्च मुंडाश्च व्रतिनो विश्वरूपिणः।
न तान्परिवदेद्विद्वान्न चैतान्नाभिलङ्घयेत् ॥९॥
न हसेन्नाप्रियं ब्रूयादमुत्रेह हितार्थवान्।
यस्तान्निंदति मूढात्मा महादेवं स निंदति ॥१०॥
यस्त्वेतान्पूजयेन्नित्यं स पूजयति शंकरम्।
एवमेष महादेवो लोकानां हितकाम्यया ॥११॥

युगेयुगे महायोगी क्रीडते भस्मगुण्ठित ।
एव चरत भद्र वस्तत सिद्धिमवाप्स्यथ ॥१२॥
अतुलमिह महाभयप्रणाशहेतु
शिवकथित परम पद विदित्वा ।
व्यपगतभवलोभमोहचित्ता
प्रणिपतिता सहसा शिरोभिरुग्रम् ॥१३॥
तत प्रमुदिता विप्रा श्रुत्वैव कथित तदा ।
गधोदकै सुशुद्धैश्च कुशपुष्पविमिश्रितै ॥१४॥
स्नापयति महाकुम्भैरद्भिरेव महेश्वरम् ।
गायति विविधैर्गुह्यैर्हुंकारैश्चापि सुस्वरै ॥१५॥

जो भस्म धारण करने के व्रत वाले हैं मुण्डित शिर वाले हैं, व्रत के धारण करने वाले और विश्व रूपी हैं उनका विद्वान् पुरुष को कभी परीवाद नही करना चाहिए और इनका अभिलङ्घन भी न करे। ॥६॥ इस लोक म और परलोक म हित प्रथ वाले पुरुष को इनका कभी हास्य नही करना चाहिये और इनसे अप्रिय वचन भी न बोले। जो मूढ पुरुष इनकी निन्दा किया करता है वह महदेव की ही निन्दा करता है ॥१०॥ जो पुरुप नित्य सवदा इनका समचन करता है वह भगवान् शङ्कर का ही पूजन करता है। इस प्रकार से यह मनि लोकों के हित करने की कामना से महादेव ही होता हे ॥११॥ युग युग मे महा योगी भस्म से गुण्ठित होकर क्रीडा किया करता है। आप लोग इसी प्रकार का आचरण करो आपका कल्याण होगा और आप सब सिद्धि की प्राप्ति करगे ॥१२॥ यहा पर अनुपम शिव के द्वारा वर्णन किया हुआ महान् भय के प्रणाश का हेतु परम पद को जानकर अपगत हो गये हैं ससार के लोभ और मोह जिनसे ऐसे चित्त वाले विप्र सहसा भगवान शिव को शिर से प्रणिपात करने लगे थे। इसके अनन्तर उस समय मे इस प्रकार से वर्णित का श्रवण कर परम प्रसन्न हुये थे और मनि शुद्ध कुशा एव पुष्पो से विमिश्रित सुगन्ध से युक्त जल से बडे कलशो

के द्वारा जल से ही महेश्वर का स्नपन करने लगे तथा विविध सुस्वर गुह्य (स्तोत्र) हुङ्कारों के द्वारा गान करने लगे थे ॥१३॥१४॥१५॥

नमो देवाधि देवाय महादेवाय वै नमः ।
अर्धनारीशरीराय साङ्ख्ययोगप्रवर्तिने ॥१६॥
मेघवाहनकृष्णाय गजचर्मनिवासिने ।
कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्याल यज्ञोपवीतिने ॥१७॥
सुरचितसुविचित्रकुंडलाय
सुरचितमाल्यविभूषणाय तुभ्यम् ।
मृगपतिवरचर्मवाससे च
प्रथितयशसे नमोऽस्तु शंकराय ॥१८॥
ततस्तान्स मुनीन्प्रीतः प्रत्युवाच महेश्वरः ।
प्रीतोस्मि तपसा युष्मान्वर वृणुत सुव्रताः ॥१९॥
ततस्ते मुनयः सर्वे प्रणिपत्य महेश्वरम् ।
भृग्वङ्गिरा वसिष्ठश्च विश्वामित्रस्तथैव च ॥२०॥
गौतमोऽत्रिः सुकेशश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
मरीचिः कश्यपः कण्वः संवर्तश्च महातपाः ॥२१॥
ते प्रणम्य महादेवमिदं वचनमब्रुवन् ।
भस्मस्नानं च नग्नत्वं वामत्वं प्रतिलोमता ॥२२॥
सेव्यासेव्यत्वमेव च ह्येतदिच्छाम वेदितुम् ।
ततस्तेषां वचः श्रुत्वा भगवान्परमेश्वरः ॥२३॥
सस्मितं प्राह सम्प्रेक्ष्य सर्वान्मुनिवरास्तदा ॥२४॥

उन्होंने शिव का स्तवन किया—देवों के अधिदेव महादेव के लिए हमारा नमस्कार है । अर्ध नारी शरीर वाले के लिए, साङ्ख्य और योग के प्रवर्त्तक के लिये, मेघ के रूप से कृष्ण के वाहन वाले के लिये, गज के चर्म को धारण करने वाले के लिए कृष्णा जिनके उत्तरीय वाले के लिये, व्यालों के उपवीत धारण करने वाले के लिये, सुन्दर

रीति से निर्मित एवं विचित्र कुंडलो वाले के लिये तथा सुनिर्मित माल्यों के भूषण वाले आपके लिये हमारा बारम्बार नमस्कार है। सिंह के परम श्रेष्ठ चर्म के वस्त्र वाले और प्रसिद्ध यश वाले भगवान् शङ्कर के लिए हमारा सबका प्रणाम है ॥१६॥१७॥१८॥ इसके अनन्तर वह भगवान् महेश्वर उन मुनियो से अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले। हे सुन्दर व्रत वालो ! मैं आपके तप से बहुत ही प्रसन्न हो गया हू। अब आप जो चाहो वरदान माँग लो ॥१६॥ ऐसा शङ्कर के कथन के पश्चात् उन सब मुनिगण महेश्वर के चरणो मे प्रणाम किया था। उन मुनियो मे भृगु, अंगिरा, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, अत्रि, सुकेश, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु मरीचि, कश्यप, कण्व, सवर्त्त को महा तपा थे। उन सबने महादेव को प्रणाम करके यह वचन कहे भस्म से स्नान और नग्नत्व यह सव्य मार्ग का प्रकार है और काम्य कर्मों के मार्ग का सेवन है। हम सेव्यत्व और असेव्यत्व को जानना चाहते हैं। इस ऋषियो के कथन के अनन्तर उनके वचन का श्रवण कर भगवान् परमेश्वर स्मित के सहित उन सब मुनियों को देखकर बोले ॥२०॥२१॥२२॥२३॥ ॥२४॥

भस्म एवं स्नान विधि

एतद्वः संप्रवक्ष्यामि कथा सर्वस्वमद्य वै ।
अग्निर्ह्यहं सोमकर्ता सोमश्चाग्निमुपाश्रितः ॥१॥
कृतमेतद्वहत्यग्निर्भूयो लोकसमाश्रयात् ।
असकृत्त्वग्निना दग्ध जगत् स्थावरजंगमम् ॥२॥
भस्मसाद्विहितं सर्वं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
भस्मना वीर्यमास्थाय भूतानि परिषिंचति ॥३॥
अग्निकार्यं च यः कृत्वा करिष्यति त्रियायुषम् ।
भस्मना मम वीर्येण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥४॥

वस्त्रों के द्वारा संवृत होता हुआ भी नग्न ही होता है। इन्द्रियों के जीतने वाले कुछ गुण विशेष होते हैं उनके द्वारा जो संवृत होता है वह ही गुप्त है और इस संवरण करने का कारण वस्त्र नहीं कहा गया है ॥१४॥

क्षमा धृतिरहिंसा च वैराग्यं चैव सर्वशः ।
तुल्यौ मानावमानौ च तदावरणमुत्तमम् ॥१५॥
भस्मस्नानेन दिग्धाङ्गो ध्यायते मनसा भवम् ।
यद्यकार्यसहस्राणि कृत्वा यः स्नाति भस्मना ॥१६॥
तत्सर्वं दहते भस्म यथाग्निस्तेजसा वनम् ।
तस्माद्यत्नपरो भूत्वा त्रिकालमपि यः सदा ॥१७॥
भस्मना कुरुते स्नानं गाणपत्यं स गच्छति ।
समाहृत्य क्रतून् सर्वान्गृहीत्वा व्रतमुत्तमम् ॥१८॥
ध्यायंति ये महादेवं लीलासद्भावभाविता. ।
उत्तरेणार्यपंथानं तेऽमृतत्वमवाप्नुयुः ॥१९॥
दक्षिणेन च पथानं ये श्मशानानि भेजिरे ।
अणिमा गरिमा चैव लघिमा प्राप्तिरेव च ॥२०॥
इच्छा कामावसायित्व तथा प्राकाम्यमेव च ।
ईशित्वं च वशित्व च अमरत्वं च ते गताः ॥२१॥

क्षमा, धृति, अहिंसा, सब ओर से होने वाला वैराग्य, मान और अपमान इन दोनों की समानता ये गुण ही मानव के सर्वोत्तम आवरण होते हैं ॥१५॥ अन्त में सिंहावलोकन न्याय के अनुसार पुनः भस्म का माहात्म्य बतलाते हुए कहते हैं कि भस्म के स्नान से दिग्ध अंगों वाला मनोयोग के साथ जो भव का ध्यान किया करता है और यदि सहस्रों अकार्य करके भी कोई पुरुष भस्म से स्नान कर लेता है तो वह भस्म जिस तरह अग्नि अपने तेज के द्वारा वन को जला दिया करता है उसी भाँति सबको दग्ध कर दिया करता है। इसलिये परम यत्न परायण होकर सदा तीनों कालों में जो भस्म से स्नान करता है

वह गाणपत्य को प्राप्त करता है। समस्त वेदा विहित पञ्च महा यज्ञादि क्रतुओं को करके और उत्तम मन स्वाध्य स्वरूप व्रत को ग्रहण करके लीला विग्रह के सद्भाव से भावित होने वाले जो पुरुष महादेव का ध्यान किया करते है वे उत्तर आर्यों के मार्ग के द्वारा मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥१६॥१७॥१८॥१६॥ जिन्होंने श्मशान आदि दक्षिण मार्गों का सेवन किया है अर्थात् काम्य कर्मों का सेवन किया है वे अणिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, इच्छा का भाव सावित्व, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और अमरत्व को प्राप्त हुये हैं अर्थात् आठो प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त की हैं तथा देव योनि प्राप्त करली है ॥२०॥२१॥

इन्द्रादयस्तथा देवाः कामिकव्रतमास्थिताः ।
ऐश्वर्य परम प्राप्य सर्वे प्रथिततेजसः ॥२२॥
व्यपगतमदमोह मुक्तरागस्त-
मरजदोषविवर्जितस्वभावः ।
परिभवमिदमुत्ताम विदित्वा
पशुपतियोगपरो भवेत्सदेव ॥२३॥
इम पाशुपत ध्यायन् सर्वपापप्रणाशनम् ।
यः पठेच्च शुचिर्भूत्वा श्रद्धानो जितेन्द्रियः ॥२४॥
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोक स गच्छति ।
ते सव मुनय श्रुत्वा वशिष्ठाद्या द्विजोत्तमा. ।२५॥
भस्मपाडुरदिग्धागा बभूवुर्विगतस्पृहाः ।
रुद्रलोकाय कल्पान्ते सस्थिताः शिव तेजसा ॥२६॥

इन्द्र आदिक समस्त देवता कामिक व्रतो में ही आस्थित रहते है। इसलिए वे परम ऐश्वर्य प्राप्त करके सब प्रथित तेज वाले हो गये हैं ॥२२॥ मद और मोह को व्यपगत करके तथा राग का त्याग करके और तमोगुण एव रजोगुण के दोषों से वर्जित स्वभाव वाला होता हुआ इसको उत्ताम परिभव जानकर सदा ही पशुपति योग में

परायण होना चाहिए अर्थात् पाशुपत योग को करे ॥२३॥ इस पाशुपत योग की इतनी महिमा है कि इसका ध्यान करने वाला अपने समस्त पापों का नाश कर देता है। जो इसका पवित्र होकर पाठ किया करता है और इन्द्रियों को जीतकर इसमे पूर्ण श्रद्धा रखता है वह सभी पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर रुद्र लोक को चला जाता है। परम श्रेष्ठ द्विज वसिष्ठ आदि मुनियों ने सबने इसका अद्भुत माहात्म्य श्रवण करके सभी ने विशेष स्पृहा का त्याग कर दिया था और सब भस्म से दिग्ध पाण्डुर अङ्गों वाले हो गए थे। कल्प के अन्त में भी शिव के तेज से रुद्रलोक मे सस्थित रहे थे ॥२४॥२५॥२६॥

तस्मान्न निंद्याः पूज्याश्च विकृता मलिना अपि ।
रूपान्विताश्च विप्रेन्द्राः सदा योगीन्द्रशंकया ॥२७॥
वहुना किं प्रलापेन भवभक्ता द्विजोत्तमाः ।
संपूज्याः सर्वयत्नेन शिववन्नात्र संशयः ॥२८॥
मलिनाश्चैव विप्रेन्द्रा भवभक्ता दृढव्रताः ।
दधीचस्तु यथा देवदेव जित्वा व्यवस्थितः ॥२९॥
नारायण तथा लोके रुद्रभक्त्या न सशय ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भस्मदिग्धतनूरुहाः ॥३०॥
जटिनो मुंडिनश्चैव नग्ना नानाप्रकारिणः ।
संपूज्याः शिववन्नित्यं मनसा कर्मणा गिरा ॥३१॥

इसलिये हे विप्रेन्द्रगण ! विकृत और मलिन तथा रूप से अन्वितों की कभी निन्दा नही करनी चाहिए। ये सदा ही योगीन्द्र की शङ्का वाले होते है। अतएव इनकी सर्वदा पूजा एव सत्कार ही करने चाहिए ॥२७॥ हे शिव भक्त ! द्विजोत्तमगण ! अधिक निरर्थक कथन से क्या लाभ है। इन शिव की उपासना करने वाले यतियों का सम्पूर्ण प्रयत्नों के द्वारा शिव की ही भाँति अर्चन करना चाहिये, इसमे कुछ भी सशय नही करे ॥२८॥ हे विप्रेन्द्रगण ! ये मलिन होते हुए भी शिव के भक्त दृढ व्रत वाले होते हैं। दधीच रुद्रदेव की भक्ति के बल

से ही देवों के देव नारायण को जीतकर व्यवस्थित हो गया था, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इसलिए जो भस्म से दिव्य तनू रुह वाले, जटाधारी, मुण्डित, नग्न एवं अनेक रूपों के धारण करने वाले हों उनकी सभी प्रयत्नों के द्वारा मन, कर्म और वचन से शिव की भांति ही नित्य पूजा करनी चाहिए ॥२६॥३०॥३१॥

दधीच द्वारा क्षुप का पराभव

कथं जघान राजानं क्षुपं पादेन सुव्रत ।
दधीचः समरे जित्वा देवदेवं जनार्दनम् ॥१॥
वज्रास्थित्वं कथं लेभे महादेवान्महातपाः ।
वक्तुमर्हसि शैलादे जितो मृत्युस्त्वया यथा ॥२॥
ब्रह्मपुत्रो महातेजा राजा क्षुप इति स्मृतः ।
अभून्मित्रो दधीचस्य मुनीन्द्रस्य जनेश्वरः ॥३॥
चिरात्तयोः प्रसगाद्वै वादः क्षुपदधीचयोः ।
अभवत् क्षत्रियश्रेष्ठो विप्र एवेति विश्रुतः ॥४॥
अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः ।
तस्मादिन्द्रो ह्ययं वह्निर्यमश्च निऋतिस्तथा ॥५॥
वरुणश्चैव वायुश्च सोमो धनद एव च ।
ईश्वरोहं न संदेहो नावमन्तव्य एव च ॥६॥
महती देवता या सा महतश्चापि सुव्रत ।
तस्मात्त्वया महाभाग च्यावनेय सदा ह्यहम् ॥७॥
नावमन्तव्य एवेह पूजनीयश्च सर्वथा ।
श्रुत्वा तथा मतं तस्य क्षुपस्य मुनिसत्तमः ॥८॥

सनत्कुमार ने कहा—हे सुव्रत ! दधीच ने समराङ्गण में देवों के देव भगवान् जनार्दन को जीतकर क्षुप राजा को पाद से कैसे मार

दिया था ॥१॥ उस महा तपस्वी ने महादेव से अस्थियों का वज्र हो जाना कैसे प्राप्त किया था ? हे शैलादे ! जिस प्रकार से आपने मृत्यु पर जय प्राप्त कर लिया है, यह भी सब आप वर्णन करके बताने के योग्य हैं ॥२॥ शैलादि ने कहा—राजा क्षुप महान् तेजस्वी और ब्रह्मा का पुत्र कहा गया है। यह जनेश्वर मुनि श्रेष्ठ दधीच का परम मित्र था। ॥३॥ बहुत अधिक समय के लिए उन दोनो मित्र क्षुप और दधीच मे प्रसग वश एक वाद छिड़ गया था कि क्षत्रिय श्रेष्ठ होता है या विप्र ही श्रेष्ठ विश्रुत है ॥४॥ राजा आठो लोकपालों का शरीर धारण किया करता है। इसलिये यह इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम और कुवेर ही होता है। मैं राजा हूँ अतएव मैं ईश्वर ही हू इसमे कुछ भी सन्देह नही है। मुझ राजा का कभी भी अपमान नही करना चाहिए ॥५॥६॥ वर्णों मे श्रेष्ठ ब्राह्मण का सबसे बडा देवता विष्णु होता है वह मैं ही तो हू अतएव हे सुव्रत ! हे महाभाग च्यावननेय ! इसलिये तुमको मेरा कभी अपमान नही करना चाहिए और इस ससार मे मैं सभी प्रकार से पूजा करने के योग्य हूँ। इस तरह के उस क्षुप राजा के वचनो का मुनियो मे परम श्रेष्ठ दधीच ने श्रवण किया था और उसका मन जान लिया था ॥७॥८॥

दधीचश्च्यावनिश्चोग्रो गौरवादात्मनो द्विजः ।
अताडयत्क्षुपं मूर्ध्नि दधीचो वाम मुष्टिना ।
चिच्छेद वज्रेण च तं दधीचं बलवान् क्षुप. ॥९॥

ब्रह्मलोके पुरासौ हि ब्रह्मणः क्षुतसंभवः ।
लब्धं वज्रं च कार्यार्थं वज्रिणा चोदितः प्रभुः ॥१०॥

स्वेच्छयैव नरो भूत्वा नरपालो बभूव सः ।
तस्माद्राजा स विप्रेन्द्रमजयद्वै महाबलः ॥११॥

यथा वज्रधरः श्रीमान्बलवांस्तमसान्वितः ।
पपात भूमौ निहतो वज्रेण द्विजपुंगवः ॥१२॥

सस्मार च तदा तत्र दुःखार्द्दै भार्गवं मुनिम् ।
शुक्रोपि संधयामास ताडितं कुलिशेन तम् ॥१३॥
योगादेत्य दधीचस्य देह देहभृतांवरः ।
सधाय पूर्ववद्देहं दधीचस्याह भार्गवः ॥१४॥

च्यावनि दधीच द्विज उग्र स्वभाव वाला था उसने अपने गौरव के कारण वाममुष्टि से क्षुप राजा के मस्तक मे प्रहार किया था। बलवान् क्षुप ने अपने वज्र से दधीच का छेदन कर दिया था। ॥६॥ यह पहिले ब्रह्मलोक मे ब्रह्मा की जँभाई से उत्पन्न हुआ था। वज्री के द्वारा प्रभु प्रेरित हुआ और कार्य के लिये वज्र की प्राप्ति की थी ॥१०॥ अपनी इच्छा से ही मनुष्य होकर वह राजा हो गया था। इसलिये महान् बलवान् उस राजा ने विप्रेन्द्र को जीत लिया था ॥११॥ वज्र के धारण करने वाला श्रीमान् और बलवान् तथा तमोगुण से आवृत था। वज्र के द्वारा निहत द्विजश्रेष्ठ भूमि पर गिर गया था। ॥१२॥ उस समय वहाँ पर उसने दुःख से भार्गव मुनि का स्मरण किया था और शुक्र ने भी योग की गति से वहाँ आकर वज्र से ताडित उस दधीच के देह को सन्धित कर दिया था अर्थात् पूर्ववत् जोड़ दिया था ॥१३॥ देहधारियो मे श्रेष्ठ भार्गव योग के बल से वहा दधीच के पास समुपस्थित होकर पहिले की भाँति दधीच के शरीर को जोड़कर उससे कहा ॥१४॥

भो दधीच महाभाग देवदेवमुमापतिम् ।
संपूजय पूज्यं ब्रह्मा देवदेवं निरंजनम् ॥१५॥
अवध्यो भव विप्रर्ष प्रसादात्र्यम्बकस्य तु ।
मृत संजीवनं तस्माल्लब्धमेतन्मया द्विज ॥१६॥
नास्ति मृत्युभयं शंभोर्भक्तानामिह सर्वतः ।
मृतसंजीवनं चापि शैवमद्य वदामि ते ॥१७॥

त्रियंबकं यजामहे त्रैलोक्यपितरं प्रभुम् ।
त्रिमंडलस्य पितरं त्रिगुणस्य महेश्वरम् ॥१८॥
त्रितत्त्वस्य त्रिवह्नेश्च त्रिधाभूतस्य सर्वतः ।
त्रिवेदस्य महादेवं सुगंधिं पुष्टिवर्धनम् ॥१९॥
सर्वभूतेषु सर्वत्र त्रिगुणे प्रकृतौ तथा ।
इन्द्रियेषु तथाऽन्येषु देवेषु च गणेषु च ॥२०॥
पुष्पेषु गंधवत्सूक्ष्मः सुगंधिः परमेश्वरः ।
पुष्टिश्च प्रकृतिर्यस्मात्पुरुषस्य द्विजोत्तम ॥२१॥

हे महाभाग ! हे दधीच ! तुम देवो के भी देव, निरञ्जन और ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा वन्द्यमान उमा के पति को भली-भाँति पूजा करके अवध्य हो जाओ । भगवान् त्र्यम्बक के प्रसाद से हे विप्रर्षे ! तुम किसी के भी द्वारा वध न करने के योग्य हो जाओगे । हे द्विज ! उन्ही देवदेव से मैंने यह मृतो को सजीवित करने वाली शक्ति प्राप्त की है । ॥१५॥१६॥ इस संसार मे भगवान् शम्भु के भक्तो को सब ओर से मृत्यु का भय नही होता है । आज मैं तुमको शिव की मृत सजीवन को भी बताता हूँ ॥१७॥ अब मृत सजीवक मन्त्र का विवरण किया जाता है । त्रैलोक्य के पिता प्रभु त्रियम्बक का यजन करते हैं । यहाँ त्रैलोक्य के पिता से त्र्यम्बक शब्द का पितृरूप अर्थ दिखाया गया है । सोम, अग्नि और सूर्य रूप त्रिमण्डल के पिता, सत्त्वरजस्तमो रूप त्रिगुण के महेश्वर, बुद्धि, अहङ्कार और मन रूप त्रितत्त्व, गार्हपत्य, आह्वनीय और दक्षिणाग्नि रूप के, सब मे त्रिधाभूत अर्थात् तीन प्रकार वाले के, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र रूप त्रिदेव के पिता त्र्यम्बक सुगन्धि और पुष्टि के वर्धन महादेव का यजन करते हैं ॥१८॥१९॥ समस्त भूतो मे सर्वत्र त्रिगुणात्मक प्रकृति मे, इन्द्रियो मे तथा अन्य देवो में और गणो मे, पुष्पों में गन्ध की भाँति परमेश्वर सुगन्धि हैं । हे द्विजोत्तम ! जिससे प्रकृति होती हैं उस पुरुष की पुष्टि है ॥२०॥२१॥

महदादिविशेषान्तविकल्पस्यापि सुव्रतः ।
विष्णोः पितामहस्यापि मुनीनां च महामुने ॥२२॥
इन्द्रस्यापि च देवाना तस्माद्दै पुष्टिवर्धनः ।
त देवममृत रुद्रं कर्मणा तपसा तथा ॥२३॥
स्वाध्यायेन च योगेन ध्यानेन च यजामहे ।
सत्येनानेन मुक्षीयान्मृत्युपाशाद्भवः स्वयम् ॥२४॥
बंधमोक्षकरो यस्मादुर्वारुकमिव प्रभुः ।
मृतसजीवनो मत्रो मया लब्धस्तु शकरात् ॥२५॥
जप्त्वा हुत्वाभिमंत्र्यैव जलं पीत्वा दिवानिशम् ।
लिंगस्य सान्निधौ ध्यात्वा नास्ति मृत्युभय द्विज ॥२६॥

हे महामुने ! हे सुव्रत ! महन् से आदि लेकर विशेष के अत तक माया भ्रम था, विष्णु का, पितामह का और मुनियो का तथा इन्द्र का और देवो का उस कारण से पुष्टि वर्धन होता है । अतएव यह सबका प्रकृति से वर्धन है उस नाश से मुक्त रुद्र अज्ञान के द्रावण करने वाले देव को कर्म के द्वारा, तप के द्वारा, स्वाध्याय से, योग के द्वारा और ध्यान के द्वारा यजन करते हैं । स्वाध्याय वेदो के अध्ययन, योग से समाधि तथा ध्यान से चिन्तन करना बताया गया है । इस सत्य के आश्रय से जो पूर्व मे कहा गया है भव स्वय भी मृत्यु के पाश से मुक्त करें । ॥२२॥२३॥२४॥ जिससे उर्वारुक की भाँति प्रभु स्वय बन्धन से मोक्ष के करने वाले होते हैं । यह मृत सजीवन मन्त्र मैंने भगवान् शङ्कर से प्राप्त किया है ॥२५॥ इसका जप करे, हवन करें और अहर्निश इससे जल को अभिमन्त्रित करके पान करे तथा लिङ्ग की सन्निधि में ध्यान करे तो हे द्विज ! फिर उसको मृत्यु का भय नहीं होता है । ॥२६॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तपसाराध्य शकरम् ।
वज्रास्थित्वमवध्यत्वमदीनत्व च लब्धवान् ॥२७॥

एवमाराध्य देवेशं दधीचो मुनिसत्तमः।
प्राप्यावध्यत्वमन्यैश्च वज्रास्थित्वं प्रयत्नतः ॥२८॥
अताडयच्च राजेंद्रं पादमूलेन मूर्धनि।
क्षुपो दधीचं वज्रेण जघानोरसि च प्रभुः ॥२९॥
नाभून्नाशाय तद्वज्रं दधीचस्य महात्मनः।
प्रभावात्परमेशस्य वज्रवद्धशरीरिणः ॥३०॥
दृष्ट्वाप्यवध्यत्वमदीनतां च
क्षुपा दधीचस्य तदा प्रभावम् ।
आराधयामास हरिं मुकुंद-
मिन्द्रानुजं प्रेक्ष्य तदांबुजाक्षम् ॥३१॥

उसके इस वचन को श्रवण करके दधीच ने तपस्या के द्वारा भगवान् शङ्कर की आराधना करके वज्र की अस्थियों का होना, न मारे जाने योग्य होना और अदीन होना प्राप्त कर लिया था ॥२७॥ मुनियों में परम श्रेष्ठ दधीच ने इस प्रकार से देवेश की समाराधना करके दूसरो के द्वारा अवध्यत्व और प्रयत्न से वज्रास्थित प्राप्त किया था। दधीच ने अपने पाद मूल से राजेन्द्र क्षुप के मस्तक में ताड़न किया था और राजा क्षुप ने दधीच के उरःस्थल में वज्र के द्वारा हनन किया था ॥२८॥२९॥ वह वज्र दधीच महात्मा के नाश करने वाला नहीं हुआ था। क्योंकि दधीच परमेश की कृपा के प्रभाव से वज्र से बद्ध शरीर वाला था ॥३०॥ राजा क्षुप ने दधीच की अवध्यता और अदीनता को देखा था तथा दधीचि के अद्भुत प्रभाव को देखकर उस समय कमल के सदृश सुन्दर नेत्रों वाले, इन्द्र के अनुज मुकुन्द हरि को सामर्थ्य समन्वित विचार कर उसने भगवान् विष्णु की आराधना की थी ॥३१॥

दधीच और विष्णु का संग्राम

पूजया तस्य संतुष्टो भगवान्पुरुषोत्तमः।
श्रीभूमिसहितः श्रीमान्शङ्खचक्रगदाधरः ॥१॥

किरीटी पद्महस्तश्च सर्वाभरण भूषितः ।
पीतांबरश्च भगवान्देवैर्दैत्यैश्च संवृतः ॥२॥
प्रददौ दर्शनं तस्मै दिव्यं वै गरुडध्वजः ।
दिव्येन दर्शनेनैव दृष्ट्वा देवं जनार्दनम् ॥३॥
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः प्रणम्य गरुडध्वजम् ।
त्वमादिस्त्वमनादिश्च प्रकृतिस्त्वं जनार्दनः ॥४॥
पुरुषस्त्वं जगन्नाथो विष्णुर्विश्वेश्वरो भवान् ।
योयं ब्रह्मासि पुरुषो विश्वमूर्तिः पितामहः ॥५॥
तत्त्वमाद्यं भवानेव परं ज्योतिर्जनार्दन ।
परमात्मा परंधाम श्रीपते भूपते प्रभो ॥६॥
त्वत्क्रोधसंभवो रुद्रस्तमसा च समावृतः ।
त्वत्प्रसादाज्जगद्धाता रजसा च पितामहः ॥७॥

इस अध्याय मे क्षुप के द्वारा किया हुआ वैष्णव स्तोत्र से निरूपण किया जाता है। नन्दी ने कहा—भगवान् पुरुषोत्तम उस राजा क्षुप की पूजा से सन्तुष्ट हो गये थे। भगवान् श्री भूमि के सहित और श्रीमान् शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले थे ॥१॥ भगवान किरीट धारी, हाथ में पद्म ग्रहण किए हुये थे तथा समस्त आभरणों से विभूषित थे। भगवान ने पीताम्बर धारण कर रक्खा था तथा सम्पूर्ण देव और दैत्यों से सवृत थे ॥२॥ गरुड ध्वज भगवान ने उस क्षुप को दिव्य दर्शन दिया था। दिव्य दर्शन के द्वारा ही देव जनार्दन को उसने देखा था ॥३॥ फिर उसने भगवान गरुड ध्वज को प्रणाम करके अभीष्ट वाणियों के द्वारा उसने उनका स्तवन किया था। आप सबके आदि हैं और आपका कभी कोई आदि काल नहीं होता है। आप प्रकृति हैं तथा अपने भक्त जनों के दुःखों का नाश करने वाले हैं ॥४॥ आप पुराण पुरुष हैं और इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। आप इस विश्व के ईश्वर विष्णु हैं। जो यह ब्रह्मा है वह भी विश्वमूर्त्ति पितामह आप ही पुरुष हैं ॥५॥ आप ही आद्य तत्त्व हैं, आप परम ज्योति और

जनार्दन हैं। हे श्रीपते ! हे भूपते ! हे प्रभो ! आप परम धाम और परमात्मा है ॥६॥ आपके ही क्रोध से तमोगुण से आवृत्त रुद्र उत्पन्न हुए हैं। आपके ही प्रसाद से रजोगुण से धाता पितामह उत्पन्न हुए हैं ॥७॥

त्वत्प्रसादात्स्वयं विष्णुः सत्त्वेन पुरुषोत्तमः ।
कालमूर्ते हरे विष्णो नारायण जगन्मय ॥८॥
महांस्तथा च भूतादिस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ।
त्वयैवाधिष्ठितान्येव विश्वमूर्ते महेश्वर ॥९॥
महादेव जगन्नाथ पितामह जगद्गुरो ।
प्रसीद देवदेवेश प्रसीद परमेश्वर ॥१०॥
प्रसीद त्वं जगन्नाथ शरण्यं शरणं गतः ।
वैकुण्ठ शौरे सर्वज्ञ वासुदेव महाभुज ॥११॥
संकर्षण महाभाग प्रद्युम्न पुरुषोत्तम ।
अनिरुद्ध महाविष्णो सदा विष्णो नमोस्तु ते ॥१२॥
विष्णो तवासनं दिव्यमव्यक्तं मध्यतो विभुः ।
सहस्रफणसंयुक्तस्तमोमूर्तिर्धराधरः ॥१३॥
अधश्च धर्मो देवेश ज्ञानं वैराग्यमेव च ।
ऐश्वर्यमासनस्यास्य पादरूपेण सुव्रत ॥१४॥

आपके ही प्रसाद से सत्त्वगुण के द्वारा स्वयं पुरुषोत्तम विष्णु हुए हैं। हे विष्णो ! आप कालमूर्त्ति हैं, पापों के हरण करने वाले हैं और जगत् से परिपूर्ण साक्षात् नारायण हैं ॥८॥ हे विश्वमूर्त्ते ! हे महेश्वर ! महान्, भूतादि, पञ्च तन्मात्रा और इन्द्रियाँ ये सब आपके द्वारा ही अधिष्ठित हैं ॥९॥ हे महान् देव ! हे जगतो के नाथ ! हे पितामह ! हे जगत् के गुरो ! हे देवों के भी देवेश ! हे परमेश्वर ! आप प्रसन्न होइये, आप कृपा कीजिये ॥१०॥ हे जगन्नाथ ! आप अपनी प्रसन्नता कीजिए। आप शरण्य हैं अर्थात् शरणागत की रक्षा करने वाले है। मैं आपकी शरणागति में प्राप्त हो गया हू। हे वैकुण्ठ ! हे शौरे ! आप

सर्वज्ञ हैं वासुदेव हैं, महान् भुजाओं वाले हैं। हे सङ्कर्षण ! हे महाभाग ! हे प्रद्युम्न ! हे समस्त पुरुषो में परम श्रेष्ठ ! हे अग्नि रुद्ध ! हे महा विष्णो ! हे विष्णो ! हमारा सदा आपको प्रणाम है ॥११॥ ॥१२॥ हे विष्णो ! क्षीर सागर के मध्य में आपका आसन तो बहुत ही दिव्य और अव्यक्त है। वह विभु तमो मूर्त्ति धरा को धारण करने वाले शेष सहस्र फनो से संयुक्त है ॥१३॥ हे देवेश ! इस आसन के नीचे धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य पाद रूप से हैं ॥१४॥

सप्तपातालपादस्त्वं धराजघनमेव च।
वासासि सागरा सप्त दिशश्चैव महाभुजा ॥१५॥
द्यौर्मूर्धा ते विभो नाभि खं वायुर्नासिका गतः ।
नेत्रे सोमश्च सूर्यश्च केशा वै पुष्करादयः ॥१६॥
नक्षत्रतारका द्यौश्च ग्रैवेयकविभूषणम् ।
कथं स्तोष्यामि देवेश पूज्यश्च पुरुषोत्तम ॥१७॥
श्रद्धया च कृतं दिव्यं यच्छ्रुतं यच्च कीर्तितम् ।
यदिष्टं तत्क्षमस्वेश नारायण नमोस्तु ते ॥१८॥
इदं तु वैष्णवं स्तोत्रं सर्वपापप्रणाशनम् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि क्षपेण परिकीर्तितम् ॥१९॥
श्रावयेद्वा द्विजान् भक्त्या विष्णुलोकं स गच्छति ॥२०॥
संपूज्य चैव त्रिदशेश्वराद्यं स्तुत्वा स्तुतं देवमजेयमीशम् ।
विज्ञापयामास निरीक्ष्य भक्त्या जनार्दनाय प्रणिपत्य मूर्ध्ना ॥२१॥

आपके सात पाताल चरण हैं। यह भूमि ही आपके जघन हैं। सात सागर और सम्पूर्ण दिशायें आपकी महान् भुजायें हैं ॥१५॥ हे विभो ! द्यौ आपका मूर्धा है, आकाश नाभि है और वायु श्वासोच्छ्वास लेने वाली नासिका है। चन्द्र और सूर्य दोनों आपके नेत्र हैं तथा पुष्कर आदि नाम वाले मेघ आपके केश हैं ॥१६॥ नक्षत्र और तारे तथा द्यौ आदि आपके कंठ के विभूषण हैं। देवों के ईश आपका मैं किस प्रकार से

स्तवन करूँ। आप तो पुरुषोत्तम और सब प्रकार से पूजा करने के योग्य हैं ॥१७॥ मैंने जो कुछ भी स्तवन किया है वह श्रद्धा से दिव्य किया है। जो श्रवण किया है वही मैंने वर्णन किया है जो कि मुझे अभीष्ट था। हे ईश ! हे नारायण ! उसे क्षमा कीजिए, मेरा आप को नमस्कार है ॥१८॥ शैलादि ने कहा—यह वैष्णव स्तोत्र सब प्रकार के पापों के प्रणाश करने वाला है। राजा क्षुप के द्वारा कहे हुए इस स्तोत्र को जो कोई पढ़ता है अथवा श्रवण करता है या भक्ति के भाव से द्विजो को श्रवण कराता है वह विष्णु लोक को जाता है ॥१९॥२०॥ देवादि के द्वारा स्तुत, अजेय, ईश देव की स्तुति करके और भली भाँति अर्चन करके तथा भक्तिभाव से उनका दर्शन करके भगवान् जनार्दन को शिर से प्रणाम करके प्रार्थना की थी ॥२१॥

भगवन्ब्राह्मणः कश्चिद्दधीच इति विश्रुतः ।
धर्मवेत्ता विनीतात्मा सखा मम पुराभवत् ॥२२॥
अवध्यः सर्वदा सर्वैः शङ्करार्चनतत्परः ।
सावज्ञं वामपादेन स मां मूर्ध्नि सदस्यथ ॥२३॥
ताडयामास देवेश विष्णो विश्वजगत्पते ।
उवाच च मदाविष्टो न बिभेमीति सर्वतः ॥२४॥
जेतुमिच्छामि तं विप्रं दधीचं जगदीश्वर ।
यथा हितं तथा कर्तुं त्वमर्हसि जनार्दन ॥२५॥
ज्ञात्वा सोपि दधीचस्य ह्यवध्यत्वं महात्मनः ।
सस्मार च महेशस्य प्रभावमतुलं हरिः ॥२६॥
एवं स्मृत्वा हरिः प्राह ब्रह्मणः क्षुतसंभवम् ।
विप्राणां नास्ति राजेन्द्र भयमेत्य महेश्वरम् ॥२७॥
विशेषाद्रुद्रभक्तानामभयं सर्वदा नृप ।
नीचानामपि सर्वत्र दधीचस्यास्य किं पुनः ॥२८॥

राजा क्षुप ने कहा—हे भगवन् ! कोई एक दधीच इस नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मण है जो धर्म का जानने वाला तथा विनीत आत्मा वाला

है और पहिले यह मेरा सखा था ॥२२॥ वह भगवान् शङ्कर के अर्चन करने मे तत्पर रहता है और सर्वदा सबके द्वारा अवध्य है। उसने अवज्ञा पूर्वक मेरे मस्तक मे वाम पाद से सभा मे प्रहार किया था ॥२३॥ हे देवेश ! हे विष्णो ! हे विश्व और जगत् के स्वामिन् ! उसने मद मे आविष्ट होकर कहा था कि मैं किसी से भी नही डरता हू ॥२४॥ हे जगत के ईश्वर ! मैं अब उस दधीच विप्र को जीतने की इच्छा करता हू। हे जनार्दन ! जिस प्रकार से मेरा हित हो वैसे ही आप करने के योग्य होते हैं ॥२५॥ शैलादि ने कहा—उन भगवान् हरि ने भी महान् आत्मा वाले दधीच की अवध्यता को जानकर महेश्वर के अतुल प्रभाव का स्मरण किया था ॥२६॥ इस प्रकार से हरि ने स्मरण करके ब्रह्मा की जंभाई से समुत्पन्न राजा क्षुप से कहा—हे राजेन्द्र ! भगवान् महेश्वर के समीप मे शरणागत होने वाले विप्रो को भय नही हुआ करता है। ॥२७॥ हे नृप ! विशेष रूप से जो रुद्र के भक्त होते हैं वे चाहे नीच भी हो उनको सर्वत्र सर्वदा अभय होता है तो फिर द्विजेन्द्र दधीच के विषय मे तो कहना ही क्या है अर्थात् उसे तो कभी भय हो ही नहीं सकता है ॥२८॥

तस्मात्तव महाभाग विजयो नास्ति भूपते।
दुःखं करोमि विप्रस्य शापार्थं ससुरस्य मे ॥२६॥
भविता तस्य शापेन दक्षयज्ञे सुरैः समम्।
विनाशो मम राजेन्द्र पुनरुत्थानमेव च ॥३०॥
तस्मात्समेत्य विप्रेन्द्रं सर्वयत्नेन भूपते।
करोमि यत्नं राजेन्द्र दधीचविजयाय ते ॥३१॥
श्रुत्वा वाक्यं क्षुपः प्राह तथास्त्विति जनार्दनम्।
भगवानपि विप्रस्य दधीचस्याश्रमं ययौ ॥३२॥
आस्थाय रूपं विप्रस्य भगवान् भक्तवत्सलः।
दधीचमाह ब्रह्मर्षिमभिवंद्य जगद्गुरुः ॥३३॥

भोभो दधीच ब्रह्मर्षे भवार्चनरताव्यय।
वरमेकं वृणे त्वत्तस्तं भवान्दातुमर्हति ॥३४॥
याचितो देवदेवेन दधीचः प्राह विष्णुना।
ज्ञातं तवेप्सितं सर्वं न बिभेमि तवाप्यहम् ॥३५॥

इस कारण से हे महाभाग राजन् ! तुम्हारी विजय नही है। मेरे श्वसुर विप्र के शाप के लिए मैं दुःख करता हूं ॥२९॥ उसके शाप से दक्ष प्रजापति के यज्ञ में देवों के साथ मेरा विनाश होगा। हे राजेन्द्र ! फिर उत्थान भी होगा ॥३०॥ हे भूपते ! इससे विप्रेन्द्र के समीप मे जाकर सब प्रकार के यत्न से हे राजेन्द्र ! तेरा दधीच पर विजय होने के लिये यत्न करता हूं ॥३१॥ शैलादि ने कहा—राजा क्षुप ने इस वाक्य को सुनकर भगवान् जनार्दन से कहा, 'ऐसा ही होवे'। फिर भगवान् भी विप्रवर दधीच के आश्रम गये थे ॥३२॥ भक्तों पर प्यार करने वाले भगवान् ने ब्राह्मण का स्वरूप धारण करके जगत् गुरु ने ब्रह्मर्षि दधीच को प्रणाम करके उनसे कहा ॥३३॥ श्री भगवान् ने कहा—हे ब्रह्मर्षि दधीच ! आप तो भगवान् शङ्कर की अर्चना मे पूर्ण रति रखने वाले और अव्यय हैं। मैं आप से एक वरदान प्राप्त करना चाहता हू उसे आप देने के योग्य हैं ॥३४॥ देवो के भी देव विष्णु के द्वारा इस तरह से याचना किए गये दधीच ने कहा, मैंने आपका सम्पूर्ण इच्छित विचार जान लिया और आप से भी भय नही खाता हूं ॥३५॥

भवान् विप्रस्य रूपेण आगतोसि जनार्दन।
भूत भविष्यं देवेश वर्तमानं जनार्दन ॥३६॥
ज्ञातं प्रसादाद्रुद्रस्य द्विजत्वं त्यज सुव्रत।
आराधितोसि देवेश क्षुपेण मधुसूदन ॥३७॥
जाने तवैनां भगवन्भक्तवत्सलतां हरे।
स्थाने तवैषा भगवन्भक्तवात्सल्यता हरे ॥३८॥
अस्ति चेद्भगवन् भीतिर्भवार्चनरतस्य मे।
वक्तुमर्हसि यत्नेन वरदाम्बुजलोचन ॥३९॥

वदामि न मृषा तस्मान्न बिभेमि जनार्दन ।
न बिभेमि जगत्यस्मिन् देवदैत्यद्विजादपि ॥४०॥
श्रुत्वा वाक्यं दधीचस्य तदास्थाय जनार्दनः ।
स्वरूप सस्मितं प्राह संत्यज्य द्विजतां क्षणात् ॥४१॥
भयं दधीच सर्वत्र नास्त्येव तव सुव्रत ।
भवार्चनरतो यस्माद्भवान् सर्वज्ञ एव च ॥४२॥
बिभेमीति सकृद्वक्तुं त्वमर्हसि नमस्तव ।
नियोगान्मम विप्रेन्द्र क्षुपं प्रति सदस्यय ॥४३॥

हे जनार्दन ! आप एक विप्र का स्वरूप धारण करके मेरे पास आये हैं। हे देवेश ! हे जनार्दन ! भूत, भविष्य और वर्तमान मैंने सब भगवान् रुद्र के प्रसाद से जान लिया है अतएव हे सुव्रत ! अब इस द्विजत्व का त्याग कर देवें। हे देवेश मधुसूदन ! आप क्षुप के द्वारा आराधित हुए हैं ॥३६॥३७॥ हे हरे ! हे भगवन् ! मैं आपकी इस भक्त वत्सलता को जानता हू। आपकी यह भक्त वत्सलता जो कि आपकी है वह समुचित ही है। हे भगवन्! यदि शङ्कर की अर्चना मे रत मुझ से आपको कुछ भय होता है तो हे वर देने वाले ! हे कमल नयन ! आप जो चाहते है यत्न पूवक कहने के योग्य हैं ॥३८॥३९॥ हे जनार्दन ! इस कारण से मैं उससे नही डरता हू और न मिथ्या ही बोल रहा हू। मैं इस जगत् में देव दैत्य और द्विज किसी से भी भय नहीं खाता हू। ॥४०॥ नन्दी ने कहा—दधीच के इस वचन का श्रवण कर जनार्दन प्रभु उस समय अपने स्वरूप मे आस्थित हो गये थे और द्विजता को क्षण मात्र मे त्याग दिया था। फिर मुस्कराहट के साथ बोले ॥४१॥ श्री भगवान् ने कहा, हे सुव्रत दधीच ! आपको सर्वत्र भय नहीं हैं। आप तो भगवान् शङ्कर के समर्चन मे रत रहने वाले हैं अतएव सभी कुछ के ज्ञाता भी हैं ही ॥४२॥ मैं एकबार कहते मे डरता हूँ। आप योग्य होते हैं। आपको मेरा प्रणाम है। हे विप्रेन्द्र ! मेरे नियोग से क्षुप के प्रति त्याग कीजिएगा ॥४३॥

एवं श्रुत्वापि तद्वाक्यं सांत्वं विष्णोर्महामुनिः ।
न बिभेमीति त प्राह दधीचो देवसत्तमम् ॥४४॥
प्रभावाद्देवदेवस्य शंभोः साक्षात्पिनाकिनः ।
शर्वस्य शंकरस्यास्य सर्वज्ञस्य महामुनिः ॥४५॥
ततस्तस्य मुनेः श्रुत्वा वचनं कुपितो हरिः ।
चक्रमुद्यम्य भगवान्दिधक्षुर्मुनिसत्तमम् ॥४६॥
अभवत्कुंठिताग्रं हि विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ।
प्रभावाद्धि दधीचस्य क्षुपस्यैव हि सन्निधौ ॥४७॥
दृष्ट्वा तत्कुंठिताग्रं हि चक्रं चक्रिणमाह सः ।
दधीचः सस्मितं साक्षात्सदसद्व्यक्तिकारणम् ॥४८॥
भगवन् भवता लब्धं पुरातीव सुदारुणम् ।
सुदर्शनमिति ख्यातं चक्रं विष्णो प्रयत्नत. ॥४९॥
भवस्यैतच्छुभं चक्रं न जिघांसति मामिह ।
ब्रह्मास्त्राद्यैस्तथान्यैर्हि प्रयत्नं कर्तुमर्हसि ॥५०॥

इस तरह महामुनि ने उम सान्त्वना युक्त विष्णु के वाक्य को सुनकर भी दधीच ने नही डरता हूं, यह उन देवो मे श्रेष्ठ से कहा था । ॥४४॥ महामुनि ने कहा कि मुझे कोई भी भय नही है क्योंकि देवो के देव, साक्षात् पिनाक के धारण करने वाले, सब कुछ के ज्ञाता, इन सर्व शङ्कर का प्रभाव ही ऐसा है जो डर को दूर भगा देता है ॥४५॥ इसके अनन्तर मुनि के इन वचनो का श्रवण कर भगवान् हरि को बडा क्रोध आ गया था और भगवान् ने चक्र को उठाकर मुनि श्रेष्ठ के दग्ध कर देने की इच्छा की थी ॥४६॥ किन्तु उस समय राजा क्षुप की सन्निधि मे ही भगवान् विष्णु का सुदर्शन चक्र दधीच मुनि के प्रभाव से कुण्ठित अग्रभाग वाला हो गया था ॥४७॥ फिर उस मुनि ने चक्रधारी विष्णु से उनके उस सुदर्शन चक्र को कुण्ठित अग्र वाला देखकर दधीच से मुस्कराते हुए साक्षात् सद् और असत् व्यक्ति का कारण बताया था ॥४८॥ हे भगवन् ! आपने पहिले यह अतीव सुदारुण सुदर्शन नाम से

प्रसिद्ध चक्र हे विष्णो ! प्रयत्न पूर्वक प्राप्त किया है ।।४९।। भव का यह शुभ चक्र मुझको यहा मारना नही चाहता है। आप ब्रह्मास्त्र आदि अन्य अस्त्रो के द्वारा भी प्रयत्न करने के योग्य होते हैं। अर्थात् अन्यास्त्रों का भी प्रयोग कर लेवें ।।५०।।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा निर्वीर्यमायुधम् ।
ससर्ज च पुनस्तस्मै सर्वास्त्राणि समंततः ।।५१।।
चक्रुर्देवास्ततस्तस्य विष्णोः साहाय्यमव्ययाः ।
द्विजेनैकेन योद्धुं हि प्रवृत्तस्य महाबलाः ।।५२।।
कुशमुष्टि तदादाय दधीचः संस्मरन्भवम् ।
ससर्ज सर्वदेवेभ्यो वज्रास्थिः सर्वतो वशी ।।५३।।
दिव्यं त्रिशूलमभवत्कालाग्निसदृशप्रभम् ।
दग्धुं देवान्मतिं चक्रे युगांताग्निरिवापरः ।।५४।।
इन्द्रनारायणाद्यैश्च देवैस्त्यक्तानि यानि तु ।
आयुधानि समस्तानि प्रणेमुस्त्रिशिखं मुने ।।५५।।
देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे ध्वस्तवीर्या द्विजोत्तम ।
ससर्ज भगवान् विष्णुः स्वदेहात्पुरुषोत्तमः ।।५६।।
आत्मनः सदृशान्दिव्यांल्लक्षलक्षायुतान् गणान् ।
तानि सर्वाणि सहसा ददाह मुनिसत्तमः ।।५७।।

शीलादि ने कहा—इस मुनि के इस वचन का श्रवण करके और अपने सुदर्शन चक्र नामक आयुध को पराक्रम से हीन देख कर फिर उस पर चारो ओर से अन्य समस्त अस्त्रों का प्रयोग किया था ।।५१।। इसके अनन्तर अव्यय देवो ने भी भगवान् विष्णु की सहायता की थी और महान् बल वाले देवगण उस एक द्विज के साथ युद्ध करने मे प्रवृत्त विष्णु का सहायक हुए थे ।।५२।। उस समय मे दधीच ने कुशाओं की एक मुट्ठी भर कर महादेव का स्मरण करते हुए वज्र की अस्थि वाले और सर्व प्रकार से वशी मुनि ने सब देवों पर छोड़ दी थी ।।५३।। वे सब कुशायें कालाग्नि के सदृश प्रभाव वाले त्रिशूल हो गयी थी और वे

अन्य युगान्त की अग्नि के समान देवगण को दग्ध करने के लिये प्रवृत्त हो गये थे ।।५४।। हे मुने ! इन्द्र और नारायण आदि देवों ने जो भी कुछ आयुध उनके पास थे उन सबका त्याग कर दिया था और उस त्रिशिख अर्थात् तीन शिखा वाले त्रिशूल को प्रणाम करने लगे थे ।।५५।। हे द्विजोत्तम ! समस्त देवगण भय से भीत होकर ध्वस्त पराक्रम वाले वहाँ से भाग गये थे । पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ने अपने देह से अपने ही सदृश लाखों और अयुतों गणों का सृजन किया था किन्तु मुनिश्रेष्ठ ने सहसा उन सबका दग्ध कर दिया था ।।५६।।५७।।

ततो विस्मयनार्थाय विश्वमूर्तिरभूद्धरि ।
तस्य देहे हरे साक्षादपश्यद्द्विजसत्तमः ।।५८।।
दधीचो भगवान्विप्र देवतानां गणान् पृथक् ।
रुद्राणां कोटयश्चैव गणानां कोटयस्तदा ।।५९।।
अंडानां कोटयश्चैव विश्वमूर्तेस्तनौ तदा ।
दृष्ट्वैतदखिलं तत्र च्यावनिर्विस्मितं तदा ।।६०।।
विष्णुमाह जगन्नाथं जगन्मयमजं विभुम् ।
अभसाभ्युक्ष्य तं विष्णुं विश्वरूपं महामुनि ।।६१।।
मायां त्यज महाबाहो प्रतिभासा विचारतः ।
विज्ञानानां सहस्राणि दुर्विज्ञेयानि माधव ।।६२।।
मयि पश्य जगत्सर्वं त्वया सार्धमनिन्दित ।
ब्रह्माणं च तथा रुद्रं दिव्यां दृष्टिं ददामि ते ।।६३।।
इत्युक्त्वा दर्शयामास स्वतनौ निखिलं मुनि ।
तं प्राह च हरिं देवं सर्वदेवभवोद्भवम् ।।६४।।

इसके अनन्तर हरि ने विस्मय करने के लिये स्वयं अपना विश्वमूर्ति स्वरूप धारण कर लिया था । द्विज श्रेष्ठ दधीच ने उन हरि के देह में साक्षात् देखा था कि वहाँ पृथक् देवताओं के गण थे—करोड़ों रुद्र तथा करोड़ों ही गण थे । उस समय में उस विश्व मूर्ति के शरीर में करोड़ों ही अण्ड देखे थे । इन सबको देखकर च्यावनि दधीच विस्मित हुए और

उन जगन्मय, जगत् के नाथ अज विभु विष्णु से कहा और महामुनि ने विश्वरूप उन विष्णु का जल से अभ्युक्षण किया था। हे महाबाहो! इस माया का त्याग कर दो। प्रतिभासा विचार से हे माधव! सहस्रों विज्ञान दुर्विज्ञेय हुआ करते हैं ॥५८॥५९॥६०॥६१॥६२॥ हे निन्दित! मुझमें आप अपने साथ समस्त जगत् को देखिये, ब्रह्मा और रुद्र को भी देखिये। मैं आपको दिव्य दृष्टि देता हूं ॥६३॥ यह कहकर मुनि ने अपने शरीर में सब दिखा दिया था और समस्त देवों के उत्पत्ति स्थान देव हरि से कहा था ॥६४॥

मायया ह्यनया किं वा मंत्रशक्त्याथ वा प्रभो।
वस्तुशक्त्याथ वा विष्णो ध्यानशक्त्याथ वा पुनः ॥६५॥
त्यक्त्वा मायामिमा तस्माद्योद्धुमर्हसि यत्नतः।
एव तस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा माहात्म्यद्भुतम् ॥६६॥
देवाश्च दुद्रुवुर्भूयो देव नारायण च तम्।
वारयामास निश्चेष्टं पद्मयोनिर्जगद्गुरुः ॥६७॥
निशम्य वचनं तस्य ब्रह्मण स्तेन निर्जितः।
जगाम भगवान् विष्णुः प्रणिपत्य महामुनिम् ॥६८॥
क्षुपो दुःखातुरो भूत्वा संपूज्य च मुनीश्वरम्।
दधीचमभिवद्याशु प्रार्थयामास विक्लवः ॥६९॥
दधीच क्षम्यता देव मयाऽज्ञानात्कृतं सखे।
विष्णुना हि सुरर्वापि रुद्रभक्तस्य किं तव ॥७०॥
प्रसीद परमेशाने दुर्लभा दुर्जनैर्द्विज।
भक्तिर्भक्तिमता श्रेष्ठ मद्विधैः क्षत्रियाधमैः ॥७१॥

हे प्रभो! इस माया से क्या लाभ है अथवा इस मन्त्र शक्ति से क्या प्रयोजन है? हे विष्णो! वस्तु शक्ति अथवा ध्यान शक्ति से क्या फल होता है? ॥६५॥ अतएव इस माया को छोड़कर प्रयत्न पूर्वक आप युद्ध करने के योग्य होते हैं। उसके इस प्रकार के वचन का

श्रवण कर और उसकी अत्यद्भुत महिमा को देखकर देवगण फिर उन देव नारायण का ओर भागे थे। पद्म योनि जगद्गुरु ने चेष्टाहीन का धारण किया था ॥६६॥६७॥ उस ब्राह्मण का वचन सुनकर उसके द्वारा निर्जित भगवान विष्णु महा मुनि को प्रणाम करके चले गये थे ॥६८॥ राजा क्षुप दुःख से अत्यन्त कातर होकर मुनीश्वर की पूजा करके लगा था और दधीच की अभिवन्दना करके अत्यन्त विक्लव होते हुए उसने प्रार्थना की थी ॥६९॥ हे दधीच ! हे देव ! हे सखे ! मैंने जो कुछ भी अज्ञान के वश मे होकर आपका अपराध किया है उसे क्षमा कीजियेगा। भगवान् रुद्र के भक्त आपका भगवान विष्णु और सुरो के द्वारा भी कुछ विगाड नहीं हो सकता है ॥७०॥ आप प्रसन्न होइये। हे द्विज परमेशान मे दुर्जनो के द्वारा भक्ति का होना अत्यन्त दुर्लभ है। हे श्रेष्ठ ! मुझे जैसे अधम क्षत्रियों से भक्तिमानो को भक्ति नहीं की जा सकती है ॥७१॥

श्रुत्वानुगृह्य तं विप्रो दधीचस्तपतां वरः ।
राजानं मुनिशार्दूलः शशाप च सुरोत्तमान् ॥७२॥
रुद्रकोपाग्निना देवाः सदेवेन्द्रा मुनीश्वरैः ।
ध्वस्ता भवंतु देवेन विष्णुना च समन्विताः ॥७३॥
प्रजापतेर्मखे पुण्ये दक्षस्य सुमहात्मनः ।
एवं शप्त्वा क्षुपं प्रेक्ष्य पुनराह द्विजोत्तमः ॥७४॥
देवैश्च पूज्या राजेंद्र नृपैश्च विविधैर्गणैः ।
ब्राह्मणा एव राजेंद्र बलिनः प्रभविष्णव. ॥७५॥
इत्युक्त्वा स्वोटज विप्रः प्रविवेश महाद्युतिः ।
दधीचमभिवंद्यैव जगाम स्वं नृपः क्षयम् ॥७६॥
तदेव तीर्थमभवत्स्थानेश्वरमिति स्मृतम् ।
स्थानेश्वरमनुप्राप्य शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥७७॥
कथित स्तव संक्षेपाद्विवादः क्षुब्दधीचयोः ।
प्रभावश्च दधीचस्य भवस्य च महामुने ॥७८॥

य इदं कीर्तयेद्दिव्यं विवादं क्षुब्दधीचयोः।
जित्वापमृत्युं देहाते ब्रह्मलोकं प्रयाति सः ॥७९॥
य इदं कीर्त्य सग्रामं प्रविशेत्तस्य सर्वदा।
नास्ति मृत्युभयं चैव विजयी च भविष्यति ॥८०॥

तपस्वियो में परम श्रेष्ठ विप्र दधीच ने क्षुप के इस स्तवन का श्रवण करके उस राजा पर अनुग्रह किया था। और मुनि शार्दूल ने सुरोत्तमो को शाप दे दिया था कि रुद्र की कोपाग्नि से देवेन्द्र, मुनीश्वर और देव विष्णु के सहित सब ध्वस्त हो जावें ॥७२॥७३॥ महान् आत्मा वाले प्रजापति दक्ष के परम पुण्यमय मख मे इस प्रकार शाप देकर और फिर क्षुप को देखकर द्विज श्रेष्ठ बोले ॥७४॥ हे राजेन्द्र! देवों के द्वारा, नृपो के द्वारा और विविध गणो के द्वारा ब्राह्मण पूजा के योग्य हैं, बली हैं और प्रभविष्णु हैं ॥७५॥ इतना कह कर वह महाद्युति से युक्त विप्र अपने कुटीर मे प्रवेश कर गया था। राजा दधीच की वन्दना करके अपने घर को चला गया था ॥७६॥ वह स्थल ही स्थानेश्वर, इस नाम वाला तीर्थ हो गया था। स्थानेश्वर मे पहुंचकर मानव शिव के सायुज्य को प्राप्त किया करता है ॥७७॥ इस तरह से जो राजा क्षुप और दधीच का सम्वाद है वह हमने तुम्हारे सामने सक्षेप से कह दिया है। हे महामुने! भगवान भव का और उनके भक्त दधीच का प्रभाव भी बता दिया है ॥७८॥ इस क्षुप और दधीच के दिव्य सम्वाद का जो कीर्तन करेगा वह अप मृत्यु पर विजय पाकर देह के अन्त मे ब्रह्म लोक मे चला जाता है ॥७९॥ जो इस पवित्र सम्वाद का पाठ करके संग्राम मे प्रवेश करता है उसका सर्वदा मृत्यु का भय नहीं होता है और वह अवश्य ही विजयी होता है ॥८०॥

ब्रह्माजी को शिव का वरदान

भवान्कथमनुप्राप्तो महादेवमुमापतिम् ।
श्रोतुमिच्छामि तत्सव वक्तुमर्हसि मे प्रभो ॥१॥
प्रजाकाम. शिलादोभूत्पिता मम महामुने ।
सोप्यंधः सुचिर काल तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥२॥
तपतस्तस्य तपसा सतुष्टो वज्रधृक् प्रभुः ।
शिलादमाह तुष्टोस्मि वरयस्व वरानिति ॥३॥
तत. प्रणम्य देवेश सहस्राक्ष सहामरः ।
प्रोवाच मुनिशार्दूल कृताजलिपुटो हरिम् ॥४॥
भगवन्देवतारिघ्न सहस्राक्ष वरप्रद ।
अयोनिज मृत्युहीन पुत्रमिच्छामि सुव्रत ॥५॥
पुत्र दास्यामि विप्रर्षे योनिज मृत्युसयुतम् ।
अन्यथा ते न दास्यामि मृत्युहीना न सति व ॥६॥
न दास्यति सुततेऽत्र मृत्युहीनमयोनिजम् ।
पितामहोपि भगवान्किमुतान्ये महामुने ॥७॥

सनत्कुमार ने कहा—आप उमा के स्वामी महादेव के समीप मे कैसे प्राप्त हुए थे ? हे प्रभो ! मैं यह सब श्रवण करने की इच्छा करता हू, आप इसका वर्णन करने की कृपा करें ॥१॥ शैलादि ने कहा—हे महामुने ! मेरे पिता शिलाद सन्तान की इच्छा रखने वाले थे और वह अन्धे थे तो भी बहुत समय पर्यन्त उन्होने अत्यन्त कठिन तपस्या की थी ॥२॥ तपस्या करते हुए उसके तप से वज्र धारण करने वाले इद्र प्रभु बहुत सन्तुष्ट हुए थे और आकर शिलाद मेरे पिता से बोले थे कि मैं बहुत तुष्ट हू तु वरदान मांग ले ॥३॥ इसके उपरान्त हे मुनिशार्दूल ! शिलाद ने समस्त देवो के सहित देवेश सहस्राक्ष को प्रणाम करके हाथ जोडते हुये इन्द्र से कहा था ॥४॥ शिलादि बोला—

हे भगवन् ! आप तो देवों के शत्रुओं के नाश करने वाले, सहस्र नेत्रों वाले और वरदान प्रदान करने वाले हैं। मैं अपना ऐसा पुत्र चाहता हूं जो अयोनिज अर्थात् बिना ही योनि के उत्पन्न होने वाला और मृत्यु से रहित हो ॥५॥ इन्द्र ने कहा—हे विप्रर्षे ! मैं तुमको पुत्र तो दूंगा किन्तु वह योनिज होगा और मृत्यु से युक्त भी होगा। यदि ऐसा पुत्र नहीं चाहते हो तो फिर मैं पुत्र नहीं दूंगा क्योंकि मृत्यु से हीन नहीं होते हैं ॥६॥ हे महामुने ! इस संसार में तुमको मृत्यु से रहित और अयोनिज पुत्र तो मैं क्या साक्षात् भगवान् विष्णु और पितामह ब्रह्मा भी नहीं देंगे, अन्य देवों की बात ही क्या है ॥७॥

सोपि देवः स्वयं ब्रह्मा मृत्युहीनो न चेश्वरः ।
योनिजश्च महातेजाश्चाण्डजः पद्मसंभवः ॥८॥
महेश्वराङ्गजश्चैव भवान्यास्तनयः प्रभुः ।
तस्याप्यायुः समाख्यातं परार्धद्वयसंमितम् ॥९॥
कोटिकोटिसहस्राणि अहर्भूतानि यानि वै ।
समतीतानि कल्पानां तावच्छेषा परस्य ये ॥१०॥
तस्मादयोनिजे पुत्रे मृत्युहीने प्रयत्नतः ।
परित्यजाशां विप्रेन्द्र गृहाणात्मसमं सुतम् ॥११॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा पिता मे लोकविश्रुतः ।
शिलाद इति पुण्यात्मा पुनः प्राह शचीपतिम् ॥१२॥
भगवन्नण्डयोनित्वं पद्मयोनित्वमेव च ।
महेश्वराङ्गयोनित्वं श्रुतं वै ब्रह्मणो मया ॥१३॥
पुरा महेन्द्रदायादाद्गदतश्चास्य पूर्वजात् ।
नारदाद्वै महाबाहो कथमत्राशु नो वद ॥१४॥

महेश्वर के अङ्ग से उत्पन्न होने वाले हैं और उनकी भी दो परार्ध आयु परिमित एवं संख्यात है ।।९।। करोड़ों कल्प अर्हंभूत होकर व्यतीत हो गये हैं और अपरार्ध में उतने ही संख्या वाले कल्प शेष हैं। ।।१०।। इसलिए हे विप्रेन्द्र ! अयोनिज और मृत्यु हीन पुत्र को प्राप्त करने की आशा रखना छोड़ दो तथा ऐसा कोई प्रयत्न करना तुमको नहीं चाहिये। तुमको पुत्र प्राप्त करने की ही इच्छा है तो अपने ही समान पुत्र प्राप्त करलो ।।११।। शैलादि ने कहा—उस इन्द्रदेव के इस वचन का श्रवण कर लोक मे प्रसिद्ध एव पुण्यात्मा मेरे पिता शिलाद ने फिर शची के स्वामी इन्द्र से कहा—।।१२।। शिलाद बोला—हे भगवन् ; मैंने भी ब्रह्माजी का अण्डयोनि होना, पद्म योनि का होना और महेश्वर के अङ्ग से उत्पन्न होना सुना है जो कि पहिले बोलते हुए महेन्द्र दायाद से और ब्रह्मा के पूर्वोत्पन्न पुत्र नारद से सुना है। हे महाबाहो ! यहाँ कैसे है, यह आप शीघ्रता से हमको बताइये ।।१३।। ।।१४।।

दाक्षायणो स दक्षोपि देवः पद्नोद्भवात्मजः ।
पौजो कनकगर्भस्य कथं तस्याः सुतो विभुः ।।१५।।
स्थाने संशयितुं विप्र तव वक्ष्यामि कारणम् ।
कल्पे तत्पुरुषे वृत्तं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।।१६।।
ससर्ज सकलं ध्यात्वा ब्रह्माणं परमेश्वरः ।
जनार्दनो जगन्नाथः कल्पे वै मेघवाहने ।।१७।।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु मेघो भूत्वावहद्धरम् ।
नारायणो महादेव बहुमानेन सादरम् ।।१८।।
दृष्ट्वा भावं महादेवो हरेः स्वात्मनि शङ्करः ।
प्रददौ तस्य सकलं स्रष्टुं वै ब्रह्मणा सह ।।१९।।
तदा तं कल्पमाहुर्वै मेघवाहनसंज्ञया ।
हिरण्यगर्भस्तं दृष्ट्वा तस्य देहोद्भवस्तदा ।।२०।।
जनार्दनसुतः प्राह तपसा प्राप्य शङ्करम् ।
तव वामांगजो विष्णुर्दक्षिणांगभवो ह्यहम् ।।२१।।

मया सह जगत्सर्वं तथाप्यसृजदच्युतः
जगन्मयोवहद्यस्मान्मेघो भूत्वा दिवानिशम् ॥२२॥

प्रजापति दक्ष पद्मोद्भव ब्रह्मा का पुत्र था और दाक्षायणी दक्ष प्रजापति की कन्या भी ब्रह्मा की पौत्री थी फिर उसका [पौत्री का] विभु ब्रह्मा सुत कैसे हुआ ? इन्द्र ने कहा— हे विप्र ! आप का ऐसा संशय करना बहुत ही उपयुक्त है। मैं इसका कारण आप को बतलाऊँगा। तत्पुरुष नाम वाले कल्प में परम शिव परमेष्ठी ब्रह्मा का यह वृत्तान्त है ॥१५॥१६॥ परमेश्वर शिव ने सम्पूर्ण उत्पादन करने के योग्य का ध्यान करके ब्रह्मा को उत्पन्न किया था। मेघवाहन कल्प में जगत् के स्वामी जनार्दन ने दिव्य एक सहस्र वर्ष पर्यन्त मेघ होकर नारायण ने आदर के साथ बहु मान से महादेव व हर को वहन किया था ॥१७॥१८॥ महादेव शङ्कर ने अपनी आत्मा में हरि के भाव को देखकर उनको सब ब्रह्मा के साथ सृजन करने के लिये दे दिया था ॥१९॥ उस समय मेघवाहन के नाम से उस कल्प को कहते थे। उसके देह से उद्भव होने वाले हिरण्यगर्भ ने उसको देखा था ॥२०॥ जनार्दन के पुत्र ने तप के द्वारा शङ्कर को प्राप्त कर कहा आपके वाम अङ्ग से उत्पन्न होने वाले विष्णु हैं और दक्षिण अङ्ग से उत्पन्न होने वाला मैं हूँ ॥२१॥ अच्युत ने मेरे साथ तो भी सम्पूर्ण जगत् का सृजन किया था। जिससे जगन्मय मेघ होकर अहर्निश वहन करता था ॥२२॥

भवंतमवहद्विष्णुर्देवदेवं जगद्गुरुम् ।
नारायणादपि विभो भक्तोहं तव शङ्कर ॥२३॥
प्रसीद देहि मे सर्वं सर्वात्मत्वं तव प्रभो ।
तदाय लब्ध्वा भगवान् भवात्सर्वात्मितां क्षणात् ॥२४॥
त्वरमाणोथ सगम्य ददर्श पुरुषोत्तमम् ।
एकार्णवालये शुभ्रे त्वन्धकारे सुदारुणे ॥२५॥

हेमरत्नचिते दिव्ये मनसा च विनिर्मिते।
दुष्प्राप्ये दुर्जनैः पुण्यैः सनकाद्यैरगोचरे ॥२६॥
जगदावासहृदयं ददर्श पुरुष त्वजः।
अनंत भोगशय्यायां शायिनं पंकजेक्षणम् ॥२७॥
शंखचक्रगदापद्मं धारयन्तं चतुर्भुजम्।
सर्वाभरणसंयुक्त शशिमंडलसन्निभम् ॥२८॥

विष्णु ने देवों के देव और जगत् के गुरु आपका वहन किया था। हे विभो! हे शङ्कर! मैं नारायण से भी आपका भक्त हूँ ॥२३॥ हे प्रभो! आप प्रसन्न होइये और आप अपना सर्वात्मत्व सब मुझे प्रदान कीजिये। इसके अनन्तर उस समय भगवान् भव के क्षण मात्र में सर्वात्मता प्राप्त की थी ॥२४॥ शीघ्रता करते हुए संगत होकर सुदारुण अन्धकार से शुभ्र एकार्णव में पुरुषोत्तम को देखा था ॥२५॥ सुवर्ण और रत्नों विरचित, परम दिव्य, मन के द्वारा विनिर्मित, दुर्जनों को दुष्प्राप तथा महान पुण्य आत्मा वाले सनकादि के द्वारा अगोचर उस एकार्णव में उस अज ने सम्पूर्ण जगत् के निवास स्थान पुरुष को देखा था जोकि शेष नाग की शय्या में शयन करने वाला तथा कमल के समान नेत्रों वाला था। वह परम पुरुष शख, चक्र, गदा और पद्म को धारण करने वाले, चार भुजाओं से समन्वित, सम्पूर्ण आभरणों से समलङ्कृत और शशिमण्डल के तुल्य थे ॥२६॥२७॥२८॥

श्रीवत्स लक्षणं देव प्रसन्नास्यं जनार्दनम्।
रमामृदुकराभोजस्पर्शरक्तपदाबुजम् ॥२९॥
परमात्मानमीशान तमसा कालरूपिणम्।
रजसा सर्व लोकाना सर्गलीलाप्रवर्तकम् ॥३०॥
सत्त्वेन सर्वभूतानां स्थापकं परमेश्वरम्।
सर्वात्मानं माहात्मान परमात्मानमीश्वरम् ॥३१॥
क्षीरार्णवेऽमृतमये शायिनं योगनिद्रया।
तं दृष्ट्वा प्राह वै ब्रह्मा भगवन्तं जनार्दनम् ॥३२॥

ग्रसामि त्वां प्रसादेन यथापूर्वं भवानहम् ।
स्मय मानस्तु भगवान् प्रतिबुध्य पितामहम् ॥३३॥
उदैक्षत महाबाहुः स्मितमीपञ्चकार सः ।
विवेश चाडज त तु ग्रस्तस्तेन महात्मना ॥३४॥
ततस्तं चासृजद्ब्रह्मा भ्रुवोर्मध्येन चाच्युतम् ।
सृष्टस्तेन हरिः प्रेक्ष्य स्थितस्तस्याथ सन्निधौ ॥३५॥

उस परम पुरुष के श्रीवत्स का चिन्ह था और वह जनार्दन देव प्रसन्न मुख वाले थे । रमा के कोमल कर कमलो के स्पर्श से रक्त पद कमल वाले थे । वे ईशान परमात्मा तमोगुण से काल रूपी, रजोगुण से समस्त लोको के सृजन की लीला के प्रवर्त्तक और सत्त्व गुण से सम्पूर्ण भूतो के स्थापक थे । सबकी आत्मा, परम आत्मा और महान् आभा वाले ईश्वर को जो कि अमृतमय क्षीर सागर मे योग निद्रा से शयन करने वाले हैं, देखकर उन भगवान जनार्दन से ब्रह्मा ने कहा ॥२६॥३०॥३१॥३२॥ शिव के प्रसाद से जैसे आपने मुझे ग्रस्त किया था उसी प्रकार मैं अब आपको ग्रसता हूँ । भगवान् के विस्मित होते हुए ब्रह्मा का समझकर महाबाहु ने देखा और कुछ थोडी सी मुस्कराहट की थी । उस महान आत्मा के द्वारा ग्रस्त होते हुये उस अण्डज मे प्रवेश किया था ॥३३॥३४॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा ने भृकुटियो के मध्य के उस अच्युत का सृजन किया था । उसके द्वारा सृजन किये हुए हरि ने देखकर उसी की सन्निधि मे स्थिति की थी ॥३५॥

एतस्मिन्नंतरे रुद्रः सर्वदेवभवोद्भवः ।
विकृत रूपमास्थाय पुरा दत्तवरस्तय: ॥३६॥
आगच्छद्यत्र वै विष्णुर्विश्वात्मा परमेश्वरः ।
प्रसादमतुलं कर्तुं ब्रह्मणश्च हरेः प्रभुः ॥३७॥
ततः समेत्य तौ देवौ सर्वदेवभवोद्भवम् ।
अपश्यतां भवं देवं कालाग्निसदृशं प्रभुम् ॥३८॥

तौ तं तुष्टुवतुश्चैव शर्वमुग्रं कपर्दिनम् ।
प्रणेमतुश्च वरदं बहुमानेन दूरतः ॥३६॥
भवोपि भगवान् देवमनुगृह्य पितामहम् ।
जनार्दनं जगन्नाथस्तत्रैवांतरधीयत ॥४०॥

इसी अन्तर मे सम्पूर्ण देवो की उत्पत्ति करने वाले भगवान् रुद्र विकृत स्वरूप में आस्थित होकर उन दोनो को जिन्होंने पहिले कर दिया था वहाँ आ गये थे जहाँ पर विश्वात्मा परमेश्वर विष्णु थे। प्रभु का वहाँ आगमन् ब्रह्मा और हरि पर अतुल प्रसन्नता करने के लिये ही हुआ था ॥३६॥३७॥ इसके पश्चात् उन दोनो ने वहाँ एकत्रित होकर देव भव को जो कि समस्त देव गण के उद्भव स्थान है, कालाग्नि के समान् प्रभु को देखा था ॥३८॥ उन दोनो ने उग्र कपर्दी शिव का स्तवन किया था और उन वरदान देने वाले को बहुमान पूर्वक दूर से ही प्रणाम किया था ॥३९॥ भगवान् भव भी पितामह देव पर अनुग्रह करके और जनार्दन पर कृपा की वृष्टि करके जगतो के स्वामी वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गये थे ॥४०॥

विष्णु द्वारा माहात्म कथन

गते महेश्वरे देवे तमुद्दिश्य जनार्दनः ।
प्रणम्य भगवान्प्राहं पद्मयोनिमजोद्भवः ॥१॥
परमेशो जगन्नाथः शंकरस्त्वेष सर्वगः ।
आवयोरखिलस्येशः शरणं च महेश्वरः ॥२॥
अहं वामागजो ब्रह्मन् शकरस्य महात्मनः ।
भवान् भवस्य देवस्य दक्षिणागभवः 'स्वयम् ॥३॥
मामाहुर्ऋषयः प्रेक्ष्य प्रधानं प्रकृतिं तथा ।
अव्यक्तमजमित्येवं भवत पुरुषस्त्विति ॥४॥

एवमाहुर्महादेवमावयोरपि कारणम् ।
ईशं सर्वस्य जगतः प्रभुमव्ययमीश्वरम् ॥५॥
सोपि तस्यामरेशस्य वचनाद्वारिजोद्भवः ।
वरेण्यं वरदं रुद्रमस्तुवत्प्रणनाम च ॥६॥
अथाम्भसा प्लुतां भूमिं समाधाय जनार्दनः ।
पूर्ववत्स्थापयामास वाराहं रूपमास्थितः ॥७॥

शैलादि ने कहा — भगवान् महेश्वर देव के अन्तर्हित होकर चले जाने के पश्चात् भगवान् जनार्दन ने उसका उद्देश्य करके प्रणाम किया था और अजोद्भव ने पद्मयोनि से कहा, श्री विष्णु ने कहा—यह परम ईश्वर जगतों के स्वामी भगवान् शङ्कर सर्वत्र गमन करने वाले, अखिल के ईश हम दोनों के महेश्वर शरण अर्थात् रक्षक हैं ॥१॥२॥ हे ब्रह्मन् ! मैं महात्मा शङ्कर के वामाङ्ग से समुत्पन्न होने वाला हूँ और आप स्वयं देव भव के दक्षिण अङ्ग से समुत्पन्न होने वाले हैं ॥३॥ ऋषिगण मुझे देखकर अर्थात् विचार कर प्रधान तथा प्रकृति अव्यक्त और अज् कहते थे और आपको पुरुष कहा करते हैं ॥४॥ हम दोनों का भी इस प्रकार से महादेव को कारण बताते हैं जो कि सम्पूर्ण जगत् का ईश, प्रभु, अव्यय और ईश्वर है ॥५॥ उस वारिज (कमल) से उत्पन्न होने वाले ने उस देवों के ईश के वचन से वरेण्य और वरद रुद्र का स्तवन किया और उसको प्रणाम किया था ॥६॥ इसके अनन्तर जल से प्लुत (मग्न) भूमि को जनार्दन ने वाराह रूप में आस्थित होकर पूर्व की भाँति ही स्थापित कर दिया था ॥७॥

नदीनदसमुद्रांश्च पूर्ववच्चाकरोत्प्रभुः ।
कृत्वा चोर्वीं प्रयत्नेन निम्नोन्नतविवर्जिताम् ॥८॥
धरायां सोचिनोत्सर्वान् भूधरान् भूधराकृतिः ।
भूराद्यांश्चतुरो लोकान् कल्पयामास पूर्ववत् ॥९॥
स्रष्टुं च भगवांश्चक्रे मतिं मतिमतां वरः ।
मुख्यं च तैर्यग्योन्यं च दैविकं मानुषं तथा ॥१०॥

विभुश्चानुग्रहं तत्र कौमारकमदीनधीः ।
पुरस्तादसृजद्देवः सनन्दं सनकं तथा ॥११॥
सनातनं सतां श्रेष्ठं नैष्कर्म्येण गताः परम् ।
मरीचिभृग्वंगिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥१२॥
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोसृजद्योगविद्यया ।
संकल्पं चैव धर्मं च ह्यधर्मं भगवान्प्रभुः ॥१३॥
द्वादशैव प्रजास्त्वेता ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
ऋभुं सनत्कुमारं च ससर्जादौ सनातनः ॥१४॥
तौ चोर्ध्वरेतसौ दिव्यौ चाग्रजौ ब्रह्म वादिनौ ।
कुमारौ ब्रह्मणस्तुल्यौ सर्वज्ञौ सर्वभाविनौ ॥१५॥
एवं मुख्यादिकान् सृष्ट्वा पद्मयोनिः शिलाशन ।
युगधर्मानशेषांश्च कल्पयामास विश्वसृक् ॥१६॥

प्रभु ने सम्पूर्ण नदियो और नदो की भी भूमि को ऊँचाई और नीचेपन से रहित प्रयत्न पूर्वक स्थापित करके पूर्व की तरह कायम कर दिया था ॥८॥ भूधर के तुल्य आकृति वाले महावाराह प्रभु ने पृथ्वी मे समस्त पर्वतो को भली भांति चुन कर जमा दिया था। भूर्लोक आदि चारो लोको को भी पूर्व की भांति ही कल्पित कर दिया था ॥९॥ मतिमानो मे परम श्रेष्ठ भगवान् ने सृजन करने का विचार किया था उसमें वृक्ष सर्ग, तिर्यग् योनि का पशु सर्ग, दैविक और मानुष सर्ग सभी की सृष्टि करने का विचार किया था ॥१०॥ अदीन बुद्धि वाले विभु देव ने सबसे पहिले उस सृजन कार्य मे कुमारो का सर्ग किया था जिनमे सनक, सनन्द तथा सत्पुरुषों मे परम-श्रेष्ठ सनातन थे जो कि अपने ज्ञान योग से परम ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त हो गये थे। फिर योग विद्या के द्वारा मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ की उसने सृष्टि की थी ॥११॥१२॥ ॥१३॥ फिर सङ्कल्प, धर्म और अधर्म का सृजन भगवान् प्रभु ने किया था। अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा की ये बारह ही प्रजा हुई थी अर्थात् इन

द्वादशों का ही सृजन किया था। सनातन भगवान् विष्णु ने आदि मे ऋभु तथा सनत्कुमार का सृजन किया था ॥१४॥ ये दोनो ऊर्ध्वरेता, दिव्य और ब्रह्मवादी अग्रज हुए थे। ये दोनो कुमार ब्रह्मा के तुल्य ही सर्वज्ञ और सर्व भावी थे ॥१५॥ इस प्रकार से हे शिलाशन ! पद्मयोनि ने इन आदि के मुख्यो की सृष्टि करके फिर विश्व के स्रष्टा ने सम्पूर्ण युग धर्मों की कल्पना की थी ॥१६॥

चारो युगो मे लोक-धर्म

श्रुत्वा शक्रेण कथित पिता मम महामुनि ।
पुन पप्रच्छ देवेश प्रणम्य रचिताजलि. ॥१॥
भगवन् शक्र सर्वज्ञ देवदेवनमस्कृत ।
शचीपते जगन्नाथ सहस्राक्ष महेश्वर. ॥२॥
युगधर्मान्कथ चक्रे भगवान्पद्मसभव ।
वक्तुमर्हसि मे सर्वं साप्रत प्रणताय मे ॥३॥
तस्य तद्वचन श्रुत्वा शिलादस्य महात्मन. ।
व्याजहार यथादृष्ट युगधर्मं सुविस्तरम् ॥४॥
आद्य कृतयुग विद्धि ततस्त्रेतायुग मुने ।
द्वापर तिष्यमित्येते चत्वारस्तु समासत ॥५॥
सत्त्व कृत रजस्त्रेता द्वापर च रजस्तम. ।
कलिस्तमश्च विज्ञेय युगवृत्तिर्युगेषु च ॥६॥
ध्यान पर कृतयुगे त्रेताया यज्ञ उच्यते ।
भजन द्वापरे शुद्ध दानमेव कलौ युग ॥७॥

इस अध्याय मे वेद व्यास मुनि युग धर्म, वृत्तिया और पुराणों के क्रम का निरूपण करते हैं। शैलादि ने कहा—महान् मुनि मेरे पिता ने शक्र के द्वारा इस वचन का श्रवण करके देवेश को प्रणाम करके

हाथ जोड़ते हुए पुनः पूछा था। शिलाद ने कहा—हे भगवन् ! हे शक्र ! आप तो देवो के भी देवो के वन्द्यमान हैं और सर्वज्ञ हैं। हे शची के स्वामिन् ! आप जगत् के नाथ हैं तथा सहस्र नेत्रो वाले महेश्वर हैं। भगवान् पद्म सम्भव ने युग धर्मों को कैसे किया था, इसे परम प्रणत मुझे आप अब सब बताने के योग्य होते हैं ॥१॥२॥३॥ शैलादि ने कहा—महात्मा शिलाद के उस वचन को सुनकर जिस प्रकार को देखा था वैसा युग धर्म को पूर्ण विस्तार पूर्वक कहा था ॥४॥ इन्द्र ने कहा—हे मुने ! सबसे प्रथम होने वाला कृत युग है और इसके अनन्तर त्रेता युग होता है। इसके पश्चात् द्वापर और कलियुग होते हैं। संक्षेप मे तुम्हे बतलाता हू कि ये क्रम से चार युग होते हैं ॥५॥ कृतयुग सत्व गुण रूप होता है, त्रेता रजोगुण रूप है, द्वापर रजोगुण तथा तमोगुण रूप होता है और कलियुग तमोगुण रूप है। इस प्रकार से युगो मे युग वृत्ति होती है ॥६॥ कृतयुग मे ईश्वर का चिन्तन करना सर्वोत्कृष्ट माना जाता है, त्रेता मे यज्ञ, यागादि का करना मुख्य कहा जाता है, द्वापर मे भजन करने को प्रशस्त बताया जाता है और इस कलियुग मे दान देना ही परमोत्कृष्ट कर्म होता है ॥७॥

चत्वारि च सहस्राणि वर्षाणां तत्कृत युगम् ।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥८॥
चत्वारि च सहस्राणि मानुषाणि शिलाशन ।
आयुः कृतयुगे विद्धि प्रजानामिह सुव्रत ॥९॥
ततः कृतयुगे तस्मिन् संध्यांशे च गते तु वै ।
पादा वशिष्टो भवति युगधर्मस्तु सर्वतः ॥१०॥
चतुर्भागैकहीनं तु त्रेतायुगमनुत्तमम् ।
कृतार्धं द्वापरं विद्धि तदर्धं तिष्यमुच्यते ॥११॥
त्रिशती द्विशती संध्या तथा चैकशती मुने ।
संध्यांशकं तथाप्येवं कल्पेष्वेवं युगेयुगे ॥१२॥

आद्ये कृतयुगे धर्मश्चतुष्पादः सनातनः ।
त्रेतायुगे त्रिपादस्तु द्विपादो द्वापरे स्थितः ॥१३॥
त्रिपादहीनस्तिष्ये तु सत्तामात्रेण धिष्ठितः ।
कृते तु मिथुनोत्पत्तिर्वृत्तिः साक्षाद्रसोल्लसा ॥१४॥

चार सहस्र दिव्य वर्षों का कृतयुग होता है । चार सो वर्ष की सन्ध्या और उतना ही सन्ध्यांश होता है ॥८॥ हे शिनाशन, इस कृत युग में प्रजाओं में मनुष्यों की आयु चार सहस्र होती है । इसके अनन्तर उस कृत युग के तथा सन्ध्यांश के समाप्त हो जाने पर युग का धर्म सब प्रकार से एक पाद अवशिष्ट रहता है ॥९॥१०॥ चौथे भाग से हीन अति उत्तम त्रेता युग होता है । कृतयुग से आधा द्वापर युग होता है और इस द्वापर का आधा कलियुग हुआ करता है ॥११॥ इन तीनों युगों की सन्ध्या भी क्रम से तीन सो, दो सो और एक सो वर्षों की होती है । हे मुने ! कल्पों में प्रत्येक युग में सन्ध्यांश भी उसी प्रकार का इस तरह होता है ॥१२॥ सबसे प्रथम कृत युग में सनातन धर्म चार पादों वाला पूर्ण होता है । त्रेता युग में धर्म के तीन ही पाद रह जाते हैं अर्थात् एक चौथा भाग धर्म का त्रेता में कम हो जाता है । द्वापर युग में धर्म केवल दो ही पाद वाला रहता है ॥१३॥ कलियुग में वह धर्म तीन पादों से हीन केवल सत्ता मात्र से ही अधिष्ठित रहा करता है । कृत युग में स्त्री और पुरुष की उत्पत्ति मधुरादि रसों के उल्लास वाली होती है और जीवन का उपाय प्रजा की इच्छा से होता है ॥१४॥

प्रजास्तृप्ताः सदा सर्वाः सर्वानंदाश्च भोगिनः ।
अधमोत्तमता तासां न विशेषाः प्रजाः शुभाः ॥१५॥
तुल्यमायुः सुखं रूपं तासां तस्मिन्कृते युगे ।
तासां प्रीतिर्न च द्वंद्वं न द्वेषो नास्ति च क्लमः ॥१६॥
पर्वतोदधिवासिन्यो ह्यनिकेताश्च यास्तु ताः ।
विशोकाः सत्त्वबहुला एकांतबहुलास्तथा ॥१७॥

ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः ।
अप्रवृत्तिः कृतयुगे कर्मणोः शुभपापयोः ॥१८॥
वर्णाश्रमव्यवस्था च तदासीन्न च संकरः ।
रसोल्लासः कालयोगात्रेताख्ये नश्यते द्विज ॥१९॥
तस्या सिद्धौ प्रनष्टायामन्या सिद्धिः प्रजायते ।
अपां सौक्ष्म्ये प्रतिगते तदा मेघात्मना तु वै ॥२०॥
मेघेभ्यस्तनयित्नुभ्यः प्रवृत्तं वृष्टिसर्जनम् ।
सकृदेव तथा वृष्ट्या सयुक्ते पृथिवीतले ॥२१॥
प्रादुरासंस्तदा तासा वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः ।
सर्ववृत्त्युपभोगस्तु तासा तेभ्यः प्रजा यते ॥२२॥

कृतयुग में सदा समस्त प्रजा परम तृप्त, सब तरह के आनन्द से युक्त और भोग वाली थी । उनमे अधमता और उत्तमता नही थी तथा सम्पूर्ण प्रजाओ की आयु समान होती है और सुख तथा रूप भी सबका तुल्य होता है । उनमे पारस्परिक प्रेम रहता है तथा द्वन्द्व अर्थात् शीतोष्णादि का सन्ताप एव ग्लानि नही होती है ॥१५॥१६॥ वे प्रजा पर्वत और समुद्र मे निवास करने वाली थी उनका कोई निकेत तथा आश्रय नही था । उस प्रजा मे किसी प्रकार का शोक नही था और बहुदायत से सत्त्वगुण की प्रधानता होती है । अधिकनर एकान्त मे रहने वाले थे । वे प्रजाजन निष्काम कर्मशील थे । उनकी स्वर्ग और नरक के कारण स्वरूप कर्मों से अर्थात् पाप-पुण्य मे प्रवृत्ति नही थी । उनका मन नित्य ही प्रसन्न रहा करता है ॥१७॥१८॥ उस समय मे वर्णाश्रम की कोई व्यवस्था नही थी और सकर सृष्टि भी नही होती थी । हे द्विज ! त्रेता नामक युग मे काल के योग से रस का प्रादुर्भाव नष्ट हो जाता है । ॥१९॥ उस सिद्धि के प्रनष्ट हो जाने पर अन्य सिद्धि उत्पन्न हो जाती है । उस समय मेघ के रूप मे जलो की सूक्ष्मता हो जाने पर गर्जते हुए मेघो से वृष्टि का सृजन आरम्भ हो गया था । एक बार ही पृथ्वी-तल का वृष्टि के साथ सयोग होने पर उस समय मे उन जलो से गृह

की संज्ञा वाले वृक्ष उत्पन्न हो गये थे। उन वृक्षों से प्रजा जनों के लिये सब प्रकार की वृत्तियों का उपभोग हो जाता है ॥२०॥२१॥२२॥

वर्तयंति स्म तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे प्रजा: ।
ततः कालेन महता तासामेव विपर्ययात् ॥२३॥
रागलोभात्मको भावस्तदा ह्याकस्मिकोऽभवत् ।
विपर्ययेण तासां तु तेन तत्कालभाविना ॥२४॥
प्रणश्यति ततः सर्वे वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः ।
ततस्तेषु प्रनष्टेषु विभ्रांता मैथुनोद्भवाः ॥२५॥
अपि ध्यायंति ता सिद्धिं सत्याभिध्यायिनस्तदा ।
प्रादुर्बभूवुस्तासां तु वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः ॥२६॥
वस्त्राणि ते प्रसूयंते फलान्याभरणानि च ।
तेष्वेव जायते तासां गंधवर्णरसान्वितम् ॥२७॥
अमाक्षिकं महावीर्यं पुटकेपुटके मधु ।
तेन ता वर्तयंति स्म सुखमायुः सदैव हि ॥२८॥
हृष्टपुष्टास्तया सिद्धया प्रजा वै विगतज्वराः ।
ततः कालांतरेणैव पुनर्लोभावृतास्तु ताः ॥२९॥

त्रेता युग के प्रारम्भ में प्रजा के जीव उनको व्यवहार में लाया करते थे। फिर अधिक समय के पश्चात् उनके ही विपर्यय हो जाने से उस समय में राग और लोभ के स्वरूप वाला भाव आकस्मिक उत्पन्न हो जाया करता है। उस समय में उत्पन्न होने वाले उनके उस विपर्यय से वे गृह की संज्ञा वाले वृक्ष सम्पूर्ण नष्ट हो जाते हैं। इसके अनन्तर उन सब के नष्ट हो जाने पर मैथुनोद्भव सब विशेष रूप से भ्रान्त होते हुए सत्य के अभिध्यान करने वाले पुन उसी सिद्धि का ध्यान किया करते हैं और उनके ये गृहों की संज्ञा वाले वृक्ष प्रादुर्भूत हुए थे ॥२३॥२४॥२५॥२६॥ वे सब वस्त्रों का, फलों का और आभूषणों का प्रसव किया करते हैं। उनमें ही उनके गन्ध वर्ण और रस से युक्त बिना ही मक्खियों का महान् वीर्य वाला मधु प्रत्येक पुटक में उत्पन्न हो

जाता है। वे सब उसको बरताव में लाते हैं अर्थात् उसका उपभोग किया करते हैं जिससे उन्हें पूर्ण सुख प्राप्त होता है और सदा ही आयु प्राप्त होती है ॥२७॥२८॥ उस सिद्धि से वे अत्यधिक हृष्ट-पुष्ट होकर सब प्रकार के दुःखों से रहित हो जाते हैं। फिर कुछ समय के पश्चात् ही वे फिर लोभ से आवृत हो जाया करते हैं ॥२९॥

वृक्षांस्तान्पर्यगृह्लंति मधु वा माक्षिकं वलात् ।
तासां तेनोपचारेण पुनर्लोभकृतेन वै ॥३०॥
प्रनष्टा मधुना सार्धं कल्प वृक्षाः क्वचित्क्वचित् ।
तस्यामेवाल्पशिष्टायां सिद्धयां कालवशात्तदा ॥३१॥
आवर्त्तनात्तु त्रेतायां द्वंद्वान्यभ्युत्थितानि वै ।
शीतवर्षा तपैस्तीव्रैस्ततस्ता दुःखिताः भृशम् ॥३२॥
द्वंद्वैः संपीड्यमानाश्च चक्रुरावरणानि तु ।
कृतद्वंद्वप्रतीघाताः केतनानि गिरौ ततः ॥३३॥
पूर्वं निकामचारास्ता ह्यनिकेता अथावसन् ।
यथायोगं यथाप्रीति निकेतेष्ववसन्पुनः ॥३४॥
कृत्वा द्वंद्वोपघातांस्तान्वृत्युपायम चिंतयन् ।
नष्टेषु मधुना सार्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा ॥३५॥

गुफाओं में अपने गृह बनाये थे अर्थात् पर्वतों का अपना आश्रय बनाया था ॥३३॥ इसके पहिले वे बिना ही आश्रय वाले स्वेच्छा चारी थे और चाहे जहाँ रहा करते थे किन्तु फिर वे यथायोग प्रेम पूर्वक निकेतनो मे वास करने लगे थे ॥३४॥ पर्वतों की गुहाओं में अपने घर बनाकर घर्मातपादि द्वन्द्वों का तो उन्होंने प्रतिकार कर लिया था किन्तु अब उन्हें अपने निर्वाह करने की चिन्ता उत्पन्न हो गई थी क्योंकि वे समस्त वृक्ष तो मधु के साथ ही उस समय मे नष्ट हो गये थे ॥३५॥

विवादव्याकुलास्ता वै प्रजास्तृष्णाक्षुधार्दिताः ।
ततः प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः ॥३६॥
वार्तायाः साधिकाप्यन्या वृष्टिस्तासां निकामतः ।
तासां वृष्ट्युदकादीनि ह्यभवन्निम्नगानि तु ॥३७॥
अभवन्वृष्टिसंतत्या स्रोतस्थानानि निम्नगाः ।
एवं नद्यः प्रवृत्तास्तु द्वितीये वृष्टिसर्जने ॥३८॥
ये पुनस्तदपा स्तोकाः पतिताः पृथिवीतले ।
अपां भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तास्तदाभवन् ॥३९॥
अथाल्पकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।
ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षगुल्माश्च जज्ञिरे ॥४०॥
प्रादुर्भूतानि चैतानि वृक्षजात्यौषधानि च ।
तेनौषधेन वर्तंते प्रजास्त्रेता युगे तदा ॥४१॥
ततः पुनरभूत्तासां रागो लोभश्च सर्वशः ।
अवश्यं भाविनार्थेन त्रेतायुगवशेन च ॥४२॥
ततस्ताः पर्यगृह्णंत नदीक्षेत्राणि पर्वतान् ।
वृक्षगुल्मौषधीश्चैव प्रसह्य तु यथाबलम् ॥४३॥

उस समय प्रजा भूख, प्यास से दुःखित होकर अनेक विवादों मे व्याकुल हो गई थी । इसके अनन्तर फिर त्रेता युग मे उनको सिद्धि का प्रादुर्भाव हुआ था ॥३६॥ अब उनको निर्वाह का साधन एक अन्य

वृष्टि हो गई थी। उनकी वृष्टि के जल निम्न स्थल की ओर जाने वाले हो गये थे ॥३७॥ वर्षा के होने से स्रोतों के जो स्थान थे वे सब नदियाँ होकर बहने लगी थी। इस प्रकार से इस द्वितीय वृष्टि के सर्ग मे नदियाँ प्रवृत्त हुई थी ॥३८॥ ये स्रोतो के जब इस भूमितल पर गिरे तो जल का और पृथ्वी के सम्पर्क होने से उस समय मे व्रीहि, माष और गोधूम आदि चौदह प्रकार की ओषधियाँ उत्पन्न हुई थी ॥३९॥ ये थोडे ही कर्षण वाली थी अर्थात् इनके लिए अधिक भूमि की जुताई आवश्यक नही थी। ये बीजो के कारण से भी रहित थी अर्थात् ये बोई नही गई थी। ऐसी ये ग्राम्य चौदह प्रकार की ओषधियाँ थीं। झाडियाँ तथा वृक्ष भी उत्पन्न हुए थे जो ऋतुओ के फल एव पुष्प देने वाले थे ॥४०॥ इस प्रकार से ये वृक्ष जाति की ओषधियो प्रादुर्भूत हुई थी और उस समय त्रेता युग मे इन्हीं ओषधो से प्रजा जन अपना निर्वाह किया करते थे ॥४१॥ इसके अनन्तर फिर उन प्रजाओ मे सब प्रकार का राग और लोभ उत्पन्न हो गया था। त्रेता युग मे होने वाले इस प्रयोजन के कारण से फिर उन्होने अपने बल के अनुसार नदी, क्षेत्र, पर्वत, वृक्ष, गुल्म और ओषधियो को जबर्दस्ती ग्रहण कर लिया था। ॥४२॥४३॥

विपर्ययेण चौषध्य· प्रनष्टास्ताश्चतुर्दश ।
मत्वा धरा प्रविष्टास्ता इत्यौषध्य. पितामह. ॥४४॥
दुदोह गां प्रयत्नेन सर्वभूतहिताय वै ।
तदाप्रभृति चौषध्य· फालकृष्टास्त्वितस्तत· ॥४५॥
वार्ता कृषि समायाता वर्तु कामाः प्रयत्नतः ।
याता वृत्तिः समास्याता कृषिकामप्रयत्नतः ॥४६॥
अन्यथा जीवित तासा नास्ति त्रेतायुगात्यये ।
हस्तोद्भवा ह्यपश्चैव भवति बहुशस्तदा ॥४७॥
तत्रापि जगृहुः सर्वे चान्योन्य क्रोधमूर्च्छिताः ।
सुतदारधनाद्यास्तु बलाद्युगबलेन तु ॥४८॥

मर्यादायाः प्रतिष्ठार्थं ज्ञात्वा तदखिलं विभुः ।
ससर्ज क्षत्रियास्त्रातुं क्षतात्कमलसंभवः ॥४६॥

ये चौदह प्रकार की ओषधियाँ विपर्यय होने के कारण नष्ट हो गई थीं । पितामह ने यह मान कर कि ये ओषधियाँ पृथ्वी मे प्रविष्ट हो गई हैं इस भूमि का समस्त प्राणियो के हित का सम्पादन करने के लिए प्रयत्न पूर्वक दोहन किया था । तब से लेकर ये ओषधियाँ हल से जोती हुई भूमि मे कृषि के स्वरूप से प्रकट हुई थी और निर्वाह की इच्छा से कृषि कर्म यह कहलाया था ॥४४॥४५॥४६॥ इस कृषि कर्म के बिना अन्य किसी भी प्रकार से त्रेता युग के प्रत्यय मे उनका जीवन नहीं रहता था । उस समय मे जल की प्राप्ति हाथ से भूमि का खनन करने ही होती थी अर्थात् प्राय: कुँए आदि खोदकर जल प्राप्त करते थे ॥४७॥ उस समय मे भी सब लोग युग के प्रभाव से सुत, स्त्री और धन आदि का बल पूर्वक क्रोध के आवेश मे आकर ग्रहण कर लेते थे । ।४८॥ विभु ने जब ऐसी दशा को देखा तो मर्यादा को कायम रखने के लिए कि कोई परस्पर मे झगड़ा न हो, उस दुःख से बचाव करने के लिए ब्रह्माजी ने क्षत (दुःख) से त्राणार्थ क्षत्रियो का अर्थात् क्षत्रिय वर्ण का सृजन किया था ॥४६॥

वर्णाश्रमप्रतिष्ठां च चकार स्वेन तेजसा ।
वृत्तेन वृत्तिना वृत्त विश्वात्मा निर्ममे स्वयम् ॥५०॥
यज्ञप्रवर्तनं चैव त्रेतायामभवत्क्रमात् ।
पशुयज्ञं न सेवते केचित्तत्रापि सुव्रताः ॥५१॥
बलाद्विष्णुस्तदा यज्ञमकरोत्सर्वदृक् क्रमात् ।
द्विजास्तदा प्रशंसति ततस्त्वहिंसकं मुने ॥५२॥
द्वापरेष्वपि वर्तंते मतिभेदास्तदा नृणाम् ।
मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्ता प्रसिध्यति ॥५३॥
तदा तु सर्वभूतानां कायक्लेशवशात्क्रमात् ।
लोभो भृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ॥५४॥

वेदशाखाप्रणयनं धर्माणां संकरस्तथा ।
वर्णाश्रमपरिध्वंसः काम द्वेषौ तथैव च ॥५५॥
द्वापरे तु प्रवर्तते रागो लोभो मदस्तथा ।
वेदो व्यासैश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ॥५६॥
ऐको वेदश्चतुष्पाद स्त्रेतास्विह विधीयते ।
संक्षयादायुषश्चैव व्यस्यते द्वापरेषु सः ॥५७॥

ब्रह्माजी ने अपने ही तेज से विश्वात्मा ने स्वय अपने धर्म से जीवनोपाय के द्वारा वर्णों और आश्रमो की प्रतिष्ठा का निर्माण किया था ॥५०॥ त्रेता युग मे क्रम से यज्ञो का प्रवर्तन हुआ था । उस समय मे भी कुछ सुव्रत लोग पशु यज्ञ को नही किया करते थे ॥५१॥ उस समय मे सबके द्रष्टा विष्णु बल पूर्वक क्रम से यज्ञ किया था । हे मुने ! तब से द्विजगण भी अहिंसक यज्ञ की प्रशसा करते हैं ॥५२॥ द्वापर युग मे भी मनुष्यो के मति-भेद अर्थात् विचारो के भेद रहते थे । मन, कर्म वचन के द्वारा बडे कष्ट से वार्त्ता की प्रसिद्धि होती है ॥५३॥ उस समय मे समस्त प्राणियो के शारीरिक क्लेश के वश से, क्रम से लोभ, भृति, वणिग्युद्ध तत्त्वो का विशेष निश्चय न होना, वेदो की शाखाओ का प्रणयन, धर्मो का सङ्कर, वर्णों और आश्रमो का नाश, काम, द्वेष ये सब राग, लोभ और मद द्वापर युग से प्रवृत्त होते हैं। द्वापर के आदि काल में व्यास मुनि के द्वारा वेद को चार भागो मे विभक्त किया जाता है । ॥५४॥५५॥५६॥ यहाँ पर त्रेता युग मे चतुष्पाद एक ही वेद था जिसका कि अध्ययन किया जाता था । आयु की क्षीणता होने के कारण द्वापर मे उसका पृथक् विभाग करके अलग २ किया जाता है ॥५७॥

ऋषिपुत्रैः पुनर्भेदा भिद्यंते दृष्टिविभ्रमैः ।
मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः ॥५८॥
संहिता ऋग्यजु साम्ना संहन्यते मनीषिभिः ।
सामान्या वैकृताश्चैव द्रष्टभिस्तैः पृथक्पृथक् ॥५९॥

ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मंत्रप्रवचनानि च ।
अन्ये तु प्रस्थितास्तान्वै केचित्तान्प्रत्यवस्थिताः ॥६०॥
इतिहासपुराणानि भिद्यंते कालगौरवात् ।
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ॥६१॥
भविष्यं नारदीयं च मार्कंडेयमनः परम् ।
आग्नेयं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गं वाराहमेव च ॥६२॥
वामनाख्यं ततः कूर्मं मात्स्यं गारुडमेव च ।
स्कांदं तथा च ब्रह्माडं तेषां भेदः प्रकथ्यते ॥६३॥
लैङ्गमेकादशविधं प्रभिन्नं द्वापरे शुभम् ।
मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोङ्गिराः ॥६४॥

भिन्न मति वाले मनीषी ऋषियो के पुत्रों के द्वारा ऋक्, यजु और साम की सहिताओ का मन्त्र, ब्राह्मण के विन्यासो के द्वारा तथा स्वर वर्ण विपर्ययो के द्वारा विभाग किया जाता है ॥५८॥५९॥ विधि, प्रशसा और मन्त्रो का विनियोग करने वाला ब्राह्मण, क्रिया के प्रतिपादन करने वाले कल्प सूत्र और मन्त्र प्रवचन मीमासा न्याय सूत्र किए थे। अन्य उनके न्यूनता के बोधक तथा कुछ उनके प्रत्यवस्थित थे। ॥६०॥ इतिहास और पुराण भी अनेक कल्पो के भेद स्वरूप काल के गौरव होने से भेद युक्त हो गये थे। ब्राह्म, पाद्म, वैष्णव, शैव, भागवत, भविष्य, नारदीय, मार्कण्डेय और इनसे आगे आग्नेय, ब्रह्म वैवर्त, लिंग, वाराह, वामन, कूर्म, मात्स्य, गारुड, स्कान्द और ब्रह्माण्ड ये उनके (पुराणो के) भेद कहे जाते हैं ॥६१॥६२॥६३॥ परम कल्याण करने वाला लैङ्ग पुराण एकादश प्रकार का द्वापर मे विभक्त हुआ है। अब वेद तथा पुराणो के विभाजक मुख्य ऋषियो को बतलाते हैं—मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा ये उनके नाम हैं ॥६४॥

यमापस्तंबसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती ।
पराशरव्यासशंखलिखिता दक्षगौतमौ ॥६५॥

शातातपो वसिष्ठश्च एवमाद्यै: सहस्रश: ।
अवृष्टिर्मरणं चैव तथा व्याध्याद्युपद्रवाः ॥६६॥
वाङ्मनः कर्मजैर्दु: खैर्निर्वेदो जायते ततः।
निर्वेदाज्जायते तेषां दु:खमोक्षविचारणा ॥६७॥
विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम् ।
दोषाणां दर्शनाच्चैव द्वापरे ज्ञानसंभवः ॥६८॥
एषा रजस्तमोयुक्ता वृत्तिर्वै द्वापरे स्मृता।
आद्ये कृते तु धर्मोस्ति स त्रेतायां प्रवर्तते ॥६९॥
द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे ॥७०॥

यम, आपस्तम्ब, सवर्त्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शङ्ख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप, वसिष्ठ आदि इस प्रकार से सहस्रों ऋषि हुए हैं। अब यह बताते है कि द्वापर युग मे वैराग्य बिना ज्ञान के दृढ नही होता है और वह भी दोष दर्शन के बिना नहीं होता है। वह दोषो का दर्शन दुःख के बिना नही होता है। वर्षा का न होना, मौत का होना, रोगो का हो जाना, चोर व्याघ्रादि तथा नृप आदि के द्वारा उपद्रुत होना आदि कारणों से वाचिक, कायिक और मानसिक दुःख होते हैं और फिर दोष दर्शन होकर निर्वेद उत्पन्न हो जाया करता है। निर्वेद के होने से उन प्राणियो को दुःखों से छुटकारा पाने का विचार उत्पन्न हुआ करता है ॥६५॥६६॥ ॥६७॥ ऐसी विचारणा जब होती है तो वैराग्य हो जाता है और फिर दोष दिखाई देने लगते हैं। द्वापर मे इस तरह दोषो के दर्शन से ही ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है। कृतयुग और त्रेता म स्वाभाविकी ज्ञान-प्रवृत्ति होती है। द्वापर में जो ऐसी वृत्ति होती है वह रजोगुण और तमोगुण से युक्त कही गई है। आद्य कृतयुग मे जो धर्म है वह त्रेता मे प्रवृत्त हुआ करता है। द्वापर मे वह व्याकुली भूत हो जाता है और कलियुग में नष्ट ही हो जाया करता है॥६८॥६९॥७०॥

चारों युगों का परिमाण वर्णन

तिष्ये मायामसूया च वध चैव तपस्विनाम् ।
साधयति नरास्तत्र तमसा व्याकुलेन्द्रिया ॥१।
कलौ प्रमादको रोगः सतत क्षुद्भयानि च ।
अनावृष्टिभय घोर देशाना च विपर्ययः ॥२॥
न प्रामाण्य श्रुतेरस्ति नृणां चाधर्मसेवनम् ।
अधार्मिकास्त्वनाचारा महाकोपाल्पचेतसः ॥३॥
अनृत ब्रुवते लुब्धास्तिष्ये जानाश्च दुष्प्रजाः ।
दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः ॥४॥
विप्राणा कर्म दोषेण प्रजाना जायते भयम् ।
नाधीयन्ते तदा वेदान्न यजति द्विजातय ॥५॥
उत्सीदति नराश्चैव क्षत्रियाश्च विश क्रमात् ।
शूद्राणा मत्रयोगेन सबधो ब्राह्मणैः सह ॥६॥
भवतीह कलौ तस्मिञ्शयनासनभोजनैः ।
राजानः शूद्रभूयिष्ठा ब्राह्मणान् बाधयति ते ॥७॥

इस अध्याय मे कलियुग मे उत्पन्न होने वाले धर्मों का वर्णन करके कृतारम्भ और कल्प मन्वन्तर की व्याख्या की जाती है। शक्र ने कहा—कलियुग मे तमोगुण के प्रभाव से व्याकुल इन्द्रियो वाले मनुष्य माया, असूया और तपस्वियो का वध किया करते हैं ॥१॥ कलियुग मे प्रमाद, रोग, क्षुधा और भय, घोर वृष्टि के अभाव का डर, देशो का विपर्यय होता है तथा श्रुति की प्रामाणिकता नही मानी जाती है एव अधर्म का सेवन किया करते हैं। मनुष्य कलियुग म अधार्मिक, आचार हीन, महान् क्रोधी और बहुत छोटे दिल वाले होते हैं ॥२॥३॥ कलियुग मे उत्पन्न होने वाली प्रजा अत्यन्त लोभी और मिथ्या भाषी होती हैं। उनकी बुरी-बुरी भावनायें होती हैं, दूषित अध्ययन करते हैं, कुत्सित आचार वाले होते हैं, तथा दोष युक्त ज्ञान वाले हुआ करते हैं ॥४॥

विप्रों के ऐसे दूषित कर्म होते हैं कि समस्त प्रजाओं को भय होता है। द्विजाति लोग कलि काल में न तो वेदों का अध्ययन किया करते हैं और न वे यजन ही करते हैं ॥५॥ क्षत्रिय और वैश्य सभी मनुष्य क्रम से उत्सन्न हो जाते हैं। शूद्र लोगों के मन्त्रोपदेश से कलियुग में ब्राह्मणों के साथ शयन, आसन और भोजन में सम्बन्ध होता है। राजा लोग बहुधा शूद्र होते हैं जो कि ब्राह्मणों को वाधित किया करते हैं॥६॥ ॥७॥

भ्रूणहत्या वीरहत्या प्रजायते प्रजासु वै ।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा शूद्राचाराश्च ब्राह्मणा. ॥८॥
राजवृत्तिस्थिताश्चौराश्चौराचाराश्च पार्थिवाः ।
एकपत्न्यो न शिष्यति वर्धिष्यत्यभिसारिका. ॥९॥
वर्णाश्रमप्रतिष्ठानो जायते नृपु सर्वत. ।
तदा स्वल्पफला भूमि. क्वचिन्नापि महाफला ॥१०॥
अरक्षितारो हर्तार. पार्थिवाश्च शिलाशन ।
शूद्रा वै ज्ञानिनः सर्वे ब्राह्मणैरभिवदिताः ॥११॥
अक्षत्रियाश्च राजानो विप्रा शूद्रोपजीविन. ।
आसनस्था द्विजान्दृष्ट्वा न चलत्यल्पबुद्धयः ॥१२॥
ताडयति द्विजेन्द्राश्च शूद्रा वै स्वल्पबुद्धयः ।
आस्ये निधाय वै हस्त कर्णं शूद्रस्य वै द्विजाः ॥१३॥
नीचस्येव तदा वाक्य वदति विनयेन तम् ।
उच्चासनस्थान् शूद्राश्च द्विजमध्ये द्विजर्षभ ॥१४॥

व्यभिचार मूलता के कारण भ्रूण हत्या (गर्भ नाश) और विक्रान्त वीर पुरुषों की हत्या प्रजा में उत्पन्न होती है। जो शूद्र वर्ग के मनुष्य हैं वे ब्राह्मणों के समान आचार किया करते हैं और कलियुग में ब्राह्मण शूद्रों की आचार किया करते हैं ॥८॥ राजा के यहाँ रहने वाले व्यवस्थापक चोरों के समान वृत्ति वाले होंगे और राजा लोग स्वय चोरों के तुल्य आचार वाले होते हैं। पत्नी व्रत और पाति व्रत नाम मात्र को

भी शेष नहीं रहेगा और सर्वत्र अभिसरण करने वाली व्यभिचारिणी नारियां होती हैं ॥९॥ मनुष्यों में सभी और वर्णाश्रमों का प्रतिष्ठान हो जाता है। उस समय कलियुग में जब कि ऐसी दशा उपस्थित होती है तो भूमि में उपज बहुत ही कम होती है कहीं पर ही महान् फलों वाली हुआ करती है ॥१०॥ हे शिलाशन ! राजा लोग रक्षा न करके हरण करने वाले होते हैं। शूद्र वर्ण वाले सब ओर ज्ञानी होते हैं और ब्राह्मण उनकी वन्दना करने वाले दिखाई देते हैं ॥११॥ अक्षत्रिय राजा लोग हो जाते हैं तथा ब्राह्मण शूद्रों से उपजीवी हुआ करते हैं। ब्राह्मणों को देखकर भी अपने आसनों पर सस्थित बने रहा करते है ॥१२॥ स्वल्प बुद्धि वाले शूद्र लोग द्विजेन्द्रों को ताड़ना देते हैं। द्विज लोग शूद्र के मुख पर हाथ और कान रखकर चाटुकारिता करते है ॥१३॥ हे द्विजों मे श्रेष्ठ ! उस समय मे द्विजो के मध्य मे शूद्रो के प्रति जो कि उच्च आसनो पर स्थित होते हैं नीच की भांति बहुत ही विनय के साथ ब्राह्मण लोग वचन बोला करते है ॥१४॥

ज्ञात्वा न हिंसते राजा कलौ कालवशेन तु ।
पुष्पैश्च वासितैश्चैव तथान्यैर्मंगलैः शुभैः ॥१५॥
शूद्रानभ्यर्चयंत्यल्प श्रुतभाग्यबलान्विताः ।
न प्रेक्षते गर्विताश्च शूद्रा द्विजवरान् द्विज ॥१६॥
सेवावसरमालोक्य द्वारे तिष्ठंति वै द्विजाः ।
वाहनस्थान् समावृत्य शूद्राञ्छूद्रोपजीविनः ॥१७॥
सेवते ब्राह्मणास्तत्र स्तुवंति स्तुतिभिः कलौ ।
तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजोत्तमाः ॥१८॥
यतयश्च भविष्यति बहवोस्मिन्कलौ युगे ।
पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं युगांते समुपस्थिते ॥१९॥
निन्दन्ति वेदविद्यां च द्विजाः कर्माणि वै कलौ ।
कलौ देवो महादेवः शङ्करो नीललोहितः ॥२०॥

प्रकाशते प्रतिष्ठार्थं धर्मस्य विकृताकृतिः ।
ये त विप्रा निषेवते येन केनापि शङ्करम् ॥२१॥
कलिदोषान् विनिर्जित्य प्रयाति परमं पदम् ।
श्वापदप्रबलत्व च गवा चैव परिक्षय. ॥२२॥

कलियुग मे मास के प्रभाव के कारण राजा सब बुद्ध ज्ञान रखकर भी हिंसा नही करता है । अल्प शास्त्र का ज्ञान, खोटा भाग्य और कम बल वाले लोग पुष्पो, सुगन्धित पदार्थों और अन्य अनेक मङ्गल एव शुभ पदार्थों के द्वारा शूद्रो का अभ्यर्चन किया करते हैं । हे द्विज ! शूद्र ऐसे घमण्डी हो जाया करते हैं कि वे द्विजवरो की ओर देखते भी नही हैं ॥१५॥१६॥ द्विजगण जो कि शूद्रो से ही उप जीवित होते हैं उनकी सेवा का अवसर देखकर वाहनो पर स्थित शूद्रो को घेर कर उनके द्वार पर खडे रहा करते हैं ॥१७॥ वहा पर कलियुग मे ब्राह्मण लोग उन शूद्रो की सेवा करते हैं । और विविध स्तुतियो के द्वारा उनका स्तवन किया करते हैं । द्विजोत्तम गण अपने तप और यज्ञ के फलो का विक्रय किया करते हैं ॥१८॥ कलियुग मे बहुत लोग यति के वेष धारण करने वाले सन्यासी हो जाया करते हैं और युगान्त के उपस्थित होने पर पुरुष तो कम होगे और स्त्रियाँ अधिक सख्या मे हो जायेंगी ॥१९॥ द्विज लोग वेदो की विद्या और वैदिक कर्मों की कलियुग मे निन्दा करते हैं और इस कलि काल मे नील लोहित शङ्कर महादेव ही देव माने जाते है ॥२०॥ वह शङ्कर भी उच्छिन्न-भिन्न लिङ्ग के स्वरूप वाले धर्म की प्रतिष्ठा के लिये प्रकाशित होते हैं । जिसको कि विप्र लोग जिस किसी प्रकार से सेवन किया करते हैं और शङ्कर की जैसी तैसी सेवा के द्वारा ही वे लोग कलियुग के दोषो के ऊपर विजय प्राप्त कर परम पद को प्राप्त हो जाते है । कलियुग मे श्वापदो की प्रबलता होती है और गौओ का परिक्षय होता है ॥२१॥२२॥

साधूना विनिवृत्तिश्च वेद्या तस्मिन्युगक्षये ।
तदा सूक्ष्मो महोदर्को दुर्लभो दानमूलवान् ॥२३॥

चातुराश्रमशैथिल्ये धर्मः प्रतिचलिष्यति ।
अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः ॥२४॥
युगान्तेषु भविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः ।
अट्टशूला जनपदाः शिवशूला श्चतुष्पथाः ॥२५॥
प्रमदाः केशशूलिन्यो भविष्यंति कलौ युगे ।
चित्रवर्षी तदा देवो यदा प्राहुर्युगक्षयम् ॥२६॥
सर्वे वणिग्जनाश्चापि भविष्यत्यधमे युगे ।
कुशीलचर्याः पापण्डैर्वृथारूपैः समावृताः ॥२७॥
बहुयाजनको लोको भविष्यति परस्परम् ।
नाव्याहृतक्रूरवाक्यो नार्जवी नानसूयकः ॥२८॥
न कृते प्रतिकर्ता च युगक्षीणे भविष्यति ।
निंदकाश्चैव पतिता युगातस्य च लक्षणम् ॥२९॥

उस कलियुग मे सच्चे और अच्छे साधुओं का अभाव हो जाता है। कलिकाल मे दान के मूल वाला सूक्ष्म भी ऐश्वर्य रूप दुर्लभ हो जाता है ॥२३॥ चारो ब्रह्मचर्यादि आश्रमो की शिथिलता हो जाने पर धर्म चला ही जायेगा और राजा लोग किसी भी प्रकार की रक्षा न करके केवल अपने ही बलिभाग के हरण करने वाले हो जायेंगे ॥२४॥ ये राजा लोग युगान्त में केवल अपनी ही रक्षा करने मे परायण रहा करेंगे। समस्त देश अट्टशूल अर्थात् अन्न्या के विक्रय करने वाले होंगे और चारो आश्रमों वाले ब्राह्मण वेद का विक्रय करने वाले हो जायेंगे ॥२५॥ कलियुग मे स्त्रियाँ अपने केशादि की सुसज्जा करके भग का विक्रय करने वाली हो जायगी। जिस समय युग क्षय होता है उस समय मेघ चित्रवर्षी अर्थात् कहीं-कहीं पर ही सुवृष्टि के करने वाले हो जावेंगे ॥२६॥ इस अधम कलियुग मे समस्त वणिक् लोग भी कुत्सित आचरण वाले और व्यर्थ के दम्भ से परिपूर्ण अवैदिक मार्गों से युक्त हो जावेंगे ॥२७॥ सभी लोग परस्पर मे अव्याहृत क्रूर वाक्य बोलने वाले याम या जनक हो जावेंगे। इन सबका स्वभाव तथा व्यवहार कपटमय

और निन्दा से परिपूर्ण हो जायगा। कोई भी किसी के किये हुए उपकार का प्रत्युपकार नही करेगा। सभी निन्दक और पतित स्वरूप वाले हो जाँयगे, यही इस युगान्त का लक्षण होता है ॥२८॥२९॥

नृपशून्या वसुमती न च धान्यधनावृता।
मण्डलानि भविष्यंति देशेषु नगरेषु च ॥३०॥
अल्पोदका चाल्पफला भविष्यति वसुन्धरा।
गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः संभविष्यंत्यशासनाः ॥३१॥
हर्तारः परवित्तानां परदारप्रधर्षकाः।
कामात्मानो दुरात्मानो ह्यधमाः साहसप्रियाः ॥३२॥
प्रनष्टचेष्टनाः पुंस मुक्तकेशाश्च शूलिनः।
जनाः षोडशवर्षाश्च प्रजायंते युगक्षये ॥३३॥
शुक्लदंताजिनाक्षाश्च मुन्डाः काषायवाससः।
शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति युगांते समुपस्थिते ॥३४॥
सस्यचौरा भविष्यंति दृढचैलाभिलाषिणः।
चौराश्चोरस्वहर्तारो हर्तुर्हर्ता तथापरः ॥३५॥

कलियुग मे यह भूमि एक ऐसा भी समय उपस्थित होगा जबकि रक्षक नृपो से रहित हो जायगी और इसमे धन-धान्य का एकदम अभाव हो जायगा। देशो मे और नगरो मे जनो से शून्य स्थल हो जाँयगे ॥३०॥ यह सम्पूर्ण पृथ्वी अति अल्प फल वाली और थोडे जल वाली हो जायगी। जो इसकी रक्षा करने वाले होंगे वे सब अरक्षक हो जाँयगे और कोई भी भूमि पर शासन करने वाला नहीं रहेगा ॥३१॥ प्राय. लोग दूसरो के धनो के अपहरण करने वाले, दूसरो की स्त्रियो के प्रधर्षण करने वाले, काम वासना से परिपूर्ण तथा दुष्ट आत्मा वाले, नीच कर्म करने वाले तथा साहस पूर्वक दुष्कर्म मे प्रवृत्त होने वाले हो जाँयगे ॥३२॥ कलियुग मे बहुधा सभी बिना उद्योग वाले, निर्लज्ज, व्याधिग्रस्त तथा पण्य स्त्रियो के साथ सम्पर्क रखने वाले और सोलह वर्ष की अवस्था वाले लोग युगक्षय मे समुत्पन्न होगे ॥३३॥ शुक्ल दन्त,

मृग चर्म तथा रुद्राक्ष धारण करने मुण्डित हो कापाय वस्त्र धारण करने वाले यति वेपधारी शूद्र युगान्त के समुपस्थित होने पर धर्म का आचरण करेंगे ॥३४॥ दृढ चैल (वस्त्र) के अभिलाषा रखने वाले सस्य (धान्य, का चोरी करने वाले होगे और चोर चोरो के ही धन का हरण करने वाले तथा उस हरण करने वाले का कोई अन्य हर्ता होगा ॥३५॥

योग्यकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियतां गते ।
कीटमूपकसर्पाश्च धर्षयिष्यंति मानवान् ॥३६॥
सुभिक्ष क्षेममारोग्यं सामर्थ्यं दुर्लभं तदा ।
कौशिकी प्रतिपत्स्यंते देशान्क्षुद्भयपीडिताः ॥३७॥
दु.खेनाभिप्लुतानां च परमायुः शतं तदा ।
दृश्यते न च दृश्यंते वेदाः कलियुगेऽखिला· ॥३८॥
उत्सीदति तदा यज्ञा केवलाधर्मपीडिताः ।
कापायिणोप्य निर्ग्रन्थाः कापालोबहुलास्त्विह ॥३९॥
वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणः परे ।
वर्णाश्रमाणा ये चान्ये पापण्डाः परिपन्थिनः ॥४०॥
उत्पद्यन्ते तदा ते वै संप्राप्ते तु कलौ युगे ।
अधीयन्ते तदा वेदाञ्शूद्रा धर्मार्थकोविदा ॥४१॥
यजते चाश्वमेधेन राजानः शूद्रयोनयः ।
स्त्रीवालगोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम् ॥४२॥

योग्य एव समुचित कर्मों के समाप्त प्राय हो जाने पर लोग बहुधा क्रिया हीन होगे और कीट-मूपक तथा सर्प मनुष्यों का धर्पण करेगे ॥३६॥ सुभिक्ष (अच्छा सम्वत्) कुशल, आरोग्य और शक्ति ये सब उस समय मे अत्यन्त दुर्लभ हो जांयगे और लोग भूख के भय से उत्पीडित होकर अन्य देशों को तथा कौशिकी नाम वाली नदी की ओर भाग कर जांयगे ॥३७॥ दु खो से व्याप्त एवं घिरे हुए मानवो की उस समय सौ वर्ष की अन्तिम आयु होगी । समस्त वेद कलियुग मे दिखाई देंगे और न भी दिखाई देंगे ॥३८॥ उस समय मे यज्ञ-याग आदि समाप्त हो

होंगे और बहुत से रोग देहो मे बस जायगे ॥४३॥ पूर्णतया अधर्म का ही अभिनिवेश सबमे हो जाने के कारण कलियुग मे तमोगुण का ही व्यवहार बताया गया है। उस समय मे प्रजाजनो मे ब्रह्महत्या आदि महा पाप प्रवृत्त हो जाते हैं ॥४४॥ इसी कारण से कलियुग के प्राप्त होने पर मनुष्यो की आयु, बल और रूप सब क्षीण हो जाया करते हैं। उस समय मे इतनी ही विशेषता है कि मनुष्यो को अत्यन्त अल्प काल में ही सिद्धियाँ प्राप्त हो जाया करती हैं ॥४५॥ वे द्विज श्रेष्ठ परम धन्य एव महान् भाग्यशाली हैं जो धर्म का आचरण करेंगे। जो लोग श्रुति एव स्मृति से प्रतिपादित धर्म का किसी की बुराई न करते हुए करते हैं वे अत्यन्त बडभागी हैं ॥४६॥ जो कृतयुग मे दश वर्ष तक धर्माचरण किया जाता है वह त्रेता मे एक वर्ष मे ही सिद्धि प्रद धर्म होता है। वही द्वापर मे एक मास मे फलप्रद होता है और क्लेश के साथ पण्डित उसी धर्म का आचरण करके कलियुग मे एक ही दिन मे फल प्राप्त कर लेता है ॥४७॥ यह कलियुग की दशा का वर्णन किया गया है। अब आप उसका सन्ध्यांश मुझसे समझ लो। युग-युग मे सिद्धियो के तीन पादो का ह्रास होता है ॥४८॥ युग के स्वभाव वाली सन्ध्या पाद से न्यून यहाँ प्रतिष्ठित होती है। अपने अंशो मे सन्ध्या के स्वभाव पादन्यून हुआ करते हैं ॥४९॥

एवं सन्ध्यांशके काले संप्राप्ते तु युगांतिके।
तेषां शास्ता ह्यसाधूनां भूतानां निधनोत्थितः ॥५०॥
गोत्रेऽस्मिन्वै चन्द्रमसो नाम्ना प्रमितिरुच्यते।
मानवस्य तु सोंशेन पूर्वं स्वायंभुवेन्तरे ॥५१॥
समाः स विंशतिः पूर्णा पर्यटन्वै वसुन्धराम्।
अनुकर्षन् स वै सेनां सवाजिरथकुञ्जराम् ॥५२॥
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोथ सहस्रशः।
स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान् हन्ति सहस्रशः ॥५३॥

स हत्वा सर्वशश्चैव राज्ञस्ताञ्शूद्रयोनिजान् ।
पाखडांस्तु ततः सर्वान्निः शेष कृतवान् प्रभुः ॥५४॥
नात्यर्थ धार्मिका ये च तान् सर्वान् हन्ति सर्वतः ।
वर्णव्यत्यासजाताश्च ये च ताननुजीविनः ॥५५॥
प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामतकृत्स तु ।
अधृष्यः सर्वभूताना चचाराथ वसुन्धराम् ॥५६॥
मानवस्य तु सोशेन देवस्येह विजज्ञिवान् ।
पूर्वजन्मनि विष्णोस्तु प्रमितिर्नाम वीर्यवान् ॥५७॥
गोत्रतो वै चन्द्रमसः पूर्णे कलियुगे प्रभुः ।
द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रातो विंशतिः समाः ॥५८॥
विनिघ्नन्सर्वभूतानि शतशोथ सहस्रशः ।
कृत्वा बीजावशेषा तु पृथिवी क्रूरकर्मणा ॥५९॥

इस प्रकार से कलियुग का सन्ध्यांशक काल उपस्थित होगा उस समय में युगान्तिक काल उपस्थित होने पर उन असाधुओं का शासन करने वाला और प्राणियों के निधन से उत्थित अर्थात् उत्पन्न मनु पुत्र के अंश से सोम शर्मा नामक ब्राह्मण के गोत्र मे जन्म ग्रहण करेगा जो कि पहिले स्वायम्भुव मन्वन्तर मे प्रमिति कहा जाता है । ॥५०॥५१॥। वह बीस वर्ष पर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी पर पर्यटन करता हुआ तथा अश्व, रथ और हाथियों से समन्वित सेना का अनुकर्षण करते हुए तथा सैंकडों सहस्रो अस्त्र-शस्त्र ग्रहण करने वाले विप्रो से पूर्णतया सुसज्जित एव परिवृत होकर हजारों ही म्लेच्छो का हनन करेगा ॥५२॥५३॥ वह समस्त शूद्र योनि में समुत्पन्न समस्त राजाओं का सर्वत्र वध करके जितने भी पापण्डी लोग थे उन सभी को उस प्रभु समाप्त कर देगा ॥५४॥ जो भी पूर्णतया धार्मिक नही हैं उन सब का सभी ओर मे वह हनन कर देता है । वर्णों के व्यत्यास (विपर्यय) से जो उत्पन्न होने वाले हैं और जो उनके अनुजीवी हैं उनका हनन करने वाला होगा । उस बलवान् का ऐसा चक्र प्रवृत्त होगा कि वह

सर्वत्र ही म्लेच्छो का अन्त कर देने वाला होगा। वह समस्त प्राणियों के धर्षण करने के अयोग्य होता हुआ इस सम्पूर्ण भूमण्डल मे विचरण करने वाला होगा ॥५५॥५६॥ वह पूर्वजन्म मे मनुदेव के अंश से प्रमिति नाम वाला था। वही वीर्यवान् अब इस भरत खण्ड मे पुनः कलियुग के पूर्ण होने पर सोम शर्मा के गोत्र मे उत्पन्न हुआ है। जब बत्तीस वर्ष का हो जायगा तो वह बीस वर्ष तक समस्त भूमण्डल पर प्रक्रमण करेगा और हजारो ही दुष्ट प्राणियो का वध करके इस पृथ्वी को क्रूर कर्म करने वालो के बीज से मुक्त कर देगा ॥५७॥५८॥५९॥

परस्परनिमित्तेन कोपेनाकस्मिकेन तु।
स साधयित्वा वृषलान् प्रायशस्तानधार्मिकान् ॥६०॥
गगायमुनयोर्मध्ये स्थितिं प्राप्तः सहानुगः।
ततो व्यतीते काले तु सामात्यः सहसैनिकः ॥६१॥
उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् म्लेच्छाश्चैव सहस्रशः।
तत्र सध्याशके काले सप्राप्ते तु युगान्तिके ॥६२॥
स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्क्वचित्।
अप्रग्रहास्ततस्ता वै लोभाविष्टास्तु कृत्स्नशः ॥६३॥
उपहिंसन्ति चान्योन्य प्रणिपत्य परस्परम्।
अराजके युगवशात्सशये समुपस्थिते ॥६४॥
प्रजास्ता वै ततः सर्वाः परस्परभयार्दिताः।
व्याकुलाश्च परिभ्रातास्त्यक्त्वा दारान् गृहाणि च ॥६५॥
स्वान्प्राणाननपेक्षन्तो निष्कारुण्याः सुदु.खिताः।
नष्टे श्रौते स्मार्तधर्मे परस्परहतास्तदा ॥६६॥

परस्पर मे अचानक उत्पन्न होने वाले कोप के निमित्त से वह वृषलो का जो प्राय. अधार्मिक थे साधन करके अर्थात् घात करके गङ्गा और यमुना के मध्य भाग में अपने अनुगो के सहित स्थिति को प्राप्त करेगा। इसके अनन्तर कुछ समय के व्यतीत होने पर वहाँ पर युगा-

न्तिक सन्ध्यांशक काल आ जाने पर वह मन्त्री और सैनिकों के सहित सम्पूर्ण म्लेच्छ राजाओं का और दुष्ट प्राणियों का सहस्रों की सख्या मे उत्सादन कर देगा ॥६०॥६१॥६२॥ यह कल्कि अवतार का वर्णन है। इसकी समाप्ति के अनन्तर जो कलियुग का भाग शेष होगा उसमें कहीं-कहीं पर बहुत ही अल्प प्रजा शेष रह जायगी वह मर्यादा के बन्धन से शून्य पूर्णतया लोभाविष्ट लोग हो जायेंगे ॥६३॥ वे सब आपस मे विश्वास उत्पन्न करके एक दूसरे का घात किया करेंगे। युग धर्म के प्रभाव से उस समय एक तरह की अराजकता सी हो जायगी और सबको संशय उत्पन्न हो जाया करेगा ॥६४॥ उस समय मे सम्पूर्ण प्रजा परस्पर मे भय से बहुत ही दु खित हो जायगी। लोग ऐसे व्याकुल हो जायेंगे कि वे अपने घर और स्त्रियों का भी त्याग करके इधर-उधर मारे-मारे घूमेंगे ॥६५॥ सम्पूर्ण श्रौत और स्मार्त नष्ट हो जायगा, लोग अपने प्राणों की भी उपेक्षा करते हुए निर्दयी और अत्यन्त दु खित होकर परस्पर मे ही मारकाट करेंगे ॥६६॥

निर्मर्यादा निराक्रान्ता नि.स्नेहा निरपत्रपाः।
नष्टे धर्मे प्रतिहताः ह्रस्वकाः पञ्चविंशकाः ॥६७॥
हित्वा पुत्रांश्च दारांश्च विवादव्याकुलेन्द्रियाः।
अनावृष्टिहतास्चैव वार्तामुत्सृज्य दूरतः ॥६८॥
प्रत्यन्तानुपसेवन्ते हित्वा जनपदान् स्वकान्।
सरित्सागरकूपास्ते सेवन्ते पर्वतास्तथा ॥६९॥
मधुमासैर्मूलफलैर्वर्तयन्ति सुदु खिताः ।
चीरपत्राजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहा ॥७०॥

यह एक ऐसा भीषण समय होगा कि लोग सभी अपनी मर्यादा का त्याग करके निराकान्त, बिना स्नेह वाले और निर्लज्ज हो जायेंगे। धर्म के नष्ट हो जाने पर प्रतिहत होंगे तथा कद मे बहुत छोटे तथा पच्चीस वर्ष की आयु वाले रह जांयगे ॥६७॥ उस समय मे लोग विवादों

मे व्याकुल इन्द्रियों वाले होकर अपने पुत्रों और स्त्रियों को भी त्याग देंगे। वृष्टि के न होने से अत्यन्त उत्पीड़ित होते हुए अपना काम-धन्धा छोड़-छोड़ कर दूर दूर देश के भागों को जाकर सेवन करेंगे तथा अपने देशों को छोड़ देंगे। नदियों के तट तथा सागर और कूपों के सहारे पर पर्वतीय भागों में रहने लगेंगे ॥६८॥६९॥ मनुष्य अत्यन्त दुखित होकर मधु मांस, कन्द मूल और फलों के सहारे से अपना जीवन निर्वाह करेंगे और चीर-पत्र, चमड़ा धारण करेंगे तथा बिल्कुल क्रिया हीन एवं परिग्रह से रहित हो जायेंगे ॥७०॥

वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः सङ्कटं घोरमास्थिताः ।
एव कष्टमनुप्राप्ता अल्पशेषाः प्रजास्तदा ॥७१॥
जराव्याधिक्षुधाविष्टा दुःखान्निर्वेदमानसाः ।
विचारणा तु निर्वेदात्साम्यावस्था विचारणा ॥७२॥
साम्यावस्थात्मको बोधः सबोधाद्धर्मशीलता ।
अल्पशमयुक्तास्तु कलिशिष्टा हि वै स्वयम् ॥७३॥
अहोरात्रात्तदा तासां युगं तु परिवर्तते ।
चित्तसमोहनं कृत्वा तासां वै सुप्तमत्तवत् ॥७४॥
भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्तत ।
प्रवृत्ते तु ततस्तस्मिन्पुनः कृतयुगे तु वै ॥७५॥
उत्पन्नाः कलिशिष्टास्तु प्रजाः कार्तयुगास्तदा ।
तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धा अदृष्टा विचरन्ति च ॥७६॥
सप्त सप्तर्षिभिश्चैव तत्र ते तु व्यवस्थिताः ।
ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थं ये स्मृता इह ॥७७॥

मन में निर्वेद उत्पन्न होने लगेगा। उस वैराग्य से साम्यावस्था का विचार उत्पन्न होगा ॥७२॥ साम्यावस्था के स्वरूप वाले ज्ञान के होने से लोगों में धर्म शीलता का जागरण होगा। उस कलियुग में जो भी बचे-खुचे लोग रह जायेंगे वे प्रशक्ति मूल वाली शान्ति से युक्त हो जायेंगे ॥७३॥ उस समय में एक अहोरात्र से उन प्रजा जनों का सोए हुए प्रमत्त की भाँति सम्मोहन करके यह कलियुग निवृत्त हो जायगा। ॥७४॥ इसके अनन्तर होने वाले अर्थ का कृत युग हो जाता है और पुनः उस कृतयुग के प्रवृत्त हो जाने पर उस समय में कलियुग में बचे हुए प्रजा जब कृतयुग के होकर उत्पन्न होते हैं जो कि सिद्धगण अदृष्ट होते हुए यहाँ विचरण करने वाले हैं वे ही स्थित रहते हैं ॥७५॥७६॥ वे सात सप्तर्षियों के नाम से व्यवस्थित होते हैं जो कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इनके बीज के लिए कहे गये हैं। ॥७७॥

कलिजैः सह ते सर्वे निर्विशेषास्तदाऽभवन्।
तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयंतीतरेपि च ॥७८॥
वर्णाश्रमाचारयुतं श्रौतं स्मार्तं द्विधा तु यम्।
ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्धन्ते वै प्रजाः कृते ॥७९॥
श्रौतस्मार्तकृतानां च धर्मे सप्तर्षिदर्शिते।
केचिद्धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीह युगक्षये ॥८०॥
मन्वंतराधिकारेषु तिष्ठंति मुनयस्तु वै।
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्विह ततः क्षितौ ॥८१॥
वनानां प्रथमं वृष्ट्या तेषां मूलेषु संभवः।
तथा कार्तयुगानां तु कलिजेष्विह संभवः ॥८२॥
एवं युगाद्युगस्येह संतानं तु परस्परम्।
वर्तते ह्यव्यवच्छेदाद्यावन्मन्वंतरक्षयः ॥८३॥
सुखमायुर्बलं रूपं धर्मोऽर्थः काम एव च।
युगेष्वेतानि हीयंति त्रीस्त्रीन्पादान्क्रमेण तु ॥८४॥

कलियुग मे उत्पन्न होने वालो के साथ वे सब उस समय मे विशेषता से रहित होकर रहा करते थे। सप्तर्षि और दूसरे लोग भी उनके धर्म को बतलाया करते हैं ॥७८॥ वह धर्म श्रौत अर्थात् वेद, प्रतिपादित और स्मार्त अर्थात् स्मृतियो से प्रतिपादित दो प्रकार का होता है। फिर सब लोग जब कर्म निष्ठ हो जाया करते हैं तो ऐसा हो जाने पर कृतयुग मे प्रजा की वृद्धि हो जाया करते हैं ॥७९॥ सप्तर्षियो के द्वारा प्रदर्शित किए जाने पर श्रौत स्मार्त पद्धति से किए हुए धर्मो की व्यवस्था करने के लिए युग के क्षय के समय मे कुछ लोग यहाँ भू-मण्डल मे स्थित रहा करते हैं ॥८०॥ मन्वन्तरो के अधिकारों मे मुनिगण स्थित रहा करते हैं। जिस प्रकार से दावाग्नि के द्वारा समस्त तृण, वृक्ष आदि के जल जाने पर इस पृथ्वी मे उन सबका कुछ मूल भाग किसी अशाश रूप मे रह जाया करता है ॥८१॥ जब पहिली वृष्टि होती है तो उन प्रदग्ध हुए वनो के मूलो से पुन: अड् कुरोत्पत्ति हो जाती है और समस्त वन हरा-भरा कुछ समय मे हो जाया करता है उसी प्रकार से यहाँ कलियुग मे जन्मे हुए लोगो से कृतयुग वालो का उद्भव हुआ करता है ॥८२॥ इसी प्रकार से एक युग से दूसरे युग मे यहाँ पर परस्पर मे सन्तान हुआ करती हैं। वह अविच्छिन्न रूप से जब तक मन्वन्तर का क्षय होता है रहा करते हैं ॥८३॥ सुख, आयु बल, रूप, धर्म, अर्थ और काम ये सब कृत त्रेता और द्वापर युगो मे तीन-तीन पादो के रूप से क्रम से हीयमान हुआ करते हैं ॥८४॥

ससंध्यांशेपु हीयन्ते युगाना धर्मसिद्धयः।
इत्येपा प्रतिसिद्धिर्वै कीर्तितैपा क्रमेण तु ॥८५॥
चतुर्युगाना सर्वपामनेनैव तु साधनम्।
एपा चतुर्युगावृत्तिरासहस्राद्गुणीकृता ॥८६॥
ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्त रात्रिश्चैतावती स्मृता।
अनार्जवं जडीभावो भूतानामायुगक्षयात् ॥८७॥

एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणं स्मृतम् ।
ऐषां चतुर्युगाणां च गुणिता ह्येकसप्ततिः ॥८८॥
क्रमेण परिवृत्ता तु मनोरन्तर मुच्यते ।
चतुर्युगे यथैकस्मिन्भवतीह यदा तु यत् ॥८९॥
तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वै यथाक्रमम् ।
सर्गसर्गे यथा भेदा उत्पद्यन्ते तथैव तु ॥९०॥
पंचविंशत्परिमिता न न्यूना नाधिकास्तथा ।
तथा कल्पा युगैः सार्धं भवति सह लक्षणैः ॥९१॥
मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम् ॥९२॥

युगों के सन्ध्यांशों में धर्म सिद्धियाँ ह्रास को प्राप्त हुआ करती हैं। इस प्रकार से यह प्रति सिद्धि हमने क्रम से वर्णित कर दी है। ॥८५॥ इन समस्त चारो युगो का इसी क्रम से साधन होता है। यह चारो युगो की आवृत्ति एक सहस्र से गुणित होने पर ब्रह्मा का एक दिन कहा गया है और इतनी ही उसकी रात्रि बताई गई है। युग के क्षय से लेकर भूतो का जडी भाव और अनार्जव होता है अर्थात् वे समस्त प्राणी जडता से युक्त ऋजुता (सरलता) से रहित होते हैं। ॥८६॥८७॥ यह ही समस्त युगो का लक्षण बताया गया है। इन चारो युगो की जो चौकडी होती है वह जब गुणित होकर इकहत्तर होती हैं तो क्रम से परिवृत्त होती है और उस परिवर्तन को ही मन्वन्तर कहते हैं। जिस तरह चारो युगो मे से एक युग मे परिवर्तित होने पर होता है वैसे ही क्रम के अनुसार मन्वन्तर के परिवर्तन के समय मे होता है। ॥८८॥८९॥ उसी प्रकार से प्रत्येक सर्ग मे भेद उत्पन्न होते हैं। कुल पच्चीस तत्त्व हैं। न तो इस सख्या से कभी कम होते हैं और न अधिक ही होते हैं। इन्ही तत्त्वो से सब भेदो की उत्पत्ति हुआ करती है। उसी प्रकार से युगो के साथ लक्षणों के सहित कल्प होते हैं ॥९०॥९१॥ समस्त मन्वन्तरो का यह ही लक्षण होता है ॥९२॥

यथा युगानां परिवर्तनानि
चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात् ।
तथा तु सतिष्ठति जीवलोकः
क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः ॥६३॥
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः ।
अतोतानागताना हि सर्वमन्वन्तरेषु वै ॥६४॥
मन्वंतरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि च ।
व्याख्या तानि न संदेहः कल्पः कल्पेन चैव हि ॥६५॥
अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता ।
मन्वंतरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ॥६६॥
तुल्य.भिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवंत्युत ।
देवा ह्यष्टविधा ये च ये च मन्वंतरेश्वराः ॥६७॥
ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्यप्रयोजनाः ।
एव वर्णाश्रमाणा तु प्रविभागो युगेयुगे ॥६८॥
युगस्वभावश्च तथा विधत्ते वै तदा प्रभुः ।
वर्णाश्रमविभागाश्च युगानि युगसिद्धयः ॥६९॥

जिस रीति से चिरकाल से प्रवृत्त होने वाले युगो के परिवर्तन हुआ करते है जो कि युगो के स्वभाव के अनुसार होते हैं उसी प्रकार से युगो के अनुरूप क्षय और उदय से यह जीवो का लोक संस्थित रहा करता है और इनमे भी युगो के अनुरूप परिवर्तन होता रहता है ॥६३॥ इस प्रकार से यह युगो का लक्षण सक्षेप मे वर्णन कर दिया गया है जो कि समस्त मन्वन्तरो मे व्यतीत हो चुके हैं और आगे होने वाले हैं। ॥६४॥ एक ही मन्वन्तर से अन्य समस्त मन्वन्तरो की व्याख्या करदी गई है। इसमे कुछ भी सन्देह नही है। इसी तरह से कल्प से अन्य कल्प भी व्याख्यात होते हैं ॥६५॥ इसी की भाँति अनागतो मे अर्थात् जो नही आये हैं और आगे होने वाले हैं उनमे विशेष रूप मे ज्ञान रखने वाले को तर्क कर लेना चाहिये। समस्त आगत और अनागत मन्वन्तरो मे इसी प्रकार से यहाँ हुआ करता है ॥६६॥ जो इन सब मन्व-

त्तरो की ईश्वर हैं और जो आठ प्रकार देव हैं वे सब नाम और रूप से समान अभिमान वाले होते हैं ॥६७॥ जो ऋषिगण हैं और मनु वर्ग हैं वे सब तुल्य ही प्रयोजन वाले होते हैं अर्थात् सबका प्रयोजन एक-सा ही हुआ करता है। इस प्रकार से युग-युग से वर्णों और आश्रमों का प्रविभाग हुआ करता है ॥६८॥ युग का स्वभाव भी इसी प्रकार से विभक्त हुआ है। वर्णाश्रमों के विभाग युग और युगों में होने वाली सिद्धियाँ इन सबको प्रभु किया करते हैं ॥६९॥

नन्दिकेश्वर की उत्पत्ति

गते पुण्ये च वरदे सहस्राक्षे शिलाशनः।
आराधयन्महादेवं तपसाऽतोषयद्भवम् ॥१॥
अथ तस्यैवमनिशं तत्परस्य द्विजस्य तु।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु गतं क्षणमिवाद्भुतम् ॥२॥
वल्मीकेनावृताङ्गश्च लक्ष्यः कीटगणैर्मुनिः।
वज्रसूचीमुखैश्चान्यै रक्तकीटैश्च सर्वतः ॥३॥
निर्मांसरुधिरत्वग्वै निर्लेपः कुड्यवत्स्थितः।
अस्थिशेषोऽभवत्पश्चात्तममन्यत शङ्करः ॥४॥
यदा स्पृष्टो मुनिस्तेन करेण च स्मरारिणा।
तदैव मुनिशार्दूल श्चोत्ससर्ज क्रमं द्विजः ॥५॥
तपतस्तस्य तपसा प्रभुस्तुष्टाय शङ्करः।
तुष्टस्तवेत्यथोवाच सगणश्चोमया सह ॥६॥
तपसानेन किं कार्यं भवतस्ते महामते।
ददामि पुत्रं सर्वज्ञं सर्वशास्त्रार्थपारगम् ॥७॥

इस अध्याय में शिलाद की तपस्या से प्रसन्न हुए महेश्वर से शिलाद को सुत की प्राप्ति और नन्दी के उत्साह का वर्णन किया जाता

है। सूत जी ने कहा — परम पुण्य स्वरूप एवं वरदान देने वाले इन्द्र के चले जाने पर शिलाशन ने महादेव की आराधना करते हुए तपस्या के द्वारा भव को सन्तुष्ट कर दिया था ॥१॥ इसके अनन्तर इस प्रकार से निरन्तर तत्पर रहने वाले द्विज के दिव्य दस सहस्र वर्ष अद्भुत एक क्षण की भाँति व्यतीत हो गये थे ॥२॥ वल्मीकों के द्वारा आवृत अङ्गों वाला वह मुनि शरीर की आकृति के न दिखलाई देने से कीटगण तथा अन्य वज्र सूची मुख रक्त कीटों के द्वारा ही लक्ष्य होता था ॥३॥ बिना मांस, रुधिर और त्वचा के कारण निर्लेप वह मुनि तपस्या के करने के समय मे एक दीवाल की भाँति स्थित था। वह फिर केवल अस्थिमात्र शेष रहने वाला हो गया था। ऐसी दशा मे भगवान् शङ्कर ने उस पर कृपा की थी ॥४॥ जिस समय भगवान् काम के दग्ध करने वाले शङ्कर ने हाथ से उस मुनि का स्पर्श किया था उसी समय मुनि शार्दूल द्विज ने श्रम का त्याग कर दिया था अर्थात् तप करना समाप्त कर दिया था ॥५॥ तपस्या करने वाले उसके तप से प्रभु शङ्कर तुष्ट हुए थे। उमा और गणों के सहित भगवान् शङ्कर ने कहा — मैं तुमसे प्रसन्न हूं। हे महामते! आपके इस तप से आपके लिये मुझे क्या करना चाहिए। अर्थात् तुम बताओ, मुझसे क्या चाहते हो? मैं तुमको समस्त शास्त्रों के अर्थ का पारगामी और सर्वज्ञ पुत्र देता हूँ ॥६॥७॥

ततः प्रणम्य देवेशं स्तुत्वोवाच शिलाशनः।
हर्षगद्गदया वाचा सोमं सोमविभूषणम् ॥८॥
भगवन्देवदेवेश त्रिपुरार्दन शङ्कर।
अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रमिच्छामि सत्तम ॥९॥
पूर्वमाराधितः प्राह तपसा परमेश्वरः।
शिलादं ब्रह्मणा रुद्रः प्रीत्या परमया पुनः ॥१०॥
पूर्वमाराधितो विप्र ब्रह्मणाहं तपोधन।
तपसा चावतारार्थं मुनिभिश्च सुरोत्तमैः।

तव पुत्रो भविष्यामि नंदिनाम्ना त्वयोनिजः।
पिता भविष्यसि मम पितुर्वै जगतां मुने ॥१२॥
एवमुक्त्वा मुनिं प्रेक्ष्य प्रणिपत्य स्थितं घृणी।
सोमः सोमोपमः प्रीतस्तत्रैवांतरधीयत ॥१३॥
लब्धपुत्रः पिता रुद्रात्प्रीतो मम महामुने।
यज्ञाङ्गणं महत्प्राप्य यज्ञार्थं यज्ञवित्तमः ॥१४॥
तदंगणादहं शंभोस्तनुजस्तस्य चाज्ञया।
संजातः पूर्वमेवाह युगांताग्निसमप्रभः ॥१५॥

उसके अनन्तर देवेश को प्रणाम करके और स्तुति करके शिलाशन ने हर्ष से गद्गद् वाणी के द्वारा चन्द्र के भूषण वाले भगवान् शङ्कर से कहा, शिलाद ने कहा—हे भगवन् ! आप देवों के भी देव हैं, आप त्रिपुर के अर्दन करने वाले और कल्याण करने वाले हैं। हे सत्तम ! मैं ऐसा अपना पुत्र प्राप्त करने की इच्छा रखता हूं जो योनि से उत्पन्न न होने वाला हो और मृत्यु के भय से रहित हो ॥८॥९॥ सूत जी ने कहा—ब्रह्मा के द्वारा तप से पहिले आराधना किये गये परमेश्वर रुद्र परम प्रीति से पुनः शिलाद से बोले ॥१०॥ श्री देवदेव ने कहा—हे तपोधन ! हे विप्र ! पहिले मेरी आराधना ब्रह्मा ने की थी और श्रेष्ठ देवों तथा मुनियों ने तप से अवतार के लिये मेरी आराधना की थी ॥११॥ मैं नन्दी के नाम से तुम्हारा अयोनिज पुत्र होऊँगा। हे मुने ! समस्त जगत् के पिता मेरे आप पिता होगे ॥१२॥ इस प्रकार से कहकर और मुनि को देख कर तथा स्थित को प्रणाम करके सोम के समान वह सोम घृणी वहाँ पर ही अन्तर्हित हो गये थे ॥१३॥ हे महामुने ! मेरे पिता को रुद्र से पुत्र प्राप्त कर बड़ी प्रसन्नता हुई थी। फिर यज्ञों के वेत्ताओं मे परम श्रेष्ठ वह महान् यज्ञाङ्गण मे प्राप्त हुए थे। उस यज्ञाङ्गण से मैं शम्भु का तनुज उनकी ही आज्ञा से उत्पन्न हुआ था और मैं पहिले ही युगान्त काल की अग्नि के तुल्य प्रभा वाला समुत्पन्न हुआ था। १४॥१५॥

ववपुंस्तदा पुष्करावर्तकाद्या जगुः
खेचराः किन्नराः सिद्धसाध्याः ।
शिलादात्मजत्व गते मय्युपेन्द्रः सस-
र्जाथ वृष्टिं सुपुष्पौघमिश्राम् ॥१६॥
मां दृष्ट्वा कालसूर्याभं जटामुकुटधारिणम् ।
त्र्यक्षं चतुर्भुजं बालं शूलटंकगदाधरम् ॥१७॥
वज्रिणं वज्रदंष्ट्रं च वज्रिणाराधितं शिशुम् ।
वज्रकुण्डलिनं घोरं नीरदोपमनिःस्वनम् ॥१८॥
ब्रह्माद्यास्तुष्टुवुः सर्वे सुरेन्द्रश्च मुनीश्वराः ।
नेदुः समततः सर्वे ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥१६॥
ऋषयो मुनिशार्दूल ऋग्यजुः सामसंभवैः ।
मन्त्रैर्माहेश्वरैः स्तुत्वा सप्रणेमुर्मुदान्विताः ॥२०॥

उस समय जबकि मैं उत्पन्न हुआ था पुष्करावर्तक प्रभृति मेघों ने वृष्टि की थी और खेचर अर्थात् आकाश में विचरण करने वाले किन्नर तथा सिद्ध साध्यों ने गायन किया था। शिलाद के पुत्र के स्वरूप में मेरे हो जाने पर उपेन्द्र ने सुन्दर पुष्पों के समूह से मिश्रित वृष्टि की थी ॥१६॥ काल सूर्य के समान आभा वाले मुझको सबने देखा था जो जटा और मुकुट को धारण करने वाला, तीन नेत्र वाला, चार भुजाओं वाला, बाल स्वरूप से युक्त, शूल टंक और गदा को धारण करने वाला, वज्री, वज्र दंष्ट्रा वाला, वज्री (इन्द्र) के द्वारा समाराधित, शिशुरूप वाला, हीरा के कुण्डल धारण करने वाला, घोर मेघ के तुल्य ध्वनि करने वाला था। उसकी सुरेन्द्र और ब्रह्मादि समस्त मुनीश्वरों ने स्तुति की थी, चारों ओर वाद्य बजाये गये थे और अप्सरा गणों ने नृत्य किया था ॥१७॥१८॥१६॥ हे मुनि शार्दूल ! उस समय ऋषिगण ने ऋग्वेद, यजु, और सामवेद के माहेश्वर मन्त्रों के द्वारा उनका स्तवन करके बड़े ही आनन्द के साथ सबने प्रणाम किया था ॥२०॥

ब्रह्मा हरिश्च रुद्रश्च शक्रः साक्षाच्छिवांबिका ।
जीवश्चेन्दुर्महातेजा भास्करः पवनोनलः ॥२१॥
ईशानो निर्ऋतिर्यक्षो यमो वरुण एव च ।
विश्वेदेवास्तथा रुद्रा वसवश्च महाबलाः ॥२२॥
लक्ष्मीः साक्षाच्छची ज्येष्ठा देवी चैव सरस्वती ।
अदितिश्च दितिश्चैव श्रद्धा लज्जा धृतिस्तथा ॥२३॥
नंदा भद्रा च सुरभी सुशीला सुमनास्तथा ।
वृषेन्द्रश्च महातेजा धर्मो धर्मात्मजस्तथा ॥२४॥
आवृत्य मां तथालिंग्य तुष्टुवुर्मुनिसत्तम ।
शिलादोपि मुनिर्दृष्ट्वा पिता मे तादृशं तदा ॥२५॥
प्रीत्या प्रणम्य पुण्यात्मा तुष्टावेष्टप्रदं सुतम् ।
भगवन्देवदेवेश त्रियंबक ममाव्यय ॥२६॥
पुत्रोसि जगतां यस्मात्त्राता दुःखाद्धि किं पुनः ।
रक्षको जगतां यस्मात्पिता मे पुत्र सर्वग ॥२७॥
अयोनिज नमस्तुभ्यं जगद्योने पितामह ।
पिता पुत्र महेशान जगतां च जगद्गुरो ॥२८॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, साक्षात् जगदम्बा पार्वती, वृहस्पति, चन्द्र, महान् तेजस्वी सूर्य, वायु, अग्नि, ईशान, निर्ऋति, यक्ष, यम, वरुण, विश्वेदेवा, रुद्रगण, वसु वर्ग जो कि महाबल वाले थे, साक्षात् लक्ष्मी, शची, ज्येष्ठा देवी, सरस्वती, अदिति, दिति, श्रद्धा, लज्जा, धृति, नन्दा, भद्रा, सुरभी, सुशीला, सुमना, वृषेन्द्र, महातेजा धर्म, धर्मात्मज इन सबने मुझे आवृत करके और मेरा आलिङ्गन करके हे मुनिश्रेष्ठ ! मेरा स्तुति की थी । मेरे पिता शिलाद मुनि ने भी उस समय मुझे उस प्रकार की स्थिति में देखा था ॥२१॥२२॥२३॥२४॥२५॥ शिलाद ने भी जो परम पुण्यात्मा था अपने अभीष्ट प्रदान करने वाले पुत्र को प्रणाम कर के प्रीति के साथ स्तवन किया था । शिलाद ने कहा—हे भगवन् ! आप देवों के भी देव है, तीन अम्बक हैं और विनाश रहित

हैं। आप मेरे पुत्र के रूप मे उत्पन्न हुए हैं जो कि दुखो से समस्त जगत् का त्राण करने वाले हैं। इससे अधिक और क्या हो सकता है? हे सर्वग ! आप सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले पिता इस समय मेरे पुत्र हुए हैं। हे अयोनिज ! आप तो समस्त इस जगत् के कारण स्वरूप पितामह हैं। आप पिता भी हैं, पुत्र भी हैं, हे महेशान ! आप सब जगतो के गुरु हैं आपको मेरा प्रणाम है ॥२६॥२७॥२८॥

वत्सवत्स महाभाग पाहि मा परमेश्वर ।
त्वयाऽहं नदितो यस्मान्नदी नाम्ना सुरेश्वर ॥२६॥
तस्मान्नदय मा नदिन्नमामि जगदीश्वरम् ।
प्रसीद पितरो मेद्य रुद्रलोक गतौ विभो ॥३०॥
पितामहाश्च भो नदिन्नवतीर्णे महेश्वरे ।
ममैव सफल लोके जन्म वै जगता प्रभो ॥३१॥
अवतीर्णे सुते नदिन् रक्षार्थं मह्यमीश्वर ।
तुभ्य नम. सुरेशान नदीश्वर नमोस्तु ते ॥३२॥
पुत्र पाहि महावाहो देवदेव जगद्गुरो ।
पुत्रत्वमेव नदीश मत्वा यत्कीर्तित मया ॥३३॥
त्वया तत्क्षम्यता वत्स स्तवस्तव्य सुरासुरैः ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि मम पुत्र प्रभाषितम् ॥३४॥
श्रावयेद्वा द्विजान् भक्त्या मया सार्धं स मोदते ।
एव स्तुत्वा सुत वाल प्रणम्य बहुमानतः ॥३५॥
मुनीश्वराश्च सप्रेक्ष्य शिलादोवाच सुव्रत ।
पश्यध्व मुनयः सर्वे महाभाग्य ममाव्ययः ॥३६॥
नन्दी यज्ञाङ्गणे देवश्चावतीर्णो यतः प्रभु ।
मत्समः कः पुमाँल्लोके देवो दानवोपि ॥३७॥
एप नदी यतो जातो यज्ञभूमौ हिताय मे ॥३८॥

हे वत्स ! हे महाभाग ! हे परमेश्वर ! मेरी रक्षा करो आपके द्वारा मैं अत्यन्त नन्दित हुआ हूँ इसीलिये हे सुरेश्वर ! आप नाम से

नन्दी हो जाइये ॥२६॥ हे नन्दिन् ! इसलिये मेरा नन्दन अर्थात् आनन्द कीजिए। जगत् के ईश्वर आपको मैं प्रणाम करता हूँ। हे विभो ! आज मेरे माता-पिता रुद्र लोक मे चले गये हैं, आप प्रसन्न होइए ॥३०॥ पितामह आदि भी सब चले गये हैं। भो नन्दिन् ! हे जगत् के स्वामिन् ! साक्षात् भगवान् महेश्वर के अवतीर्ण होने पर इस लोक मे मेरा जन्म सफल हो गया है ॥३१॥ हे ईश्वर ! हे नन्दिन् ! आप मेरी रक्षा करने के लिये ही सुत के स्वरूप मे अवतीर्ण हुए हैं। हे सुरेशान ! हे नन्दीश्वर ! आपके लिये मेरा प्रणाम है और बारम्बार नमस्कार है ॥३२॥ हे महान् बाहुओ वाले पुत्र ! आप देवो के भी देव और इस जगत् के गुरु हैं। हे नन्दीश ! मैंने आपको पुत्र मानकर जो कुछ आपका कीर्त्तन किया है उसे आप क्षमा कर दीजिए। आप तो समस्त सुर और असुरो के द्वारा स्तवो से स्तवन करने के योग्य हैं। हे पुत्र ! मेरे इस प्रभाषित अर्थात् कथन एव स्तवन को जो कोई भी पढ़ेगा या श्रवण करेगा अथवा ब्राह्मणो को भक्ति से श्रवण करावेगा वह मेरे ही साथ आनन्द को प्राप्त होगा। इस प्रकार से सुत को प्रणाम करके और बालक का स्तवन करके तथा बहुमान पूर्वक मुनीश्वरो को देखकर सुव्रत शिलाद बोला—हे मुनिगण ! आप सब मेरे इस महान् भाग्य को देखिये कि मेरे यज्ञाङ्गण मे अविनाशी साक्षात् प्रभु नन्दी देव अवतीर्ण हुए हैं। मेरे समान इस समय लोक मे कौन पुरुष-देव या दानव है ? अर्थात् कोई भी नहीं है। यह भगवान् नन्दी मेरे ही हित के सम्पादन करने के लिये इस यज्ञ भूमि मे समुत्पन्न हुए हैं ॥३३॥३४॥ ॥३५॥३६॥३७॥३८॥

नन्दिकेश्वर अभिषेक वर्णन

मया सह पिता हृष्टः प्रणम्य च महेश्वरम् ।
उटज स्वं जगामाशु निधिं लब्ध्वेव निर्धनः ॥१॥
यदागतोहमुटज शिलादस्य महामुने ।
तदा वै दैविक रूपं त्यक्त्वा मानुष्य मास्थितः ॥२॥
नष्टा चैव स्मृतिर्दिव्या येन केनापि कारणात् ।
मानुष्यमास्थित दृष्ट्वा पिता मे लोकपूजितः ॥३॥
विललापाति दुःखार्तः स्वजनैश्च समावृतः ।
जातकर्मादिकाश्चैव चकार मम सर्ववित् ॥४॥
शालकायनपुत्रो वै शिलादः पुत्रवत्सलः ।
उपदिष्टा हि तेनैव ऋक्शाखा यजुषस्तथा ॥५॥
सामशाखासहस्रं च साङ्गोपाङ्गं महामुने ।
आयुर्वेद धनुर्वेद गाधर्वं चाश्वलक्षणम् ॥६॥
हस्तिना चरित चैव नराणा चैव लक्षणम् ।
सपूर्ण सप्तमे वर्षे ततोथ मुनिसत्तमौ ॥७॥
मित्रावरुणनामानौ तपोयोगबलान्वितौ ।
तस्याश्रम गतौ दिव्यौ द्रष्टु मा चाज्ञया विभोः ॥८॥

इस अध्याय मे मानुष रूप मे प्राप्त हुए नन्दी रुद्र के आराधन से महान् प्रसाद को प्राप्त हुए, इसका वर्णन किया जाता है । नन्दिकेश्वर ने कहा—मेरे साथ मेरे पिता को परम हर्ष हुआ था और अत्यन्त प्रहृष्ट होकर उनने भगवान् महेश्वर को प्रणाम किया और एक निधन को किसी महान् निधि के प्राप्त होने की भाँति वह परम प्रसन्नता से अपने उटज (निवास स्थान) को शीघ्र चले गये थे ॥१॥ हे महामुने ! जिस समय मे मैं अपने पिता शिलाद के उटज (झोंपडी) मे आकर प्राप्त हुआ तो उस समय मैंने अपना दैविक रूप को त्याग दिया था और मनुष्य के रूप मे समास्थित हो गया था ॥२॥

जिस किसी अनिर्वचनीय ईश्वर की इच्छा स्वरूप कारण से मेरी वह दिव्य स्मृति भी नष्ट हो गई थी। लोकों के द्वारा वन्द्यमान मेरे पिता ने मानुष्य स्वरूप में आस्थित मुझको देखकर अत्यन्त-दुःखित होकर अपने जनों से समावृत होते हुए बहुत विलाप किया था। उस सर्व वेत्ता पिता ने मेरे जात कर्म आदि सम्पूर्ण आवश्यक सस्कार किये थे ॥३॥ ॥४॥ शालङ्कायन के पुत्र परम पुत्र वत्सल शिलाद ने यजुर्वेद तथा ऋग्वेद की शाखा का उपदेश दिया था ॥५॥ हे महामुने! सनत्कुमार! अङ्ग और उपाङ्गों के सहित सामवेद की सहस्र शाखा तथा आयुर्वेद, धनुर्वेद और अश्वों के लक्षण वाला शास्त्र एवं गन्धर्व शास्त्र की शिक्षा दी थी ॥६॥ हरितों के चरित्र तथा नरों के लक्षणों का भी उपदेश किया था। सात वर्ष के सम्पूर्ण हो जाने पर इसके अनन्तर विभु की आज्ञा से मुझे देखने के लिए उस शिलाद के आश्रम में परम श्रेष्ठ मुनि, तप और योग के बल से समन्वित अति दिव्य मित्रा वरुण नाम धारी गये थे ॥७॥८॥

ऊचतुश्च महात्मानौ मां निरीक्ष्य मुहुर्मुहुः।
तात नद्ययमल्पायुः सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥९॥
न दृष्टमेवमाश्चर्यमायुर्वर्षादितः परम्।
इत्युक्तवति विप्रेन्द्रः शिलादः पुत्रवत्सलः ॥१०॥
समालिग्य च दुःखार्तो रुरोदातीव विस्वरम्।
हा पुत्र पुत्र पुत्रेति पपात च समततः ॥११॥
अहो बलं दैवविधोर्विधातुश्चेति दुःखितः।
तस्य चार्तस्वरं श्रुत्वा तदाश्रमनिवासिनः ॥१२॥
निपेतुर्विह्वलात्यर्थं रक्षाश्चक्रुश्च मंगलम्।
तुष्टुवुश्च महादेव त्रियबकमुमापतिम् ॥१३॥
हुत्वा त्रियबकेनैव मधुनैव च संप्लुताम्।
दूर्वामयुतसंख्यातां सर्व द्रव्यसमन्विताम् ॥१४॥

उन दोनो महान् आत्मा वालो ने मुझको बार-बार देखकर कहा था—हे तात ! यह समस्त शास्त्रों के अर्थ को पूर्णतया जानने वाला शास्त्र पारगामी नन्दी अल्प आयु वाला है ॥९॥ इस वर्ष से आगे इसकी आयु नही देखी जाती है, यह बडा ही आश्चर्य की बात है। उनके इतना कहने पर पुत्र पर प्यार करने वाला विप्रेन्द्र शिलाद समालिङ्गन करके दुःख से अत्यन्त आर्त्त होते हुए बुरे स्वर के साथ अत्यन्त रुदन सा करने लगे थे। वह "हाय पुत्र, हा पुत्र" ऐसा कहकर भूमि पर गिर पडे थे ॥१०॥११॥ दैवकी विधि का और विधाता का बल बडा ही अद्भुत है, यह कहता हुआ वह बहुत ही दुःखित हुआ था। उनके इस आर्ति से परिपूर्ण, दुःख भरे शब्द का श्रवण कर उसके आश्रम के निवासी लोग भी अत्यन्त विह्वल होकर पछाड खाने लगे और मङ्गल के लिये रक्षा के उपक्रम करने लगे थे। उमा के पति त्रियम्बक महादेव की सबने स्तुति की थी ॥१२॥१३॥ सबने त्रियम्बक मन्त्र से मधु से सम्प्लुत दूर्वा का जो सभी द्रव्यो से भी युक्त थी दस हजार की सख्या मे हवन किया था ॥१४॥

पिता विगतसज्ञश्च तथा चैव पितामहः ।
विचेष्टश्च तलाशासो मृदवन्निपपात च ॥१५॥
मृत्योर्भीताहेमचिराच्छिरसा चाभिवद्य तम् ।
मृतवत्पतित साक्षात्पितर च पितामहम् ॥१६॥
प्रदक्षिणीकृत्य च त रुद्रजाप्यरतोऽभवम् ।
हृत्पुण्डरीकेसुषिरे ध्यात्वा देव त्रियम्बकम् ॥१७॥
त्र्यक्ष दशभुज शान्त पञ्चवक्त्र सदाशिवम् ।
सरितश्चान्तरे पुण्ये स्थितं मा परमेश्वरः ॥१८॥
तुष्टोऽब्रवीन्महादेवः सोमः सोमार्धभूषणः ।
वत्स नन्दिन्महाबाहो मृत्योर्भीतिः कुतस्तव ॥१९॥
मयैव प्रेषितौ विप्रौ मत्समस्त्वं न सशयः ।
वत्सैनतव देह च लौकिकं परमार्थतः ॥२०॥

नास्त्येव दैविकं दृष्टं शिलादेन पुरा तव ।
देवैश्च मुनिभिः सिद्धैर्गंधर्वैर्दानवोत्तमैः ॥२१॥
पूजितं यत्पुरा वत्स दैविक नंदिकेश्वर ।
संसारस्य स्वभावोयं सुखं दुःखं पुनः पुनः ॥२२॥

मेरे पिता संज्ञा शून्य अर्थात् बेहोश थे और इसी प्रकार पिता-मह भी चेष्टा रहित थे । यह निश्चेष्ट की भाँति बोलते थे और एक मृतक की तरह गिर पड़े थे ॥१५॥ मृत्यु से डरा हुआ मैंने तुरन्त ही शिर से उनको प्रणाम किया था जो कि साक्षात् एक मृतक की भाँति पिता और पितामह पड़े हुये थे । मैंने उनकी प्रदक्षिणा की थी और मैं फिर रुद्र के मन्त्र के जप मे निरत हो गया था । मैंने सुषिर, हृदय कमल में त्रियम्बक देव का ध्यान किया था ॥१६॥१७॥ मैंने तीन नेत्र से युक्त, दश भुजाओ वाले, परम शान्त स्वरूप, पाँच मुख वाले सदा शिव का ध्यान किया था । उस समय मे मैं सरित् के पुण्य अन्तर में स्थित था कि परमेश्वर मुझ पर प्रसन्न हुए थे ॥१८॥ महादेव ने अत्यन्त तुष्ट होकर मुझसे कहा था । महादेव चन्द्रखण्ड के भूषण वाले सोम स्वरूप थे । उन्होने मुझसे कहा—हे वत्स ! हे नन्दिन् ! तुम तो महान् बाहुओं वाले हो, तुमको मृत्यु का भय कैसे हो सकता है ? ॥१९॥ वे दोनों विप्र तो मैंने ही भेजे थे । तुम तो मेरे ही तुल्य हो, इसमे कुछ भी सशय नही है । हे वत्स ! यह तुम्हारा देह तो लौकिक है । वास्तविक शरीर तुम्हारा यह नही है । पहिले शिलाद ने तुम्हारा दैविक शरीर नही देखा है । देव, मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, दानवोत्तमो के द्वारा वन्दित पहिला तुम्हारा दैविक शरीर है । हे वत्स नन्दिकेश्वर ! यह तो ससार का स्व-भाव है कि पुनः पुनः सुख और दु ख होता है ॥२०॥२१॥२२॥

नृणां योनिपरित्यागः सर्वथैव विवेकिनः ।
एवमुक्त्वा तु मां साक्षात्सर्वदेवमहेश्वरः ॥२३॥

करांभ्यां सुशुभाभ्यां च उभाभ्यां परमेश्वरः ।
पस्पर्श भगवान् रुद्रः परमार्तिहरो हरः ॥२४॥
उवाच च महादेवस्तुष्टात्मा वृषभध्वजः ।
निरीक्ष्य गणपांश्चैव देवीं हिमवतः सुताम् ॥२५॥
समालोक्य च तुष्टात्मा महादेवः सुरेश्वरः ।
अजरो जरया त्यक्तो नित्यं दुःखविवर्जितः ॥२६॥
अक्षयश्चाव्ययश्चैव सपिता ससुहृज्जनः ।
ममेष्टो गणपश्चैव मद्वीर्यो मत्पराक्रमः ॥२७॥
इष्टो मम सदा चैव मम पार्श्वगतः सदा ।
मद्बलश्चैव भविता महायोगबलान्वितः ॥२८॥
एवमुक्त्वा च मां देवो भगवान् सगणस्तदा ।
कुशेशयमयीं मालां समुन्मुच्यात्मनस्तदा ॥२९॥

नरो का योनि परित्याग होता है और विवेकी का सभी प्रकार से हुआ करता है । सर्वदेव महेश्वर भगवान् ने साक्षात् इस प्रकार से मुझसे कहकर फिर परमेश्वर ने अपने दोनों परम शुभ करो से मेरे शरीर को स्पर्श किया था जो कि हर भगवान् रुद्र परम आर्त्ति के हरण करने वाले हैं ॥२३॥२४॥ फिर परम सन्तुष्ट एव प्रसन्न होते हुए वृषभ-ध्वज महादेव ने अपने गणो के स्वामियो को तथा हिमवान् की सुता जगदम्बा की ओर देखकर कहा था ॥२५॥ परम प्रसन्न आत्मा वाले सुरो के ईश्वर महादेव ने भली-भाँति अवलोकन करते हुए कहा था, तुम अजर हो और जरा (वार्धक्य) से पूर्णतया त्यक्त हो तथा नित्य ही दु खो से विशेष रूप से रहित हो ॥२६॥ तुम क्षय से रहित, नाश से शून्य हो । अपने पिता के तथा अपने सुहृज्जनो के सहित मेरे परम इष्ट अर्थात् प्रिय हो । मेरे गणप, मेरे जैसे वीर्य वाले और मेरे ही समान पराक्रम वाले हो ॥२७॥ तुम मेरे सर्वदा प्रिय हो और सदा मेरे ही पार्श्वगत हो । तुम मेरे ही तुल्य बल वाले और महान् योग बल से समन्वित होओगे ॥२८॥ इस प्रकार से भगवान् गणो के सहित महादेव

ने मुझसे कहकर उस समय में अपनी कुशेशयमयी माला को खोलकर महान् तेजस्वी वृषभध्वज देव ने उसको मेरे बाँध दी थी ।।२६।।

आबबंध महातेजा मम देवो वृषध्वजः ।
तयाहं मालया जातः शुभया कण्ठसक्तया ।।३०।।
त्र्यक्षो दशभुजश्चैव द्वितीय इव शङ्करः।
तत एव समादाय हस्तेन परमेश्वरः ।।३१।।
उवाच ब्रूहि किं तेद्य ददामि वरमुत्तमम्।
ततो जटाश्रितं वारि गृहीत्वा चातिनिर्मलम् ।।३२।।
उक्ता नदी भवस्वेति उत्ससर्ज वृषध्वजः ।
ततः सा दिव्यतोया च पूर्णासितजला शुभा ।।३३।।
पद्मोत्पलवनोपेता प्रावर्तत महानदी ।
तामाह च महादेवो नदीं परम शोभनाम् ।।३४।।
यस्माज्जटोदकादेव प्रवृत्ता त्वं महानदी ।
तस्माज्जटोदका पुण्या भविष्यसि सरिद्वरा ।।३५।।

मेरे कण्ठ मे श्रासक्त उस शुभ माला से मैं उसी समय त्रिनेत्र, दस भुजाओ से समन्वित द्वितीय शङ्कर के ही समान हो गया था। उसके अनन्तर ही परमेश्वर के हाथ से मुझे ले जाकर कहा था—बोल, आज मैं तुझे उत्तम वर प्रदान करता हू। इसके उपरान्त जटाओ मे रहने वाला अत्यन्त निर्मल जल उन्होने ग्रहण किया था ।।३०।।३१।।३२।। नदी हो जाओ, यह कहकर वृषभ ध्वज ने उसका उत्सर्ग कर दिया था। इसके पश्चात् वह दिव्य जल वाली, पूर्णतया श्वेत जल से युक्त, परम शुभ तथा पद्म एव उत्पलो से उपेत महानदी प्रवृत्त हो गई थी और उस परम शोभन नदी से महादेव ने कहा था ।।३३।।३४।। क्योंकि महानदी तुझको मैंने एक ही जटा से प्रवृत्त किया है इस कारण से तू परम पुण्यमयी सरिताओ मे अति श्रेष्ठ जटोदका हो जायेगी। ।।३५।।

त्वयि स्नात्वा नरः कश्चित्सर्वं पापैः प्रमुच्यते ।
ततो देव्या महादेवः शिलादतनयं प्रभुः ॥३६॥
पुनस्तेऽयमिति प्रोच्य पादयोः संन्यपातयत् ।
सा मामाघ्राय शिरसि पाणिभ्यां परिमार्जती ॥३७॥
पुत्रप्रेम्णाऽभ्यषिश्चच्च स्रोतोभिस्तनयैस्त्रिभिः ।
पयसा शंखगौरेण देवदेवं निरीक्ष्य सा ॥३८॥
तानि स्रोतांसि त्रीण्यस्याः स्रोतस्विन्योऽभवंस्तदा ।
नदी त्रिस्रोतसं देवो भगवानवदद्भवः ॥३९॥
त्रिस्रोतसं नदी दृष्ट्वा वृषः परमहर्षितः ।
ननाद नादात्तस्माच्च सरिदन्या ततोऽभवत् ॥४०॥
वृषध्वनिरिती ख्याता देवदेवेन सा नदी ।
जाम्बूनदमयं चित्रं सर्वरत्नमयं शुभम् ॥४१॥
स्व देवश्चाद्भुतं दिव्यं निर्मितं विश्वकर्मणा ।
मुकुटं चाबबन्धेशो मम मूर्ध्नि वृषध्वजः ॥४२॥

गया था। देवदेव ने उस नदी को 'वृषध्वनि'—इस नाम से सुशोभित किया था। इसका रूप सुवर्णमय तथा विचित्र एवं शुभ रत्नों से परिपूर्ण था ॥४०॥४१॥ फिर वृषध्वज देव ने अपना अत्यन्त अद्भुत एवं दिव्य तथा विश्वकर्मा के द्वारा निर्माण किया हुआ मुकुट मेरे मस्तक पर बाँध दिया था ॥४२॥

कुण्डले च शुभे दिव्ये वज्रवैडूर्यभूषिते ।
आबबन्ध महादेव. स्वयमेव महेश्वर. ॥४३॥
मा तथाभ्यर्चित व्योम्नि दृष्ट्वा मेघै प्रभाकर ।
मेघाम्भसा चाभ्यषिचच्छिलादनमथो मुने ॥४४॥
तस्याभिषिक्तस्य तदा प्रवृत्ता स्रोतसा भृशम् ।
यस्मात्सुवर्णान्नि सृत्य नद्यं पा सप्रवर्तते ॥४५॥
स्वर्णोदकेति तामाह देवदेवस्त्रियम्बक: ।
जाम्बूनदमयाद्यस्माद्द्वितीया मुकुटाच्छुभा ॥४६॥
प्रावर्तत नदी पुण्या ऊचुर्जाम्बूनदीति ताम् ।
एतत्पञ्चनद नाम जप्येश्वरसमीपगम् ॥४७॥
य: पञ्चनदमासाद्य स्नात्वा जप्येश्वरेश्वरम् ।
पूजयेच्छिवसायुज्य प्रयात्येव न सशय: ॥४८॥
अथ देवो महादेव सर्वभूतपतिर्भव. ।
देवीमुवाच शर्वाणीमुमा गिरिसुतामजाम् ॥४९॥
देवि नदीश्वर देवमभिषिचामि भूतपम् ।
गणेन्द्र व्याहरिष्यामि किं वा त्व मन्यसेऽव्यये ॥५०॥

महादेव महेश्वर ने स्वय ही परम शुभ एव दिव्य दो कुण्डल जो कि हीरा और वैडूर्य रत्नों से विभूषित थे मेरे बाध दिये थे ॥४३॥ मुझको इस प्रकार से अभ्यर्चित आकाश म देखकर प्रभाकर ने मेघो के द्वारा मेघ जल से हे मुने ! इसके अनन्तर शिलादन का अभिषिञ्चन किया था ॥४४॥ उस समय में उसके अभिषेक के स्रोत से जो नि

अत्यन्त आधिक्य से प्रवहन कर रहा था जिसके सुवर्ण से निकलकर यह नदी प्रवृत्त हो जाती है ॥४५॥ देवों के देव त्रियम्बक भगवान् उसको स्वर्णोदका, इस शुभ नाम से कहा करते थे। जाम्बूनदमय जिस मुकुट से दूसरी एक शुभ नदी प्रवृत्त हुई थी उसको परम पवित्र जाम्बू नदी इस नाम से कहा गया था। इस प्रकार से इन पाँच नदियों का समुदाय जप्येश्वर के समीप मे रहने वाला था ॥४६॥४७॥ जो इस पञ्च नद के समीप मे प्राप्त होकर इनमे स्नान करता है और जप्येश्वर का सविधि अर्चन करता है वह निश्चय ही शिव के सायुज्य को प्राप्त होता है, इसमे कुछ भी सशय नही है ॥४८॥ इसके अनन्तर समस्त भूतो के स्वामी भव देव महादेव गिरिजा अजा शर्वाणि उमा देवी से बोले—॥४६॥ हे देवि ! मैं भूतप इस नन्दीश्वर देव का अभिषिञ्चन करता हूँ और इसको गणेन्द्र कहूगा। हे अव्यये ! आप क्या इसका अनुमोदन करती है ॥५०॥

तस्य तद्वचन श्रुत्वा भवानी हर्षितानना ।
स्मयंति वरदं प्राह भव भूतपति पतिम् ॥५१॥
सर्वलोकाधिपत्यं च गणेशत्वं तथैव च ।
दातुमर्हसि देवेश शैलादिस्तनयो मम ॥५२॥
ततः स भगवाञ्शर्वः सर्वलोकेश्वरेश्वरः ।
सस्मार गणपान् दिव्यान्देवदेवो वृषध्वजः ॥५३॥

श्री भगवान महादेव के इस वचन का श्रवण करके भवानी परम हर्ष से प्रफुल्लित मुख वाली होती हुई मुसकराकर वरदान प्रदान करने वाले भूत पति भव अपने स्वामी से बोली ॥५१॥ हे देवेश ! समस्त लोको का आधिपत्य और गणेशत्व इसे आप प्रदान करने के योग्य होते हैं। यह शैलादि मेरा तनय है ॥५२॥ इसके अनन्तर सब लोको के ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान शर्व और देवों के भी देव वृषध्वज ने दिव्य गणपो का स्मरण किया था ॥५३॥

शिव का विराट रूप कथन

सूत सुव्यक्तमखिलं कथितं शंकरस्य तु ।
सर्वात्मभावं रुद्रस्य स्वरूपं वक्तुमर्हसि ॥१॥
भूर्भुवः स्वर्महश्चैव जनः साक्षात्तपस्तथा ।
सत्यलोकश्च पातालं नरकार्णवकोटयः ॥२॥
तारकाग्रहसोमार्का ध्रुवः सप्तर्षयस्तथा ।
वैमानिकास्तथान्ये च तिष्ठंत्यस्य प्रसादतः ॥३॥
अनेन निर्मितास्त्वेवं तदात्मानो द्विजर्षभाः ।
समष्टिरूपः सर्वात्मा संस्थितः सर्वदा शिवः ॥४॥
सर्वात्मानं महात्मानं महादेवं महेश्वरम् ।
न विजानंति संमूढा मायया तस्य मोहिताः ॥५॥
तस्य देवस्य रुद्रस्य शरीरं वै जगत्त्रयम् ।
तस्मात्प्रणम्य तं वक्ष्ये जगतां निर्णयं शुभम् ॥६॥
पुरा वः कथित सर्वं मयाण्डस्य यथा कृतिः ।
भुवनानां स्वरूपं च ब्रह्माण्डे कथयाम्यहम् ॥७॥

महेश्वर महादेव को उसकी सम्मोहनी माया से मोहित होने वाले मूढ लोग उसको नही जान पाते हैं ।५।। उस महामायामय रुद्र देव का यह त्रिभुवन ही शरीर है । इस कारण से समष्टि स्वरूप इस जगत्स्वा-त्मक शिव के शरीर को प्रणाम करके जगतो के शुभ विभाग का वर्णन करता हू ।।६।। मैने पहिले आप लोगो के सामने इस ब्रह्माण्ड की जैसे उत्पत्ति हुई थी वह सब बतला दी है । अब उस ब्रह्माण्ड मे समस्त भुवनो का स्वरूप बतलाता हू ।।७।।

पृथिवीचांतरिक्ष च स्वर्महर्जन एव च ।
तपः सत्यं च सप्तैते लोकास्त्वडोद्भवाः शुभाः ।।८।।
अधस्तादत्र चैतेषां द्विजाः सप्त तलानि तु ।
महातलादयस्तेषां अधस्तान्नरकाः क्रमात् ।।९।।
महातलं हेमतलं सर्वरत्नोपशोभितम् ।
प्रासादैश्च विचित्रैश्च भव स्यायतनैस्तथा ।।१०।।
अनतेन च संयुक्तं मुचुकुंदेन धीमता ।
नृपेण वलिना चैव पातालस्वर्गवासिना ।।११।।
शैल रसातलं विप्राः शार्कर हि तलातलम् ।
पीत सुतलमित्युक्त वितलं विद्रुमप्रभम् ।।१२।।
सित हि अतलं तच्च तलं यच्च सितेतरम् ।
क्ष्मायास्तु यावद्विस्तारो ह्यधस्तेषा च सुव्रताः ।।१३।।
तलाना चैव सर्वेषा तावत्सख्या समाहिता ।
सहस्रयोजनं व्योम दशसाहस्रमेव च ।।१४।।

पृथिवी, अन्तरिक्ष, स्वर्लोक, महर्लोक, जन लोक, तपलोक और सत्य लोक आदि ये ऊपर रहने वाले सात लोक परम शुभ हैं और इसी ब्रह्माण्ड से उद्भव प्राप्त करने वाले हैं ।।८।। इस पृथ्वी तल के नीचे महातल आदि सात तल हैं और उनके नीचे क्रम से समस्त नरक हैं ।।९।। महातल का धरातल हेम के समान तल वाला है और समस्त प्रकार के रत्नो से यह उपशोभित है तथा भगवान् भव के विचित्र प्रास-

तन एव प्रासादो से वह युक्त है ॥१०॥ वहा भगवान् अनन्त विराजमान रहते हैं और धीमान् मुचुकुन्द एव राजा बलि पाताल रूपी स्वर्ग के निवास करने वाले से वह सयुक्त है ॥११॥ हे विप्रगण ! रसातल तो सम्पूर्ण शैलमय है और तलातल सिकता से परिपूर्ण होता है । सुतल पीत वर्ण का है तथा वितल लोक विद्रुम के समान प्रभा वाला है ॥१२॥ अतल श्वेत वर्ण का है और तल लोक सित वर्ण से भिन्न वर्ण वाला है अर्थात् कृष्ण वर्ण है । हे सुव्रत वालो ! भूमि का जितना विस्तार है नीचे के भाग मे उन समस्त तलो की सख्या भी उतनी ही समाहित होती है । अब तलों का अन्तर्वर्त्ती व्योम का प्रमाण बताया जाता है, सहस्र योजन व्योम है और दश सहस्र भी है ॥१३॥१४॥

लक्ष सप्तसहस्र हि तलाना सघनस्य तु ।
व्योम्न. प्रमाण मूल तु त्रिंशत्साहस्रकेण तु ॥१५॥
सुवर्णेन मुनिश्रेष्ठास्तथा वासुकिना शुभम् ।
रसातलमिति ख्यात तथान्यैश्च निषेवितम् ॥१६॥
विरोचनहिरण्याक्षनरकाद्यैश्च सेवितम् ।
तलातलमिति ख्यात सर्वशोभासमन्वितम् ॥१७॥
वैनायकादिभिश्चैव कालनेमिपुरोगमैः ।
पूर्वदेवै. समाकीर्ण सुतल च तथापरै. ॥१८॥
वितल दानवाद्यैश्च तारकाग्निमुखैस्तथा ।
महात काद्यैर्नागैश्च प्रह्लादेनासुरेण च ॥१९॥
वितल चात्र विख्यात कबलाश्वनिषेवितम् ।
महाकुम्भेन वीरेण हयग्रीवेण धीमता ॥२०॥
शकुकर्णेन सभिन्न तथा नमुचिपूर्वकै ।
तथान्यैर्विविधैर्वीरैस्तल चैव सुशोभितम् ॥२१॥
तलेषु तेषु सर्वेषु चाव्यया परमेश्वरः ।
स्कन्देन नदिना सार्धं गणपै सर्वतो वृत ॥२२॥

तलानां चैव सर्वेषामूर्ध्वतः सप्तसप्तमाः ।
क्ष्मातलनि धरा चापि सप्तधा कथयामि वः ।।२३।।

धन से उपलक्षित आकाश का महालतादि चारो का सहस्र योजन से आरम्भ करके लक्ष तक होता है । सात सहस्रान्त प्रमाण फिर मूलभूत तलादि तीन तीस सहस्र से व्योम प्रमाण से युक्त होने है । हे मुनिश्रेष्ठो ! सुवर्ण वासुकि नाग से वह शुभ लोक रसातल, इस नाम से ख्यात है और वह अन्यो के द्वारा भी सेवित होता हैं ।।१५।।१६।। जो विरोचन हिरण्याक्ष और नरकासुर आदि से सेवित है वह सम्पूर्ण शोभा से समन्वित तलातल इस नाम से प्रसिद्ध है ।।१७।। कालनेमि पुरोगम वैनायक प्रभृति पूर्व देवो से घिरा हुआ सुतल लोक होता है तथा उसमे ऊपर लोग भी निवास किया करते हैं ।।१८।। तारकाग्नि प्रमुख दानवादि जिसमे रहते हैं वह वितल लोक कहा जाता है । महान्तकारि नाग और असुर प्रह्लाद भी जिसमे निवास किया करते हैं और यह विख्यात वितल कम्बलाश्व के द्वारा भी निषेवित होता है । वीर महा कुम्भ तथा धीमान् हयग्रीव के द्वारा एव शंकुकर्ण और नमुचि पूर्वक अन्य अनेक वीरो के द्वारा सुशोभित लोक तल लोक के नाम से विख्यात है ।।१९।। ।।२०।।२१।। इन सम्पूर्ण तलो मे परमेश्वर जगदम्बा के सहित स्वामि कार्त्तिकेय और नन्दी के साथ एव गणपो से युक्त होते हुए सभी ओर वृत रहते है ।।२२।। इन समस्त सात तलो के ऊपर हे साधु श्रेष्ठो ! सात धरातल हैं जिनको मैं अभी आपको बतलाता हू । अर्थात् वे सात प्रकार के द्वीप होते हैं ।।२३।।

❂

सप्त द्वीप निरूपण

सप्त द्वीपा तथा पृथ्वी नदीपर्वतसंकुला ।
समुद्रैः सप्तभिश्चैव सर्वतः समलंकृता ॥१॥
जम्बूः प्लक्षः शाल्मलिश्च कुशः क्रौञ्चस्तथैव च ।
शाकः पुष्करनामा च द्वीपास्त्वभ्यन्तरे क्रमात् ॥२॥
सप्तद्वीपेषु सर्वेषु सांबः सर्वगणैर्वृतः ।
नानावेषधरो भूत्वा सान्निध्यं कुरुते हरः ॥३॥
क्षारोदेक्षुरसोदश्च सुरोदश्च घृतोदधिः ।
दध्यर्णवश्च क्षीरोदः स्वादूदश्चाप्यनुक्रमात् ॥४॥
समुद्रेष्विह सर्वेषु सर्वदा सगणः शिवः ।
जलरूपी भवः श्रीमान् क्रीडते चोर्मिबाहुभिः ॥५॥
क्षीरार्णवामृतमिव सदा क्षीरार्णवे हरिः ।
शेते शिवज्ञानधिया साक्षाद्वै योगनिद्रया ॥६॥
यदा प्रबुद्धो भगवान्प्रबुद्धमखिलं जगत् ।
यदा सुप्तस्तदा सुप्तं तन्मयं च चराचरम् ॥७॥

इस अध्याय में भूद्वीप, सागर और प्रियव्रत के आत्मजाधीश एवं उनके विभाग का वर्णन किया जाता है। सूत जी ने कहा—यह पृथ्वी सात द्वीपों से युक्त है। इसमें बहुत सी नदियाँ तथा पर्वत भी हैं और यह सात समुद्रों से सभी ओर से विभूषित होती हैं ॥१॥ इसमें जम्बूद्वीप, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर नामो वाले क्रम से अन्दर सात द्वीप होते हैं ॥२॥ इन समस्त सात द्वीपो में अपने समस्त गणो संयुत भगवान् साम्ब हर अनेक वेषों को धारण करके सान्निध्य किया करते हैं ॥३॥ सात समुद्रो के नाम क्षारोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृतोद्धि, दध्यर्णव, क्षीरोद, स्वादूद इस अनुक्रम से हैं ॥४॥ इन सम्पूर्ण समुद्रो मे अपने गणो के भगवान् शिव सर्वदा विराजमान रहा करते हैं और श्रीमान् जलरूप वाले भव तरङ्ग रूपी बाहुओ से

क्रीडा किया करते हैं ।।५।। हरि भगवान् क्षीर सागर में क्षीरार्णव के अमृत की भाँति सदा साक्षात् शिव ज्ञान की वृद्धि वाली योग निद्रा से शयन किया करते हैं ।।६।। जिस समय मे भगवान् प्रबुद्ध (जागे हुए) होते हैं तो उस समय यह सम्पूर्ण जगत् भी प्रबुद्ध रहा करता है। जब भगवान् सुपुप्ति की अवस्था मे रहते हैं उस समय मे यह समस्त चराचरमय जगत् सुपुप्त रहा करता है ।।७।।

तेनैव सृष्टमखिल धृतं रक्षितमेव च ।
संहृतं देवदेवस्य प्रसादात्परमेष्ठिनः ।।८।।
सुषेणा इति विख्याता यजते पुरुषर्षभम् ।
अनिरुद्धं मुनिश्रेष्ठाः शङ्खचक्रगदाधरम् ।।९।।
ये चानिरुद्धं पुरुषं ध्यायंत्यात्मविदां वराः ।
नारायणसमाः सर्वे सर्वसंपत्समन्विताः ।।१०।।
सनंदनश्च भगवान् सनकश्च सनातनः ।
वालखिल्याश्च सिद्धाश्च मित्रावरुणकौ तथा ।।११।।
यजति सततं तत्र विश्वस्य प्रभवं हरिम् ।
सप्तद्वीपेषु तिष्ठति नानाशृङ्गा महोदयाः ।।१२।।
आसमुद्रायताः केचिद्गिरयो गह्वरैस्तथा ।
धरायाः पतयश्चासन् बहवः कालगौरवात् ।।१३।।
सामर्थ्यात्परमेशानाः क्रौञ्चारेर्जनकात्प्रभोः ।
म वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ।।१४।।

उन्ही भगवान् के द्वारा यह समस्त जगत् सृजन को प्राप्त हुआ है अर्थात् रच गया है, अखिल जगत् को उन्ही ने धारण किया है तथा उन्ही ने इसकी रक्षा की है और देवो के भी देव परमेष्ठी के प्रसाद से इस सबका सहार भी उन्ही ने किया हैं ।।८।। जो पुरुषो मे परम श्रेष्ठ का यजन किया करते हैं वे 'सुषेण'—इस नाम से विख्यात हुए हैं। मुनियो मे श्रेष्ठ शङ्ख, चक्र और गदा को धारण करने वाले अनिरुद्ध

का यजन करते हैं। जो आत्मवेत्ताओ श्रेष्ठ पुरुष अनिरुद्ध का ध्यान किया करते हैं वे सब सवप्रकार की सम्पत्ति से समन्वित होते हुए नारायण के ही तुल्य हुआ करते है ॥६॥१०॥ सनन्दन, भगवान् सनक और सनातन तथा वालखिल्य ऋषिगण, सिद्धगण और मित्र वरुणक वहा पर इस विश्व के कारण स्वरूप भगवान् हरि का यजन करते हैं। सातो द्वीपों मे अनेक भाँति की शिखरो से युक्त, महान् उदय वाले और समुद्र पर्यन्त फैले हुए लम्बे-चौडे गिरि गुफाओ के सहित स्थित रहते हैं जो इस धरा के बहुत से काल के गौरव से पति थे ॥११॥१२॥१३॥ ये पर्वत स्वामि कार्त्तिकेय के जन्म देने वाले प्रभु शिव की शक्ति से सब भाँति समर्थ थे जो कि अतीत और आगे आने वाले सभी मन्वन्तरों मे यहाँ पर स्थित रहते है ॥१४॥

प्रवक्ष्यामि धरेशान् वो वक्ष्ये स्वायंभुवेन्तरे।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेषु च ॥१५॥
तुल्याभिमानिनश्चैव सर्वे तुल्यप्रयोजनाः।
स्वायंभुवस्य च मनोः पौत्रास्त्वासन्महा बलाः ॥१६॥
प्रियव्रतात्मजा वीरास्ते दशेह प्रकीर्तिताः।
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः ॥१७॥
ज्योतिष्मान्द्युतिमान् हव्यः सवनः पुत्र एव च।
प्रियव्रतोऽभ्यषिंचतान् सप्त सप्तसु पार्थिवान् ॥१८॥
जंबूद्वीपेश्वरं चक्रे आग्नीध्र सुमहाबलम्।
प्लक्षद्वीपेश्वर श्चापि तेन मेधातिथिः कृतः ॥१९॥
शाल्मलेश्च वपुष्मंतं राजानमभिषिक्तवान्।
ज्योतिष्मत कुशद्वीपे राजानं कृतवान्नृपः ॥२०॥
द्युतिमंतं च राजान क्रौंचद्वीपे समादिशत्।
शाकद्वीपेश्वरं चापि हव्यं चक्रे प्रियव्रतः ॥२१॥

अब मैं आपको स्वायम्भुव मन्वन्तर मे जो भी इस धरा के ईश हैं उन्हे बताता हू जो कि सभी अतीत अर्थात् व्यतीत हुए और अनागत

मन्वन्तरों मे रहा करते हैं ॥१५॥ ये सभी समान अभिमान वाले थे और इन सभी का प्रयोजन भी था, ये महान बलवान् और स्वायम्भुव मनु के पौत्र थे ॥१६॥ वे सब दश वीर यहाँ पर प्रिय व्रत राजा के पुत्र थे जो कि कहे गये हैं। आग्नीध्र, अग्निवाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान् द्युतिमान्, हव्य, सवन और पुत्र ये उनके दश नाम हैं ॥१७॥ ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, सवन और पुत्र इन सात पार्थिवों का प्रिय व्रत ने सातों द्वीपों मे अभिषेक किया था ॥१८॥ सुन्दर और महान् बल वाले आग्नीध्र को जम्बू द्वीप का स्वामी किया था। मेधा तिथि को प्लक्षद्वीप का अधि पति उसने बना दिया था ॥१९॥ वपुष्मान् को शाल्मलि द्वीप का राजा बनाया था। राजा ने ज्योतिष्मान् को कुश द्वीप मे राजा बनाया था ॥२०॥ द्युतिमान् का क्रौञ्च द्वीप मे राज्याभिषेक किया था। प्रिय व्रत शाक द्वीप मे हव्य को राज्याधिपति किया था ॥२१॥

पुष्कराधिपतिं चक्रे सवनं चापि सुव्रताः।
पुष्करे सवनस्यापि महावीतः सुतोऽभवत् ॥२२॥
धातकी चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ।
महावीतं स्मृतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ॥२३॥
नाम्ना तु धातकेश्चैव धातकीखंडमुच्यते।
हव्योप्यजनयत्पुत्राञ्छाकद्वीपेश्वरः प्रभुः ॥२४॥
जलदं च कुमारं च सुकुमारं मणीचकम्।
कुसुमोत्तरमोदाकौ सप्तमस्तु महाद्रुमः ॥२५॥
जलदं जलदस्याथ वर्षं प्रथममुच्यते।
कुमारस्य तु कौमारं द्वितीयं परिकीर्तितम् ॥२६॥
सुकुमारं तृतीयं तु सुकुमारस्य कीर्त्यते।
मणीचकं चतुर्थं तु मणीचकमिहोच्यते ॥२७॥
कुसुमोत्तरस्य वै वर्षं पञ्चमं कुसुमोत्तरम्।
मोदकं चापि मोदाकेर्वर्षं षष्ठं प्रकीर्तितम् ॥२८॥

हे सुव्रतवालो ! सवन को पुष्कर द्वीप का अधिपति नियुक्त किया था। पुष्कर द्वीप में सवन का महावीत पुत्र हुआ था और घात की भी पुत्र हुआ था। ये दोनो पुत्र पुत्र वालो के परम श्रेष्ठ पुत्र थे। महावीत वर्ष कहा गया है जो कि उस महान् आत्मा वाले के नाम से हुआ था। ॥२२॥२३॥ घातकी के नाम से घातकी खण्ड कहा जाता है। शाक द्वीप के अधिपति हव्य ने भी पुत्रो का जन्म दिया था। उन पुत्रों के नाम जलद, कुमार, सुकुमार, मणीचक, कुसुमोत्तर और मोदाकी तथा सातवाँ महा द्रुम नाम वाला था ॥२४॥२५॥ जलद का अलद प्रथम वर्ष कहा जाता है और कुमार का कौमार द्वितीय कहा गया है ॥२६॥ सुकुमार का तीसरा सुकुमार कहा जाता है। मणीचक चौथा है जो माणीचक नाम से कहलाता है ॥२७॥ कुसुमोत्तर का पाचवाँ वर्ष कुसुतोत्तर है और मोदाकि का मोदक नाम वाला षष्ठ वर्ष कहा गया है ॥२८॥

महाद्रुमस्य नाम्ना तु सप्तमं तन्महाद्रुमम्।
तेषां तु नामभि स्तानि सप्त वर्षाणि तत्र वै ॥२९॥
क्रौंचद्वीपेश्वरस्यापि पुत्रा द्युतिमतस्तु वै।
कुशलो मनुगश्चोष्णः पीवरश्चाधकारकः ॥३०॥
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सुता द्युतिमतस्तु वै।
तेषां स्वनामभिर्देशा. क्रौंचद्वीपाश्रयाः शुभाः ॥३१॥
कुशलदेशः कुशलो मनुगस्य मनोनुगः।
उष्णस्योष्णः स्मृतो देश. पीवर पीवरस्य च ॥३२॥
अंधकारस्य कथितो देशो नाम्नाध कारक.।
मुनेर्देशो मुनिः प्रोक्तो दुन्दुभेर्दुंदुभिः स्मृतः ॥३३॥
एते जनपदाः सप्त क्रौंचद्वीपेषु भास्वरा.।
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्त चासन्महौजसः ॥३४॥
उद्भिदो वेणुमाश्चैव द्वैरथो लवणो धृति॰।
षष्ठः प्रभाकरश्चापि सप्तमः कपिलः स्मृतः ॥३५॥

महाद्रुम के नाम से सप्तम महाद्रुम है। उन के नामों से ये सात वर्ष वहाँ पर होते हैं ॥२९॥ क्रौञ्च द्वीप के स्वामी के जिसका नाम द्युतिमान है पुत्र हुए हैं। द्युतिमान् के पुत्रों के नाम कुशल, मनुग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि दुन्दुभि ये नाम थे। उन सबके नामों से क्रौञ्च द्वीप के आश्रम में होने वाले शुभ देश थे ॥३०॥३१॥ कुशल के देश का नाम कुशल था, मनुग के देश का नाम मनोनुग था। उष्ण के नाम से उष्ण देश था और पीवर का देश भी पीवर इस नाम से कहा गया है ॥३२॥ अन्धकार के देश का नाम अन्धकारक कहा गया था। मुनि के देश का नाम मुनि और दुन्दुभि के देश का नाम भी दुन्दुभि था ॥३३॥ इतने ये सात देश परम प्रकाशयुक्त क्रौञ्च द्वीपों में थे। कुश द्वीप में ज्योतिष्मान् के सात महान् ओज वाले पुत्र हुए थे ॥३४॥ उनके नाम उद्भिद, वेणुमान्, द्वैरथ, लवण, धृति, षष्ठ प्रभाकर और सातवाँ कपिल नाम धारी था ॥३५॥

उद्भिद प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमंडलम्।
तृतीयं द्वैरथं चैव चतुर्थं लवणं स्मृतम् ॥३६॥
पचमं धृतिमत्षष्ठं प्रभाकरमनुत्तमम्।
सप्तमं कपिलं नाम कपिलस्य प्रकीर्तितम् ॥३७॥
शाल्मलस्येश्वरा सप्त सुतास्ते वै वपुष्मतः।
श्वेतश्च हरिश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा ॥३८॥
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभ. सप्तमस्तथा।
श्वेतस्य देश. श्वेतस्तु हरितस्य च हारित. ॥३९॥
जीमूतस्य च जीमूतो रोहितस्य च रोहित.।
वैद्युतो वैद्युतस्यापि मानसस्य च मानसः ॥४०॥
सुप्रभः सुप्रभस्यापि सप्त वै देशलाञ्छका.।
प्लक्षद्वीपे तु वक्ष्यामि जम्बूद्वीपादनन्तरम् ॥४१॥
सप्त मेधातिथे. पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरा नृपाः।
ज्येष्ठः शान्तभयस्तेषा सप्तवर्षाणि तानि वै ॥४२॥

उद्भिद प्रथम वर्ष था और दूसरा वेणुमण्डल नाम वाला था। इंरथ तीसरा और चतुर्थ लवण कहा गया है ॥३६॥ धृतिमत् पाँचवा तथा छटा अत्युत्तम प्रभाकर था। कपिल का सातवाँ कपिल नाम से ही कहा गया है ॥३७॥ शाल्मलि द्वीप के अधिपति वपुष्मान् के भी सात पुत्र थे। उनके नाम श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सप्तम सुप्रभ था। श्वेत के देश का नाम श्वेत ही था और हरित के देश का नाम हरित था ॥३८॥३९॥ जीमूत का जीमूत तथा रोहित के देश का नाम रोहित था। वैद्युत का वैद्युत और मानस का मानस नाम वाला देश था ॥४०॥ सुप्रभ का सुप्रभ देश था। ये सात देश लाञ्छक हुए थे। अर्थात् अपने नामों से ही देशों के नाम रखने वाले थे। अब जम्बू द्वीप के अनन्तर प्लक्षद्वीप के विषय में बतलाऊँगा ॥४१॥ प्लक्षद्वीप के स्वामी राजा मेधातिथि के सात पुत्र थे। उनमें सबसे बड़ा शान्तभय था। वे भी सात वर्ष हैं ॥४२॥

तस्माच्छांतभयाच्चैव शिशिरस्तु सुखोदयः।
आनन्दश्च शिवश्चैव क्षेमकश्च ध्रुवस्तथा ॥४३॥

तानि तेषां तु नामानि सप्तवर्षाणि भागशः।
निवेशितानि तैस्तानि पूर्वं स्वाय भुवेन्तरे ॥४४॥

मेधातिथेस्तु पुत्रैस्तैः प्लक्षद्वीपनिवासिभिः।
वर्णाश्रमाचारयुताः प्रजास्तत्र निवेशिताः ॥४५॥

प्लक्षद्वीपादिवर्षेषु शाकद्वीपांतिकेषु वै।
ज्ञेयः पंचसु धर्मो वै वर्णाश्रमविभागशः ॥४६॥

सुखमायुः स्वरूपं च बलं धर्मो द्विजोत्तमाः।
पचस्वेतेषु द्वीपेषु सर्वसाधारणं स्मृतम् ॥४७॥

रुद्रार्चनरता नित्यं महेश्वरपरायणाः।
अन्ये च पुष्करद्वीपे प्रजाताश्च प्रजेश्वराः ॥४८॥

प्रजापतेश्च रुद्रस्य भावामृतसुखोत्कटाः ॥४९॥

उस शान्तमय से शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक, ध्रुव थे। ये उनके नाम हैं। उन्होंने स्वायम्भुव मन्वन्तर मे पहिले वे सात वर्ष निवेशित किये थे ॥४३॥४४॥ इस द्वीप मे निवास करने वाले मेधातिथि के उन पुत्रो ने वहाँ पर वर्णों और आश्रमो के आधार से समन्वित प्रजा निवेशित की थी ॥४५॥ इस द्वीपादि वर्षों मे और शाक द्वीपान्तिको मे इन पाँचो के वर्णाश्रम के विभाग से धर्म को जानना चाहिये ॥४६॥ हे द्विजोत्तमो! इन पाँचो द्वीपो मे सुख, आयु, स्वरूप बल और धर्म सबमे साधारण रूप वाला था ॥४७॥ उस पुष्कर द्वीप मे अन्य प्रजात और प्रजेश्वर नित्य ही रुद्र के अर्चन मे रत रहने वाले तथा महेश्वर की भक्ति मे परायण थे ॥४८॥ प्रजापति रुद्र के भावामृत से उत्कट सुख वाले थे ॥४९॥

भारतवर्ष वर्णन

आग्नीध्रं ज्येष्ठदायाद काम्यपुत्रं महाबलम्।
प्रियव्रतोऽभ्यषिचद्वै जम्बूद्वीपेश्वरं नृपः ॥१॥
सोतीव भवभक्तश्च तपस्वी तरुणः सदा।
भवार्चनरतः श्रीमान्गोमान्धीमान्द्विजर्षभाः ॥२॥
तस्य पुत्रा बभूवुस्ते प्रजापतिसमा नव।
सर्वे माहेश्वराश्चैव महादेवपरायणाः ॥३॥
ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किंपुरुषोऽनुजः।
हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थो वै इलावृतः ॥४॥
रम्यस्तु पञ्चमस्तत्र हिरण्मान् षष्ठ उच्यते।
कुरुस्तु सप्तमस्तेषा भद्राश्वस्त्वष्टमः स्मृतः ॥५॥
नवमः केतुमालस्तु तेषा देशान्निबोधत।
नाभेस्तु दक्षिणं वर्षं हमाख्यं तु पिता ददौ ॥६॥

हेमकूट तु यद्वर्षं ददौ किंपुरुषाय सः ।
नैषध यत्स्मृत वर्षं हरये तत्पिता ददौ ॥७।

इस अध्याय मे जम्बू वर्ष के भाग और भारतान्त आग्नीध्र वश का निरूपण किया गया है । सूतजी ने कहा—राजा प्रिय व्रत ने परम प्रिय और महान् बलशाली अपने ज्येष्ठ पुत्र आग्नीध्र को जम्बू-द्वीप का स्वामी अभिषिक्त किया था ॥१॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! वह आग्नीध्र अत्यन्त शिव का भक्त था तथा परम तपस्वी और सदा तरुण था । यह भव के यजनार्चन में अनुराग रखने वाला श्रीमान्, धीमान् और गोमान् था ॥२॥ इसके प्रजापतियों के समान नौ पुत्र उत्पन्न हुए थे । ये सभी महेश्वर के परम भक्त थे और महादेव की पूजा मे परायण रहने वाले थे ॥३॥ उन नौ पुत्रो मे जो सबसे बडा पुत्र था वह नाभि, इस नाम से प्रसिद्ध था और उसका छोटा भाई किम्पुरुष था । हरि वर्ष तीसरा पुत्र था, चौथा इलावृत्त, पाँचवाँ रम्य और हिरण्मन् छटा एव कुरु, भद्राश्व और केतुमाल सातवाँ, आठवा तथा क्रम से नवम पुत्र हुये थे । अब उनके देशो का भी जान लो । नाभि का दक्षिण हेमाख्य वर्ष था जोकि उसके पिता ने दिया था ॥४॥५॥६॥ उस पिता ने हेमकूट वर्ष किम्पुरुष को दिया था और हरि के लिये नैषध नाम वाला वर्ष दिया था ॥७॥

इलावृताय प्रददौ मेरुर्यत्र तु मध्यम ।
नीलाचलाश्रित वर्षं रम्याय प्रददौ पिता ॥८॥
श्वेत यदुत्तर तस्मात्पित्रा दत्तं हिरण्मते ।
यदुत्तर शृङ्गवर्षं पिता तत्कुरवे ददौ ॥९॥
वर्षं माल्यवत चापि भद्राश्वस्य न्यवेदयत् ।
गधमादनवर्षं तु केतुमालाय दत्तवान् ॥१०॥
इत्येतानि महान्तीह नव वर्षाणि भागश. ।
आग्नीध्रस्तेषु वर्षेषु पुत्रास्तानभिषिच्य वै ॥११॥

यथाक्रमं स धर्मात्मा ततस्तु तपसि स्थितः ।
तपसा भावितश्चैव स्वाध्याय निरतस्त्वभूत् ।।१२।।
स्वाध्यायनिरतः पश्चाच्छिवध्यानरतस्त्वभूत् ।
यानि किंपुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ शुभानि च ।।१३।।
तेषा स्वभावतः सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ।
विपर्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च ।।१४।।

जहाँ पर मेरु मध्यम होता है वह देश इलावृत्त को पिता ने दिया था तथा नीलाचल के आश्रय वाला देश रम्य नामधारी पुत्र को पिता ने दिया था ।।८।। उससे उत्तर जो श्वेत देश था वह पिता ने हिरण्मान् नामक पुत्र को प्रदान किया था । शृङ्ग वर्ष जो उसके उत्तर मे था वह कुरु को दे दिया था ।।९।। माल्यवान् वर्ष भद्राश्व को और गन्धमादन वर्ष केतुमाल को दिया था ।।१०।। यहाँ पर ये नौ महान् वर्ष थे उनका भाग करके आग्नीध्र ने उन वर्षों मे अपने नौ पुत्रो को अभिषिक्त करके प्रदान कर दिये थे ।।११।। इस प्रकार से पुत्रो को सब देकर वह धर्मात्मा यथाक्रम तपश्चर्या मे आस्थित हो गया था और तप से भावित होते हुए स्वाध्याय मे निरत हो गया था ।।१२।। स्वाध्याय करने मे सलग्न होते हुए फिर वह भगवान शिव के ध्यान मे रत हो गया था । जो किम्पुरुष आदि आठ वर्ष थे वे परम शुभ थे ।।१३।। उनकी सिद्धि स्वभाव से ही बिना प्रयत्न के सुख प्राय सिद्धि थी । उनमे कोई भी विपर्यय नही था और बुढापे तथा मौत का भी कोई भय नही था ।
।।१४।।

धर्माधर्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमा ।
न तेष्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वष्टसु सर्वतः ।।१५।।
रुद्रक्षेत्रे मृताश्चैव जगमा. स्थावरास्तथा ।
भक्ताः प्रासगिकाश्चापि तेषु क्षेत्रेषु यान्ति ते ।।१६।।
तेषा हिताय रुद्रेण चाष्टक्षेत्र विनिर्मितम् ।
तत्र तेषा महादेवः सान्निध्य कुरुते सदा ।।१७।।

दृष्ट्वा ददंति महादेवमष्टक्षेत्र निवासिनः ।
सुखिनः सर्वदा तेषां स एवेह परा गतिः ॥१८॥
नाभेर्निसर्गं वक्ष्यामि हिमांकेऽस्मिन्निबोधत ।
नाभिस्त्वजनयत्पुत्र मेरुदेव्यां महामतिः ॥१९॥
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूजितम् ।
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः ॥२०॥
सोभिषिच्याथ ऋषभो भरतं पुत्रवत्सलः ।
ज्ञानवैराग्यमाश्रित्य जित्वेन्द्रियमहोरगान् ॥२१॥

उनमे धर्म और अधर्म नही थे तथा उन आठ क्षेत्रों मे उत्तम, मध्यम और अधम युग की अवस्थाएँ भी नहीं थी ॥१५॥ स्थावर और जगम जो भी रुद्र क्षेत्र मे मृत होते थे वे प्रासङ्गिक भक्त उन्ही क्षेत्रो मे जाया करते हैं ॥१६॥ उनके हित के लिए भगवान् रुद्र ने अष्टक्षेत्र की रचना की थी । वहाँ पर महादेव सर्वदा उनका सान्निध्य किया करते हैं ॥१७॥ महादेव उस अष्ट क्षेत्र के निवास करने वालो को सदा देखा करते हैं । वे सर्वदा सुखी रहते हैं । यह ही उनकी परागति है ॥१८॥ हिम ही जिसका चिन्ह भूत है उस हिमालय मे नाभि का वंश है उसे मैं अब बतलाऊँगा, उसे आप लोग समझ लो । महामति नाभि ने मेरु-देवी मे पुत्र को जन्म ग्रहण कराया था ॥१९॥ वह समस्त क्षत्रियो से पूजित राजाओ मे परम श्रेष्ठ ऋषभ नाम वाला था । ऋषभ के सौ पुत्रो मे सबसे बडा महान् वीर भरत नामधारी पुत्र उत्पन्न हुआ था । ॥२०॥ पुत्र पर विशेष वात्सल्य रखने वाले ऋषभ ने इन्द्रिय स्वरूप महान् उरगो को जीत कर तथा ज्ञान और वैराग्य का आश्रय ग्रहण करके भरत को राज्यासन पर अभिषिक्त कर दिया था ॥२१॥

सर्वात्मनात्मनि स्थाप्य परमात्मानमीश्वरम् ।
नग्नो जटी निराहारो चीरी ध्वांतगतो हि सः ॥२२॥
निराशस्त्यक्तसंदेहः शैवमाप परं पदम् ।
हिमाद्रेर्दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत् ॥२३॥

तस्मात् भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ।
भरतस्यात्मजो विद्वान्सुमतिर्नाम धार्मिकः ॥२४॥
बभूव तस्मिंस्तद्राज्यं भरतः संन्यवेशयत् ।
पुत्रसंक्रामितश्रीको वनं राजा विवेश सः ॥२५॥

इसके अनन्तर उसने पूर्णतया अपने अन्दर परमात्मा ईश्वर को स्थापित करके स्वयं नग्न, जटाधारी, बिना आहार वाला तथा चीर धारी होकर वह वन में प्रविष्ट हो गया था ॥२२॥ एकदम आशा से रहित होकर सन्देह का त्याग करते हुए शिव के परम पद की उसने प्राप्ति की थी और हिमाचल का दक्षिण वर्ष जो था वह भरत को दे दिया था ॥२३॥ इसी कारण से बुध लोग उसको उसके नाम से भारत वर्ष कहा करते हैं। भरत का पुत्र सुमति नाम वाला अत्यन्त विद्वान् एवं परम धार्मिक था ॥२४॥ भरत ने उस राज्य में उस अपने पुत्र को सन्निवेशित कर दिया था और पुत्र को सम्पूर्ण राज्यश्री प्रदान कर स्वयं राजा भरत वन में प्रविष्ट हो गया था ॥२५॥

ज्योतिष चक्र और सूर्यगति कथन

ज्योतिर्गणप्रचारं वै संक्षिप्याद्य ब्रवीम्यहम् ।
देवक्षेत्राणि चालोक्य ग्रहचारप्रसिद्धये ॥१॥
मानसोपरि माहेन्द्री प्राच्यां मेरोः पुरी स्थिता ।
दक्षिणे भानुपुत्रस्य वरुणस्य च वारुणी ॥२॥
सौम्ये सोमस्य विपुला तासु दिग्देवताः स्थिताः ।
अमरावती संयमनी सुखा चैव विभा क्रमात् ॥३॥
लोकपालोपरिष्टात्तु सर्वतो दक्षिणायने ।
काष्ठां गतस्य सूर्यस्य गतिर्या तां निबोधत ॥४॥

दक्षिणप्रक्रमे भानुः क्षिप्तेपुरिव धावति ।
ज्योतिषां चक्रमादाय सततं परिगच्छति ॥५॥
पुरांतगो यदा भानुः शक्रस्य भवति प्रभुः ।
सर्वैः सायमनैः सौरो ह्युदयो दृश्यते द्विजाः ॥६॥
स एव सुखवत्यां तु निशांतस्थः प्रदृश्यते ।
अस्तमेति पुनः सूर्यो विभायां विश्वदृग्विभुः ॥७॥

इस अध्याय मे सूर्य की उत्तम गति और ध्रुव तथा अभ्रमेघों की विशेषताएँ निरूपित की जाती हैं । सूतजी ने कहा—अब मैं ग्रहचार प्रसिद्धि के लिये देव क्षेत्रो का आलोकन करके और अण्ड में ज्योतिर्गण प्रचार का सक्षेप करके बताता हूँ ॥१॥ मानस के ऊपर के भाग में प्राची दिशा मे माहेन्द्री नाम वाली मेरु की पुरी स्थित है और दक्षिण दिशा मे भानु के पुत्र यम की और वरुण की वारुणी पुरी है ॥२॥ सौम्य दिशा मे सोम की विपुला पुरी है उनमे दिशाओ के देवता स्थित है । फिर अमरावती, सयमनी, सुखा और विभा क्रम से हैं ॥३॥ लोकपालो के ऊपर के भाग मे दक्षिणायन मे दक्षिण दिशा मे गये हुए सूर्य की जो गति है अब उसे समझ लो ॥४॥ दक्षिण दिशा की ओर जब सूर्य जिस समय प्रक्रमण करता है तो वह फेंके हुये बाण की भाँति अत्यन्त त्वरित गति से दौड़ता है । वह निरन्तर ज्योतियों के चक्र को लेकर परिगमन किया करता है । हे द्विजगण ! जिस समय भानु प्रभु इन्द्र के पुर के अन्त मे गमन करने वाला होता है तब सौर उदय समस्त सायमनो के साथ दिखलाई देता है ॥५॥६॥ वह ही संयमनीस्थ सुखवती मे निशान्तस्थ अर्थात् प्रात.काल मे दिखलाई दिया करता है । फिर विश्व को देखने वाला विभु सूर्य विभा मे अस्त को प्राप्त होता है ॥७॥

मया प्रोक्तोमरावत्यां यथासौ वारितस्करः ।
तथा संयमनी प्राप्य सुखां चैव विभां खगः ॥८॥

यदापराह्ण स्त्वाग्नेय्या पूर्वाह्लो नैऋते द्विजाः।
तदा त्वपररात्रश्च वायुभागे सुदारुणः ॥६॥
ईशान्या पूर्वरात्रस्तु गतिरेपा च सर्वतः।
एव पुष्करमध्ये तु यदा सर्पति वारिपः ॥१०॥
त्रिशाशकं तु मेदिन्या मुहूर्तेनैव गच्छति ।
योजनाना मुहूर्तस्य इमां सख्या निबोधत ॥११॥
पूर्णा शतसहस्राणामेकत्रिंशत्तु सा स्मृता ।
पञ्चाशच्च तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ॥१२॥
मौहूर्तिकी गतिर्ह्येषा भास्करस्य महात्मनः ।
एतेन गतियोगेन यदा काष्ठां तु दक्षिणाम् ॥१३॥
पर्यपृच्छेत् पतगोपि सौम्याशा चोत्तरेऽहनि।
मध्ये तु पुष्करस्याथ भ्रमते दक्षिणायने ॥१४॥

मैंने अमरावती मे जिस तरह से इसको वारि का हरण करने वाला तस्कर बताया है उसी तरह सयमनी, सुखा और विभा को प्राप्त होकर यह खग अर्थात् आकाश चारी होता है ॥८॥ हे द्विजो ! जब यह सूर्य आग्नेयी दिशा मे रहता है तो अपराह्ण होता है और नैऋत दिशा मे रहने पर पूर्वाह्ण अर्थात् दिन का पूर्वार्द्ध होता है। जब यह वायव्य कोण मे सुदारुण रहता है तो अपररात्र होना है ॥६॥ ईशानी उपदिशा मे रहता है तो रात्रि का पूर्व भाग होता है। यही सब प्रकार से इसकी गति है। इस प्रकार से जब वारि का पान करने वाला यह सूर्य आकाश के मध्य मे गमन करता है तो मेदिनी के तीस अश तक एक मुहूर्त मे ही गमन किया करता है। उस समय के गमन के योजनो की इस सख्या को भी आप लोग समझ लेवें ॥१०॥११॥ वह सख्या इकत्तीस लाख पचास सहस्र है ॥१२॥ महान् आत्मा वाले भगवान भास्कर की यह एक मुहूर्त में होने वाली गति है। इस गति के योग से दक्षिण दिशा को जाया करता है और यह पतङ्ग उत्तर दिवस मे सौम्य

दिशा को जाता है। दक्षिणायन मे आकाश के मध्य मे भ्रमण किया करता है ॥१३॥१४॥

मानसोत्तरशैले तु महातेजा विभावसुः ।
मडलाना शत पूर्णं तदशीत्यधिक विभुः ॥१५॥
बाह्य चाभ्यतर योक्तमुत्तरायणदक्षिणे ।
प्रत्यह चरते तानि सूर्यो वै मडलानि तु ॥१६॥
कुलालचक्रपर्यंतो यथा शीघ्र प्रवर्तते ।
दक्षिणप्रक्रमे देवस्तथा शीघ्र प्रवर्तते ॥१७॥
तस्मात्प्रकृष्टा भूमि तु कालेनाल्पेन गच्छति ।
सूर्यो द्वादशभिः शीघ्र मुहूर्तैर्दक्षिणायने ॥१८॥
त्रयोदशार्धमृक्षाणामह्ना तु चरते रविः ।
मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ॥१९॥
कुलालचक्रमध्य तु यथा मद प्रसर्पति ।
तथोदगयने सूर्यः सर्पते मदविक्रम ॥२०॥
तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिमल्पा तु गच्छति ।
स रथो धिष्ठितो भानोरादित्यैर्मुनिभिस्तथा ॥२१॥

मानसोत्तर शैल मे महान् तेज वाला विभा वसु, एक सौ अस्सी पूर्ण मण्डल हैं जिनको उत्तरायण दक्षिण मे बाह्य और आभ्यन्तर कहा गया है, उन मण्डलो में यह विभु सूर्य प्रतिदिन विचरण किया करता है ॥१५॥१६॥ कुम्हार के बरतन बनाने का चाक चारो ओर जिस प्रकार शीघ्रता से चक्कर काटता है उसी भाँति दक्षिण प्रक्रम मे सूर्यदेव भी बडी शीघ्रता के साथ प्रवृत्त हुआ करते हैं ॥१७॥ इस कारण से इस प्रकृष्ट भूमि को बहुत थोडे ही समय म गमन करता है। दक्षिणायन में तो यह सूर्य द्वादश मुहूर्त्तों मे ही शीघ्रता से जाया करता है ॥१८॥ नक्षत्रो व त्रयोदश के अर्धभाग को एक दिन मे रवि चरण किया करता है। रात्रि में अठारह मुहूर्त्तों मे उतने नक्षत्रो का चरण करता है ॥१९॥ कुलाल के चक्र का मध्य जिस तरह मन्द गति से प्रसर्पण किया करता

है उसी प्रकार से उदगमन में सूर्य भी मन्द विक्रम वाला होता हुआ गमन करता है ।।२०।। इस कारण से दीर्घ काल मे बहुत थोड़ी भूमि का गमन करता है । भानु का वह रथ आदित्य तथा मुनियों के द्वारा अधिष्ठित है ।।२१।।

गंधर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीः सर्पराक्षसैः ।
प्रदीपयन् सहस्रांशुरग्रतः पृष्ठतोप्यधः ।।२२।।
ऊर्ध्वतश्च करं त्यक्त्वा सभां ब्राह्मीमनुत्तमाम् ।
अंभोभिमुं निभिस्त्यक्तैः संध्यायां तु निशाचरान् ।।२३।।
हत्वा हत्वा तु संप्राप्तान्ब्राह्मणैश्चरते रविः ।
अष्टादश मुहूर्तं तु उत्तरायणपश्चिमम् ।।२४।।
अहर्भवति तच्चापि चरते मदविक्रमः ।
त्रयोदशार्धमृक्षाणि नक्तं द्वादशभी रविः ।
मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि दिवाष्टादशभिश्चरन् ।।२५।।
ततो मंदतरं नाभ्यां चक्रं भ्रमति वै यथा ।
मृत्पिंड इव मध्यस्थो ध्रुवो भ्रमति वै तथा ।।२६।।
त्रिंशन्मुहूर्तरेवाहुरहोरात्र पुराविदः ।
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमतो मंडलानि तु ।२७।।
कुलालचक्रनाभिस्तु यथा तत्रैव वर्तते ।
औत्तानपादो भ्रमति ग्रहैः सार्धं ग्रहाग्रणीः ।।२८।।

यह ग्रामणी अर्थात् सबका निर्देशक नामक तथा उपभोग के योग्य सहस्रांशु गन्धर्व, अप्सरा, सर्प तथा राक्षसो से युक्त घिरा हुआ रहता है और आगे-पीछे, नीचे-ऊपर अपने कर (किरणो को) के द्वारा प्रदीप्त करता हुआ उत्तम ब्राह्मी सभा का त्याग कर सन्ध्या मे मुनिगणो के द्वारा छोड़े हुये जलों के अर्थात् अर्घ्य के जलाजलियो के द्वारा सम्प्राप्त निशाचरो का हनन कर करके ब्राह्मणो के द्वारा ही चरण किया करता है और उत्तरायण पश्चिम मे अठारह मुहूर्त्तो मे गमन करता है ।।२२।।२३।।२४।। वह भी दिन होता है जिसमे मन्द गति वाला रवि

गमन किया करता है । बारह मुहूर्तों मे त्रयोदशार्ध नक्षत्र रात्रि को और उतने ही नक्षत्रो को दिन मे अठारह मुहूर्तों में रवि गमन किया करता है । ग्रीष्म मे दिन बहुत बडा और रात छोटी होनी है। यह सूर्य की गति के कारण से ऐसा होता है ।।२५।। उससे भी मन्दतर अर्थात् अधिक धीमा चक्र जैसे नाभि में भ्रमण करता है उसी तरह से मध्य मे स्थित मिट्टी के पिंड की भाँति ध्रुव भ्रमण करता है ।।२६।। पुरावेत्ता मनीषीगण अहोरात्र (रात-दिन) को तीस मुहूर्तों से युक्त कहते है । दोनो काष्ठाओ के मध्य मे मडलो का भ्रमण रवि करता है । उस भ्रमण मे भी कुलाल के चक्र की नाभि जिस तरह से वही पर रहती है उसी भाँति ग्रहो का अगुआ ध्रुव (उत्तानपाद का पुत्र) ग्रहो के साथ ही भ्रमण किया करता है ।।२७।२८।।

गणो मुनिज्योतिषां तु मनसा तस्य सर्पति ।
अधिष्ठितः पुनस्तेन भानुस्त्वादाय तिष्ठति ।।२९।।
किरणैः सर्वतस्तोयं देवो वै ससमी रणः ।
औत्तानपादस्य सदा ध्रुवत्वं वै प्रसादतः ।।३०।।
विष्णोरौत्तानपादेन चार्त तातस्य हेतुना ।
आपः पीतास्तु सूर्येण क्रमंते शशिनः क्रमात् ।।३१।।
निशाकरान्निस्रवंते जीमूतान्प्रत्ययः क्रमात् ।
वृन्दं जलमुचां चैव श्वसनेनाभिताडितम् ।।३२।।
क्ष्मायां सृष्टि विसृजतेऽभासयत्तेन भास्करः ।
तोयस्य नास्ति वै नाशः तदेव परिवर्तते ।।३३।।
हिताय सर्वजंतूनां गतिः सर्वेण निर्मिता ।
भूर्भुव. स्वस्तथा ह्यापो ह्यन्नं चामृतमेव च ।।३४।।
प्राणा वै जगतामापो भूतानि भुवनानि च ।
बहुनात्र किमुक्तेन चराचरमिदं जगत् ।।३५।।

मुनि और ज्योतिषों का गण उस ध्रुव की इच्छा से गमन किया करता है। वायु के सहित देव भानु किरणो के द्वारा सब ओर

से जल का ग्रहण करके उस ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित अर्थात् ध्रुव में ही स्थित रहता है ॥२९॥ अपने पिता के हेतु होने के कारण भगवान् विष्णु के प्रसाद से ही ध्रुव अर्थात् राजा उत्तानपाद के पुत्र ने ध्रुवत्व को प्राप्त किया था। सूर्य के द्वारा पीये हुए जल शशी के क्रम से क्रमण किया करते हैं ॥३०॥॥३१॥ मेघों का समूह वायु से अभिताडित होकर उन पीत किये जलों को क्रम से जीमूतों का स्रवण निशाकर से होना है ॥३२॥ पृथ्वी पर वृष्टि का विसृजन करता है और इस जगत् को दीप्त किया करता है इसीलिये इस रवि का नाम भास्कर कहा गया है। जल का कभी नाश नहीं होता है क्योंकि वही परिवर्त्तित हो जाया करता है। जो जल किरणों द्वारा पी लिया जाता है वही पुनः वृष्टि के रूप में जल होकर आ जाता है ॥३३॥ भगवान् शर्व (शम्भु) ने यह गति समस्त जीवों के हित-सम्पादन के लिये ही बनाई है। भूर्भुवः स्व तथा जल, अन्न और अमृत इन सबकी रचना की है ॥३४॥ जल जगत् के प्राण हैं जिसमें समस्त भूत और भुवन है। बहुत अधिक क्या कहा जावे यह सम्पूर्ण चर और अचर जगत् जल के आधार पर स्थित है ॥३५॥

अपां शिवस्य भगवानाधिपत्ये व्यवस्थितः ।
अपा त्वधिपतिर्देवो भव इत्येव कीर्तितः ॥३६॥
भवात्मक जगत्सर्वमिति किं चेह चाद्भुतम् ।
नारायणत्वं देवस्य हरेश्चाद्भिः कृतं विभोः ।
जगतामालयो विष्णुस्त्वापस्तस्यालयानि तु ॥३७॥
दन्दह्यमानेषु चराचरेषु गोधूमभूतास्त्वथ निष्क्रमति ।
या या ऊर्ध्वं मारुतेनेरिता वै तास्तास्त्वभ्राण्यग्निना वायुना च॥३८॥
अतो धूमाग्निवाताना सयोगस्त्वभ्रमुच्यते ।
वारीणि वर्षतीत्यभ्रमभ्रस्येशः सहस्रदृक् ॥३९॥
यज्ञधूमोद्भवं चापि द्विजाना हितकृत्सदा ।
दावाग्निधूमसंभूतमभ्रं वनहित स्मृतम् ॥४०॥

मृतधूमोद्भवं त्वभ्रमशुभाय भविष्यति ।
अभिचाराग्निधूमोत्थ भूतनाशाय वै द्विजा. ॥४१॥
एवं धूमविशेषेण जगता वै हिताहितम् ।
तस्मादाच्छादयेद्धूममभिचारकृत नरः ॥४२॥

जलो का भगवान् शिव के ही आधिपत्य अर्थात् स्वामित्व मे व्यवस्थित है । जलो का स्वामी देव भव (शिव) ही कहे गये हैं ॥३६॥ यह सम्पूर्ण जगत् भव के ही स्वरूप वाला है, इसमे यहाँ अद्भुत कोई वस्तु नही है । देव हरि विभु का नारायणत्व जलो के द्वारा ही किया गया है । समस्त जगतो का आधार भगवान् विष्णु हैं किन्तु उन विष्णु का निवास स्थान जल हैं ॥३७॥ सम्पूर्ण चर और अचर के दह्यमान हो जाने पर पृथिवी से सम्बन्धित धूम के रूप वाली जो-जो भी ऊपर आकाश मे निष्क्रमण किया करती हैं वे-वे सब मारुत के द्वारा प्रेरित होकर अग्नि और वायु के सहित अभ्र (मेघ) हो जाया करते हैं । इसीलिये धूम, अग्नि और वायु के सयोग को ही मेघ कहा जाता है । यह अभ्र जलो की वृष्टि किया करता है तथा इस अभ्र का स्वामी सहस्र नेत्रो वाला इन्द्र होता है ॥३८॥३९॥ यज्ञो मे उत्पन्न होने वाला जो धूम है उससे उद्भव प्राप्त करने वाला अभ्र सदा द्विजो का हितकारी होता है । दावानल की धूँआ से समुत्पन्न मेघ वनो के हित करने वाला कहा गया है ॥४०॥ मृत के शव के दाह से उत्पन्न धूँआ से उद्भुत अभ्र अशुभ होता है । हे द्विजगण ! अभिचार की अग्नि से अर्थात् अन्याय पूर्वक जो अग्नि उत्पन्न की गई उससे जो धूँआ होता है उससे समुत्पन्न अभ्र भूतो के नाश करने वाला होता है ॥४१॥ इस तरह से धूमो की विशेषता होती है जिसके कारण जगत् का हित और अहित होता है । अतएव मनुष्य को अभिचार द्वारा किये गये धूम का आच्छादन करना चाहिए ॥४२॥

अनाच्छाद्य द्विज. कुर्याद्धूमं यश्चाभिचारिकम् ।
एवमुद्दिश्य लोकस्य क्षयश्चैव भविष्यति ॥४३॥

अपां निधानं जीमूताः षण्मासानिह सुव्रताः ।
वर्षयंत्येव जगतां हिताय पवनाज्ञया ॥४४॥
स्तनित चेह वायव्य वैद्युत पाव कोद्भवम् ।
त्रिधा तेषामिहोत्पत्तिरभ्राणां मुनिपुङ्गवाः ॥४५॥
न भ्रश्यति यतोभ्राणि मेहनान्मेघ उच्यते ।
काष्ठा वाह्नाश्च वैरिच्याः पक्षा श्चैव पृथग्विधाः ॥४६॥
आज्यानां काष्ठसंयोगादग्नेर्धू मः प्रवर्तितः ।
द्वितीयानां च संभूतिर्विरिंचोच्छ् वासवायुना ॥४७॥
भूभृतां त्वथ पक्षंस्तु मघवच्छेदितेस्ततः ।
वाह्नेयास्त्वथ जीमूतास्त्वावहस्थानगाः शुभाः ॥४८॥
विरिंचोच्छ् वासजाः सर्व प्रवहस्कधजास्ततः ।
पक्षजाः पुष्करायाश्च वर्षंति च यदा जलम् ॥४९॥

जो द्विज आच्छादन न करने ही आभिचारिक अर्थात् मारणादि कर्म से सम्बन्धित धूम किया करता है । इस प्रकार से उद्देश्य करके वह धूम लोक का क्षय करने वाला ही होगा ॥४३॥ हे सुव्रत वालो ! यहाँ भारत खण्ड से छै मास तक जलो के स्थान जीमूत पवन की आज्ञा से ही जगत् के हित के लिए वर्षा किया करते हैं ॥४४॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! इस मेघ से जो गर्जन है वह वायु से उत्पन्न होने वाली है और जो बिजली की चमचमाहट इसमे होती है वह अग्नि से उत्पन्न होती है । इस तरह से उन अभ्रो की तीन प्रकार से उत्पत्ति होती है ॥४५॥ जिनका नीचे की ओर भ्रंशन नही होता है अतएव उन्हे अभ्र कहा जाता है । वे जल के द्वारा मेहन अर्थात् भूमि का सेचन किया करते है इसीलिये उन बादलो को मेघ इस नाम से कहा जाता है । इनमें तीन प्रकार के पक्ष होते हैं जो कि भिन्न हैं । काष्ठ, वाह्न और वैरिञ्च, ये तीन भेद होते है ॥४६॥ घृत की काष्ठ के सयोग से जो धूम प्रवृत्त होता है वह काष्ठ पक्ष है । विरञ्चि की उच्छ्वास वायु से उत्पन्न होने वाले वैरिञ्च कहे जाते है ॥४७॥ इन्द्र के द्वारा पर्वतो के वज्र से

पक्षों के छेदन से जो उत्पन्न हुए हैं ये वाह्लेय कहे गये हैं ये जीमूत आवह संज्ञा वाले वायु के स्कन्ध वर्त्ती शुभ होते हैं ॥४८॥ विरञ्चि के उच्छ्वास से उत्पन्न होने वाले सब प्रवह स्कन्धज होते हैं। इनके ऊपर के भाग में पुष्कर आदि संज्ञा वाले पक्षज जलद जल की वृष्टि किया करते हैं ॥४६॥

मूकाः सशब्ददुष्टाशास्त्वेतैः कृत्यं यथाक्रमम् ।
क्षामवृष्टिप्रदा दीर्घकालं शीतसमीरिणः ॥५०॥
जीवकाश्च तथा क्षीणा विद्युद्ध्वनिविवर्जिताः ।
तिष्ठंत्याक्रोशमात्रे तु धरापृष्ठादितस्ततः ॥५१॥
अर्धक्रोशे तु सर्वे वै जीमूता गिरिवासिनः ।
मेघा योजनमात्रे तु साध्यत्वाद्बहुतोयदाः ॥५२॥
धरापृष्ठाद्द्विजाः क्ष्मायां विद्युद्गुणसमन्विताः ।
तेषां तेषां वृष्टिसर्गं त्रेधा कथितमत्र तु ॥५३॥
पक्षजाः कल्पजाः सर्वे पर्वतानां महत्तमाः ।
कल्पान्ते ते च वर्षन्ति रात्रौ नाशाय शारदाः ॥५४॥
पक्षजाः पुष्कराद्याश्च वर्षति च यदा जलम् ।
तदार्णवमभूत्सर्वं तत्र शेते निशीश्वरः ॥५५॥
आग्नेयानां श्वासजानां पक्षजानां द्विजर्षभाः ।
जलदानां सदा धूमो ह्याप्या यन इति स्मृतः ॥५६॥

ये तीन प्रकार के मेघों के भिन्न-भिन्न कृत्य होते हैं। इनमे कुछ तो मूक अर्थात् शब्द या ध्वनि से रहित होते हैं, कुछ गर्जित से युक्त होते हैं और कुछ दुष्ट आशा वाले अर्थात् प्रलयकारी होते हैं। अब इनके यथा क्रम कार्य होते हैं। जो वाह्ल जीमूत होते हैं वे बहुत समय मे क्षीण वृष्टि के करने वाले होते हैं और ठण्डी हवा से युक्त होते हैं ॥५०॥ क्षीण शक्ति वाले जीवक जो श्वास से समुत्पन्न होते हैं वे बिजली की ध्वनि से रहित होते है और धरा के पृष्ठ से इधर-उधर एक कोश तक की सीमा मे रहा करते हैं ॥५१॥ आधे कोश तक तो

सभी गिरि वासी जीमूत रहते हैं। जो विद्युत की ध्वनि आदि से समन्वित होते हैं वे मेघ अधिक जल की वृष्टि करने वाले योजन मात्र स्थान में रहते हैं ॥५२॥ हे द्विजगण ! ये मेघ धरा के पृष्ठ से पृथ्वी से योजन मात्र रहते हैं। उन प्रथम और द्वितीय मेघों की वृष्टि का सर्ग तीन प्रकार का कहा गया है ॥५३॥ अब तृतीय वृष्टि सर्ग को बताते हैं, जो पक्षज एवं कलाज मेघ हैं वे सब पर्वतों से भी अधिक बड़े होते हैं वे कल्प के अन्त में शारद रात्रि में नाश के लिये वर्षा किया करते हैं। ॥५४॥ पक्षज पुष्करादि नामधारी मेघ जब जल की वृष्टि करते हैं तब सब अर्णव हो जाता था और वहाँ निशा में ईश्वर शयन किया करते हैं ॥५५॥ हे द्विजों में परमश्रेष्ठ गण ! आग्नेय, श्वासज और पक्षज जलदों का धूम सदा वृद्धि करने वाला होता है ऐसा कहा गया है ॥५६॥

पौण्ड्रास्तु वृष्टयः सर्वा वैद्युता. शीतसस्यदाः ।
पुन्ड्रदेशेषु पतिता नागाना शीकरा हिमाः ॥५७॥
गाङ्गा गङ्गाम्बु सभूता पर्जन्येन परावहैः ।
नगाना च नदीना च दिग्गजाना समाकुलम् ॥५८॥
मेघाना च पृथग्भूत जल प्रायादगादगम् ।
परावहो यः श्वसनश्चानयत्यम्बिकागुरुम् ॥५९॥
मेनापतिमतिक्रम्य वृष्टिशेष द्विजा परम् ।
अभ्येति भारते वर्षे त्वपरान्तविवृद्धये ॥६०॥
वृष्टयः कथिता ह्यद्य द्विधा वस्तु विवृद्धये ।
सस्यद्वयस्य सक्षेपात्प्रब्रवीमि यथामति ॥६१॥
स्रष्टा भानुर्महातेजा वृष्टीना विश्वदृग्विभुः ।
सापि साक्षाद्द्विजश्रेष्ठास्त्वीशान परम. शिवः ॥६२॥
स एव तेजस्त्वोजस्तु वल विप्रा यशः स्वयम् ।
चक्षुः श्रोत्र मनो मृत्युरात्मा मन्यु र्दिग्दिश ॥६३॥

सत्यं ऋतं तथा वायुरंबरं खचरश्च सः ।
लोकपालो हरिर्ब्रह्मा रुद्रः साक्षान्महेश्वरः ।६४॥

विद्युत् से विशिष्ट पौण्ड्र अर्थात् प्रण्ड्र देशीय सम्पूर्ण वृष्टि शीत की विशेषता वाले देश मे शीत सस्य के देने वाली होती है । तोयदो के हिमकण जब पुण्ड्र देशों मे पतित होते हैं तभी वहाँ शीत सस्य की उत्पत्ति हुआ करती है ॥५७॥ गङ्गा के जल से होने वाली वृष्टि गाङ्ग कही जाती हैं । परावह सज्ञा वाली वायुग्रो से पर्वतो का ग्रौर नदियो का पृथग्भूत जल पर्जन्य से समा कुन होता हुआ पर्वत से पर्वत पर आता है । परावह वायु अम्बिका के विना हिमालय मे ले आता है । ॥५८॥५९॥ हे द्विजगण ! समुद्र के मध्य देशीय विशेष वृद्धि के लिये मेना के पति हिमालय का अतिक्रमण करके परम वृष्टि का शेष भारत-वर्ष मे आता है ॥६०॥ आज आप लोगो को सस्य द्वय की विशेष वृद्धि के लिये दो प्रकार की वृष्टि सक्षेप से यथामति कह दी है और अब बतलाता हू ॥६१॥ महान् तेज से समन्वित, विश्व का द्रष्टा और विभु भानुदेव वृष्टियो के सृजन करने वाले हैं । हे द्विजश्रेष्ठो ! वह भी साक्षात् ईशान परम शिव हैं ॥६२॥ वह ही स्वय तेज, ओज, बल, यश, चक्षु, श्रोत्र, मन, मृत्यु, आत्मा, मन्यु दिशा और विदिशा हैं ॥६३॥ वह महेश्वर ही साक्षात् सत्य, ऋत, वायु, अम्बर, खचर, लोकपाल, हरि, ब्रह्मा और रुद्र हैं ॥६४॥

सहस्रकिरण श्रीमा नष्टहस्त. सुमङ्गलः ।
अर्धनारीवपुः साक्षात्रिनेत्रस्त्रिदशाधिपः ॥६५॥
अस्यैवेह प्रसादात्तु वृष्टिर्नानामवद्द्विजा. ।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टु मादत्ते किरणैर्जलम् ॥६६॥
जलस्य नाशो वृद्धिर्वा नास्त्येवास्य विचारत. ।
ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुर्वृष्टिं सहरते पुनः ॥६७॥
ग्रहान्निस्सृत्य सूर्यात्तु कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले ।
चारस्यान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण समधिष्ठिता ॥६८॥

सहस्र किरणो से सयुत, शोभा सम्पन्न, आठ हाथो वाला, सुन्दर मङ्गल स्वरूप से युक्त, अर्धनारी वपु वाले, साक्षात् तीन तेत्रो के धारण करने वाले और यह समस्त देवो के स्वामी हैं ॥६५॥ हे द्विज-गण ! इनकी ही कृपा से यहाँ लोक मे अनेक प्रकार की वृष्टि होती थी । सहस्र गुण का उत्सग करने के लिये यह अपनी किरणो के द्वारा जल को ग्रहण किया करते हैं ॥६६॥ इसके विचार से जल का कभी नाश या वृद्धि नही होती है । ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित वायु देव इस वृष्टि का पुन सहार किया करते हैं ॥६७॥ सूर्य ग्रह से निकलकर सम्पूर्ण नक्षत्रो के मण्डल मे अर्थात् चन्द्र मण्डल मे पहुच कर निस्रवण करती है । वृष्टि के प्रचार के समाप्त हो जाने पर ध्रुव के द्वारा प्राक्षिप्त होती हुई सूर्य मे प्रवेश किया करती है ॥६८॥

द्वादश मासो मे सूर्य गति वर्णन

सौर सहोपतो वक्ष्ये रथ शशिन एव च ।
ग्रहाणामितरेषा च यथा गच्छति चाव्युप ॥१॥
सौरस्तु ब्रह्मणा सृष्टो रथस्त्वर्थवशेन स ।
सवत्सरस्यावयवं कल्पितश्च द्विजर्षभा ॥२॥
त्रिणाभिना तु चक्रेण पञ्चारेण समन्वित ।
सौवर्ण सर्वदेवानामावासो भास्करस्य तु ॥३॥
नवयोजनसाहस्रो विस्तारायामत स्मृत ।
द्विगुणोपि रथोपस्थादीषादण्ड प्रमाणत ॥४॥
असगेस्तु हयैर्युक्तो यतश्चक्र तत स्थित ।
वाजिनस्तस्य वै सप्त छन्दोभिर्निर्मितास्तु ते ॥५॥
चक्रपक्षे निबद्धास्तु ध्रुवे चाक्ष समर्पित ।
सहाश्वचक्रो भ्रमते सहाक्षो भ्रमते ध्रुव. ॥६॥

इस अध्याय में भव स्वरूपी सूर्य का मधु आदि मासों के क्रम से पृथक् गणों का निरूपण किया जाता है। श्री सूत जी ने कहा—सौर रथ का तथा चन्द्र का संक्षेप में वर्णन करूँगा। यह जल का पान करने वाला जिस रीति से अन्य ग्रहों के निकट जाता है ॥१॥ हे द्विजों में परम श्रेष्ठगण! ब्रह्मा के द्वारा सृजन किया हुआ वह सौर रथ अब के वश से सम्वत्सर के अवयवों से कल्पित किया गया है ॥२॥ तीन नाभि वाले चक्र तथा पाँच आरों से युक्त समस्त देवों के भास्कर का आवास सुवर्ण का है ॥३॥ इस रथ का आयाम और विस्तार नौ सहस्र योजन है, ऐसा कहा गया है। रथोपस्थ से ईषादण्ड प्रमाण में द्विगुण है ॥४॥ उस चक्र में स्थित वह असङ्ग अर्थात् असमान अश्वों से युक्त है। उस रथ के अश्व सात हैं जो कि गायत्री, वृहती, उष्णिग् आदि छन्दों के द्वारा निर्मित होने वाले हैं ॥५॥ चक्र पक्ष में वे अश्व निबद्ध हैं और अक्ष ध्रुव में समर्पित होता है। अश्व चक्र से युत रथ भ्रमण करता है और अक्ष के सहित ध्रुव भ्रमण किया करता है ॥६॥

अक्षः सहैकचक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरितः।
प्रेरको ज्योतिषां धीमान् ध्रुवो वै वातरश्मिभिः ॥७॥
युगाक्षकोटिसंबद्धौ द्वौ रश्मी स्यन्दनस्य तु।
ध्रुवेण भ्रमते रश्मि निबद्धः स युगाक्षयोः ॥८॥
भ्रमतो मंडलानि स्युः खेचरस्य रथस्य तु।
युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यंदनस्य हि ॥९॥
ध्रुवेण प्रगृहीते वै विचक्राश्वे च रज्जुभिः।
भ्रमंतमनुगच्छंति ध्रुवं रश्मी च तावुभौ ॥१०॥
युगाक्षकोटिस्त्वेतस्य वातोर्मिस्यन्दनस्य तु।
कीले सक्ता यथा रज्जुर्भ्रमते सर्वतोदिशम् ॥११॥

आभ्यतस्तस्य रश्मी तु मण्डलेपूत्तरा यणे।
वर्धते दक्षिणे चैव भ्रमता मण्डलानि तु ॥१२॥
आकृष्येते यदा ते वै ध्रुवेणाधिष्ठिते तदा।
आभ्यंतरस्थः सूर्योथ भ्रमते मण्ड लानि तु ॥१३॥
अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरंतरं द्वयोः।
ध्रुवेण मुच्यमानाभ्यां रश्मिभ्यां पुनरेव तु ॥१४॥
सथैव वाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु।
उद्वेष्टयन् स वेगेन मण्डलानि तु गच्छति ॥१५॥

युग रथधू और अक्ष का अग्रभाग इन दोनों मे निवद्ध रथ की दो रश्मियाँ है। उन युगाक्षों मे रश्मि से निवद्ध वह सौर रथ ध्रुव के द्वारा भ्रमण किया करता है। यह एक चक्र के साथ अक्ष ध्रुव से प्रेरित होता हुआ हुआ भ्रमण करता है। वायु की रश्मियों के द्वारा श्रीमान् ध्रुव ज्योतियों को प्रेरणा देने वाला है ॥७॥८॥ वह आकाश मे विचरण करने वाला रथ मण्डलो मे भ्रमण करता है और उस रथ की युगाक्ष कोटि मे निवद्ध दो रश्मियाँ हैं। दक्षिण भाग मे ध्रुव के द्वारा प्रगृहीत अश्व, चक्र और अश्व की वे दोनो रश्मियाँ रज्जुओ के सहित वे दोनो रश्मियाँ भ्रमण करते हुए ध्रुव का अनुगमन करती हैं। ॥९॥१०॥ इस रथ की वायु की लहर रूप वाली युगाक्ष कोटि जिस तरह कील में सक्त रज्जु होती है उसके ही समान सब दिशाओं में भ्रमण करती हैं ॥११॥ सूर्य की उत्तरायण, दक्षिणायन गति बतलाते हुए कहते हैं कि मण्डलो भ्रमण करते हुए उस रथ की रश्मि उत्तरायण और दक्षिणायन मे वर्धित होती है ॥१२॥ ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित वे जब आकृष्ट की जाती हैं तो उस समय मे अन्दर मे अवस्थित सूर्य मण्डलो का भ्रमण किया करते हैं॥१३॥ दोनो काष्ठाओं के अन्तर मे अस्सी मण्डल शत हैं। पुन. ध्रुव के द्वारा मुच्यमान रश्मियो से उसी भाँति यह सूर्य मण्डलो के बाहिर भ्रमण किया करता है। वह वेग के साथ उद्वेष्टन करता हुआ मण्डलो के निकट जाता है ॥१४॥१५॥

देवाश्चैव तथा नित्यं मुनयश्च दिवानिशम् ।
यजति सततं देवं भास्कर भवमीश्वरम् ॥१६॥
स रथोधिष्ठितो देवैरादित्यैर्मु निभिस्तथा ।
गधर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ॥१७॥
एते वसंति वै सूर्ये द्वौ दो मासौ क्रमेण तु ।
आप्याययति चादित्य तेजोभिर्भास्करं शिवम् ॥१८॥
ग्रथितैः स्वैर्वचोभिस्तु स्तुवंति मुनयो रविम् ।
गंधर्वाप्सरसश्चैव नृत्यगेयैरुपासते ॥१६॥
ग्रामणीयक्षभूतानि कुर्वतेऽभीपुसंग्रहम् ।
सर्वा वहति वै सूर्यं यातुधानानुयाति च ॥२०॥
वालखिल्या नयंत्यस्तं परिवार्योदयाद्रविम् ।
इत्येते वै वसतीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे ॥२१॥

सम्पूर्ण देवगण तथा समस्त मुनि मण्डल नित्य ही रात-दिन निरन्तर ईश्वर महादेव भास्कर भगवान् का यजन किया करते हैं ॥१६॥ वह सबका नायक रथ में अधिष्ठित रहता है और देव, दैत्य, मुनि, गन्धर्व, अप्सरागण, सर्प और राक्षस इन सबके द्वारा समुपासित हुआ करते हैं ॥१७॥ ये सब सूर्य मे दो-दो मास तक क्रम से निवास किया करते है और आदित्य भास्कर शिव को तेजो के द्वारा आप्यापित अर्थात् सन्तृप्त किया करते हैं ॥१८॥ अपने वचनो से ग्रन्थित स्तवो के द्वारा मुनिगण भगवान रविदेव का स्तवन किया करते हैं। गन्धर्व और अप्सरागण नृत्य और गानो के द्वारा रवि देव की उपासना करते हैं। ॥१६॥ ग्रामणी, यक्ष और भूत अभिष्टुन का सग्रह किया करते हैं। सर्प सूर्यदेव का वहन करते हैं और यातुधान अनुगमन करते हैं ॥२०॥ बालखिल्य ऋषिगण उदय काल से आरम्भ करके रवि का परिवारण कर अस्ताचल को प्राप्त कराते हैं। ये सब यहाँ पर दो-दो मास तक दिवाकर मे निवास करते हैं ॥२१॥

मधुश्च माधवश्चैव शुक्रश्च शुचिरेव च।
नभोनभस्यौ विप्रेन्द्रा इषश्चोर्जस्तथैव च ।।२२।।

सहः सहस्यौ च तथा तपस्यश्च तपः पुनः ।
एते द्वादश मासास्तु वर्षं वै मानुषं द्विजाः ।।२३।।
वासंतिकस्तथा ग्रैष्मः शुभो वै वार्षिकस्तथा ।
शारदश्च हिमश्चैव शैशिरो ऋतवः स्मृताः ।।२४।।
धाताऽर्यमाऽथ मित्रश्च वरुणश्चेन्द्र एव च।
विवस्वांश्चैव पूषा च पर्जन्योंऽशुर्भगस्तथा ।।२५।।
त्वष्टा विष्णुः पुलस्त्यश्च पुलहश्चात्रिरेव च ।
वसिष्ठश्चाङ्गिराश्चैव भृगुर्बुद्धिमता वरः ।।२६।।
भारद्वाजो गौतमश्च कश्यपश्च क्रतुस्तथा ।
जमदग्निः कौशिकश्च वासुकिः कंकणी करः ।।२७।।
तक्षकश्च तथा नाग एलापत्रस्तथा द्विजाः ।
शङ्खपालस्तथा चान्यस्त्वैरावत इति स्मृतः ।।२८।।

हे विप्रेन्द्रगण ! मधु और माधव, शुक्र और शुचि नभ और नभस्य, इष और ऊर्ज, सह और सहस्य तथा तप तपस्य ये मानुष वर्ष के बारह मास होते हैं ।।२२।।२३।। वासन्तिक, ग्रैष्म, शुभ वार्षिक, शारद, हिम और शैशिर ये ऋतुयें कही गई हैं ।।२४।। अब द्वादश आदित्यों को उन के नामों को कह कर बताते हैं। धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अंशु, भग, त्वष्टा और विष्णु ये बारह आदित्य हैं। अब ऋषियों को बताते हैं—पुलस्त्य, पुलह, अत्रि, वसिष्ठ, अङ्गिरा, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ भृगु, भारद्वाज, गौतम, कश्यप, क्रतु, जमदग्नि और कौशिक ये ऋषियों के नाम हैं जो कि सूर्य का भजन किया करते हैं। अब नागों के नाम, कथन करते हुए उन्हें बताते हैं—वासुकि, कंकणीकर, तक्षक, नाग, एलापत्र, शङ्खपाल, अन्य ऐरावत कहे गये हैं ।।२५।।२६।।२७।।२८।।

धनंजयो महापद्मस्तथा कर्कोटकः स्मृतः ।
कंबलोऽश्वतरश्चैव तुंबुरुर्नारदस्तथा ॥२६॥

हाहा हूहूमुं निश्रेष्ठा विश्वावसुरनुत्तमः ।
उग्र सेनोऽथ सुरुचिरन्यश्चैव परावसुः ॥३०॥

चित्रसेनो महातेजाश्चोर्णायुश्चैव सुव्रताः ।
धृतराष्ट्रः सूर्यवर्चा देवी साक्षात्कृतस्थला ॥३१॥

शुभानना शुभश्रोणिर्दिव्या वै पुंजिकस्थला ।
मेनका सहजन्या च प्रम्लोचाऽथ शुचिस्मिता ॥३२॥

अनुम्लोचा घृताची च विश्वाची चोर्वशी तथा ।
पूर्वचित्तिरिति ख्याता देवी साक्षात्तिलोत्तमा ॥३३॥

रंभा चांभोजवदना रथकृद्ग्रामणीः शुभः ।
रथौजा रथचित्रश्च सुबाहुर्व रथस्वनः ॥३४॥

वरुणश्च तथैवान्यः सुषेणः सेनजिच्छुभः ।
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च क्षतजित्सत्यजित्तथा ॥३५॥

धनञ्जय, महापद्म, कर्कोटक, कम्बल और अश्वतर ये भी सर्पों के विशिष्ट नाम तथा जातियाँ हैं। तुम्बरु, नारद, हा हा, हू हू ये मुनि-श्रेष्ठा गन्धर्व हैं। सर्वोत्तम विश्वावसु, उग्रसेन, सुरुचि, परावसु, चित्रसेन, महातेजा, उर्णायु, धृतराष्ट्र और सूर्य वर्चा ये ही गन्धर्वों के नाम हैं जो सूर्य के साथ रहा करते हैं। अब अप्सरा गण के नामों को बताया जाता है—देवी, साक्षात्कृत स्थलाशुभानना, शुभश्रोणि, दिव्या, पुञ्जिक स्थला, मेनका, सहजन्या, प्रम्लोचा, शुचिस्मिता, अनुम्लोचा, घृताची, विश्वाची, उर्वशी, पूर्वचित्ती साक्षात् देवी तिलोत्तमा, रम्भा, अम्भोजवदना ये अप्सराएँ हैं। अब सारथियों के नाम बताते हैं--रथ-कृत्, ग्रामणी, शुभ, रथौजा, रथचित्र, सुबाहु और रथस्वन, वरुण, सुषेण, शुभ सेनजित्, तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, क्षतजित् और सत्यजित् ये नाम हैं॥२६॥३०॥३१॥३२॥३३॥३४॥३५॥

रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च पौरुषेयो वधस्तथा ।
सर्पो व्याघ्रः पुनश्चापो वातो विद्युद्दिवाकरः ॥३६॥
ब्रह्मोपेतश्च रक्षेन्द्रो यज्ञोपेतस्तथैव च ।
एते देवादयः सर्वे वसंत्यर्के क्रमेण तु ॥३७॥
स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः ।
धात्रादिविष्णुपर्यंता देवा द्वादश कीर्तिताः ॥३८॥
आदित्यं परमं भानुं भाभिराप्याययंति ते ।
पुलस्त्याद्याः कौशिकांता मुनयो मुनिसत्तमाः ॥३९॥
द्वादशैव स्तवैर्भानुं स्तुवन्ति च यथाक्रमम् ।
नागाश्चाश्वतरान्तास्तु वासुकीप्रमुखाः शुभाः ॥४०॥
द्वादशैव महादेवं वहंत्येवं यथाक्रमम् ।
क्रमेण सूर्यवर्चान्तास्तु बुरु प्रमुखांबुपम् ॥४१॥
गीतैरेनमुपासंते गंधर्वा द्वादशोत्तमाः ।
कृतस्थलाद्या रंभांता दिव्याश्चाप्सरसो रविम् ॥४२॥
ताडवै सरसैः सर्वाश्चोपासंते यथाक्रमम् ।
दिव्याः सत्यजिदन्ताश्च ग्रामण्यो रथकृन्मुखाः ॥४३॥
द्वादशास्य क्रमेणैव कुर्वंतेभीपुसंग्रहम् ।
प्रयाति यज्ञोपेतांता रक्षोहेतिमुखाः सहः ॥४४॥
सायुधा द्वादशैवैते राक्षसाश्च यथाक्रमम् ।
धातार्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः ॥४५॥

अब राक्षसो के नामो का उल्लेख किया जाता है—हेतिरक्ष, प्रहेति, पौरुषेय, वध, सर्प, व्याघ्र, आपः (जल), वात, विद्युत, दिवाकर, ब्रह्मोपेत, रक्षोन्द्र और यज्ञोपेत ये समस्त देव आदि क्रम से अर्क (सूर्य) में वास किया करते हैं ॥३६॥३७॥ ये द्वादश सप्तक गण हैं जो स्थान के अभिमानी हैं अर्थात् स्थान पर रहने के गर्व वाले हैं। धाता से आदि लेकर विष्णु पर्यन्त बारह देव कहे गये हैं ॥३८॥ ये सब परम भानु आदित्य को अपनी भा के द्वारा सन्तृप्त किया करते हैं। मुनियो में

परम श्रेष्ठ पुलस्त्य से लेकर कौशिक पर्यन्त मुनिगण द्वादश अपने स्तवों के द्वारा यथाक्रम भानु की स्तुति किया करते हैं। अश्वतर के अन्त तक नाग हैं जिनमें वासुकि परम प्रमुख एवं शुभ हैं ॥३९॥४०॥ ये भी द्वादश ही हैं जो महान् देव को यथाक्रम वहन किया करते हैं। क्रम से सूर्यवर्चा के अन्त तक जिनमें तुम्बरू प्रमुख अम्बुप हैं ॥४१॥ ये उत्तम द्वादश गन्धर्व अपने गीतों के द्वारा सूर्य की उपासना किया करते हैं। कृतस्थला जिनमें पहिला नाम है ऐसी रम्भा के नाम तक दिव्य अप्सराएँ अपने सरस ताण्डवों के द्वारा ये सब रवि की यथाक्रम उपासना करती हैं। सत्यजित् जिनमें अन्तिम हैं ऐसे ये दिव्य ग्रामणी हैं, जिनमें रथकृत् प्रमुख है। ये भी द्वादश ही हैं जो क्रम से ही इस रविदेव के अभीषु (अभिष्टुत) का संग्रह किया करते हैं। यज्ञोपेनान्त पर्यन्त जिनमें रक्षोहेति प्रमुख हैं। ये अपने आयुध के सहित द्वादश राक्षस हैं जो यथाक्रम साथ रहते हैं। धाता और अर्यमा दो आदित्य हैं। पुलस्त्य और पुलह ये दो प्रजापति हैं ॥४२॥४३॥४४॥४५॥

> उरगो वासुकिश्चैव कंकणीकश्च तावुभौ।
> तुंबुरुर्नारदश्चैव गंधर्वौ गायतां वरौ ॥४६॥
> कृतस्थलाऽप्सराश्चैव तथा वै पुंजिकस्थला।
> ग्रामणी रथकृच्चैव रथौजाश्चैव तावुभौ ॥४७॥
> रक्षो हेति प्रहेतिश्च यातुधानावुदाहृतौ।
> मधुमाधवयोरेष गणो वसति भास्करे ॥४८॥
> वसति ग्रीष्मकौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च ह।
> ऋषिरत्रिर्वसिष्ठश्च तक्षको नाग एव च ॥४९॥

प्रत्येक गण में से दो दो प्रमुख अधिकारियों को बताते हैं, उरग वासुकि और कङ्कणीक ये दो हैं। गायन करने वालों में परम श्रेष्ठ तुम्बरु, और नारद ये दो प्रमुख अधिकारी गन्धर्व हैं ॥४६॥ अप्सराओं में कृतस्थला और पुञ्जिकस्थला दो हैं। रथकृत और रथौजा ये दो

ग्रामणी हैं। राक्षस हेति और प्रहेति ये दो यातुधान प्रमुख अधिकारी हैं। मधु और माधव इन दो नोकागण भास्कर में निवास करता है। ॥४७॥४८॥ मित्र और वरुण ये दो ग्रीष्म ऋतु के मास वास किया करते हैं। अत्रि और वसिष्ठ ऋषि और तक्षक नाग शुचि और शुक्र नाम वाले मासो मे सूर्य मे निवास करते हैं ॥४९॥

मेनका सहजन्या च गंधर्वौ च हहाहुहूः।
सुबाहुनामा ग्रामण्यौ रथचित्रश्च तावुभौ ॥५०॥
पौरुषेयो वधश्चैव यातुधानावुदाहृतौ ।
एते वसंति वै सूर्ये मासयोः शुचिशुक्रयोः ॥५१॥
ततः सूर्ये पुनश्चान्या नीवसंतोह देवताः।
इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अंगिरा भृगुरेव च ॥५२॥
एलापत्रस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च तावुभौ ।
विश्वावसूग्रसेनौ च वरुणश्च रथस्वनः ॥५३॥
प्रम्लोचा चैव विख्याता अनुम्लोचा च ते उभे।
यातुधानास्तथा सर्पो व्याघ्रश्चैव तु तावुभौ ॥५४॥
नभोनभस्ययोरेष गणो वसति भास्करे।
पर्जन्यश्चैव पूषा च भरद्वाजोऽथ गौतमः ॥५५॥
धनंजय इरावांश्च सुरुचिः सपरावसुः ।
घृताची चाप्सरः श्रेष्ठा विश्वाची चातिशोभना ॥५६॥

मेनका और सह जन्या अप्सरा, हा हा और हू हू गन्धर्व, सुबाहु और रथचित्र ये दो ग्रामणी, पौरुषेय और वध ये दो उदाहृत यातुधान ये सब भी शुचि एवं शुक्र मासो मे सूर्य मे निवास करते हैं ॥५०॥५१॥ इसके अनन्तर सूर्य मे अन्य देवता भी निवास किया करते हैं। उनके नाम इन्द्र, विवस्वान, अङ्गिरा और भृगु ये दो देवता और दो ऋषि एवं एलापत्र और शङ्खपाल ये दो सर्प, विश्वा वसु और उग्रसेन, वरुण और रथस्वन, विख्यात, प्रम्लोचा और अनुम्लोचा ये दोनो, यातुधान तथा सर्प

और व्याघ्र ये दो, नभ और नभस्ययून दोनों का गण भास्कर मे निवास किया करते हैं। पर्जन्य और पूषा, भरद्वाज और गौत्तम, धनञ्जय और इरावान्, सुरुचि और परावसु, अप्सराओ मे श्रेष्ठ घृताची, विश्वाची और अतिशोभना ये ऊर्ज तथा इष मासो मे सूर्य मे निवास करते हैं। ॥५२॥५३॥५४॥५५॥५ ॥

सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ।
आपो वातश्च तावेतौ यातुधानावुभौ स्मृतौ ॥५७॥
वसंत्येते तु वै सूर्ये मास ऊर्जे इषे च ह।
हैमतिकौ तु द्वौ मासौ वसंति च दिवाकरे ॥५८॥
अंशुर्भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च ऋतुः सह।
भुजंगश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा ॥५९॥
चित्रसेनश्च गन्धर्व ऊर्णायुश्चैव तावुभौ।
उर्वशी पूर्वचित्तिश्च तथैवाप्सरसावुभे ॥६०॥
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ।
विद्युद्दिवाकरश्चोभौ यातुधानावुदाहृतौ ॥६१॥
सहे चैव सहस्ये च वसंत्येते दिवाकरे।
ततः शैशिरयोश्चापि मासयोर्निवसंति वै ॥६२॥
त्वष्टा विष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च।
काद्रवेयौ तथा नागौ कंबलाश्वतरावुभौ ॥६३॥

सेनजित् और सुषेण, सेनानी और ग्रामणी ये दो, आप और वात ये दो यातुधान कहे गये हैं, ये सब सूर्य मे ऊर्ज तथा इष मास मे बसते हैं। दो हैमन्तिक मास दिवाकर मे निवास करते हैं ॥५७॥५८॥ अंशु और भग ये दोनों, कश्यप और क्रतु, भुजङ्ग, तथा महापद्म और कर्कोटक सर्प, चित्रसेन और ऊर्णायु ये दो गन्धर्व, उर्वशी और पूर्व चित्ति ये दो अप्सराएँ, तार्क्ष्य तथा अरिष्टनेमि एवं सेनानी और ग्रामणी ये दो, विद्युत् और दिवाकर ये उदाहृत दो यातुधान सह और सहस्य मासों मे दिवाकर मे ये सब निवास किया करते हैं। इसके अनन्तर

शैशिर ऋतु के दो मासो मे भी निवास करते हैं ॥५९॥६०॥६१॥६२॥ त्वष्टा, विष्णु, जमदग्नि तथा विश्वामित्र, काद्रवेय दो नाग, कम्बलाश्वतर ये दोनो ॥६३॥

धृतराष्ट्रः सगंधर्वः सूर्यवर्चास्तथैव च ।
तिलोत्तमाप्सराश्चैव देवी रंभा मनोहरा ॥६४॥
रथजित्सत्यजिच्चैव ग्रामण्यौ लोकविश्रुतौ ।
ब्रह्मोपेतस्तथा रक्षो यज्ञोपेतश्च यः स्मृतः ॥६५॥
एते देवा वसन्त्यर्के द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु ।
स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः ॥६६॥
सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम् ।
ग्रथितैः स्वैर्वचोभिस्तु स्तुवंति मुनयो रविम् ॥६७॥
गधर्वाप्सरसश्चैव नृत्यगेयैरुपासते ।
ग्रामणीयक्षभूतानि कुर्वंतेभीषुसंग्रहम् ॥६८॥
सर्पा वहंति वै सूर्यं यातु धानानुयाति वै ।
वालखिल्या नयन्त्यस्त परिवार्योदयाद्रविम् ॥६९॥
एतेषामेव देवाना यथा तेजो यथा तपः ।
यथा योग यथा मन्त्र यथा धर्मं यथा वलम् ॥७०॥

सगन्धर्व, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्चा, तिलोत्तमा अप्सरा, देवी रम्भा, मनोहरा, लोक मे प्रसिद्ध रथजित् और सत्यजित् ग्रामणी, ब्रह्मोपेत राक्षस और जो यज्ञोपेत कहा गया है। ये समस्त देव क्रम से अर्क मे दो-दो मास तक वास किया करते हैं। ये द्वादश सप्तक गण सब स्थानाभिमानी हैं ॥६४॥६५॥६६॥ ये सब तेज के द्वारा उत्तम तेज सूर्य का आप्यायन अर्थात् सन्तृप्ति किया करते हैं। मुनिगण अपने वचनो के द्वारा ग्रथित अर्थात् विरचित स्तवो से रवि की स्तुति किया करते हैं। ॥६७॥ गन्धर्वगण तथा अप्सराओं के समुदाय अपने गायनो तथा नृत्यो के द्वारा सूर्य की उपासना करते हैं। ग्रामणी, यक्ष और भूत उसके अभीषु का सग्रह करते हैं ॥६८॥ सर्प सूर्य का वहन किया करते हैं और यातु-

धान अनुमान करते हैं। बालखिल्य मुनिगण उदयाचल से पारिवारित कर रवि को ग्रस्ताचल ले जाते हैं।।६६।। इन देवों का जिस प्रकार का तेज, तप, योग, मन्त्र, धर्म और बल होता है ।।७०।।

तथा तपत्यसौ सूर्यस्तेषामिद्धस्तु तेजसा ।
इत्येते वै वसंतीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे ।।७१।।
ऋषयो देवगंधर्वपन्नगाप्सरसां गणाः ।
ग्रामण्यश्च तथा यक्षा यातुधानाश्च मुख्यतः ।।७२।।
एते तपन्ति वर्षंति भांति वांति सृजंति च ।
भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्तीह कीर्तिताः ।।७३।।
मानवानां शुभं ह्येते हरंति च दुरात्मनाम् ।
दुरितं सुप्रचाराणां व्यपोहंति क्वचित् क्वचित् ।।७४।।
विमाने च स्थिता दिव्ये कामगे वातरंहसि ।
एते सहैव सूर्येण भ्रमंति दिवसानुगाः ।।७५।।
वर्षन्तश्च तपंतश्च ह्लादयंतश्च वै द्विजाः ।
गोपायंतीह भूतानि सर्वाणि ह्यामनुक्षयात् ।।७६।।
स्थानाभिमानिनामेतत्स्थानं मन्वन्तरेषु वै ।
अतीतानागतानां वं वर्तते सांप्रतं च ये ।।७७।।

उनके तेज से समिद्ध होकर यह सूर्य वैसा ही तपता है। ये सब दो-दो मास तक दिवाकर में निवास किया करते हैं ।।७१।। ऋषिगण, देव, गन्धर्व पन्नग, अप्सराओं के समूह, ग्रामणी, यक्ष और यातुधान मुख्य रूप से ये सब तपते हैं, बरसते हैं, प्रकाश देते हैं, वहन करते हैं तथा वायु सञ्चार करते हैं और सृजन करते हैं। ये कीर्तित होने पर प्राणियों के अशुभ कर्म का नाश किया करते हैं ।।७२।।७३।। ये मानवों के शुभ कर्म का हरण किया करते हैं और कहीं-कहीं पर सुप्रचार वाले दुरात्माओं के दुरित का नाश करते हैं ।।७४।। इच्छा के अनुसार गमन करने वाले, परम दिव्य तथा वायु के तुल्य वेग वाले वेमान में स्थित ये सब दिवस के अनुगमन करने वाले होते हुए सूर्य

के साथ ही भ्रमण किया करते हैं ॥७५॥ हे द्विजगण ! ये वर्षते हुए, तपते हुए, ह्लादयित होते हुए, इस ससार मे मनु के क्षय पर्यंत समस्त भूतों की रक्षा करते है ॥७६॥ मन्वन्तरो मे यह स्थान स्थानाभिमानियो का है। जो अतीत हो चुके है या आगे आने वाले हैं तथा अब वर्त्तमान हैं ॥७७॥

एते वसति वै ऽसूर्ये सप्तकास्ते चतुर्दश ।
चतुर्दशसु सर्वेषु गणा मन्वन्तरेष्विह ॥७८॥
सक्षेपाद्विस्तराच्चैव यथावृत्त यथाश्रुतम् ।
कथित मुनिशार्दूला देवदेवस्य धीमतः ॥७९॥
एते देवा वसत्यर्के द्वौद्वौ मासौ क्रमेण तु ।
स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तका. ॥८०॥
इत्येष एकचक्रेण सूर्यस्तूर्णं रथेन तु ।
हरितैरक्षरैरश्वैः सर्पतेऽसौ दिवाकरः ॥८१॥
अहोरात्र रथेनासावेक चक्रेण तु भ्रमन् ।
सप्तद्वीपसमुद्रा गा सप्तभि. सर्पते दिवि ॥८२॥

ये चतुर्दश सप्तक हैं जो कि सूर्य मे वास करते हैं। यहाँ पर चतुर्दश समस्त मन्वन्तरा म ये गण होते हैं ॥७८॥ हे मुनियो मे शार्दूलो ! सक्षेप से और विस्तार से जैसा भी हुआ और जो भी कुछ श्रवण किया है वह धीमान् देवो के देव का सभी कुछ हाल मैंने कह दिया है ॥७९॥ य देवता दो दो मास पर्यन्त क्रम से सूर्य मे निवास किया करते हैं। ये द्वादश सप्तक गण स्थानाभिमानी होते हैं ॥८०॥ इस प्रकार स यह सूर्यदेव एक पहिए वाले रथ के द्वारा जिस म अक्षर (नाश रहित) हरित अश्व हैं, बड़ी शीघ्रता से दिवाकर गमन किया करता है ॥८१॥ यह सूर्य रातदिन एक चक्र वाले रथ से भ्रमण करता हुआ दिव लोक मे सात अश्वो स सातद्वीप और सात समुद्र वाली भूमि मे तेजी से गमन किया करता है ॥८२॥

सोम के रथ का निरूपण

वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि निशाकरः ।
त्रिचक्रोभयतोश्वश्च विज्ञेयस्तस्य वै रथः ॥१॥
शतारैश्च त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः ।
दशभिस्त्वकृशैर्दिव्यैरसंगैस्तैर्मनोजवैः ॥२॥
रथेनानेन देवैश्च पितृभिश्चैव गच्छति ।
सोमो ह्यम्बुमयैर्गोभिः शुक्लैः शुक्लगभस्तिमान् ॥३॥
क्रमते शुक्लपक्षादौ भास्करात्परमास्थितः ।
आपूर्यते परस्यातः सततं दिवसक्रमात् ॥४॥
देवैः पीतं क्षये सोममाप्याययति नित्यशः ।
पीत पञ्चदशाहं तु रश्मिनैकेन भास्करः ॥५॥
आपूरयन् सुषुम्नेन भागंभागमनुक्रमात् ।
इत्येषा सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः ॥६॥
स पौर्णमास्यां दृश्येत शुक्लः संपूर्णमण्डलः ।
एवमाप्यायितं सोमं शुक्लपक्षे दिनक्रमात् ॥७॥

इस अध्याय मे सोम के उत्तम रथ का निरूपण किया जाता है। अमृत कलाओं के पान से उसका ह्रास होता है और सूर्य से इसका पोषण हुआ करता है, इसका वर्णन किया गया है। सूतजी ने कहा—अश्विनी आदि नक्षत्र अपने मार्ग मे गमन करने वाले हैं और चन्द्रमा अनुक्रम से गमन किया करता है। दक्षिण और उत्तर के भाग में इसके अश्व रहा करते हैं ऐसा इस चन्द्र का रथ जानना चाहिए ॥१॥ चन्द्रमा के रथ मे शत अरा हैं और तीन चक्र (पहिए) हैं। उस रथ मे अति श्रेष्ठ और शुक्ल वर्ण के दश अश्व होते हैं जो हृष्ट, पुष्ट, परम दिव्य, असङ्ग और मन के तुल्य वेग वाले होते हैं ॥२॥ इस प्रकार के अति सुन्दर रथ के द्वारा जलमय शुक्ल किरणों से शुक्ल किरणों से शुक्ल गभस्ति (किरण) वाला है ॥३॥ शुक्ल पक्ष के आदि प्रति पक्ष

मे अग्र मार्ग मे आस्थित होता हुआ यह चन्द्रमा क्रमण किया करता है। दिनो के क्रम से निरन्तर शुक्ल पक्ष का अन्त पूर्ण होता है ॥४॥ कृष्ण पक्ष मे पन्द्रह दिन तक अमावस्या पर्यन्त, नित्य देवो के द्वारा पीत पीत सोम क्षय को प्राप्त होता है फिर सुषुम्न नामक एक रश्मि से एक-एक भाग अनुक्रम से आपूरित करता हुआ भास्कर आप्यायित करता है। इस रीति से चन्द्रमा का यह कलेवर सूर्य के वीर्य से आप्यायित हुआ करता है ॥५॥६॥ शुक्ल पक्ष मे दिनो के क्रम से यह सोम ऐसा आप्यायित (सन्तृप्त) हो जाता है कि वह पूर्णमासी मे शुक्ल सम्पूर्ण मण्डल वाला हो जाता है ॥७॥

ततो द्वितीयाप्रभृति वहुलस्य चतुर्दशीम् ।
पिवंत्यम्बुमय देवा मधु सौम्यं सुधामृतम् ॥८॥
सभृत स्वर्धमासेन ह्यमृतं सूर्यतेजसा ।
पानार्थममृत सोम पौर्णमास्यामुपासते ॥९॥
एकरात्रि सुराः सर्वे पितृभिस्त्वृषिभिः सह ।
सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य च ॥१०॥
प्रक्षीयते परस्यातः पीयमानाः कलाः क्रमात् ।
त्रयस्त्रिशच्छताश्चैव त्रयस्त्रिशत्तथैव च ॥११॥
त्रयस्त्रिशत्सहस्राणि देवा. सोमं पिवति वै ।
एव दिनक्रमात्पीते विवुधैस्तु निशाकरे ॥१२॥
पीत्वार्धमास गच्छन्ति अमावास्या सुरोत्तमाः ।
पितरश्चोपतिष्ठति अमावास्या निशाकरम् ॥१३॥
ततः पंचदशे भागे किंचिच्छिष्टे कलात्मके ।
अपराह्णे पितृगणा जघन्य पर्युपासते ॥१४॥

पुनः कृष्ण पक्ष मे प्रतिपदा से लेकर चतुर्दशी तक चन्द्र सम्बन्धी मधुर जलमय अतिस्वच्छ अमृत को इन्द्रादि देव पान किया करते हैं ॥८॥ सूर्य के तेज से आधे मास मे सभृत (परिपूर्ण) अमृत होता

है। उस अमृत स्वरूप सोम को पान करने के लिये पूर्णमासी की एक ही रात्रि मे इन्द्र आदि देवगण पितरो और ऋषियो के साथ सेवन किया करते हैं जो कि कृष्ण पक्ष के आदि मे सोम भास्कर के अभिमुख रहता है ॥९॥१०॥ शुक्ल पक्ष के अन्त मे पीयमान (पीत हुई) कलायें क्रम से क्षीण हो जाया करती हैं, जो कि तेतीससौ तेतीस होती हैं ॥११॥ देवो के पुत्र एव पौत्र स्वरूप मे रहने वाले तेतीस सहस्र देव गण सोम का पान किया करते हैं। इस प्रकार से देवो के द्वारा निशाकर का पान करने लेने पर फिर वे सुरश्रेष्ठ आधे मास तक पान करके अमावस्या मे चले जाते हैं। अमावस्या मे पितृगण निशाकर के समीप उपस्थित हो जाया करते हैं ॥१२॥१३॥ इस के अनन्तर पन्द्रहवें भाग मे कलात्मक के कुछ शेष रहने पर अपराह्ण में पितर उस जघन्य की पर्युपासना किया करते हैं ॥१४॥

पिबति द्विकल काल शिष्टा तस्य कला तु या ।
निस्सृत तदमावास्या गभस्तिभ्यः स्वधामृतम् ॥१५॥
मासतृप्तिमवाप्याग्रचा पीत्वा गच्छति तेऽमृतम् ।
पितृभि पीयमानस्य पचदश्या कला तु या ॥१६॥
यावत् क्षीयते तस्य भाग: पञ्चदशस्तु स: ।
अमावास्या ततस्तस्या अतरा पूर्यते पुन: ॥१७॥
वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौ षोडश्या शशिन स्मृतौ ।
एव सूर्यनिमित्तैषा पक्षवृद्धिर्निशाकरे ॥१८॥

उसकी जो कला शेष रहती है उसको दो घडी के समय तक पान किया करते हैं। वह स्वधामृत अमावस्या मे उसकी गभस्तियो (किरणो) से नि सृत हुआ करता है। ॥१५॥ वे अमृत का पान करके पूर्णमास की तृप्ति को प्राप्त करते हैं। पञ्चदशी मे पितृगणो के द्वारा पीयमान की जो कला है जब तक उसका पन्द्रहवाँ भाग क्षीण होता है फिर अमावस्या के मध्य में पूर्णमासी में वह पूर्ण हो जाया करता है।

॥१६॥१७॥ पक्ष के आदि मे प्रतिपदा मे चन्द्रमा के वृद्धि और क्षय चहे गये चन्द्रमा मे यह पक्ष वृद्धि सूर्य के ही निमित्त वाली हुआ करती है ॥१८॥

ज्योतिश्चक्रे ग्रहचार कथनं

अष्टभिश्च हयैर्युक्तः सोमपुत्रस्य वै रथः।
वारितेजोमयश्चाथ पिशङ्गैश्चैव शोभनैः ॥१॥
दशभिश्चाकृशैरश्वैर्नानावर्णै रथः स्मृतः।
शुक्रस्य क्ष्मामयैर्युक्तो दैत्याचार्यस्य धीमतः ॥२॥
अष्टाश्वश्चाथ भौमस्य रथो हैम. सुशोभनः।
जीवस्य हैमश्चाष्टाश्वो मरस्यायसनिर्मितः ॥३॥
रथ आपोमयरश्वैर्दशभिस्तु सितेतरै।
स्वर्भानोर्भास्करारेश्च तथा चाष्टहयः स्मृतः ॥४॥
सर्वे ध्रुवनिबद्धा वै ग्रहास्ते वातरश्मिभिः।
एतेन भ्राम्यमाणाश्च यथायोगं व्रजन्ति वै ॥५॥
यावत्यश्चैव ताराश्च तावन्तश्चैव रश्मय.।
सर्वे ध्रुवनिबद्धाश्च भ्रमन्तो भ्रामयन्ति तम् ॥६॥
अलातचक्रवद्याति वातचक्रेरितानि तु।
यस्माद्वहति ज्योतीषि प्रवहस्तेन स स्मृतः ॥७॥

इस अध्याय मे बुध आदि के पृथक रथ, ग्रह मण्डलो के नाम और उनकी गतियो का कीर्तन किया गया है। सूत जी ने कहा–चन्द्रमा के पुत्र बुध का रथ आठ घोडो से युक्त होता है। यह रथ जल और तेज से पूर्ण होता है और इसके अश्व पिशङ्ग वर्ण वाले, अकृश, नाना वर्ण वाले, शोभन और संख्या मे दश होते हैं। दैत्यो के आचार्य परम

बुद्धिमान् शुक्र का रथ पार्थिव अश्वों से युक्त होता है ॥१॥२॥ मङ्गल जो भूमि का पुत्र है। इसीलिये इसका नाम भौम होता है। इसका रथ आठ अश्वों वाला, अत्यन्त शोभा से युक्त और सुवर्ण का है। गुरु (बृहस्पति) का रथ भी आठ अश्वो वाला होता है। शनि जिसकी गति बहुत धीमी होती है अतएव इसका नाम मन्द होता है। इसका रथ लोहे का निर्मित हुआ है। इसका रथ कृष्ण वर्ण वाले जलमय दश अश्वो से युक्त होता हैं। सूर्य के शत्रु स्वर्भानु का रथ आठ अश्वो से युक्त होता है ॥३॥४। ये समस्त ग्रह ध्रुव से वात रूपी रश्मियो के द्वारा निबद्ध होते हैं। इसके द्वारा ये भ्राम्यमाण होते हुए यथायोग चला करते हैं ॥५॥ जितने तारा हैं उतनी रश्मियाँ होती हैं। ये सभी ध्रुव के साथ निबद्ध हैं। ये भ्रमण करते हुए उसको भ्रमण कराते हैं ॥६॥ ये वायु के चक्र से प्रेरित होते हुए अलात (जलती हुई लकडी) के चक्र की भाँति चला करते हैं। जिस कारण से ये ज्योतियाँ बहती हैं इसीसे वह प्रवह कहा गया है ॥७॥

नक्षत्रसूर्याश्च तथा ग्रहतारागणैः सह।
उन्मुखाभिमुखाः सर्वे चक्रभूताः श्रिता दिवि ॥८॥
ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चैव ध्रुवमेव प्रदक्षिणम्।
प्रयाति चेश्वर द्रष्टुं मेढीभूतं ध्रुव दिवि ॥९॥
नवयोजनसाहस्रो विष्कभः सवितुः स्मृत।
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मण्डलस्य प्रमाणतः ॥१०॥
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृत.।
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाधस्तात्प्रसर्पति ॥११॥
उद्धृत्य पृथिवीछाया निर्मिता मंडलाकृतिम्।
स्वर्भानोस्तु वृहत्स्थानं तृतीय यत्तमोमयम् ॥१२॥
चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते।
विष्कभान्मडलाच्चैव योजनाच्च प्रमाणतः ॥१३॥

भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः ।
पादहीनौ वक्रसौरी तथाऽऽयामप्रमाणत. ॥१४॥

सूर्य और नक्षत्र समस्त तारा गणों के सहित उन्मुख और अभिमुख होते हुए अन्तरिक्ष मे सब चक्र भूत होकर अर्थात् एक वर्त्तुल आकार मे रहने वाले होकर आश्रित हैं ॥८॥ ये सब ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित होते हुए ध्रुव की ही प्रदक्षिणा कर दिवि लोक मे मेढीभूत स्वामी ध्रुव को देखने के लिये जाया करते हैं अर्थात् घूमा करते हैं । ॥९॥ सूर्य का मध्य भाग नौ हजार योजन वाला कहा गया है । मण्डल के प्रमाण से उसका विस्तार तिगुना बताया गया है ॥१०॥ सूर्य के विस्तार से दुगुना चन्द्र का विस्तार बताया गया है । इन दोनों के विस्तार के समान ही स्वर्भानु है जो नीचे होकर प्रसर्पण किया करता है ॥११॥ मण्डल की आकृति वाली विरचित पृथिवी की छाया को लेकर स्वर्भानु का तीसरा तम पूर्ण वृहत् स्थान होता है ॥१२॥ चन्द्रमा का सोलहवाँ भाग भार्गव का मध्य से, मण्डल से, योजन से और प्रमाण से होता है ॥१३॥ भार्गव (शुक्र) से आयाम और प्रमाण मे बृहस्पति पाद हीन होता है । उसी भाँति बृहस्पति से आयाम और प्रमाण से भौम और सूर्य का पुत्र शनि ये दोनों भी पाद हीन अर्थात् चतुर्थ भाग कम होते हैं ॥१४॥

विस्तारान्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः ।
तारा नक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै ॥१५॥
बुधेन तानि तुल्यानि विस्तारान्मण्डलादपि ।
प्रायशश्च द्वयोर्गीनि विद्यादृक्षाणि तत्त्ववित् ॥१६॥
तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम् ।
शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैव याजने ॥१७॥
सर्वोपरि निकृष्टानि तारकामण्डलानि तु ।
योजनद्वयमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते ॥१८॥

उपरिष्टात्त्रयस्तेषां ग्रहा ये दूरसर्पिणः।
सौरोङ्गिराश्च वक्रश्च ज्ञेया मंदविचारिणः ॥१६॥
तेभ्योधस्तात्तु चत्वारः पुनरन्ये महाग्रहाः।
सूर्यः सोमो बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगाः ॥२०॥
तावंत्यस्तारकाः कोट्यो यावंत्यृक्षाणि सर्वशः।
ध्रुवात्तु नियमाच्चैषामृक्षमार्गे व्यवस्थितिः ॥२१॥

इन दोनों भौम और शनि से विस्तार और मडन की दृष्टि से बुध पादहीन होता है। वपु वाले चन्द्र योगी अश्विनी आदि नक्षत्र जो भी हैं वे सब बुध से विस्तार और मडल मे प्रायः तत्त्व वेत्ता को समान ही जानने चाहिये ॥१५॥१६॥ परस्पर मे होन ये सैकड़ो तारा नक्षत्र रूप वाले पांच, चार, तीन और दो योजन हुआ करते हैं ॥१७॥ सबसे ऊपर निकृष्ट तारा मडल दो योजन मात्र ही होते हैं और इनसे छोटे नही हुआ करते हैं ॥१८॥ इनसे ऊपर के भाग में दूर मे सर्पण (गमन) करने वाले तथा मन्दगति से चलने वाले शनि, अङ्गिरा और भौम ये तीन ग्रह ही होते है ॥१६॥ उनसे नीचे के भाग मे चार अन्य महाग्रह होते हैं जिनके नाम सूर्य, सोम, बुध और भार्गव (शुक्र) हैं। ये शीघ्र गमन करने वाले भी होते हैं ॥२०॥ जितने करोड नक्षत्र है उतने ही सूक्ष्म तारका हैं। इन नक्षत्रो के ऋक्ष मार्ग मे अवस्थिति निश्चल होती है ॥२१॥

सप्ताश्वस्यैव सूर्यस्य नीचोच्चत्वमनुक्रमात्।
उत्तरायणमार्गस्थो यदा पर्वसु चन्द्रमाः ॥२२॥
उच्चत्वाद्दृश्यते शीघ्रं नातिव्यक्तैर्गभस्तिभिः।
तदा दक्षिणमार्गस्थो नीचां वीथिमुपाश्रितः ॥२३॥
भूमिरेखावृतः सूर्यः पौर्णिमावास्ययोस्तदा।
ददर्श च यथाकालं शीघ्रमस्तमुपैति च ॥२४॥
तस्मादुत्तरमार्गस्थो ह्यमावास्यां निशाकरः।
ददृशे दक्षिणे मार्गे नियमाद्दृश्यते न च ॥२५॥

ज्योतिषां गतियोगेन सूर्यस्य तमसा वृत्तः ।
समानकालास्तमयौ विषुवत्सु समोदयौ ॥२६॥
उत्तरासु च वीथीषु व्यंतरास्तमनोदयौ ।
पौर्णिमावास्ययोर्ज्ञेयौ ज्योतिश्चक्रानुवर्तिनौ ॥२७॥
दक्षिणायनमार्गस्थो यदा चरति रश्मिवान् ।
ग्रहाणां चैव सर्वेषा सूर्योधस्तात्प्रसर्पति ॥२८॥

सात अश्वो वाले सूर्य के ही अनुक्रम से नीच और उच्च वर्त्ती होना जानना चाहिये । जब उत्तरायण मार्ग मे स्थित रहने वाला चन्द्रमा पर्वो (पौर्ण मासियो) मे उच्च होने से शीघ्र ही दिखलाई दिया करता है जिसकी किरणें अत्यन्त व्यक्त नही होती हैं । उस समय मे जब कि दक्षिणायन मे स्थित नीच वीथि का उपाश्रय लेने वाला सूर्य होता है तो पूर्णमासी और अमावस्या मे भूमि रेखावृत दिखाई देता है और यथा समय शीघ्र ही ग्रस्त हो जाया करता है ॥२२॥२३॥२४॥ अमावस्या मे उत्तम मार्ग मे स्थित निशाकर दिखाई दिया करता है । दक्षिण मार्ग मे सूर्य की ज्योतियो के गति-योग से अन्धकारावृत होता हुआ नियम से नही दिखलाई देता है । विषुवत् अर्थात् मेष की सङ्क्रान्ति के दिनो मे सूर्य और चन्द्र ये दोनो समान काल मे ग्रस्त और उदय वाले होते हैं ॥२५॥२६॥ उत्तर वीथियो मे जबकि विषम काल में इनका उदय और अस्तमन होता है तब पूर्णिमासी और अमावस्या इन दोनो मे इनको ज्योतिश्चक्र के अनुवर्त्ती जानना चाहिए ॥२७॥ जिस समय मे सूर्य दक्षिणायन मार्ग मे अवस्थित होता है और गमन किया करता है तब समस्त ग्रहो के नीचे भाग में ही सूर्य प्रसर्पण किया करता है ॥२८॥

विस्तीर्ण मंडलं कृत्वा तस्योर्ध्वं चरते शशी ।
नक्षत्रमंडल कृत्स्नं सोमादूर्ध्वं प्रसर्पति ॥२९॥
नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधादूर्ध्वं तु भार्गवः ।
वक्रस्तुः भार्गवादूर्ध्वं वक्रादूर्ध्वं बृहस्पतिः ॥३०॥

प्रजापतीनां दक्षं च मरुतां शक्रमेव च ।
दैत्यानां दानवानां च प्रह्लाद दैत्यपुंगवम् ॥४॥
धर्मं पितृणामधिपं निर्ऋतिं पिशिताशिनाम् ।
रुद्रं पशूनां भूताना नंदिनां गणनायकम् ॥५॥
वीराणां वीरभद्रं च पिशाचाना भयंकरम् ।
मातृणां चैव चामुण्डां सर्वदेवनमस्कृताम् ॥६॥
रुद्राणां देवदेवेशं नीललोहितमीश्वरम् ।
विघ्नानां व्योमजं देवं गजास्य तु विनायकम् ॥७॥

ऋषियों ने कहा—सबकी आत्मा प्रजापति ब्रह्मा ने देव और दैत्यों मे प्रमुख सबको किस प्रकार से अभिषिक्त किया था, यह अब आप हमको बताइये ॥१॥ सूतजी ने कहा— प्रजापति ब्रह्मा भगवान् ने ग्रहों के स्वामित्व के पद पर दिवाकर को अभिषिक्त किया था तथा ऋक्षों के और ओषधियों के आधिपत्य पर सोम को अभिषिक्त किया था ॥२॥ जलों के स्वामी के पद पर वरुण को, धनों के आधिपत्य पर कुबेर को, आदित्यों का स्वामी विष्णु को और वसुओं के आधिपत्य पर पावक को अभिषिक्त किया था ॥३॥ प्रजापतियों का स्वामी दक्ष को और मरुतों का अधिपति इन्द्र को तथा दैत्यों और दानवों का स्वामी दैत्यों मे परम श्रेष्ठ प्रह्लाद को अभिषिक्त किया था ॥४॥ पितृगणों का अधिप धर्मराज को और मासाशियों का स्वामी निर्ऋति को एवं पशुओं का रुद्र और भूतों एवं नन्दियों का स्वामी गणनायक शैलादिक को बनाया था ॥५॥ वीरों का स्वामी वीर भद्र को तथा पिशाचों का भयङ्कर एवं माताओं का आधिपत्य समस्त देवों के द्वारा नमस्कृत चामुण्डा को अभिषिक्त किया था ॥६॥ रुद्रों का अधिपति देवदेवेश नील लोहित ईश्वर को और विघ्नों का स्वामी शिव के आत्मज गज के समान मुख वाले विनायक गणेश को अभिषिक्त किया था ॥७॥

स्त्रीणां देवीमुमादेवी वचसां च सरस्वतीम् ।
विष्णुं मायाविना चैव स्वात्मानं जगता तथा ॥८॥

हिमवंतं गिरीणां तु नदीनां चैव जाह्नवीम् ।
समुद्राणां च सर्वेषामधिपं पयसां निधिम् ॥९॥
वृक्षाणां चैव चाश्वत्थं प्लक्षं च प्रपितामहः ॥१०॥
गंधर्वविद्याधरकिन्नराणामीशं पुनश्चित्ररथं चकार ।
नागाधिपं वासुकिमुग्रवीर्यं सर्पाधिपं तक्षकमुग्रवीर्यम् ॥११॥
दिग्वारणानामधिपं चकार गजेन्द्रमैरावतमुग्रवीर्यम् ।
सुपर्णमीशं पततामथाश्वराजानमुच्चैः श्रवसं चकार ॥१२॥
सिंह मृगाणां वृषभं गवां च
मृगाधिपानां शरभं चकार ।
सेनाधिपानां गुहमप्रमेयं
श्रुतिस्मृतीनां लकुलीशमीशम् ॥१३॥
अभ्यर्षिचत्सुधर्माणं तथा शखपद दिशाम् ।
केतुमंतं क्रमेणैव हेमरोमाणमेव च ॥१४॥

स्त्रियों की स्वामिनी उमादेवी और वाणियों की अधिप सरस्वती तथा मायावियों का अधिपति विष्णु को और जगतों का स्वामी अपने आपको (ब्रह्मा को) अभिषिक्त किया था ॥८॥ पर्वतों का अधिपति हिमालय को बनाया था और नदियों के आधिपत्य पर गङ्गा को अभिषिक्त किया था। समस्त समुद्रों का स्वामी पयोनिधि को बनाया था। ॥९॥ सब वृक्षों के आधिपत्य पद पर पीपल के वृक्ष को प्रपितामह ने अभिषिक्त किया था ॥१०॥ गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरों का अधिपति चित्ररथ को बनाया था। नागों का स्वामी उग्रवीर्य वाले वासुकि को तथा सर्पों के अधिपति उग्रवीर्य वाले तक्षक को बनाया था ॥११॥ दिशाओं में स्थित गजों के स्वामी अति उग्र वीर्य वाले गजेन्द्र ऐरावत को बनाया था तथा पक्षियों का अधिपति सुपर्ण को और अश्वों का स्वामी उच्चैः श्रवा अश्व को अभिषिक्त किया था ॥१२॥ मृगों का अधिप सिंह को, गौओं का स्वामी वृषभ को और मृगाधिपों का अधिप शरभ को बनाया था। सेनाधिपों का स्वामी अप्रमेय स्कन्द को और श्रुतियों तथा

स्मृतियों का स्वामी लकुलीश नामधारी शिव के अवतारी को बनाया था ॥१३॥ दिशाओं के स्वामी सुधर्मा तथा शङ्खपद, केतुमान् एवं क्रम से हेमरोमा को अभिषिक्त किया था ॥१४॥

पृथिव्या पृथुमीशान सर्वेषा तु महेश्वरम् ।
चतुर्मूर्तिषु सर्वज्ञं शङ्कर वृषभध्वजम् · ॥१५॥
प्रसादाद्भगवाञ्छम्भोश्चाम्यषिचद्यथाक्रमम् ।
पुराभिषिच्य पुण्यात्मा रराज भुवनेश्वरः ॥१६॥
एतद्वो विस्तरेणैव कथित मुनिपुंगवा. ।
अभिषिक्तास्ततस्त्वेते विशिष्टा विश्वयोनिना ॥१७॥

पृथ्वी मे पृथु को और समस्त वस्तुओं का महेश्वर को जो विश्व प्राज्ञ तैजस तुरीय रूप वाली चार प्रकार की मूर्तियों मे सुख कारक और सर्व विषयक ज्ञान से विशिष्ट तथा धर्म की ध्वजा वाले हैं भगवान ने शम्भु के प्रसाद से यथाक्रम अभिषिक्त किया था । पहिले अभिषिक्त करके फिर पुण्यात्मा भुवनों के ईश्वर दीप्तिमान् हुए तथा शोभित हुए थे ॥१५॥१६॥ हे मुनियों मे श्रेष्ठतमो ! विश्व की योनि ब्रह्मा ने ये सब श्रेष्ठ अभिषिक्त किये थे । मैंने यह सब विस्तार के साथ आप लोगों के सामने बता दिया है ॥१७॥

सूर्यरश्मि स्वरूप कथनं

एतच्छ्रुत्वा तु मुनय. पुनस्त सशयान्विता. ।
पप्रच्छुरुत्तर भूयस्तदा ते रोमहर्षणम् ॥१॥
यदेतदुक्त भवता सूतेह वदता वर ।
एतद्विस्तरतो ब्रूहि ज्योतिषा च विनिर्णयम् ॥२॥
श्रुत्वा तु वचन तेषा तदा सूतः समाहितः ।
उवाच परमं वाक्य तेषा संशयनिर्णये ॥३॥

अस्मिन्नर्थे महाप्राज्ञैर्यदुक्तं शांतबुद्धिभिः ।
एतद्वोहं प्रवक्ष्यामि सूर्यचन्द्रमसोर्गतिम् ॥४॥
यथा देवगृहाणीह सूर्यचंद्रादयो ग्रहाः ।
अतः परं तु त्रिविधमग्नेर्वक्ष्ये समुद्भवम् ॥५॥
दिव्यस्य भौतिक स्याग्नेरथोग्नेः पार्थिवस्य च ।
व्युष्टायां तु रजन्यां च ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥६॥
अव्याकृतमिद त्वासीन्नैशेन तमसा वृतम् ।
चतुर्भागा वशिष्टेऽस्मिन् लोके नष्टे विशेषतः ॥७॥

इस अध्याय मे तीन प्रकार की वह्नि का निरूपण किया जाता है तथा सूर्य की सहस्र रश्मियो कार्य और सख्या बताई जाती है। सूतजी ने कहा—यह श्रवण करके सशय से युक्त उन मुनियो ने उन रोम हर्षण से उस समय मे पुनः उत्तर पूछा था ॥१॥ ऋषियो ने कहा—हे प्रवचन करने वालो मे परम श्रेष्ठ ! हे सूत ! यहाँ आपने जो यह सब कुछ कहा है इस ज्योतियो के विशेष निर्णय को फिर विस्तार पूर्वक बताइये ॥२॥ सूतजी ने उनके इस वचन को सुना और उस समय में समाहित हुए थे। उनके सशय का विशेष निर्णय करने के लिए परम श्रेष्ठ वाक्य बोले ॥३॥ सूतजी ने कहा कि इस विषय मे शान्त बुद्धि वाले महा मनीषियो ने जो कुछ भी कहा है वही मैं आपको सूर्य और चन्द्रमा की गति बतलाऊँगा ॥४॥ सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह उसी प्रकार से हैं जिस प्रकार से यहाँ देवो के स्थान होते हैं। इससे आगे मैं तीन प्रकार की अग्नि उत्पत्ति बताऊँगा ॥५॥ यह अग्नि तीन प्रकार की होती है, एक दिव्य अग्नि है, दूसरी भौतिक अग्नि है और तीसरी पार्थिव अग्नि होती है। अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्मा की रात्रि जिस समय मे समाप्त प्राय थी उस समय मे यह ब्रह्माण्ड अस्पष्ट था और निशा के अन्धकार से आवृत था। विशेष रूप से इस लोक के नष्ट होने पर जबकि केवल चतुर्भाग ही इसका अवशिष्ट रह गया था ॥६॥७॥

स्वयंभूर्भगवांस्तत्र लोकसर्वार्थसाधकः ।
खद्योतवत्स व्यचरदाविर्भावचिकीर्षया ॥८॥
सोऽग्नि सृष्ट्वाथ लोकादौ पृथिवीजलसंश्रितः ।
संहृत्य तत्प्रकाशार्थं त्रिधा व्यभजदीश्वरः ॥९॥
पवनो यस्तु लोकेऽस्मिन्पार्थिवो वह्निरुच्यते ।
यश्चासौ तपते सूर्ये शुचिरग्निस्तु स स्मृत. ॥१०॥
वैद्युतोऽब्जस्तु विज्ञेयस्तेषां वक्ष्ये तु लक्षणम् ।
वैद्युतो जाठरः सौरो वारिगर्भास्त्रयोऽग्नयः ॥११॥
तस्मादप. पिबन्सूर्यो गोभिर्दीप्यत्यसौ विभुः ।
जले चाब्जः समाविष्टो नाद्भिरग्निः प्रशाम्यति ॥१२॥
मानवानां च कुक्षिस्थो नाग्निः शाम्यति पावकः ।
अर्चिष्मान्पवनः सोऽग्निर्निष्प्रभो जाठरः स्मृतः ॥१३॥
यश्चायं मडलो शुक्ली निरूष्मा सप्रजायते ।
प्रभा सौरी तु पादेन ह्यस्तं याते दिवाकरे ॥१४॥

लोको के सम्पूर्ण अर्थों के साधक भगवान् स्वयम्भू वहाँ पर आविर्भाव अर्थात् जगत् के सृजन के करने की इच्छा से खद्योत की भाँति विचरण कर रहे थे ॥८॥ इसके अनन्तर लोक के आदि में पृथ्वी और जल मे सश्रित उसने अग्नि का सृजन किया था फिर उसका सहरण करके ईश्वर ने उसके प्रकाश के लिये तीन प्रकार से अर्थात् तीन तरह की अग्नि विभक्त किया था ॥९॥ इस लोक मे जो पवन है वह पार्थिव वह्नि कहा जाता है । और जो यह सूर्य तपता है वह शुचि अग्नि कहा गया है ॥१०॥ जल से उत्पन्न होने वाला वैद्युत अग्नि जानना चाहिये अब उनके लक्षण बताता हूँ। वैद्युत अग्नि जाठर, सौर और वारिगर्भ इस तरह तीन हैं ॥११॥ इससे यह विभु सूर्य किरणों के द्वारा जलो का पान करता हुआ दिप्यमान होता है । जल से उत्पन्न अब्ज जल मे ही समाविष्ट (प्रवेश किया हुआ) रहता है और वह जल से प्रशान्त नहीं होता है ॥१२॥ मनुष्यों की कुक्षि (उदर) मे

अवस्थित अग्नि पावक कभी प्रशान्त नहीं हुआ करता है। वह अचिष्मान् पार्थिव अग्नि प्रभा से रहित होता है और जाठर कहा गया है ॥१३॥ जो यह अग्नि है वह मण्डली, शुक्ली और ऊष्मा से रहित ही उत्पन्न हुआ करता है। दिवाकर के अस्त हो जाने पर सौरी प्रभा एक पाद रह जाती है ॥१४॥

अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात्प्रकाशते ।
उद्यंत च पुनः सूर्यमौष्ण्यमग्नेः समाविशेत् ॥१५॥
पादेन पार्थिवस्याग्नेस्तस्मादग्निस्तपत्यसौ ।
प्रकाशोष्णस्वरूपे च सौराग्नेये तु तेजसी ॥१६॥
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते परस्परम् ।
उत्तरे चैव भूम्यर्धे तथा ह्यग्निश्च दक्षिणे ॥१७॥
उत्तिष्ठति पुनः सूर्यः पुनर्वै प्रविशत्यपः ।
तस्मात्ताम्रा भवत्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ॥१८॥
अस्त याति पुनः सूर्यो अहर्वै प्रविशत्यपः ।
तस्मान्नवतं पुन. शुक्ला आपो दृश्यति भास्वराः ॥१६॥
एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्धे दक्षिणोत्तरे ।
उदयास्तमने नित्यमहोरात्र विशत्यपः ॥२०॥
यश्चासौ तपते सूर्यः पिबन्नंभो गभस्तिभि ।
पार्थिवाग्निविमिश्रोऽसौ दिव्यः शुचिरिति स्मृतः ॥२१॥

रात्रि मे वह अग्नि मे प्राविष्ट हो जाया करती है इसलिए दूर से प्रकाश दिया करती है। जब फिर सूर्य उदित होता है तो अग्नि की उष्णता सूर्य मे समाविष्ट हो जाती है ॥१५॥ इसमें पार्थिव अग्नि के पाद से यह अग्नि तपता है। सौर अग्नि के तेज प्रकाश और उष्ण स्वरूप वाले हैं ॥१६॥ ये दोनो परस्पर मे अनुप्रवेश से अन्योन्य को आप्यायित करते हैं। भूमि के अर्ध भाग उत्तर मे तथा दक्षिण मे अग्नि रहता है ॥१७॥ सूर्य पुनः उठता है अर्थात् उदित होता है और पुनः जल में प्रवेश कर जाता है। इस कारण से दिन और रात्रि मे प्रवेश न

होने से जल ताम्र वर्ण वाले हो जाया करते हैं ॥१८॥ सूर्य पुन अस्ताचल को गमन करता है। यह जल मे प्रवेश कर जाता है। इसी कारण से रात्रि मे जल शुक्ल वर्ण वाले तथा भास्वर दिखाई दिया करते है। ॥१९॥ इस क्रम के योग से भूमि के दक्षिणोत्तर अर्ध भाग मे उदय एव अस्तमन नित्य होते हैं और अहोरात्र जल मे प्रवेश किया करते हैं ॥२०॥ जो यह सूर्य अपनी गभस्तियो (किरणो) से जल को पीता हुआ तपता रहता है यह पार्थिवाग्नि से विभिन्न दिव्य शुचि कहा गया है ॥२१॥

सहस्रपादसौ वह्निर्वृत्तकुम्भनिभः स्मृतः ।
आदत्ते स तु नाडीना सहस्रेण समततः ॥२२॥
नादेयीश्चैव सामुद्रीः कूपाश्चैव तथा घनाः ।
स्थावरा जगमाश्चैव वापीकुल्यादिका अपः ॥२३॥
तस्य रश्मिसहस्रं तच्छीतवर्षोष्ण निस्स्रवम् ।
तासा चतु शता नाड्यो वर्षते चित्रमूर्तयः ॥२४॥
भजनाश्चैव माल्याश्च केतनाः पतनास्तथा ।
अमृता नामतः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः ॥२५॥
हिमोद्वहाश्च ता नाड्यो रश्मयस्त्रिशताः पुन ।
रेशा मेघाश्च वात्स्याश्च ह्लादिन्यो हिमसर्जना- ॥२६॥
चन्द्रभा नामतः सर्वाः पीताभाश्च गभस्तयः ।
शुक्लाश्च ककुभाश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा ॥२७॥
शुक्लास्ता नामतः सर्वास्त्रिशतीर्घर्मसर्जनाः ।
सोमो बिभर्ति ताभिस्तु मनुष्यपितृदेवताः ॥२८॥
मनुष्यानौषधेनेह स्वधया च पितृनपि ।
अमृतेन सुरान्सर्वांस्तिसृभिस्तर्पयत्यसौ ॥२९॥

सहस्र पाद यह वह्नि वृत्त कुम्भ के तुल्य होता है, ऐसा बताया गया है। वह चारो ओर से एक सहस्र नाडियो से ग्रहण किया करता है ॥२२॥ जल नादेयी, सामुद्री, कूप, घन और वापी कुल्या आदि स्थावर

और जङ्गम होते हैं ॥२३॥ उसकी एक सहस्र रश्मियाँ हैं जो शीत, उष्ण और वर्षा के निस्त्रव हैं। उनमें चार सौ चित्रमूर्ति नाडियाँ वर्षा किया करती हैं ॥२४॥ भजना, माल्या, केतना, पतना तथा अमृता नाम वाली सम्पूर्ण रश्मियाँ वृष्टि के सर्जन करने वाली होती हैं ॥२५॥ हिम के उद्वहन करने वाली जो नाडियां हैं वे तीन सौ रश्मियाँ होती हैं जिनके नाम रेशा, मेधा, वात्स्या और ह्लादिनी हैं जो हिम का सर्जन करने वाली हैं ॥२६॥ वे सब नाम से चन्द्रमा होती हैं और पीताभा किरणे हैं। शुक्ला, ककुभा, गाव, तथा विश्वभृता ये नाम से शुक्ला हैं और सब तीन सौ हैं तथा धर्म का सर्जन करने वाली होती हैं। उनसे सोम मनुष्य, देवता और पितृगण का भरण किया करता है ॥२७॥२८॥ यहाँ मनुष्यों को औषध के द्वारा, पितृगण को स्वधा के द्वारा और समस्त सुरों को अमृत के द्वारा इस तरह तीनों से इन सबको यह सतृप्त किया करता है ॥२९॥

वसंते चैव ग्रीष्मे च शतै. स तपते त्रिभिः।
वर्षास्वथो शरदि च चतुर्भिः सप्रवर्षति ॥३०॥
हेमन्ते शिशिरे चैव हिममुत्सृजते त्रिभिः ।
इन्द्रो धाता भग पूषा मित्रोथ वरुणोर्यमा ॥३१॥
अशुर्विवस्वास्त्वष्टा च पर्जन्यो विष्णुरेव च ।
वरुणो माघमासे तु सूर्य एव तु फाल्गुने ॥३२॥
चैत्रे मासि भवेदंशुर्धाता वैशाखतापन. ।
ज्येष्ठे मासि भवेदिन्द्र आषाढे चार्यमा रविः ॥३३॥
विवस्वान् श्रावणे मासि प्रोष्ठपादे भगः स्मृतः।
पर्जन्याश्वयुजे मासि त्वष्टा वै कार्तिके रविः ॥३४॥

पर्जन्य और विष्णु ये माघादि मासों के क्रम से बारह आदित्य और उनकी रश्मियाँ हैं। माघ मास मे वरुण तथा फाल्गुन में सूर्य होता है ॥३०॥३१॥३२॥ चैत्र मास मे अंशु और वैशाख मास में तप न करने वाले का नाम धाता है। ज्येष्ठ में इन्द्र तथा आषाढ मे अर्यमा नाम का रवि होता है ॥३३॥ श्रावण के महिने में विवस्वान् तथा भाद्रपद में भग नामधारी सूर्य कहा गया है। आश्विन मे पर्जन्य और कार्तिक में त्वष्टा नाम वाला रवि हुआ करता है ॥३४॥

मार्गशीर्षे भवेन्मित्रः पौषे विष्णुः सनातनः।
पञ्चरश्मिसहस्राणि वरुणस्यार्ककर्मणि ॥३५॥
षड्भिः सहस्रैः पूषा तु देवोंशुः सप्तभिस्तथा।
धाताष्टभिः सहस्रैस्तु नवभिस्तु शतक्रतुः ॥३६॥
विवस्वान् दशभिर्याति यात्येकादशभिर्भगः।
सप्तमस्तपिते मित्रस्त्वष्टा चौवाष्टभिः स्मृतः ॥३७॥
अर्यमा दशभिर्याति पर्जन्यो नवभिस्तथा।
षड्भी रश्मिसहस्रैस्तु विष्णुस्तपति मेदिनीम् ॥३८॥
वसते कपिलः सूर्यो ग्रीष्मे काचनसप्रभः।
श्वेतो वर्षासु वर्णेन पांडुः शरदि भास्करः ॥३९॥
हेमंते ताम्रवर्णस्तु शिशिरे लोहितो रविः।
इति वर्णाः समाख्याता मया सूर्यसमुद्भवाः ॥४०॥
ओषधीषु बलं धत्ते स्वधया च पितृष्वपि।
सूर्योऽमरेष्वप्यमृतं त्रय त्रिषु नियच्छति ॥४१॥
एवं रश्मिसहस्रं तत्सौरं लोकार्थसाधकम्।
भिद्यते लोकमासाद्य जलशीतोष्णनिस्स्रवम् ॥४२॥

मार्गशीर्ष में मित्र नाम वाला तथा पौष मे सनातन विष्णु नामधारी सूर्य होता है। सूर्य के कर्म में वरुण की पाँच सहस्र रश्मियाँ हुआ करती हैं ॥३५॥ ऋतुओं के भेद से वर्ण तथा मासों के भेद से सूर्य की रश्मियों की संख्या को बताते हुए कहते हैं कि पूषा नामक रवि छै

सहस्र रश्मियों से कार्य करता है। अंशु सात सहस्र से, धाता आठ हजार से और शत क्रतु नौ सहस्र रश्मियों से सूर्य का कर्म सम्पादन किया करता है ॥३५॥३६॥ विवस्वान् दश हजार रश्मियों से जाता है और भग ग्यारह हजार से जाता है। मित्र सात हजार रश्मियों से तपता है और त्वष्टा आठ सहस्र से कहा गया है ॥३७॥ अर्यमा दश तथा पर्जन्य नौ से और विष्णु छै सहस्र रश्मियों से इस मेदिनी को तपता है ॥३८॥ वसन्त ऋतु में सूर्य का कपिल वर्ण होता है और ग्रीष्म में काञ्चन की प्रभा से युक्त होता है। वर्षा ऋतु में सूर्य श्वेत वर्ण वाला होता है तथा शरद् ऋतु भास्कर पाण्डु वर्ण वाला हुआ करता है। ॥३९॥ हेमन्त ऋतु मे ताम्र के समान वर्ण वाला और शिशिर ऋतु मे रवि लोहित वर्ण का हुआ करता है। इस प्रकार से मैंने ये सूर्य में होने वाले वर्णों का वर्णन कर दिया है ॥४०॥ यह सूर्य औषधियों मे बल धारण कराता है और पितरो मे स्वधा के द्वारा तथा अमरगण मे अमृत ये तीन वस्तुएँ तीनो मे प्रदान करता है ॥४१॥ इस रीति से सूर्य की यह सहस्र रश्मियाँ लोक के अर्थ की साधक होती हैं। लोक को प्राप्त होकर जल-शीत और उष्णता का निस्रवण करने वाली भिन्न होती हैं ॥४२॥

इत्येतन्मण्डल शुक्ल भास्वरं सूर्यसज्ञितम् ।
नक्षत्रग्रहसोमाना प्रतिष्ठायोनिरेव च ॥४३॥
चद्रऋक्षग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसभवाः ।
नक्षत्राधिपतिः सोमो नयन वाममीशितु ॥४४॥
नयन चैव मीशस्य दक्षिण भास्करः स्वयम् ।
तेषा जनाना लोकेस्मिन्नयन नयते यतः ॥४५॥

यह शुक्ल वर्ण वाला और देदीप्यमान सूर्य की सज्ञा वाला मण्डल है। यह नक्षत्र, ग्रह और सोम की प्रतिष्ठा का कारण स्वरूप होता है ॥४३॥ चन्द्र, नक्षत्र और समस्त ग्रह ये सब सूर्य से ही उत्पन्न

होने वाले जानने चाहिए। नक्षत्रों का अधिपति सोम होता है जो कि शिव का वाम नेत्र है ॥४४॥ ईश का दक्षिण नेत्र भास्कर ही स्वयं होता है। शिव का नेत्र होने से देव, पितृ और मनुष्यों के नयन को प्राप्त कराता है ॥४५॥

ग्रह प्रकृति वर्णन

शेषाः पंच ग्रहा ज्ञेया ईश्वराः कामचारिणः।
पठ्यते चाग्निरादित्य उदकं चन्द्रमाः स्मृतः ॥१॥
शेषाणां प्रकृतिं सम्यग्वक्ष्यमाणां निबोधत।
सुरसेनापतिः स्कंदः पठ्यतेऽङ्गारको ग्रहः ॥२॥
नारायणं बुधं प्राहुर्देवं ज्ञानविदो जनाः।
सर्वलोकप्रभुः साक्षाद्यमो लोकप्रभुः स्वयम् ॥३॥
महाग्रहो द्विजश्रेष्ठा मंदगामी शनैश्चरः।
देवासुरगुरू द्वौ तु भानुमंतौ महाग्रहौ ॥४॥
प्रजापतिसुतावुक्तौ ततः शुक्रबृहस्पती।
आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं नात्र संशयः ॥५॥
भवत्यस्माज्जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम्।
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्राग्निदिवौकसाम् ॥६॥
द्युतिर्द्युतिमता कृत्स्नं यत्तेजः सार्वलौकिकम्।
सर्वात्मा सर्वलोकेशो महादेवः प्रजापतिः ॥७॥

इस अध्याय मे ग्रहों की प्रकृतियों का स्फुटतया वर्णन किया जाता है तथा सूर्य की रश्मियाँ साथ मुख्य हैं उस की महिमा का निरूपण दिया गया है। सूतजी ने कहा—सूर्य और चन्द्र के अतिरिक्त शेष भौमादिक पाँच ग्रह ईश्वर और काम चारी जानने के योग्य होते

हैं। आदित्य अग्नि कहा जाया करता है और चन्द्रमा उदक कहा गया है ॥१॥ शेष ग्रहों की प्रकृति मैं भली भाँति बतलाता हूँ उसे आप लोग समझ लेवें। देवताओं का सेनापति स्कन्द अङ्गारक अर्थात् भौम ग्रह कहा जाता है ॥२॥ ज्ञान के वेत्ता विद्वज्जन नारायण देव को बुध बताते हैं। समस्त लोकों का स्वामी तथा स्वयं लोक प्रभु साक्षात् यमराज हरि मन्द गमन करने वाला महान् ग्रह, हे द्विजो मे श्रेष्ठो ! यह शनैश्चर होता है। देवगण के और असुरों के गुरु दो भानुमान् महान् ग्रह हैं। इनके पश्चात् इन दोनों शुक्र तथा बृहस्पति को प्रजापति के पुत्र कहा गया है। यह सम्पूर्ण त्रैलोक्य आदित्य के ही मूल वाला होता है इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥३॥४॥५॥ इसी से यह सम्पूर्ण देव, असुर तथा मनुष्यों के सहित जगत् होता है। रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र, चन्द्र, विप्रेन्द्र, अग्नि और देवगण जो द्युति वाले हैं इनकी द्युति और सम्पूर्ण सार्वलौकिक तेज है उस सबकी आत्मा एव सम्पूर्ण लोकों के स्वामी महादेव प्रजापति हैं ॥६॥७॥

सूर्य एव त्रिलोकेशो मूल परमदैवतम्।
तत सजायते सर्वं तत्रैव प्रविलीयते ॥८॥
भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निस्सृतौ पुरा।
अविज्ञेयो ग्रहो विप्रा दीप्तिमान्सुप्रभो रवि ॥९॥
अत्र गच्छन्ति निधन जायते च पुन पुन।
क्षणा मुहूर्ता दिवसा निशा पक्षाश्च कृत्स्नश ॥१०॥
मासा सवत्सराश्चैव ऋतवोऽथ युगानि च।
तदादित्या दृते ह्येषा कालसख्या न विद्यते ॥११॥
कालादृते न नियमो न दीक्षा नाह्निकक्रम।
ऋतूनां च विभागश्च पुष्प मूल फल कुत ॥१२॥
कुत सस्यविनिष्पत्तिस्तृणौषधिगणोऽपि च।
अभावो व्यवहाराणा जन्तूना दिवि चेह च ॥१३॥

जगत्प्रतापनमृते   भास्करं   रुद्ररूपिणम् ।
स एष कालश्चाग्निश्च द्वादशात्मा प्रजापतिः ॥१४॥

यह सूर्य ही तीनों लोकों का स्वामी, मूल और परम दैवत है । इसकी सभी कुछ की उत्पत्ति होती है और सब उसी मे प्रविलीन हो जाया करते हैं ॥८॥ लोकों के भाव और अभाव पहिले आदित्य से ही निकले थे । हे विप्रगण ! यह सुन्दर प्रभा से युक्त दीप्ति वाला रवि अविज्ञेय अर्थात् विशेष रूप से न जानने के योग्य ग्रह है ॥६॥ इसी मे क्षण, मूहूर्त, दिवस, निशा, पक्ष तथा सम्पूर्ण मास, सम्वत्सर, ऋतु और युग उत्पन्न होते हैं और इसी मे बार-बार उत्पन्न होकर निधन को प्राप्त हुआ करते हैं । इसलिये आदित्य को छोडकर अन्य किसी भी प्रकार से काल की सख्या ही नही होती है ॥१०॥११॥ काल के बिना तो कोई नियम ही नही हो सकता है और न कोई दीक्षा तथा दैनिक क्रम ही बनता है । ऋतुओ का विभाग, पुष्प, फल और मूल इसके बिना कैसे होगे ॥१२॥ काल के बताने वाले सूर्य देव के बिना सस्यो की निष्पत्ति, तृण और ओषधियो का समुदय भी कैसे होगा । दिवि लोक मे और यहाँ जन्तुओ के समस्त व्यवहारो का ही एकदम अभाव हो जायगा ॥१३॥ जगत् के प्रतापन रुद्र रूप वाले भगवान् भास्कर के बिना किसी की भी निष्पत्ति का होना सम्भव नही होता है । वह यह ही काल, अग्नि और द्वादश स्वरूप वाला प्रजापति है ॥१४॥

तपत्येष   द्विजश्रेष्ठास्त्रैलोक्यं   सचराचरम् ।
स एष तेजसा राशिः समस्तः सार्वलौकिकः ॥१५॥

उत्तमं मार्गमास्थाय राज्यहोभिरिदं जगत् ।
पार्श्वतोर्ध्वमधश्चैव तापयत्येष   सर्वशः ॥१६॥

यथा प्रभाकरो दीपो गृहमध्येऽवलम्बितः ।
पार्श्वतोर्ध्वमधश्चैव तमो नाशयते समम् ॥१७॥

तद्वत्सहस्रकिरणो ग्रहराजो जगत्प्रभुः ।
सूर्यो गोभिर्जगत्सर्वं मादीपयति सर्वतः ॥१८॥
रवे रश्मिसहस्रं यत्प्राङ् मया समुदाहृतम् ।
तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः ॥१६॥
सुषुम्नो हरि केशश्च विश्वकर्मा तथैव च ।
विश्वव्यचाः पुनश्चाद्यः सन्नद्धश्च ततः परः ॥२०॥
सर्वावसुः पुनश्चान्यः स्वराडन्यः प्रकीर्तितः ।
सुषुम्नः सूर्य रश्मिस्तु दक्षिणां राशिमैधयत् ॥२१॥

हे द्विज श्रेष्ठ गण ! इस चर एवं अचर से संयुत त्रैलोक्य में तपता है। यह यह ही तेजो का समूह है जो सम्पूर्ण स्वरूप वाला एवं सार्वलौकिक है ॥१५॥ उत्तम मार्ग मे आस्थित होकर यह इस जगत् को रात्रि तथा दिनों के द्वारा पार्श्वभाग मे, ऊर्ध्व भाग मे और अधो भाग मे सब ओर से तपाता है ॥१६॥ जिस तरह प्रभा के करने वाला दीप घर के मध्य मे आधारित होता हुआ पार्श्व भाग मे, ऊपर और नीचे समान रूप से अन्धकार का नाश किया करता है ॥१७॥ ठीक उसी की भाँति सहस्र किरणो वाला, ग्रहों का राजा तथा जगत् का प्रभु सूर्य भी अपनी किरणो के द्वारा सम्पूर्ण जगत् को सभी ओर से आदीपित कर दिया करता है ॥१८॥ रवि की एक सहस्र रश्मियाँ मैंने पहिले बतलाई है उन सबमे सात रश्मियाँ ग्रहो की योनियाँ होती हैं। ॥१६॥ सुषुम्न, हरि केश तथा विश्व कर्मा, विश्वव्यचा, फिर आद्य सन्नद्ध और इसके पश्चात् अन्य सर्वावसु और फिर अन्य स्वराट् बताया गई है। सुषुम्न सूर्य रश्मि ने दक्षिण राशि की अर्थात् चन्द्रमा की वृद्धि की थी ॥२०॥२१॥

न्यगूर्ध्वाधः प्रचारोऽस्य सुषुम्नः परिकीर्तितः ।
हरिकेशः पुरस्ताद्यो ऋक्षयोनिः प्रकीर्त्यते ॥२२॥
दक्षिणे विश्वकर्मा च रश्मिर्वर्धयते बुधम् ।
विश्वव्यचास्तु यः पश्चाच्छुक्रयोनिः स्मृतो बुधैः ॥२३॥

सन्नद्धश्च तु यो रश्मि: स योनि र्लोहितस्य तु ।
षष्ठ सर्वावसू रश्मि. स योनिस्तु बृहस्पते ॥२४॥
शनैश्चर पुनश्चापि रश्मिराप्यायते स्वराट् ।
एव सूर्यप्रभावेन नक्षत्रग्रह तारका ॥२५॥
दृश्यन्ते दिवि ता सर्वा विश्व चेद पुनजगत् ।
न क्षीयते यतस्तानि तस्मान्नक्षत्रता स्मृता ॥२६॥

इसका ऊपर और नीचे सभी ओर प्रचार है इसे सुषुम्न कहा गया है । पहिले जो हरिकेश है वह ऋक्षो की योनि अर्थात् नक्षत्रा का प्रकाशक कहा जाती है ॥२२ । दक्षिण म विश्वकर्मा नाम वाली रश्मि बुध का वर्धन किया करती है । जो विश्व व्यचा जो रश्मि है वह पीछे बुधो के द्वारा शुक्र की योनि कही गई है । छटी सर्वावसु नाम वाली रश्मि है वह बृहस्पति की योनि है । जो सन्नद्ध नामक रश्मि है वह लोहित की योनि होती है ॥२३॥२४॥ पुन स्वराट् नामक रश्मि शनश्चर को आप्यायित किया करती है । इस प्रकार से सूर्य के प्रभाव से अर्थात् तज से समस्त नक्षत्र, ग्रह और तारक अतरिक्ष मे दिखलाई दिया करते है और यह विश्व तथा जगत् दिखाई देता है । जो क्षीण नही हुआ करते हैं इसीलिये उन सब को नक्षत्र कहा गया है ॥२५॥२६॥

गृह सख्या वर्णन

क्षेत्राण्येतानि सर्वाणि आतपति गभस्तिभि ।
तपा क्षेत्राण्ययादत्तो सूर्यो नक्षत्र तारका ॥१॥
चीर्णेन सुकृतेनेह सुकृताते ग्रहाश्रया ।
तारणात्तारका ह्येता शुक्लत्वाच्चैव तारका ॥२॥
दिव्याना पार्थिवाना च नैशाना चैव सर्वश ।
आदानान्नित्यमादित्यस्तेजसा तमसामपि ॥३॥

सवने स्यंदनेऽर्थे च धातुरप विभाष्यते ।
सवनात्तेजसोऽपां च तेनासौ सविता मतः ॥४॥
वहुलश्चंद्र इत्येष ह्लादने धातुरुच्यते ।
शुक्लत्वे चामृतत्वे च शीतत्वे च विभाव्यते ॥५॥
सूर्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डले भास्वरे खगे ।
जलतेजोमये शुक्ले वृत्तकुंभनिभे शुभे ॥६॥
घनतोयात्मक तत्र मण्डलं शशिनः स्मृतम् ।
घनतेजोमयं शुक्लं मंडलं भास्करस्य तु ॥७॥

इस अध्याय मे ग्रहों के स्थानाभिमानी बताये गये हैं और स्थानो के रश्मि रूप ग्रह ऋक्ष आदि का निरूपण है । सूत जी ने कहा—ये रात्रि मे दृश्यमान क्षेत्र अर्थात् स्थान सूर्य की किरणो से प्रकाशित होते है । भारत मे आचरित सुकृत से उन पुण्य करने वालो के स्थान होते है । सुकृत के अन्त मे ग्रह वर्त्ती नक्षत्र तारकों को सूर्य ग्रहण कर लेता है । तारण से ये तारक होते है और शुक्ल होने से भी तारक कहे जाते है ॥१॥२॥ अब आदित्य शब्द की व्युत्पत्ति बताते है, दिव्य, पार्थिव और निशा मे होने वाले सब ओर के तेजोतमो के आदान करने से आदित्य यह नाम हुआ है ॥३॥ सवन और स्यन्दन अर्थ मे यह धातु पढी जाती है इसलिये तेज और जलो के सवन करने से इसका सविता यह नाम माना गया है ॥४॥ चन्द्र शब्द जिस धातु से निष्पन्न होता है उसका मूल रूप चदि धातु है यह ह्लादन के अर्थ मे है और बहुत से अर्थों का प्रतिपादक कहा जाता है । अतएव चन्द्र, यह शब्द ह्लादन के अतिरिक्त शुक्रत्व, अमृतत्व और शीतत्व को भी प्रकट करता है ॥५॥ सूर्य और चन्द्रमा के दिव्य, आकाशगामी भास्वर मण्डल जल और तेज से परिपूर्ण, शुक्ल, शुभ और वृत्त कुम्भ के तुल्य हैं ॥६॥ वहाँ पर शशी का मण्डल घने जल के स्वरूप वाला है, ऐसा बताया गया है और भास्कर का मण्डल घन तेज से परिपूर्ण एवं शुक्ल होता है ॥७॥

वसंति सर्वदेवाश्च स्थानान्येतानि सर्वशः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ऋक्षसूर्यग्रहाश्रयाः ॥८॥
तेन ग्रहागृहाण्येव तदाख्यास्ते भवन्ति च ।
सौरं सूर्योऽविशत्स्थानं सौम्यं सोमस्तथैव च ॥६॥
शौक्रं शुक्रोऽविशत्स्थानं षोडशार्चिः प्रतापवान् ।
बृहद्बृहस्पतिश्चैव लोहितश्चैव लोहितम् ॥१०॥
शनैश्चरं तथा स्थानं देवश्चापि शनैश्चरः ।
बौधं बुधस्तु स्वर्भानुः स्वर्भानुस्थानमाश्रित. ॥११॥
नक्षत्राणि च सर्वाणि नक्षत्राणि विशंति च ।
गृहाण्येतानि सर्वाणि ज्योतींषि सुकृतात्मनाम् ॥१२॥
कल्पादौ संप्रवृत्तानि निर्मितानि स्वयंभुवा ।
स्थानान्येतानि तिष्ठंति याव दाभूतसंप्लवम् ॥१३॥
मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवस्थानानि तानि वै ।
अभिमानिनोऽवतिष्ठते देवाः स्थानं पुनः पुनः ॥१४॥

समस्त मन्वन्तरो मे नक्षत्र, सूर्य और ग्रह आश्रय होते हैं और इन स्थानो मे सभी ओर समस्त देवगण निवास किया करते हैं ॥८॥ इसी से गृहो को ही ग्रह कहते हैं और इसीलिये ये ग्रह,इस नाम वाले हुए है । सूर्य सौर मे प्रवेश कर गया तथा उसी प्रकार से सोम सौम्य मे प्रविष्ट हो गया था ॥६॥ षोडश अर्चियो वाला प्रतापी शुक्र शौक्र स्थान में प्रविष्ट हो गया था । बृहस्पति और लोहित लोहित स्थान मे प्रवेश कर गये थे ॥१०॥ शनैश्चर जो स्थान है उसमे देव शनैश्चर ने प्रवेश किया । बौध नामक स्थान मे बुध ने तथा स्वर्भानु के स्थान मे स्वर्भानु ने प्रवेश किया था ॥११॥ समस्त नक्षत्र अपने-अपने नक्षत्रो के स्थानो मे प्रवेश किया करते हैं । ये समस्त ज्योतियाँ जो है वे सब सुकृतात्माओ के घर ही होते हैं ॥१२॥ ये सब कल्प के आदि मे प्रवृत्त हुए हैं और स्वयम्भू के द्वारा निर्मित किये गये हैं । इन स्थानो मे सुकृती गण जब तक

सम्पूर्ण भूतो का संप्लव प्रलय होता है नब तक निवास करते हुए अव-स्थित रहा करते हैं ।।१३।। समस्त मन्वन्तरों मे वे देवो के स्थान हुआ करते हैं और स्थानभिमानी देवगण बार-बार उस स्थान मे आकर अवस्थित हुआ करते हैं ।।१४।।

अतीतैस्तु सहैतानि भाव्याभाव्यः सुरैः सह ।
वर्त्तंते वतमानैश्च स्थानिभिस्तैः सुरैः सह ।।१५।।
अस्मिन्मन्वंतरे चैव ग्रहा वैमानिकाः स्मृताः ।
विवस्वानदितेः पुनः सूर्यो वैवस्वतेंतरे ।।१६।।
द्यु तिमानृपिपुत्रस्तु सोमो देवो वसुः स्मृतः ।
शुक्रो देवस्तु विज्ञ`यो भार्गवोऽसुरयाजकः ।।१७।।
बृहत्तेजाः स्मृतो देवो देवाचार्योऽङ्गिरासुतः ।
बुधो मनोहरश्चैव ऋपिपुत्रस्तु स स्मृतः ।।१८।।
शनैश्चरो विरूपस्तु संज्ञापुत्रो विवस्वतः ।
अग्निर्विकेश्यां जज्ञे तु युवाऽसौ लोहितार्चिपः ।।१९।।
नक्षत्रऋक्षनामिभ्यो दाक्षायण्यस्तु ताः स्मृताः ।
स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रो भूतसं तापनोऽसुरः ।।२०।।
सोमर्क्षग्रहसूर्येपु कीर्तितास्त्वभिमानिनः ।
स्थानान्येतान्तथोक्तानि स्थानिन्यश्चैव देवताः ।।२१।।

भाव्य और अभाव्य अतीत सुरो के साथ और वर्तमान स्थानों वाले उन सुरों के साथ मे रहा करते हैं ।।१५।। इस वर्तमान मन्वन्तर अर्थात् वैवस्वत मन्वन्तर मे विमानो मे विचरण करने वाले ग्रह कहे गये हैं। वैवस्वत मन्वन्तर में देवमाता अदिति का पुत्र विवस्वान सूर्य है ।।१६।। ऋपि का पुत्र द्यु तिमान वसुदेव सोम कहा गया है । असुरों का याजक भार्गव देव शुक्र जानने के योग्य है ।।१७।। अङ्गिरा का पुत्र बृहत्तेजा देव देवो का आचार्य बृहस्पति बताया गया है । ऋपि का पुत्र मनोहर बुध कहा गया है ।।१८।। विकृत स्वरूप वाला विवस्वान् का

छाया का पुत्र शनैश्चर है। लोहित अर्चियों वाला रुद्र के सकाश से विकेशी में अग्नि उत्पन्न हुआ था और वह युवा कुमार भौम है। भौम अग्नि स्वरूप है ॥१६॥ नक्षत्र और ऋक्ष नाम वाली वे दाक्षायणी कही गई हैं। स्वर्भानु सिंहिका का पुत्र है और यह भूतों को सन्ताप देने वाला असुर है चन्द्र, ऋक्ष, ग्रह और सूर्य में ये अभिमानी कहे गये हैं ये यथोक्त स्थान हैं और इनके स्थानी देवता होते हैं ॥२०॥२१॥

सौरमग्नि मयं स्थानं सहस्रांशोर्विवस्वतः ।
हिमांशोस्तु स्मृत स्थानमम्मयं शुक्लमेव च ॥२२॥
आप्यं श्यामं मनोज्ञं च बुधरश्मिगृह स्मृतम् ।
शुक्रस्याप्यम्मयं शुक्लं पदं षोडशरश्मिवत् ॥२३॥
नवरश्मि ते भौमस्य लोहित स्थानमुत्तमम् ।
हरिद्राभं बृहच्चापि षोडशार्चिर्वृहस्पतेः ॥२४॥
अष्टरश्मिगृहं चापि प्रोक्तं कृष्णं शनैश्चरे ।
स्वर्भानोस्तामसं स्थानं भूतसंतापनालयम् ॥२५॥
विज्ञेयास्तारकाः सर्वास्त्वृषयस्त्वेकरश्मयः ।
आश्रयाः पुण्यकीर्तीनां शुक्लाश्चापि स्ववर्णतः ॥२६॥
घनतोयात्मिका ज्ञेयाः कल्पादावेव निर्मिताः ।
आदित्य रश्मिसंयोगात्संप्रकाशात्मिकाः स्मृताः ॥२७॥
नवयोजनसाहस्रो विष्कंभः सवितुः स्मृतः ।
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मंडलस्य प्रमाणतः ॥२८॥

सहस्रांशु विवस्वान् का अग्निमय सौर स्थान है। और हिमांशु चन्द्र का जल से परिपूर्ण शुक्ल स्थान कहा गया है ॥२२॥ आप्य (जल मय), श्याम और सुन्दर बुध का रश्मि ग्रह बताया गया है। शुक्र का आप्य, शुक्ल और सोलह रश्मियों वाला स्थान होता है ॥२३॥ भौम का उत्तम स्थान नौ रश्मियों से युक्त लोहित वर्ण वाला है। हरिद्रा (हल्दी) के समान आभा वाला, वहुत बडा और षोडश अर्चियों वाला

देवाचार्य वृहस्पति का स्थान होता है ॥२४॥ आठ रश्मियों से संयुत और कृष्ण वर्ण वाला शनैश्चर का स्थान कहा गया है। भूतों को सन्तापन करने वाला स्थान जो एकदम अन्धकार से परिपूर्ण है ऐसा आलय स्वर्भानु का है ॥२५॥ सम्पूर्ण तारक एक रश्मि से युक्त, स्थान वाले ऋषिगण होते हैं। ये पुण्य कीर्ति वालों के आश्रय है जो वर्ण से शुक्ल है ॥२६॥ ये घन तोय के स्वरूप वाले जानने चाहिए जोकि कल्प के आदि में ही निर्मित किए हुये होते हैं। सूर्य की किरणों के संयोग से अच्छे प्रकाश के स्वरूप से युक्त बताये गये हैं ॥२७॥ सविता (सूर्य) का विष्कम्भ नौ सहस्र योजन वाला कहा गया है। मण्डल के प्रमाण से उसका विस्तार तिगुना होता है ॥२८॥

द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः ।
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाधस्तात्प्रसर्पति ॥२९॥
उद्धृत्य पृथिवीछायां निर्मिता मंडलाकृतिम् ।
स्वर्भानोस्तु वृहत्स्थानं तृतीय यत्तमोमयम् ॥३०॥
आदित्यात्तच्च निष्क्रम्य सम गच्छति पर्वसु ।
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु ॥३१॥
स्वर्भानु नुदते यस्मात्तस्मात्स्वर्भानुरुच्यते ।
चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते ॥३२॥
विष्कभान्मण्डलाच्चैव योजनाग्रात्प्रमाणतः ।
भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै वृहस्पतिः ॥३३॥
वृहस्पतेः पादहीनौ वक्रसौरो उभौ स्मृतौ ।
विस्तारान्मण्डलाश्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः ॥३४॥
तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मंतीह यानि वै ।
बुधेन तानि तुल्यानि विस्तारान्मण्डलाच्च वै ॥३५॥

सूर्य के विस्तार से चन्द्रमा का विस्तार दुगुना कहा गया है। उन दोनों के समान विस्तार वाला इनके नीचे होकर प्रसर्पण (गमन) किया करता है ॥२९॥ मण्डल के आकार वाली पृथिवी की निर्मित

छाया को उद्धृत करके स्वर्भानु या तमोमय तीसरा एक बहुत बड़ा स्थान होता है ॥३०॥ वह सूर्य से निकल कर पर्वों मे साथ जाया करता है। फिर सोम से सौर पर्वों मे आदित्य के समीप जाता है ॥३१॥ स्व-र्भानु को नुदित (प्रेरित) किया करता है इसी कारण से इसका नाम 'स्वर्भानु'—यह कहा जाता है। चन्द्रमा का सोलहवाँ भाग भार्गव (शुक्र) का होता है ॥३२॥ जो कि विष्कम्भ मण्डल और योजनाग्र के प्रमाण से हुआ करता है। एक चतुर्थांश भाग भार्गव से कम वृहस्पति को समझना चाहिये ॥३३॥ देवों के आचार्य वृहस्पति के प्रमाण से एक पाद अर्थात् चतुर्थ भाग कम वाले वक्र और सौरि इन दोनो को बताया गया है। विस्तार तथा मण्डल से इन दोनो से एक पाद कम बुध होता है ॥३४॥ तारा और नक्षत्र के स्वरूप वाले जो वपुष्मान् हैं वे सब मण्डल तथा विस्तार मे बुध के ही समान होते हैं ॥३५॥

प्रायशश्चन्द्रयोगिनी विद्यादृक्षाणि तत्त्ववित् ।
तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम् ॥३६॥
शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने ।
सर्वोपरि निकृष्टानि तारका मडलानि तु ॥३७॥
योजनान्यर्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते ।
उपरिष्टात्त्रयस्तेपा ग्रहास्ते दूरसर्पिणः ॥३८॥
सौरोङ्गिराश्च वक्रश्च ज्ञेया मदविचारिणः ।
पूर्वमेव समाख्याता गतिस्तेपा यथाक्रमम् ॥३९॥
एतेष्वेव ग्रहाः सर्वे नक्षत्रेपु समुत्थिताः ।
विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्यो वै मुनिसत्तमाः ॥४०॥
विशाखासु समुत्पन्नो ग्रहाणां प्रथमो ग्रहः ।
त्विषिमान् धर्मपुत्रस्तु सोमो देवो वसुस्तु सः ॥४१॥
शीतरश्मिः समुत्पन्नः कृत्तिकासु निशाकरः ।
पोडशार्चिर्भृगोः पुत्रः शुक्र सूर्यादनंतरम् ॥४२॥

तत्त्व वेत्ताओं को प्रायः ऋक्षों को चन्द्र के योग वाले जानने चाहिये। तारा नक्षत्र रूप वाले परस्पर में हीन होते हैं ॥३६॥ दो, तीन, चार और पाँच सौ योजन सबके ऊपर निकृष्ट तारकों के मंडल हुआ करते हैं ॥३७॥ उनमें एक अर्ध योजन से कम ह्रस्व कोई भी नहीं होता है। उनके ऊपर ये दूर सर्पण करने वाले तीन गृह होते हैं ॥३८॥ सौर, वक्र और अङ्गिरा ये मन्द गमन करने वाले होते हैं। हमने इनकी गति क्रमानुसार पूर्व में ही बतलादी है ॥३९॥ सम्पूर्ण ग्रह इन ही नक्षत्रों में समुत्थित हुये हैं। हे मुनिश्रेष्ठो ! अदिति देवमाता का पुत्र विवस्वान् सूर्य है ॥४०॥ ग्रहों में यह प्रथम ग्रह विशाखाओं में समुत्पन्न हुआ है। त्विषिमान् धर्म का पुत्र सोमदेव वसु है ॥४१॥ शीतल रश्मियों (किरणों) वाला निशाकर (चन्द्र) कृत्तिकाओं में समुत्पन्न हुआ है। षोडश अर्चियों वाला भृगु ऋषि का आत्मज शुक्र सूर्य के अनन्तर समुत्पन्न हुआ है ॥४२॥

तारामहाणां प्रवरस्तिष्ये क्षेत्रे समुत्थितः ।
ग्रहश्चाङ्गिरसः पुत्रो द्वादशार्चिर्बृहस्पतिः ॥४३॥
फाल्गुनीषु समुत्पन्नः पूर्वाख्यासु जगद्गुरुः ।
नवार्चिर्लोहिताङ्गश्च प्रजापतिसुतो ग्रहः ॥४४॥
आषाढास्विह पूर्वासु समुत्पन्न इति स्मृतः ।
रेवतीष्वेव सप्तार्चिःस्थाने सौरिः शनैश्चरः ॥४५॥
सोम्यो बुधो धनिष्ठासु पञ्चार्चिरुदितो ग्रहः ।
तमोमयो मृत्युसुतः प्रजाक्षयकरः शिखी ॥४६॥
आश्लेषासु समुत्पन्नः सर्वहारि महाग्रहः ।
तथा स्वनामधेयेषु दाक्षायण्यः समुत्थिताः ॥४७॥
तमोवीर्यमयो राहुः प्रकृत्या कृष्णमडलः ।
भरणीषु समुत्पन्नो ग्रहश्चन्द्रार्कमर्दनः ॥४८॥
एते तारा ग्रहाश्चापि बोद्धव्या भार्गवादयः ।
जन्मनक्षत्रपीडासु यान्ति वैगुण्यतां यतः ॥४९॥

यह सम्पूर्ण तारा ग्रहों में श्रेष्ठतम शुक्रतिष्य क्षेत्र मे समुत्थित होने वाला बताया गया है। अङ्गिरा का पुत्र बृहस्पति नाम वाला जो ग्रह है वह बारह अर्चियो वाला है ॥४३॥ यह जगद्गुरु पूर्वा फाल्गुनी समुत्पन्न हुआ है। नौ अर्चियों से संयुक्त प्रजापति का पुत्र लोहित अङ्ग वाला ग्रह अर्थात् भौम जो है वह पूर्वा आषाढाओ मे उत्पन्न होने वाला कहा गया है। सूर्य का पुत्र शनैश्चर जो सात अर्चियो से युक्त होता हैं रेवतीयो मे समुत्पन्न हुआ है ॥४४॥४५॥ अनि सौम्य एव सोम का पुत्र बुध जो पाँच अर्चियो से संयुत है यह ग्रह घनिष्ठाओ मे उदित हुआ है। अन्धकार से परिपूर्ण, प्रजा के क्षय करने वाला, मृत्यु का पुत्र शिरनी आश्लेषाओ मे समुत्पन्न हुआ हैं। यह सबका हरण करने वाला महान् ग्रह है। अपने नामधेयो मे दाक्षायणीं समुत्पन्न हुई हैं ॥४६॥४७॥ राहु, तम और वीर्य से परिपूर्ण है तथा प्रकृति से कृष्ण मण्डल वाला है। यह चन्द्र और सूर्य का मदन करने वाला शत्रु ग्रह भरणियो मे समुत्पन्न हुआ है ॥४८॥ ये समस्त तारा और भार्गव आदि ग्रह अपने-अपने जन्म के नक्षत्रो मे उत्पन्न पीडाओ में अनिष्ट स्थान वर्त्ती हो जाया करते हैं ॥४६॥

मुच्यते तेन दोषेण ततस्तद्ग्रहभक्तिलः ।
सर्वग्रहाणामेतेषामादिरादित्य उच्यते ॥५०॥
ताराग्रहाणां शुक्रस्तु केतूनां चापि धूमवान् ।
ध्रुवः किल ग्रहाणां तु विभक्तानां चतुर्दिशम् ॥५१॥
नक्षत्राणां श्रविष्ठा स्यादयनानां तथोत्तरम् ।
वर्षाणां चैव पञ्चानामाद्यः संवत्सरः स्मृतः ॥५२॥
ऋतूनां शिशिरश्चापि मासानां माघ उच्यतेः ।
पक्षाणां शुक्लपक्षस्तु तिथीनां प्रतिपत्तथा ॥५३॥
अहोरात्रविभागानामहश्चादिः प्रकीर्तितः ।
मुहूर्त्तानां तथैवादिर्मुहूर्तो रुद्रदैवतः ॥५४॥

क्षणश्चापि निमेषादिः कालः कालविदां वराः ।
श्रवणान्तं धनिष्ठादि युगं स्यात्पञ्चवार्षिकम् ॥५५॥
भानोर्गतिविशेषेण चक्रवत्परिवर्तते ।
दिवाकरः स्मृतस्तस्मात्कालकृद्विभुरीश्वरः ॥५६॥

इस पूर्वोक्त कारण से प्रविष्ट स्थान में रहने वाले ग्रह के सेवन से उनसे उस ग्रह दोष से मुक्त हो जाया करता है । इन समस्त ग्रहों के आदि में होने वाला आदित्य कहा जाता है ॥५०॥ तारा ग्रहों में शुक्र और केतुओं में धूमवान् तथा विभक्त ग्रहों के चारों दिशाओं में ध्रुव होता है ॥५१॥ नक्षत्रों में धनिष्ठा आदि है और अयनों में उत्तरायण है । पांच वर्षों में सम्वत्सर आदि में होने वाला कहा गया है ॥५२॥ छै ऋतुओं में सबसे पहिले होने वाला शिशिर ऋतु है तथा मासों में माघ मास सबसे आदि वाला है । पक्षों में शुक्ल पक्ष तथा तिथियों में प्रतिपदा तिथि आदि है ॥५३॥ अहोरात्र के जो विभाग होते हैं उनमें अह आदि में होने वाला है । मुहूर्तों में रुद्र दैवत सबसे आदि में होने वाला मुहूर्त होता है ॥५४॥ क्षणों में हे काल विदों में परम श्रेष्ठो ! निमेष आदि काल है । धनिष्ठा से आदि लेकर श्रवण के अन्त पर्यन्त पांच वर्ष का युग होता है ॥५५॥ भानु की गति की विशेषता से दिवाकर चक्र की भांति परिवर्तित होता है । इसी कारण से यह काल की रचना करने वाला व्यापक और ईश्वर कहा गया है ॥५६॥

चतुर्विधानां भूतानां प्रवर्तकनिवर्तकः ।
तस्यापि भगवान् रुद्र साक्षाद्देवः प्रवर्तकः ॥५७॥
इत्येष ज्योतिषामेव सन्निवेशोर्थनिश्चयः ।
लोकसंव्यवहारार्थं महादेवेन निर्मितः ॥५८॥
बुद्धिपूर्वं भगवता कल्पादौ संप्रवर्तितः ।
स आश्रयोभिमानी च सर्वस्य ज्योतिरात्मकः ॥५९॥

एकरूपप्रधानस्य परिणामोयमद्भुतः ।
नैष शक्यः प्रसंख्यातुं याथातथ्येन केनचित् ॥६०॥
गतागतं मनुष्येण ज्योतिषां मांसचक्षुषा ।
आगमादनुमानाच्च प्रत्यक्षादुपपत्तितः ॥६१॥
परीक्ष्य निपुणं बुद्धया श्रद्धातव्यं विपश्चिता ।
चक्षुः शास्त्रं जलं लेख्यं गणितं मुनिसत्तमाः ॥६२॥
पञ्चैते हेतवो ज्ञेया ज्योतिर्मानविनिर्णये ॥६३॥

यह दिवाकर चारो प्रकार के भूतो के प्रवृत्त करने वाला तथा निवर्त्तक होता है किन्तु उस दिवाकर का भी प्रवर्तक साक्षात् देव भगवान रुद्र होते हैं ॥५७॥ इस प्रकार से यह ज्योतियों का अर्थ निश्चय वाला सन्निवेश लोक के भली-भाँति व्यवहार के लिये महादेव ने निर्मित किया है ॥५८॥ भगवान् ने बुद्धि पूर्वक यह कल्प के आदि मे ही भली-भाँति प्रवृत्त किया है। वह सबका ज्योति स्वरूप वाला अभिमानी आश्रय है ॥५९॥ एक रूप वाले प्रधान का यह परम अद्भुत परिणाम होता है। यह यथार्थ रूप से प्रसख्यान करना किसी के द्वारा भी नही हो सकता है ॥६०॥ मास की चक्षु वाले विद्वान् मनु को ग्रहादि का सम तथा वक्र गमन के विषय मे आगम आदि के द्वारा भली-भाँति परीक्षण करके तथा अनुमान और प्रत्यक्ष उपपत्ति से जानकर ही श्रद्धा करनी चाहिये। हे मुनिसत्तमो ! शास्त्र, जल, लेख्य और गणित तथा चक्षु हेतु हैं ॥६१॥६२॥ ज्योतियो के मान के निर्णय चक्षु आदि उपर्युक्त पाँच हेतु होते हैं ॥६३॥

ध्रुव आख्यान

कथं विष्णोः प्रसादाद्वै ध्रुवो बुद्धिमतां वरः ।
मेढीभूतो ग्रहाणां वै वक्तुमर्हसि सांप्रतम् ॥१॥
एतमर्थं मया पृष्टो नानाशास्त्रविशारदः ।
मार्कण्डेयः पुरा प्राह मह्यं शुश्रूषवे द्विजाः ॥२॥
सार्वभौमो महातेजाः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
उत्तानपादो राजा वै पालयामास मेदिनीम् ॥३॥
तस्य भार्याद्वयमभूत्सुनीतिः सुरुचिस्तथा ।
अग्रजायामभूत्पुत्रः सुनीत्यां तु महायशाः ॥४॥
ध्रुवो नाम महाप्राज्ञः कुलदीपो महामतिः ।
कदाचित्सप्तवर्षोपि पितुरङ्कमुपाविशत् ॥५॥
सुरुचिस्तं विनिर्धूय स्वपुत्र प्रीतिमानसा ।
न्यवेशयत्तं विप्रेन्द्रा ह्यङ्कं रूपेण मानिता ॥६॥
अलब्ध्वा स पितुर्धीमानङ्कं दुःखितमानसः ।
मातुः समीपमागम्य रुरोद स पुनः पुनः ॥७॥

इस अध्याय मे उस चरित का वर्णन किया जाता है जिसमें ध्रुव ने तपस्या के द्वारा केशव की आराधना करके परम पद की प्राप्ति की थी। ऋषियो ने कहा—बुद्धमानो मे परम श्रेष्ठ ध्रुव ने किस प्रकार से भगवान् की प्रसन्नता प्राप्त की थी और उस प्रसाद से वह कैसे ग्रहो के मध्य मे मेढीभूत अर्थात् मध्योपरिस्थ प्रधान हो गया था—अब इसे कृपा कर आप कहने के योग्य हैं ॥१॥ सूत जी ने कहा—मैंने पहिले इसी बात को अनेक शास्त्रो के महा पण्डित मार्कण्डेय से पूछा था। हे द्विजगण ! उन मार्कण्डेय महर्षि ने श्रवण की इच्छा रखने वाले मुझसे यह चरित्त कहा था ॥२॥ मार्कण्डेय ने कहा—सब प्रकार के शस्त्र धारण करने वालो मे अति श्रेष्ठ, महान् तेजस्वी चक्रवर्त्ती राजा उत्तानपाद इस पृथ्वी का पालन करता था ॥३॥ उस राजा के दो

पत्नियाँ थी। एक का नाम सुनीति था और दूसरी भार्या का नाम सुरुचि था। बड़ी रानी सुनीति मे महान् यश वाला पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥४॥ उस पुत्र का नाम ध्रुव था। वह महान् पण्डित, कुल का दीपक और तीव्र बुद्धि वाला था। किसी समय मे जब यह सात वर्ष की ही अवस्था वाला था, अपने पिता की गोद मे जाकर बैठ गया था। ॥५॥ हे विप्रेन्द्रो ! सुरुचि अत्यन्त अपने सौन्दर्य के कारण गर्व वाली थी। उसने उस ध्रुव सुनीति के पुत्र को हाथ से खीच कर गोद से उतार दिया था और वहाँ राजा की गोद मे अपने पुत्र को बिठा दिया था और मन मे अत्यधिक प्रसन्न हुई थी ॥६॥ वह ध्रुव अपने पिता की गोद को न प्राप्त कर बुद्धिमान् के हृदय मे बडा दुख हुआ था और अपनी माता सुनीति के समीप मे आकर वह बारम्बार रुदन करने लगा था ॥७॥

रुदन्तं पुत्रमाहेदं माता शोकपरिप्लुता।
सुरुचिर्दयिता भर्तुस्तस्याः पुत्रोपि तादृशः ॥८॥
मम त्वं मंदभाग्याया जातः पुत्रोप्यभाग्यवान्।
किं शोचसि किमर्थं त्व रोदमानः पुनः पुनः ॥९॥
सन्तप्तहृदयो भूत्वा मम शोकं करिष्यसि।
स्वस्थस्थानं ध्रुव पुत्र स्वशक्त्या त्वं समाप्नुयाः ॥१०॥
इत्युक्तः स तु मात्रा वै निर्जगाम तदा वनम्।
विश्वामित्रं ततो दृष्ट्वा प्रणिपत्य यथाविधि ॥११॥
उवाच प्रांजलिर्भूत्वा भगवन् वक्तुमर्हसि।
सर्वेषामुपरिस्थानं केन प्राप्स्यामि सत्तम ॥१२॥
पितुरङ्के समासीनं माता मां सुरुचि मुने।
व्यधूनयत्स तां राजा पिता नोवाच किंचन ॥१३॥
एतस्मात्कारणाद्ब्रह्मंस्त्रस्तोहं मातरं गतः।
सुनीतिराह मे माता माकृथाः शोकमुत्तमम् ॥१४॥

माता सुनीति भी रुदन करते हुए अपने पुत्र को देखकर शोक से परिप्लुत हो गई थी और अपने पुत्र ध्रुव से कहा—बेटा, सुरुचि स्वामी की अत्यन्त प्यारी पत्नी है और उसका पुत्र भी उसी प्रकार का परम प्रिय है ।।८।। मेरे मन्द भाग्य वाली के तू पुत्र पैदा हुआ है अतः तू भी अभागा ही है । तू क्या चिन्ता करता है और बार-बार क्यों रुदन कर रहा है ।।९।। तू जब सन्तप्त हृदय वाला होगा तो मुझे भी महान् शोक होगा हे पुत्र ! तू स्वस्थ होता हुआ अपनी ही शक्ति के द्वारा अटल स्थान को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न कर ।।१०।। माता के द्वारा इस तरह से कहने पर वह उसी समय वन मे वहाँ से निकलकर चला गया था । इसके पश्चात् उसने मार्ग मे विश्वामित्र ऋषि को देखा था और विधि पूर्वक ध्रुव ने उनको प्रणाम किया था ।।११।। ऋषि के समक्ष म ध्रुव हाथ जोड कर खडा हो गया और उनसे कहा—हे भगवन् ! हे श्रेष्ठ ! आप मुझे यह बताने की कृपा करे कि मैं सबके ऊपर म स्थित स्थान को किस प्रकार से प्राप्त करूँगा ।।१२।। हे मुने ! माता सुरुचि ने मुझे अपने पिता की गोद म स्थित को झिडककर नीचे उतार दिया है और मेरे पिता राजा उत्तान पाद ने उससे कुछ भी नहीं कहा ।।१३।। हे ब्रह्मन् ! इस कारण से डरा हुआ मैं अपनी माता के समीप मे पहुँचा था । मेरी माता सुनीति ने मुझ से कहा था कि शोक मत करो ।।१४।।

स्वकर्मणा पर स्थान प्राप्तुमर्हसि पुत्रक ।
तस्या हि वचन श्रुत्वा स्थान तव महामुने ।।१५।।
प्राप्तो वनमिद ब्रह्मन्न त्वा दृष्टवान्प्रभो ।
तव प्रसादात्प्राप्स्येह स्थानमद्भुतमुत्तमम् ।।१६।।
इत्युक्त स मुनि श्रीमान्प्रहसन्निदमब्रवीत् ।
राजपुत्र शृणुष्वेद स्थानमुत्तममाप्स्यसि ।।१७।।
आराध्य जगतामीश केशव क्लेशनाशनम् ।
दक्षिणाङ्गभव शम्भोर्महादेवस्य धीमत. ।।१८।।

जप नित्यं महाप्राज्ञ सर्वपाप विनाशनम् ।
इष्टदं परमं शुद्ध पवित्रममलं परम् ॥१९॥
ब्रूहि मन्त्रमिमं दिव्यं प्रणवेन समन्वितम् ।
नमोस्तु वासुदेवाय इत्येवं नियतेन्द्रियः ॥२०॥
ध्यायन्सनातनं विष्णुं जपहोमपरायणः ।
इत्युक्तः प्रणिपत्यैनं विश्वामित्रं महायशाः ॥२१॥

मेरी माता ने फिर कहा था—हे पुत्र ! तू अपने ही कर्म से परम स्थान को प्राप्त करने के योग्य है । उसके इस वचन का श्रवण कर मैं हे महामुने ! आपके इस स्थान मे प्राप्त हो गया हू । हे प्रभो ! हे ब्रह्मन् ! इस वन मे आकर मैंने अब आपका दर्शन प्राप्त कर लिया है । अब मैं आपकी कृपा से वह परम अद्भुत एवं सर्वोत्तम स्थान प्राप्त करूँगा ॥१५॥१६॥ इस तरह से ध्रुव के द्वारा कहे गये उस महा मुनि ने हँसते हुए यह कहा था—हे राजपुत्र ! तुम यह सुनो, तुम अवश्य ही उत्तम स्थान प्राप्त करोगे ॥१७॥ धीमान् महादेव शम्भु के दक्षिण अङ्ग से उद्भव प्राप्त करने वाले जगतो के स्वामी और क्लेशो के नाश करने वाले भगवान् केशव की आराधना करो ॥१८॥ हे महा प्राज्ञ ! समस्त पापो के विनाश करने वाले, अभीष्ट वस्तु के प्रदान करने वाले, परम शुद्ध, पवित्र और परम अमल मन्त्र का नित्य जप करो ॥१९॥ नियत इन्द्रियो वाला होकर अर्थात् नितान्त एकाग्र मन वाला होकर प्रणव के (ओम्, इससे युक्त) सहित "नमो भगवते वासुदेवाय" अर्थात् भगवान् वासुदेव के लिये नमस्कार है । इस मन्त्र को जोकि अत्यन्त दिव्य है बोलो अर्थात् जपो ॥२०॥ और सनातन विष्णु भगवान् का ध्यान बराबर करते हुए अनवरत मन्त्र का जाप, होम मे तत्पर रहो । इस तरह से जब विश्वामित्र ने कहा तो ऐसा कहते हुए ध्रुव ने जो कि महान् यश वाला है विश्वामित्र महर्षि को प्रणाम किया था ॥२१॥

प्राङ्मुखो नियतो भूत्वा जजाप प्रीतमानसः ।
शाकमूलफलाहारः संवत्सरमतंद्रितः ॥२२॥

जजाप मन्त्रमनिशमजस्रं स पुनः पुन ।
वेताला राक्षसा घोराः सिंहाद्याश्च महामृगा. ॥२३॥
तमभ्ययुर्महात्मानं बुद्धिमोहाय भीषणा ।
जपन् स वासुदेवेति न किंचित्प्रत्यपद्यत ॥२४॥
सुनीति रस्य या माता तस्या रूपेण संवृता ।
पिशाची समनुप्राप्ता रुरोद भृशदु खिता ॥२५॥
मम त्वमेकः पुत्रोसि किमर्थं क्लिश्यते भवान् ।
मामनाथामपहाय तप आस्थितवानसि ॥२६॥
एवमादीनि वाक्यानि भाषमाणा महातपा ।
अनिरीक्ष्यैव दृष्टात्मा हरेर्नाम जजाप स. ॥२७॥
तत प्रशेमु सर्वत्र विघ्नरूपाणि तत्र वै ।
ततो गरुडमारुह्य कालमेघसमद्युति. ॥२८॥

ध्रुव मन म अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ पूर्व की ओर मुख करके नियत हो गया था और मन्त्र का जाप करने लग गया था। एक वर्ष पर्यन्त अतन्द्रित होते हुए उसने इस प्रकार की तपस्या की तथा शाक, मूल और फलों का आहार किया ॥२२॥ उसने निरन्तर लगातार बार-बार इस पवित्र मन्त्र का जप किया था। उस समय उस महान् आत्मा वाले ध्रुव की बुद्धि को मोहित करने के लिए बहुत भीषण वेताल, राक्षस, घोर सिंह आदि महा मृग उसके समीप में आये थे। किन्तु वह वासुदेव के द्वादशाक्षर मन्त्र का जप बराबर करता ही रहा था और उस कुछ भी भय आदि नही हुआ था ॥२३॥२४॥ उसकी सुनीति जो माता थी उसके रू को प्राप्त होने वाली पिशाची वहा प्राप्त हुई और अत्यन्त दु खित होकर रुदन करने लगी थी ॥२५॥ मेरा तू एक ही पुत्र है। तू इस तरह किसलिये ऐसा क्लेश भोग रहा है। मुझ अनाथा का त्याग करके तू यहाँ तपस्या करने के लिये आस्थित हो गया है ॥२६॥ इस प्रकार के अनेक वाक्यों को बोलने वाली उसको उस महान् परम दृढ़ तापसी ने बिल्कुल देखा भी नहीं था और प्रसन्न चित्त

वाले उसने बराबर हरि के नाम का जाप किया था ॥२७॥ इसके अनन्तर के समस्त विघ्नों के स्वरूप वहाँ पर सर्वत्र प्रशान्त हो गये थे। इसके पश्चात् काल मेघ के तुल्य द्युति वाले भगवान् गरुड़ पर सवार होकर वहा आये थे ।।२८॥

सर्वदेवैः परिवृतः स्तूयमानो महर्षिभिः ।
आययौ भगवान्विष्णुः ध्रुवांतिकमरातिहा ॥२९॥
समागतं विलोक्याथ कोसावित्येव चितयन् ।
पिबन्निव हृषीकेश नय नाभ्यां जगत्पतिम् ॥३०॥
जपन् स वासुदेवेति ध्रुवस्तस्थौ महाद्युतिः ।
शङ्खप्रांतेन गोविंदः पस्पर्शास्यं हि तस्य वै ॥३१॥
ततः स परमं ज्ञानमवाप्य पुरुषोत्तमम् ।
तुष्टाव प्रांजलिर्भूत्वा सर्वलोकेश्वरं हरिम् ॥३२॥
प्रसीद देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर ।
लोकात्मन् वेदगुह्यात्मन् त्वां प्रपन्नोस्मि केशव ॥३३॥
न विदुस्त्वा महात्मानं सनकाद्या महर्षयः ।
तत्कथं त्वामहं विद्यां नमस्ते भुवनेश्वर ॥३४॥
तमाह प्रहसन्विष्णुरेहि वत्स ध्रुवो भवान् ।
स्थानं ध्रुव समासाद्य ज्योतिषामग्रभुग्भव ॥३५॥

भगवान् विष्णु उस समय समस्त देवो से परिवृत थे अर्थात् उनके चारो ओर देवगण साथ मे थे और महर्षि गणों के द्वारा स्तूयमान हो रहे थे । भगवान् इस प्रकार से ध्रुव के समीप में आकर उपस्थित हो गये थे जोकि अपने समस्त शत्रुओ का सर्वदा हनन करने वाले हैं ।।२९॥ समक्ष मे समागत भगवान् विष्णु को देखकर ध्रुव ने मन मे विचार किया था कि यह कौन है । उन जगत् के स्वामी हृषीकेश के रूप माधुर्य का अपने नेत्रो से पान करते हुए वह ध्रुव 'ओ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस मन्त्र का बराबर जाप करते हुए वैसे ही अपनी तपस्या मे वह महान् द्युति वाला समास्थित बना रहा था । तब गोविन्द ने उसके

मुख को अपने पाञ्चजन्य शङ्ख के एक भाग से स्पर्श कराया था। ॥३०॥३१॥ उससे फिर उस ध्रुव ने परम ज्ञान की प्राप्ति कर ली थी और फिर समस्त लोकों के ईश्वर पुरुषोत्तम हरि के सामने हाथ जोड़ कर उनका स्तवन ध्रुव ने किया था ॥३२॥ हे देवों के भी देवेश ! आप प्रसन्न होइये। आप शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले हैं। आप तो इन सम्पूर्ण लोकों की आत्मा है और आपके स्वरूप को वेद भी नहीं जानते हैं। तात्पर्य यह है कि मैं एक अबोध बालक आपके उस स्वरूप को क्या जान सकता हूं जोकि वेदों मे भी गुह्य है। हे केशव ! मैं आपकी शरण मे प्राप्त हुआ हू ॥३३॥ हे भुवनेश्वर ! महान् आत्मा वाले आपको सनकादि महर्षिगण भी नही जान सके है तो फिर मैं एक अज्ञान छोटा सा बालक आपको कैसे जान सकता हूं। मैं आपको प्रणाम करता हूं ॥३४॥ भगवान् विष्णु ने हंसते हुए उस ध्रुव से कहा—हे वत्स ! आओ, तुम ध्रुव हो और ध्रुव स्थान को प्राप्त कर समस्त ज्योतिर्मण्डल में सबसे आगे रहने वाले हो जाओ ॥३५॥

मात्रा त्व सहितस्तत्र ज्योतिषां स्थानमाप्नुहि।
मत्स्थानमेतत्परमं ध्रुवं नित्यं सुशोभनम् ॥३६॥
तपसाराध्य देवेशं पुरा लब्ध हि शंकरात्।
वासुदेवेति यो नित्य प्रणवेन समन्वितम् ॥३७॥
नमस्कारसमायुक्तं भगवच्छब्दसंयुतम्।
जपेदेव हि यो विद्वान्ध्रुव स्थान प्रपद्यते ॥३८॥
ततो देवाः सग धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
मात्रा सह ध्रुव सर्वे तस्मिन् स्थाने न्यवेशयन् ॥३९॥
विष्णोराज्ञा पुरस्कृत्य ज्योतिषा स्थानमाप्तवान्।
एव ध्रुवो महातेजा द्वादशाक्षरविद्यया ॥४०॥
अवाप महतीं सिद्धिमेतत्ते कथितं मया ॥४१॥
तस्माद्यो वासुदेवाय प्रणामं कुरुते नरः।
स याति ध्रुवसालोक्यं ध्रुवत्वं तस्य तत्तया ॥४२॥

तुम अपनी माता के सहित वहाँ पर ज्योतियो के मध्य मे स्थान प्राप्त करो। यह मेरा बहुत ही अच्छा ध्रुव (निश्चल) एवं नित्य स्थान हैं ॥३६॥ पहिले तप के द्वारा देवेश की आराधना करके भगवान् शङ्कर से इसे प्राप्त किया था। प्रणव से युक्त और नमस्कार से सयुत तथा भगवत्, इस शब्द से समन्वित वासुदेव, इस मन्त्र को जो नित्य ही जप किया करता है अर्थात् 'ओ नमो भगवने वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मन्त्र का जो विद्वान् जप करता है वह ध्रुव स्थान को प्राप्त हो जाता है ॥३७॥३८॥ इसके अनन्तर गन्धर्वों के सहित देवगण ने, सिद्धो ने और परमर्षियो ने सभी ने माता के सहित ध्रुव को उस स्थान पर निवेशित किया था ॥३९॥ इस प्रकार से विष्णु की आज्ञा को शिरोधार्य करके महा तेजस्वी ध्रुव ने द्वादशाक्षर विद्या के द्वारा ज्योतियो के उस स्थान को प्राप्त किया था ॥४०॥ इस तरह उसने महती सिद्धि प्राप्त की थी, यह मैंने तुम्हारे समक्ष मे सब बता दिया है ॥४१॥ सूतजी ने कहा—इसलिये जो मनुष्य भगवान् वासुदेव को प्रणाम किया करता है वह ध्रुव के लोक को प्राप्त हो जाता है और उसको भी उसी प्रकार का ध्रुवत्व प्राप्त होता है ॥४२॥

दक्ष द्वारा देवादि सृष्टि वर्णन

देवाना दानवाना च गधर्वोरगरक्षसाम् ।
उत्पत्ति ब्रूहि सूताद्य यथाक्रममनुत्तमम् ॥१॥
संकल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषा सृष्टिरुच्यते ।
दक्षात्प्राचेतसादूर्ध्वं सृष्टिर्मैथुनसंभवा ॥२॥
यदा तु सृजतस्तस्य देवर्षिगण पन्नगान् ।
न वृद्धिमगमल्लोकस्तदा मैथुनयोगतः ॥३॥

दक्षः पुत्रसहस्राणि पञ्च सूत्यामजीजनत् ।
तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥४॥
नारदः प्राह हर्यश्वान्दक्षपुत्रान्समागतान् ।
भुवः प्रमाणं सर्वं तु ज्ञात्वोर्ध्वमध एव च ॥५॥
ततः सृष्टिं विशेषेण कुरुध्वं मुनिसत्तमाः ।
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतोदिशम् ॥६॥
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रादिव सिंधवः ।
हर्यश्वेषु च नष्टेषु पुनर्दक्षः प्रजापतिः ॥७॥
सूत्यामेव च पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः ।
शवला नाम ते विप्राः समेताः सृष्टिहेतवः ॥८॥

इस अध्याय मे दक्ष के द्वारा देवादि की वासिष्ठान्त सृष्टि का वर्णन किया जाता है। ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! अब आप देव, दानव, गन्धर्व, उरग और राक्षसों की यथाक्रम उत्तम उत्पत्ति का वर्णन करिये ॥१॥ सूतजी ने कहा—पूर्व पुरुषों की (ब्रह्मादिकी) सृष्टि मन के सङ्कल्प से, दर्शन से और स्पर्श से कही जाती है। प्राचेतस दक्ष से लेकर यह स्त्री, पुरुष के संयोग से उत्पन्न होने वाली सृष्टि हुई है ॥२॥ देव, ऋषि और पन्नगों का सृजन करने वाले उसका लोक जब वृद्धि को प्राप्त नहीं हुआ था तो उस समय मे मैथुन के योग से दक्ष ने सूती नाम वाली अपनी भार्या मे पाँच सहस्र पुत्र उत्पन्न किये थे। उन महान् भाग्य वालों को देखकर अनेक प्रकार की प्रजा के सृजन करने की इच्छा वाला वह हो गया था ॥३॥४॥ संसार के दोष भूत निखिल शरीर का विस्तार या भूत और अवसान सबको जानकर नारद ने समुपागत दक्ष के पुत्र हर्यश्वों से कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! आप लोग अब विशेष रूप से सृष्टि की रचना करो किन्तु वे सब उनके इस वचन को सुनकर सब दिशाओं में चले गये थे जोकि समुद्र में जाकर मिल जाने वाली नदियों की भाँति अभी तक भी वापिस नहीं लौटे हैं। हर्यश्वों के इस तरह नष्ट हो जाने पर फिर प्रजापति दक्ष ने सूती भार्या मे एक

सहस्र पुत्रो को जन्म ग्रहण कराया था । शवल नाम वाले वे सृष्टि करने के लिए एकत्रित हुए थे ॥५॥६॥७॥८॥

नारदोनुगताग्प्राह पुनस्तान्सूर्यवर्चसः ।
भुवः प्रमाण सर्वं तु ज्ञात्वा भ्रातृन् पुनः पुनः ॥६॥
आगत्य वाथ सृष्टि वै करिष्यथ विशेपतः ।
तेपि तेनैव मार्गेण जग्मुर्भ्रातृगतिं तथा ॥१०॥
ततस्तेष्वपि नष्टेपु पष्टिकन्याः प्रजापतिः ।
वैरिण्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसस्तदा ॥११॥
प्रादात्स दशकं धम कश्यपाय त्रयोदश ।
विंशत्सप्त च सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये ॥१२॥
द्वे चैव भृगुपुत्राय द्व कृशाश्वाय धीमते ।
द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत्तासा नामानि विस्तरात् ॥१३॥

नारद ने सूर्य के समान वर्चस वाले अनुगत उनसे भू का संपूर्ण प्रमाण को जानकर समस्त भाइयो से बार-बार कहा था कि आप सब यहाँ आकर विशेष सृष्टि की रचना करोगे किन्तु वे सब भी उसी मार्ग के द्वारा गमन कर गये थे जिसमे कि उनके बडे भाई हर्यश्व गये थे। ॥६॥१०॥ इसके अनन्तर उनके भी नष्ट हो जाने पर प्रजापति प्राचेतस दक्ष ने वैरिणी नाम वाली अपनी भार्या मे उस समय साठ कन्याएँ समुत्पन्न की थी ॥११ उन कन्याओ मे से दक्ष प्रजापति ने दश तो धर्म को दी थी और तेरह कश्यप को दी और सत्ताईश सोम को, चार अरिष्टनेमि को, दो भृगु के पुत्र को, दो धीमान् कृशाश्व को और दो आङ्गिरस को दी थी । अब उन सबके नामो को विस्तार पूर्वक श्रवण करो ॥१२॥१३॥

शृणुध्वं देवमातृणां प्रजाविस्तारमादितः ।
मरुत्वती वसूर्यामिर्लंबा भानुरुंधती ॥१४॥
सकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनी ।
धर्मपत्न्यः समाख्यातास्तासां पुत्रान्वदामि वः ॥१५॥

विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यानजीजनत् ।
मरुत्वत्या मरुत्वतो वसोस्तु वसवस्तथा ॥१६॥
भानोस्तु भानवः प्रोक्ता मुहूर्ताया मुहूर्तकाः ।
लंवाया घोपनामानो नागवीथिस्तु यामिजः ॥१७॥
सकल्पायास्तु संकल्पो वसुसर्गं वदामि वः ।
ज्योतिष्मतस्तु ये देवा व्यापकाः सर्वतोदिशम् ॥१८॥
वसवस्ते समाख्याताः सर्वभूतहितैषिणः ।
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोनलः ॥१९॥
प्रत्यूपश्च प्रभासश्च वसवोष्टौ प्रकीर्तिताः ।
अजैकपादहिर्बुध्न्यो विरूपाक्षः सभैरवः ॥२०॥

उन देव माताओं के शुभ नाम और फिर आरम्भ से ही उनकी प्रजा के विस्तार को सुनो। उन धर्म पत्नियों के नाम ये हैं—मरुत्वती, वसु, यामि, लम्बा, भानु, मरुन्धती, सकल्पा, मुहूर्ता, साध्या, विश्वा और भामिनी। ये सब धर्म पत्नी समाख्यात हुई थी। अब मैं आपके समक्ष उनके पुत्रों को बताता हूँ ॥१४॥१५॥ विश्वा के विश्वदेवा पुत्र हुए थे और साध्या साध्यों को जन्म दिया था। मरुत्वती मे मरुत्वान् देव तथा वसु से वसुगण समुत्पन्न हुए थे ॥१६॥ भानु नाम वाली से भानुगण तथा मुहूर्ता से मुहूर्तक पुत्र पैदा हुये थे। लम्बा से घोष नाम वाल और यामि से नाग वीथि समुत्पन्न हुये थे ॥१७॥ सङ्कल्पा से सङ्कल्प हुआ। अब आपका वसुओं का सर्ग बताता हूँ। ज्योतिष्मन्त जो देवगण थे वे सब दिशाओं मे व्यापक हो गये थे ॥१८॥ समस्त भूतों के हित चाहने वाले ये वसुगण, इस नाम से प्रसिद्ध हुये थे। आप (जल), ध्रुव, सोम (चन्द्र), धर, अनिल (वायु), अनल (अग्नि), प्रत्यूष, प्रभास ये आठ वसुगण कहे गये हैं। अब एकादश रुद्रों को बताते हैं ॥१९॥२०॥

हरश्च बहुरूपश्च त्र्यंबकश्च सुरेश्वरः ।
सावित्रश्च जयंतश्च पिनाकी चापराजितः ॥२१॥

एते रुद्राः समाख्याता एकादश गणेश्वराः ।
कश्यपस्य प्रवक्ष्यामि पत्नीभ्यः पुत्रपौत्रकम् ॥२२॥
अदितिश्च दितिश्चैव अरिष्टा सुरसा मुनिः ।
सुरभिर्विनता ताम्रा तद्वत् क्रोधवशा इला ॥२३॥
कद्रूस्त्विषा दनुस्तद्वत्तासा पुत्रान्वदामि वः ।
तुषिता नाम ये देवाश्चाक्षुपस्यांतरे मनोः ॥२४॥
वैवस्वतांतरे ते वै आदित्या द्वादश स्मृताः ।
इन्द्रो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोथ वरुणोर्यमा ॥२५॥
विवस्वान्सविता पूषा अंशुमान् विष्णुरेव च ।
एते सहस्रकिरणा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥२६॥
दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपादिति नः श्रुतम् ।
हिरण्यकशिपुं चैव हिरण्याक्षं तथैव च ॥२७॥
दनुः पुत्रशत लेभे कश्यपाद्बलदर्पितम् ।
विप्रचित्तिः प्रधानोभूत्तेषां मध्ये द्विजोत्तमाः ॥२८॥

अजैक पाद, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, सभैरव, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, सुरेश्वर, सावित्र, जयन्त, पिनाकी, अपराजित ये गणेश्वर ग्यारह रुद्र समाख्यात हुये है। अब कश्यप ऋषि की पत्नियों से जो पुत्र एवं पौत्र समुत्पन्न हुये थे उनको बतलाऊँगा ॥२१॥२२॥ कश्यप की पत्नियों के नाम ये थे—अदिति, दिति, अरिष्टा, सुरसा, मुनि, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इला, कद्रू, त्विपा, दनु। अब इन पत्नियों से जो पुत्र उत्पन्न हुए थे उनको तुम्हे बताता हूँ। त्विषा से चाक्षुप मन्वन्तर मे तुषित नाम वाले देव हुये थे ॥२३॥२४॥ वैवस्वत मन्वन्तर मे द्वादश आदित्य कहे गये है। इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, सविता, पूषा, अंशुमान् और विष्णु ये सहस्र किरणों वाले बारह आदित्य कहे गये हैं ॥२५॥२६॥ दिति नाम वाली कश्यप की पत्नी ने कश्यप से हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष ये दो ही पुत्र प्राप्त किये थे, ऐसा हमने सुना है ॥२७॥ हे द्विजोत्तमो ! दनु नाम धारिणी

पत्नी ने कश्यप से बल के दर्प वाले सौ पुत्र प्राप्त किये थे। उन सबके मध्य में विप्रचित्ति प्रधान था ॥२८॥

ताम्रा च जनयामास षट् कन्या द्विजपुंगवाः ।
शुकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी गृध्रिकां शुचिम् ॥२९॥
शुकी शुकानुलूकांश्च जनयामास धर्मतः ।
श्येनी श्येनांस्तथा भासी कुरंगांश्च व्यजीजनत् ॥३०॥
गृध्री गृध्रान् कपोतांश्च पारावतविहंगमान् ।
हंससारसकारंडप्लवाञ्छुचिरजीजनत् ॥३१॥
अजाश्वमेषोष्ट्रखरान् सुग्रीवी चाप्यजीजनत् ।
विनता जनयामास गरुडं चारुणं शुभा ॥३२॥
सौदामिनी तथा कन्यां सर्वलोकभयंकरीम् ।
सुरसायाः सहस्रं तु सर्पाणामभवत्पुरा ॥३३॥
कद्रूः सहस्रशिरसां सहस्रं प्राप सुव्रता ।
प्रधानास्तेषु विख्याताः षड्विंशतिरनुत्तमाः ॥३४॥
शेषवासुकिकर्कोटशखैरावतकंबलाः ।
धनंजयमहानीलपद्माश्वतरतक्षकाः ॥३५॥

हे द्विजश्रेष्ठो ! ताम्रा नाम वाली पत्नी ने छै कन्याएँ उत्पन्न की थी। उनके नाम शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, गृध्रिका और शुचि ये थे ॥२९॥ शुकी ने धर्म से शुक और उलूकों को उत्पन्न किया था। श्येनी ने श्येनों को जन्म ग्रहण कराया था और भासी ने कुरङ्गों को उत्पन्न किया था ॥३०॥ गृध्री ने गृध्रों को तथा कपोतों (कबूतरों) को पैदा किया था और शुचि ने पारावत पक्षी तथा हंस, सारस एवं कारण्डप्लवों को उत्पन्न किया था ॥३१॥ सुग्रीवी ने बकरी, अश्व, मेष, ऊँट और गधों को जन्म दिया था शुभा विनता ने गरुड़ और अरुण को तथा समस्त लोक को भय देने वाली सौदामिनी नाम वाली कन्या को उत्पन्न किया था। सुरसा के पहिले एक सहस्र सर्प हुए थे ॥३२॥३३॥ सुव्रता कद्रू ने एक

सहस्र सहस्र शिरों वाले समुत्पन्न किये थे। उनमें सर्वोत्तम छब्बीस प्रधान विख्यात हुये थे ॥३४॥ उन छब्बीसों के नाम—शेष, वासुकि, कर्कोटि, शंख, ऐरावत, कम्बल, धनञ्जय, महानील, पद्म, अश्वतर, तक्षक ये हैं ॥३५॥

एलापत्रमहापद्मधृतराष्ट्रबलाहकाः ।
शंखपालमहाशंखपुष्पदंष्ट्रशुभाननाः ॥३६॥
शंख लोमा च नहुषो वामनः फणितस्तथा ।
कपिलो दुर्मुखश्चापि पतंजलिरिति स्मृतः ॥३७॥
रक्षोगणं क्रोधवशा महामायं व्यजीजनत् ।
रुद्राणां च गणं तद्वद्गोमहिष्यौ वरांगना ॥३८॥
सुरभिर्जनयामास कश्यपादिति न श्रुतम् ।
मुनिर्मुनीनां च गणं गणमप्सरसां तथा ॥३९॥
तथा किनरगंधर्वानरिष्टाजनयद्बहून् ।
तृणवृक्षलतागुल्ममिला सर्वमजीजनत् ॥४०॥
त्विषा तु यक्षरक्षांसि जनयामास कोटिशः ।
एते तु काश्यपेयाश्च संक्षेपात्परिकीर्तिताः ॥४१॥
एतेषां पुत्रपौत्रादिवंशाश्च बहवः स्मृताः ।
एवं प्रजासु सृष्टासु कश्यपेन महात्मना ॥४२॥

एलापत्र, महापद्म, धृतराष्ट्र, बलाहक, शंखपाल, महाशंख, पुष्पदंष्ट्र, शुभानन, शंखलोमा, नहुष, वामन, फणित, कपिल दुर्मुख और पतञ्जलि ये कुल छब्बीस कहे गये हैं ॥३६।३७॥ क्रोधवशा ने महामाया वाले रक्षोगण को समुत्पन्न किया था। वराङ्गना ने रुद्रों के गण तथा गौ एवं महिषी को उत्पन्न किया था ॥३८॥ सुरभि ने कश्यप से उत्पन्न किया था, यह हमने सुना है। इस तरह कश्यप मुनि ने मुनियों के गण, अप्सराओं के समूह को उत्पन्न किया था ॥३९॥ तथा अरिष्टा ने बहुत से किन्नर एवं गन्धर्वों को उत्पन्न किया था। इला ने तृण, वृक्ष, लता और गुल्मों को सबको पैदा किया था ॥४०॥ त्विषा ने करोड़ों ही यक्ष और

राक्षसो को जन्म दिया था। ये सब काश्यपेय अर्थात् कश्यप ऋषि की सन्तति हैं जिनको मैंने सक्षेप से बतला दिया है ॥४१॥ इनके पुत्र एवं पौत्र आदि के बहुत से वश बनाये गये हैं। इस रीति से महात्मा कश्यप के द्वारा प्रजा का सृजन किया गया है ॥४२॥

प्रतिष्ठितासु सर्वासु चरासु स्थावरासु च ।
अभिषिच्याधिपत्येषु तेषा मुख्यान्प्रजापतिः ॥४३॥
ततो मनुष्याधिपति चक्रे वैवस्वतं मनुम् ।
स्वायंभुवेन्तरे पूर्वं ब्रह्मणा येऽभिषेचिताः ॥४४॥
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता ।
यथोपदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते ॥४५॥
स्वायभुवेन्तरे पूर्वे ब्रह्मणा येऽभिषेचिताः ।
ते ह्येते चाभिषिच्यते मनवश्च भवन्ति ते ॥४६॥
मन्वतरेष्वतीतेषु गता ह्येतेषु पार्थिवाः ।
एवमन्येभिषिच्यन्ते प्राप्ते मन्वतरे ततः ॥४७॥
अतीतानागता. सर्वे नृपा मन्वन्तरे स्मृताः ।
एतानुत्पाद्य पुत्रास्तु प्रजासतानकारणात् ॥४८॥
कश्यपो गोत्रकामस्तु चचार स पुनस्तपः ।
पुत्रो गोत्रकरो मह्यं भवतादिति चिंतयन् ॥४९॥

चर और स्थावर इन सबके प्रतिष्ठित हो जाने पर उनमें मुख्यों को प्रजापति ने उनके आधिपत्य पद पर अभिषिक्त किया था ॥४३॥ इसके अनन्तर मनुष्यो का अधिपति वैवस्वत मनु को बनाया था। स्वायम्भुव मन्वन्तर मे पहिले ब्रह्मा के द्वारा जो अभिषेचित किये गए थे उनसे सात द्वीपो वाली और पर्वतों से युक्त यह सम्पूर्ण पृथ्वी उपदेश के अनुसार इस समय भी प्रतिपालित की जाती है ॥४४॥४५॥ पूर्व स्वायम्भुव मन्वन्तर मे ब्रह्मा के द्वारा जो अभिषेचित हुये थे ये वे अभिषिक्त यहाँ पर किए जाते हैं और ये मनु होते हैं ॥४६॥ इन मन्वन्तरों के व्यतीत हो जाने पर पार्थिव भी चले गए फिर इनके पश्चात इस प्रकार से मन्व-

न्तर के प्राप्त होने पर अन्य अभिषिक्त किये जाते हैं ॥४७॥ अतीत तथा अनागत अर्थात् भविष्य मे आने वाले समस्त नृप मन्वन्तर मे कहे गये हैं। प्रजा के सन्तान के कारण से इन पुत्रो की उत्पत्ति की थी ॥४८॥ अपने गोत्र अर्थात् वंश की कामना रखने वाले कश्यप ने इन सबको उत्पन्न करने के पश्चात् पुनः तपस्या की क्योकि उनके मन मे यह विचार था कि मेरे गोत्र को चलाने कोई पुत्र पैदा होवे ॥४६॥

तस्यैवं ध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मनः ।
ब्रह्मयोगात्सुतौ पश्चात्प्रदुर्भू तौ महौजसौ ॥५०॥
वत्सरश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ ।
वत्सरान्नैध्रुवो जज्ञे रैम्यश्च सुमहायशाः ॥५१॥
रैम्यस्य रैम्या विज्ञेया नैध्रुवस्य वदामि वः ।
च्यवनस्य तु कन्यायां सुमेधाः समपद्यत ॥५२॥
नैध्रुवस्य तु सा पत्नी माता वै कुंडपायिनाम् ।
असितस्यैकपर्णायां ब्रह्मिष्ठः समपद्यतः ॥५३॥
शांडिल्यानां वरः श्रीमान्देवलः सुमहातपाः ।
शांडिल्या नैध्रुवा रैम्यास्त्रयः पक्षास्तु काश्यपाः ॥५४॥
नव प्रकृतयो देवाः पुलस्त्यस्य वदामि वः ।
चतुर्युगे ह्यतिक्रांते मनोरेकादशे प्रभोः ॥५५॥
अर्धविशिष्टे तस्मिंस्तु द्वापरे संप्रवर्तिते ।
मानवस्य नरिष्यन्तः पुत्र आसीद्दमः किल ॥५६॥

इस रीति से ध्यान करके तप करने वाले महात्मा कश्यप के ब्रह्म के योग से फिर महान् ओज वाले दो पुत्र प्रादुर्भूत हुये थे ॥५०॥ उन दोनो के नाम वत्सर और असित थे वे दोनो ही ब्रह्मवादी पुत्र थे। वत्सर से नैध्रुव उत्पन्न हुआ था और महान् यश वाला रैम्य पैदा हुआ था ॥५१॥ रैम्य के रैम्य इस नाम से जानने चाहिए। नैध्रुव के विषय मे मैं आपको बताता हूं। च्यवन ऋषि की कन्या में सुमेधा उत्पन्न हुई थी ॥५२॥ वह नैध्रुव की पत्नी थी और कुण्डपायियों की माता थी।

आसित के एकवर्णा मे ब्रह्मिष्ठ उत्पन्न हुआ था ॥५३॥ शाण्डिल्यो में श्रेष्ठ श्रीमान् देवल महान् तपस्वी था : इस तरह शाण्डिल्य, रैम्य और नैध्रुव ये तीन पक्ष कश्यप हुये थे ॥५४॥ नौ प्रकृति वाले देव पुलस्त्य के आपको बतलाता हू। मनु प्रभु के एकादश चतुर्युगो के अति क्रान्त होने पर उसके अर्व अवशिष्ट रहने पर जबकि द्वापर युग मे सप्रवर्तित हो गया था उस समय में मानव का नारिष्यन्त दम पुत्र था ॥५५॥ ॥५६॥

दमस्य तस्य दायादर तृणबिंदुरिति स्मृतः ।
त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये सवभूव ह ॥५७॥
तस्य कन्या त्विलविला रूपेणाप्रतिमाभवत् ।
पुलस्त्याय स राजर्षिस्ता कन्या प्रत्यपादयत् ॥५८॥
ऋषिरैरविलो यस्या विश्रवा समपद्यत ।
तस्य पत्न्यश्चतस्त्रस्तु पौलस्त्यकुलवर्धनाः ॥५६॥
बृहस्पते शुभा कन्या नाम्ना वै देववर्णिनी ।
पुष्पो त्कटा बलाका च सुते माल्यवतः स्मृते ॥६०॥
कैकसी मालिनः कन्या तासा वै शृणुत प्रजाः ।
ज्येष्ठ वैश्रवण तस्मात्सुषुवे देव वर्णिनी ॥६१॥
कैकसी चाप्यजनयद्रावण राक्षसाधिपम् ।
कु भकर्ण शूर्पनखा धीमन्त च विभीषणम् ॥६२॥
पुष्पोत्कटा ह्यजन यत्पुत्रास्तस्माद्द्विजोत्तमा ।
महोदर प्रहस्त च महापार्श्वं खर तथा ॥६३॥

उस दम का पुत्र तृणबिन्दु नाम वाला कहा गया है। तृतीय त्रेतायुग के आरम्भ मे राजा हुआ था ॥५७॥ उसकी कन्या इलाविला थी जो परम सुन्दरी थी कि रूप मे अप्रतिम हुई थी। उस राजर्षि ने उस अपनी कन्या को पुलस्त्य को दी थी ॥५८॥ जिसमें ऐरविल ऋषि विश्रवा समुत्पन्न हुआ था। उसके पौलस्त्य कुल की बढाने वाली चार पत्नियाँ थी ॥५६॥ उनमे एक तो परम शुभ बृहस्पति की कन्या थी

जिसका नाम देववर्णिनी था। दो माल्यवान् की कन्याएँ थी जिनके नाम पुष्पोत्कटा और वलाका था ॥६०॥ एक माली की कन्या थी जिसका नाम कैकसी था। अब उनकी प्रजा जो हुई थी उनके विषय में श्रवण करो। देव वर्णिनी नाम वाली पत्नी ने सबसे बड़ा पुत्र उस विश्रुवा से वैश्रवण उत्पन्न किया था ॥६१॥ कैकसी नाम वाली विश्रवा की पत्नी ने राक्षसों के अधिप रावण, कुम्भकर्ण, धीमान्, विभीषण और शूर्पनखा को उत्पन्न किया था ॥६२॥ हे द्विजोत्तमो! पुष्पोत्कटा ने उस विश्रवा से महोदर, प्रहस्त, महापार्श्व और खर ये दो पुत्र उत्पन्न किये थे ॥६३॥

कुंभीनसी तथा कन्यां बलायाः शृणुत प्रजाः।
त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युज्जिह्वश्च राक्षसः ॥६४॥
कन्या वै मालिका चापि बलायाः प्रसवः स्मृतः।
इत्येते क्रूरकर्माणः पौलस्त्या राक्षसा नव ॥६५॥
विभीषणोतिशुद्धात्मा धर्मज्ञः परिकीर्तितः।
पुलस्त्यस्य मृगाः पुत्राः सर्वे व्याघ्राश्च दंष्ट्रिणः ॥६६॥
भूताः पिशाचाः सर्पाश्च सूकरा हस्तिनस्तथा।
वानराः किंनराश्चैव ये च किंपुरुषास्तथा ॥६७॥
अनपत्यः क्रतुस्तस्मिन् स्मृतो वैव स्वतेन्तरे।
अत्रेः पत्न्यो दशैवासन् सुन्दर्यश्च पतिव्रताः ॥६८॥
भद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनवः।
भद्राभद्रा च जलदा मन्दा नन्दा तथैव च ॥६९॥
बलाबला च विप्रेन्द्रा या च गोपाबला स्मृता।
तथा तामरसा चैव वरक्रीडा च वै दश ॥७०॥

इन चार पुत्रों के अतिरिक्त कुम्भीनसी नाम की एक कन्या भी पुष्पोत्कटा ने प्रसूत की थी। अब वला की जो सन्तति समुत्पन्न हुई थी उसको सुनो। बला ने त्रिशिरा, दूषण और विद्युज्जिह्व राक्षस और मालिका नाम वाली एक कन्या को प्रसूत किया था। इतने ये नौ

पौलस्त्य अर्थात् पुलस्य ऋषि की सन्तान क्रूर कर्म करने वाली थीं। ।।६४।।६५।। इन सबमें विभीषण अत्यन्त शुद्ध आत्मा वाला और धर्म का ज्ञाता था। पुलस्य के पुत्र मृग, व्याघ्र और सब दंष्ट्राओं वाले हुए थे ।।६६।। भूत, पिशाच, सर्प, शूकर, हाथी, वानर, किन्नर और किम्पुरुष ये भी सब पुत्र हुए थे ।।६७।। वैवस्वत मन्वन्तर में क्रतु बिना सन्तति वाला कहा गया है। अत्रि मुनि की दश पत्नियाँ थीं किन्तु वे सब परम सुन्दरी और पतिव्रता थी ।।६८।। भद्राश्व के घृताची अप्सरा में दश पुत्री हुई थी। भद्राभद्रा, जलदा, मन्दा, नन्दा, बलाबला, गोपाबला, तामरसा और वरक्रीडा ये उनके नाम थे ।।६९।। ये आत्रेय वंश में उत्पन्न होने वाली थी। उन सबका स्वामी प्रभाकर था ।।७०।।

आत्रेयवंशप्रभवा स्तासां भर्ता प्रभाकरः।
स्वर्भानुपिहिते सूर्ये पतितेस्मिन्दिवो महीम् ।।७१।।
तमोऽभिभूते लोकेस्मिन्प्रभा येन प्रवर्तिता।
स्वस्त्यस्तु हि तवेत्युक्ते पतन्निह दिवाकरः ।।७२।।
ब्रह्मर्षेवचनात्तस्य पपात न विभुर्दिवः।
ततः प्रभाकरेत्युक्तः प्रभुरत्रिर्महर्षिभिः ।।७३।।
भद्रायां जनयामास सोमं पुत्रं यशस्विनम्।
स तासु जनयामास पुनः पुत्रांस्तपोधनः ।।७४।।
स्वस्त्यात्रेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः।
तेषां द्वौ ख्यातयशसौ ब्रह्मिष्ठौ च महौजसौ ।।७५।।
दत्तो ह्यत्रिवरो ज्येष्ठो दुर्वासास्तस्य चानुजः।
यवीयसी स्वसा तेषाममला ब्रह्मवादिनी ।।७६।।
तस्य गोत्रद्वये जाताश्चत्वारः प्रथिता भुवि।
श्यावश्च प्रत्वसश्चैव ववल्गुश्चाथ गह्वरः ।।७७।।
आत्रेयाणां च चत्वारः स्मृताः पक्षा महात्मनाम्।
काश्यपो नारदश्चैव पर्वतोनुद्धतस्तथा ।।७८।।

। जिस समय स्वर्भानु ने सूर्य को पिहित कर लिया था तो वह दिव से मही मे गिरने को था। इस लोक के अन्धकार से अभिभूत होने पर इसने प्रभा को प्रवर्त्तित किया था। तेरा कल्याण हो, ऐसे ब्रह्मर्षि के वचन से उस समय गिरता हुआ दिवाकर दिवलोक से भूमि पर नही गिरा था। तब से महर्षियो के द्वारा प्रभु अत्रि 'प्रभाकर' ऐसा कहा गया है ॥७१॥७२॥७३॥ भद्रा मे परम यशस्वी सोम पुत्र को उत्पन्न किया था। उस तपोधन ने पुन: उनमे पुत्रो को उत्पन्न किया था ॥७४॥ वे सब वेद के पारगामी ऋषि स्वस्त्या, इस नाम से ख्यात हुए थे। उनमे दो प्रसिद्ध यश वाले और बलिष्ठ एव महान् ओज वाले हुए थे ॥७५॥ उनमें अत्रिवर दत्त ज्येष्ठ था तथा दुर्वासा उसका छोटा भाई था। उनकी छोटी अमला ब्रह्मवादिनी भगिनी थी ॥७६॥ उसके दो गोत्रो मे चार उत्पन्न हुए थे जो कि इस भूतल मे प्रथित हुए हैं। उनके नाम श्याव, प्रत्वस, ववल्गु और गह्वर थे ॥७७॥ महान् आत्मा वाले आत्रेयो के चार पक्ष कहे गये है। काश्यप, नारद, पर्वत और अनुद्धत ॥७८॥

जज्ञिरे मानसा ह्येते अरुंधत्या निबोधत।
नारदस्तु वसिष्ठायारुन्धती प्रत्यपादयत् ॥७९॥
ऊर्ध्वरेता महातेजा दक्षशापात्तु नारदः।
पुरा देवासुरे युद्धे घोरे वै तारकामये ॥८०॥
अनावृष्ट्या हते लोके ह्युग्रे लोकेश्वरैः सह।
वसिष्ठस्तपसा धीमान्धारयामास वै प्रजाः ॥८१॥
अन्नोदकं मूलफलमोषधीश्च प्रवर्तयन्।
तानेताञ्जीवयामास कारुण्यादौषधेन च ॥८२॥
अरुन्धत्यां वसिष्ठस्तु सुतानुत्पादयच्छतम्।
ज्यायसोजनयच्छक्तेरदृश्यंती पराशरम् ॥८३॥
रक्षसा भक्षिते शक्तौ रुधिरेण तु वै तदा।
काली पराशराज्जज्ञे कृष्णद्वैपायनं प्रभुम् ॥८४॥

ये कश्यपादि चार ब्रह्मा के मानस पुत्र उत्पन्न हुए थे। अरुन्धती को समझलो। नारद ने वसिष्ठ से अरुन्धती को प्रतिपादित किया था। दक्ष के शाप से नारद ऊर्ध्वरेता महातेजा हो गये थे। पहिले तारकामय घोर देवासुर संग्राम मे अनावृष्टि से हत लोकेश्वरों के साथ लोक के उग्र हो जाने पर परम धीमान् वसिष्ठ ने तपोबल से प्रजा को धारण किया था ॥७९॥८०॥८१॥ अन्न, जल, मूल, फल और ओषधियों का प्रवर्त्तन करते हुए कारुण्य और औषध से इन सब को जीवित किया था ॥८२॥ वसिष्ठ ने अरुन्धती मे सौ पुत्र उत्पन्न किये थे। श्रेष्ठ शक्ति से अदृश्यन्ती ने पराशर को समुत्पन्न किया था ॥८३॥ राक्षस के द्वारा शक्ति के भक्षित करने पर उस समय रुधिर से काली ने पराशर से कृष्णद्वैपायन प्रभु को जन्म ग्रहण कराया था ॥८४॥

द्वैपायनो ह्यरण्यां वै शुकमुत्पादयत्सुतम् ।
उपमन्यु च पीवर्यां विद्धीमे शुकसूनवः ॥८५॥
भूरिश्रवा प्रभु शभु. कृष्णो गौरस्तु पचमः ।
कन्या कोर्ति मती चैव योगमाता धृतव्रता ॥८६॥
जननो ब्रह्मदत्तस्य पत्नो सा त्वनुहस्य च ।
श्वेतः कृष्णश्च गौरश्च श्यामो धूम्रस्तथारुणः ॥८७॥
नीलो बादरिकश्चैव सर्वे चैते पराशरा. ।
पराशराणामष्टौ ते पक्षाः प्रोक्ता महात्मनाम् ॥८८॥
अत ऊर्ध्वं निबोधघ्वमिन्द्रप्रमितिसभवम् ।
वसिष्ठस्य कपिजल्यो घृताच्यामुदपद्यत ॥८९॥
त्रिमूर्नियं समाख्यात इन्द्रप्रमितिरुच्यते ।
पृथ्वो. सुतायां सभूतो भद्रस्तस्या भवद्वसु ॥९०॥

द्वैपायन मुनि ने अरणी मे शुक मुनि को पुत्र रूप मे समुत्पन्न किया था और पीवरी मे उपमन्यु को प्रसूत किया था। अब इन शुक के पुत्रों को समझो। शुक के पुत्रों के नाम भूरिश्रवा, प्रभु, शम्भु, कृष्ण और पञ्चम गौर ये हैं तथा योगमाता, धृतव्रता कीर्तिमती एवं

कन्या हुई थी ॥८५॥८६॥ यह ब्रह्मदह्म की माता थी और अनुह की पत्नी हुई थी। श्वेत, कृष्ण, गौर, श्याम, धूम्र, अरुण, नील और वादरिक ये सब पराशर थे। महात्मा पराशरो के आठ पक्ष कहे गये हैं ॥८७॥८८॥ इससे आगे इन्द्र प्रमिति सम्भव के विषय में समझ लेना चाहिए। वसिष्ठ का कपिञ्जल्य घृताची में समुत्पन्न हुआ था ॥८९॥ जो त्रिमूर्त्ति, इस नाम से समाख्यात था वह इन्द्र प्रमिति कहा जाता है। पृथु की पुत्री मे भद्र उत्पन्न हुआ था उसका भद्र वसु हुआ था ॥९०।

उपमन्युः सुतस्तस्य वहवो ह्यौपमन्यवः ।
मित्रावरुणयोश्चैव कौण्डिन्या ये परिश्रुताः ॥९१॥
एकार्षेयास्तथा चान्ये वासिष्ठा नाम विश्रुताः ।
एते पक्षा वसिष्ठानां स्मृता दश महात्मनाम् ॥९२॥
इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा मानसा विश्रुता भुवि ।
भर्तारश्च महाभागा एषां वंशाः प्रकीर्तिताः ॥९३॥
त्रिलोकधारणे शक्ता देवर्षिकुलसंभवाः ।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोथ सहस्रशः ॥९४॥
यैस्तु व्याप्तास्त्रयो लोकाः सूर्यस्येव गभस्तिभिः ॥९५॥

उसका पुत्र उपमन्यु हुआ था। ऐसे बहुत से औपमन्यव हैं। मित्रावरुण के जो हैं वे कौण्डिन्य परिश्रुत हुए थे ॥९१॥ तथा अन्य एकार्षेय हैं और वासिष्ठ नाम से विश्रुत हुए थे। महात्मा वसिष्ठों के ये दश पक्ष कहे गये हैं। ये सब इस भूलोक मे ब्रह्मा के मानस पुत्र प्रसिद्ध हैं। ये महाभाग सब भर्त्ता हैं। हमने इनके वंश कीर्त्तित कर दिये हैं। ॥९२॥९३॥ देव और ऋषियों को कुल मे समुत्पन्न होने वाले ये सब त्रिलोकी को धारण करने मे समर्थ थे। उनके पुत्र और पौत्र सैंकड़ो तथा सहस्रों थे ॥९४॥ जिनके द्वारा सूर्य की किरणों के समान तीनो लोक व्याप्त हो रहे हैं ॥९५॥

रवि तथा ययाति वंश वर्णन

त्रिधन्वा देवदेवस्य प्रसादात्त ण्डिनस्तथा ।
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्य प्रयत्नतः ॥१॥
गाणपत्यं दृढ प्राप्तः सर्वदेवनमस्कृतः ।
आसीत्त्रिधन्वनश्चापि विद्वास्त्र्य्यारुणो नृपः ॥२॥
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः ।
तेन भार्या विदर्भस्य हृता हत्वामितौजसम् ॥३॥
पाणिग्रहणमन्त्रेषु निष्ठामप्रापितेष्विह ।
तेनाधर्मेण सयुक्त राजा त्र्य्यारुणोऽत्यजत् ॥४॥
पितरं सोऽब्रवीत्त्यक्तः क गच्छामीति वै द्विजाः ।
पिता त्वेनमथोवाच श्वपाकैः सह वर्तय ॥५॥
इत्युक्तः स विचक्राम नगराद्वचनात् पितुः ।
स तु सत्यव्रतो धीमाञ्छ्वपाकावसथान्तिके ॥६॥
पित्रा त्यक्तोऽवसद्वीरः पिता चास्य वनं ययौ ।
सर्वलोकेषु विख्यातस्त्रिशङ्कुरिति वीर्यवान् ॥७॥

इस अध्याय मे रवि के वंश मे होने वाले त्रिधन्वादि नृप तथा ययाति के पर्यन्त सोम के वंश वाले नृपो का वर्णन किया गया है। सूत जी ने कहा—देवो के भी देव तण्डी के प्रसाद से त्रिधन्वा ने एक सहस्र अश्वमेध यज्ञो का फल प्रयत्न पूर्वक प्राप्त करके समस्त देवो के द्वारा नमस्कृत होता हुआ गाणपत्य परम दृढ पद को प्राप्त हो गया था। त्रिधन्वा के अति विद्वान् त्र्य्यारुण नृप हुआ था ॥१॥२॥ उसका पुत्र सत्यव्रत नाम वाला महान् बलवान हुआ था। उसने (सत्यव्रत ने) अमितौजस नाम वाले विदर्भ देश का हनन करके उसकी भार्या को पाणिग्रहण के मन्त्रो के समाप्त होने पर हरण कर लिया था। इस भारत खण्ड मे इस तरह के अधर्म से युक्त उसको राजा त्र्य्यारुण उसके पिता ने

त्याग दिया था ॥३॥४॥ हे द्विज गण ! पिता के द्वारा त्यागे हुए उसने पिता से कहा था कि मैं कहाँ जाऊँ। उसके पिता ने उससे कहा था कि श्वपाकों (मेहतरों) के साथ रहो या व्यवहार रक्खो ॥५॥ इस प्रकार से पिता के द्वारा कहा गया वह धीमान् सत्यव्रत पिता के वचन से नगर से निकल गया था और श्वपाकों के निवास स्थान के समीप में पहुँच गया था ॥६॥ पिता के द्वारा त्यक्त वह वीर वहाँ पर ही बस गया था और इसका पिता वन को चला गया था। वह समस्त लोकों में वीर्यवान् त्रिशङ्कु, इस नाम से विख्यात हो गया था ॥७॥

वसिष्ठकोपात्पुण्यात्मा राजा सत्यव्रतः पुरा।
विश्वामित्रो महातेजा वरं दत्त्वा त्रिशङ्कवे ॥८॥
राज्येऽभिषिच्य त पित्र्ये याजयामास तं मुनिः।
मिषतां देवताना च वसिष्ठस्य च कौशिकः ॥९॥
सशरीरं तदा त वै दिवमारोपयद्विभुः।
तस्य सत्य व्रता नाम भर्या कैकयवंशजा ॥१०॥
कुमारं जनयामास हरिश्चंद्रमकल्मषम्।
हरिश्चन्द्रस्य च सुतो रोहितो नाम वीर्यवान् ॥११॥
हरितो रोहितस्याथ धुन्धुर्हारित उच्यते।
विजयश्च सुतेजाश्च धुन्धुपुत्रौ बभूवतुः ॥१२॥
जेता क्षत्रस्य सर्वत्र विजयस्तेन स स्मृतः।
रुचकस्तस्य तनयो राजा परमधार्मिकः ॥१३॥
रुचकस्य वृकः पुत्रस्तस्माद्बाहुश्च जज्ञिवान्।
सगरस्तस्य पुत्रोभूद्राजा परम धार्मिकः ॥१४॥

जो पहिले पुण्यात्मा सत्यव्रत राजा था वह वसिष्ठ के कोप से महातेजस्वी विश्वामित्र हुए और उन्होंने उस त्रिशंकु को वरदान देकर मुनि ने उसका पिता राज्यासन पर अभिषेक करके उससे यजन कराया था। देवताओं और वसिष्ठ के स्वीकृत न करने पर विभु कौशिक ने उस समय में इसी शरीर के सहित उसको स्वर्ग में आरोपित कर दिया

था। उसकी भार्या कैकय वंश मे उत्पन्न होने वाली सत्य व्रता नाम वाली थी ॥८॥९॥१०॥ उसने निष्पाप हरिश्चन्द्र नाम वाले कुमार को उत्पन्न किया था। हरिश्चन्द्र का पुत्र वीर्यमान् रोहित नाम वाला प्रसूत हुआ था ॥११॥ रोहित के हरित नामधारी पुत्र हुआ था जो धुन्धुहारी, इस नाम से कहा जाता है। विजय और सुतेजा ये दो धुन्धु के पुत्र हुए थे ॥१२॥ वह समस्त क्षत्रियों का जीतने वाला था इसलिये उनका सर्वत्र विजय कहा गया है। उसकी तनय रुचक परम धार्मिक राजा हुआ था ॥१३॥ रुचक के पुत्र वृक हुआ था और उससे बाहु समुत्पन्न हुआ था। इसका पुत्र सगर नाम वाला हुआ था जो कि अत्यन्त धार्मिक हुआ था ॥१४॥

द्वे भार्ये सगरस्यापि प्रभा भानुमती तथा।
ताभ्यामाराधितः पूर्वमौर्वोग्निः पुत्रकाम्यया ॥१५॥
और्वस्तुष्टस्तयोः प्रादाद्यथेष्टं वरमुत्तमम्।
एका षष्टिसहस्राणि सुतमेकं परा तथा ॥१६॥
अगृह्णद्वंशकर्तार प्रभागृह्णात्सुतान्बहून्।
एक भानुमतिः पुत्र मगृह्णादसमंजसम् ॥१७॥
तत षष्टिसहस्राणि सुषुवे सा तु वै प्रभा।
खनतः पृथिवी दग्धा विष्णुहुंकारमार्गणैः ॥१८॥
असमजस्य तनयः सोंशुमान्नाम विश्रुतः।
तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात्तु भगीरथः ॥१९॥
येन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वाऽवतारिता।
भगीरथ सुतश्चापि श्रुतो नाम बभूव ह ॥२०॥
नाभागस्तस्य दायादो नवमयन: प्रतापवान्।
अंबरीषः सतस्तस्य सिंधुद्वीपस्ततोभवत ॥२१॥

यथेष्ट उत्तम वरदान दिया था। उनमें से एक ने साठ हजार पुत्र प्राप्त किये थे और दूसरी ने वश के करने वाला पुत्र प्राप्त किया था। प्रभा ने बहुत से पुत्रों की प्राप्ति की थी। भानुमती ने एक असमञ्जस पुत्र को ग्रहण किया था ॥१६॥१७॥ इसके अनन्तर प्रभा ने साठ सहस्र पुत्रों का प्रसव किया था। वे सब साठ सहस्र पृथ्वी का खनन करते हुए विष्णु के हुङ्कार रूपी वाणों से दग्ध हो गये थे ॥१८॥ असमञ्जस के पुत्र का नाम अंशुमान्, इस शुभ नाम से विश्रुत हुआ था। उनका पुत्र दिलीप हुआ था और दिलीप से भगीरथ उत्पन्न हुआ था ॥१६॥ जिस भगीरथ ने उग्र तपस्या करके भागीरथी गङ्गा का अवतारण किया था। भगीरथ का पुत्र श्रुत नाम वाला हुआ था। ॥२०॥ इसके पुत्र का नाम नाभाग था जो भगवान् शिव का परम-भक्त एवं महान् प्रताप वाला हुआ था। उसका पुत्र अम्बरीष राजा हुआ था। उसके पश्चात् सिन्धुद्वीप हुआ था ॥२१॥

नाभागेनाबरीषेण भुजाभ्यां परिपालिता।
बभूव वसुधात्यर्थं तापत्रयविवर्जिता ॥२२॥
अयुतायुः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान्।
पुत्रोऽयुतायुषो धीमानृतुपर्णो महायशाः ॥२३॥
दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली।
नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणेषु दृढव्रतौ ॥२४॥
वीरसेनसुतश्चान्यो यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्भवः।
ऋतुपर्णस्य पुत्रोभूत्सार्वभौमः प्रजेश्वरः ॥२५॥
सुदासस्तस्य तनयो राजा त्विन्द्रसमोभवत्।
सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सौदासो नाम पार्थिवः ॥२६॥
ख्यातः कल्मापपादो वै नाम्ना मित्रस॰श्च सः।
वसिष्ठस्तु महातेजाः क्षेत्रे कल्मापपादके ॥२७॥
अश्मकं जनयामास इक्ष्वाकुकुलवर्धनम्।
अश्मकस्योत्तरायां तु मूलकस्तु सुतोभवत् ॥२८॥

नाभाग और अम्बरीष के द्वारा भुजाओं से परिपालित भूमि तापत्रय से अत्यन्त रहित हो गई थी ॥२२॥ सिन्धु द्वीप का पुत्र अयुतायु नामक हुआ था जो बहुत ही पराक्रमी था। अयुतायु का पुत्र परम बुद्धिमान् और महान् यश वाला ऋतुपर्ण हुआ था ॥२३॥ दिव्याक्ष हृदयज्ञ राजा बलवान् और नल का सखा था। पुराणों में दृढ व्रत वाले दो ही नल विख्यात हैं ॥२४॥ अन्य वीरसेन का पुत्र है जो कि इक्ष्वाकु के कुल में उद्भव प्राप्त करने वाला है। ऋतुपर्ण का पुत्र सार्वभौम (चक्रवर्त्ती) प्रजेश्वर हुआ था ॥२५॥ सुदास उसका पुत्र था जो राजा इन्द्र के समान ही हुआ था। सुदास का पुत्र सौदास नाम वाला राजा हुआ था ॥२६॥ वह नाम से तो मित्र सह था किन्तु कल्माषपाद ख्यात हुआ था। कल्माषपादक के क्षेत्र में महान् तेजस्वी वसिष्ठ हुआ था ॥२७॥ उसने इक्ष्वाकु के कुल के बढाने वाले अश्मक को जन्म ग्रहण कराया था। अश्मक के उत्तरा में मूलक नाम धारी पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥२८॥

स हि रामभयाद्राजा स्त्रीभिः परिवृतो वने।
बिभर्ति त्राणमिच्छन्वै नारीकवचमुत्तमम् ॥२६॥
मूलकस्यापि धर्मात्मा राजा शतरथः सुतः।
तस्माच्छतरथाज्जज्ञे राजा त्विलविलो बली ॥३०॥
आसीत्त्वैलविलिः श्रीमान्वृद्धशर्मा प्रतापवान्।
पुत्रो विश्वसहस्तस्य पितृकन्या व्यजीजनत् ॥३१॥
दिलीपस्तस्य पुत्रोभूत्खट्वाङ्ग इति विश्रुतः।
येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं प्राप्य जीवितम् ॥३२॥
त्रयोऽग्नयस्त्रयो लोका बुद्धया सत्येन वै जिताः।
दीर्घबाहुः सुतस्तस्य रघुस्तस्मादजायत ॥३३॥
अजः पुत्रो रघोश्चापि तस्माज्जज्ञे च वीर्यवान्।
राजा दशरथस्तस्माच्छ्रीमानिक्ष्वाकुवंशभृत् ॥३४॥
रामो दशरथाद्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः।
भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः ॥३५॥

यथेष्ट उत्तम वरदान दिया था। उनमे से एक ने साठ हजार पुत्र प्राप्त किये थे और दूसरी ने वंश के करने वाला पुत्र प्राप्त किया था। प्रभा ने बहुत से पुत्रों की प्राप्ति की थी। भानुमती ने एक असमञ्जस पुत्र को ग्रहण किया था ॥१६॥१७॥ इसके अनन्तर प्रभा ने साठ सहस्र पुत्रों का प्रसव किया था। वे सब साठ सहस्र पृथ्वी का खनन करते हुए विष्णु के हुङ्कार रूपी बाणों से दग्ध हो गये थे ॥१८॥ असमञ्जस के पुत्र का नाम अंशुमान्, इस शुभ नाम से विश्रुत हुआ था। उनका पुत्र दिलीप हुआ था और दिलीप से भगीरथ उत्पन्न हुआ था ॥१६॥ जिस भगीरथ ने उग्र तपस्या करके भागीरथी गङ्गा का अवतारण किया था। भगीरथ का पुत्र श्रुत नाम वाला हुआ था। ॥२०॥ इसके पुत्र का नाम नाभाग था जो भगवान् शिव का परम-भक्त एवं महान् प्रताप वाला हुआ था। उसका पुत्र अम्बरीष राजा हुआ था। उसके पश्चात् सिन्धुद्वीप हुआ था ॥२१॥

नाभागेनाम्बरीषेण भुजाभ्यां परिपालिता।
बभूव वसुधात्यर्थं तापत्रयविवर्जिता ॥२२॥
अयुतायुः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान्।
पुत्रोऽयुतायुषो धीमानृतुपर्णो महायशाः ॥२३॥
दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली।
नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणेषु दृढव्रतौ ॥२४॥
वीरसेनसुतश्चान्यो यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्भवः।
ऋतुपर्णस्य पुत्रोभूत्सार्वभौमः प्रजेश्वरः ॥२५॥
सुदासस्तस्य तनयो राजा त्विन्द्रसमोभवत्।
सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सौदासो नाम पार्थिवः ॥२६॥
ख्यातः कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहश्च सः।
वसिष्ठस्तु महातेजाः क्षेत्रे कल्माषपादके ॥२७॥
अश्मकं जनयामास इक्ष्वाकुकुलवर्धनम्।
अश्मकस्योत्तरायां तु मूलकस्तु सुतोभवत् ॥२८॥

नाभाग और अम्बरीष के द्वारा भुजाओं से परिपालित भूमि तापत्रय से अत्यन्त रहित हो गई थी ॥२२॥ सिन्धु द्वीप का पुत्र अयुतायु नामक हुआ था जो बहुत ही पराक्रमी था। अयुतायु का पुत्र परम बुद्धिमान् और महान् यश वाला ऋतुपर्ण हुआ था ॥२३॥ दिव्याक्ष हृदयज्ञ राजा बलवान् और नल का सखा था। पुराणो मे दृढ व्रत वाले दो ही नल विख्यात हैं ॥२४॥ अन्य वीरसेन का पुत्र है जो कि इक्ष्वाकु के कुल मे उद्भव प्राप्त करने वाला है। ऋतुवर्ण का पुत्र सार्व भौम (चक्रवर्त्ती) प्रजेश्वर हुआ था ॥२५॥ सुदास उसका पुत्र था जो राजा इन्द्र के समान ही हुआ था। सुदास का पुत्र सौदास नाम वाला राजा हुआ था ॥२६॥ वह नाम से तो मित्र सह था किन्तु कल्मापपाद ख्यात हुआ था। कल्मापपादक के क्षेत्र में महान् तेजस्वी वसिष्ठ हुआ था ॥२७॥ उसने इक्ष्वाकु के कुल के बढाने वाले अश्मक को जन्म ग्रहण कराया था। अश्मक के उत्तरा मे मूलक नाम धारी पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥२८॥

स हि रामभयाद्राजा स्त्रीभिः परिवृतो वने ।
बिभर्ति त्राणमिच्छन्वै नारीकवचमुत्तमम् ॥२६॥
मूलकस्यापि धर्मात्मा राजा शतरथः सुतः ।
तस्माच्छतरथाज्जज्ञे राजा त्विलविलो बली ॥३०॥
आसीत्त्वैलविलिः श्रीमान्वृद्धशर्मा प्रतापवान् ।
पुत्रो विश्वसहस्तस्य पितृकन्या व्यजीजनत् ॥३१॥
दिलीपस्तस्य पुत्रोभूत्खट्वांग इति विश्रुतः ।
येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं प्राप्य जीवितम् ॥३२॥
त्रयोऽग्नयस्त्रयो लोका बुद्धया सत्येन वै जिताः ।
दीर्घबाहुः सुतस्तस्य रघुस्तस्मादजायत ॥३३॥
अजः पुत्रो रघोश्चापि तस्माज्जज्ञे च वीर्यवान् ।
राजा दशरथस्तस्माच्छ्रीमानिक्ष्वाकुवंशकृत् ॥३४॥
रामो दशरथाद्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः ।
भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः ॥३५॥

यह राम के भय से तीनों से परिवृत होता हुआ वन में अपनी रक्षा को चाहता हुआ उत्तम नारी के कवच को धारण करता था ॥२६॥ मूलक का पुत्र परम धार्मिक राजा शतरथ और उस शतरथ से बलवान् इलविल राजा समुत्पन्न हुआ था ॥३०॥ इलविल का पुत्र ऐन-विलि श्रीमान् प्रताप वाला वृद्ध शर्मा था। उसका पुत्र विश्वमह था जिसको पितृ कन्या ने जन्म दिया था ॥३१॥ उसका पुत्र दिलीप हुआ जो खट्वाङ्ग इस नाम से विश्रुत हुआ था। जिसने स्वर्ग से यहाँ आकर एक मुहूर्त्त तक जीवित प्राप्त करके तीन लोक, तीन अग्नि बुद्धि और सत्य से जीत लिये थे। इसका पुत्र दीर्घबाहु हुआ और उससे रघु उत्पन्न हुआ था ॥३२॥३३॥ महाराज रघु का पुत्र अज हुआ था और उस अज से वीर्य वाला राजा दशरथ उत्पन्न हुए जो श्री से सम्पन्न और महाराज इक्ष्वाकु के वंश के चलाने वाले थे ॥३४॥ महाराज दशरथ के अतिशय वीर, परम धर्मज्ञ तथा लोक में प्रसिद्ध श्रीराम तथा महान् बलवान् भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न पुत्र हुए थे ॥३५॥

तेषां श्रेष्ठो महातेजा रामः परमवीर्यवान् ।
रावणं समरे हत्वा यज्ञैरिष्ट्वा च धर्मवित् ॥३६॥

दशवर्षसहस्राणि रामो राज्य चकार सः ।
रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः ॥३७॥

लवश्च सुमहाभागः सत्यवानभवत्सुधीः ।
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ॥३८॥

नलस्तु निषधाज्जातो नभ स्तस्मादजायत ।
नभसः पुन्डरीकाख्यः क्षेमधन्वा ततः स्मृतः ॥३९॥

तस्य पुत्रोभवद्वीरो देवानीकः प्रतापवान् ।
अहीनरः सुत स्तस्य सहस्राश्वस्ततः परः ॥४०॥

शुभश्चंद्रावलोकश्च तारापीडस्ततोभवत् ।
तस्यात्मजश्चन्द्रगिरिर्भानुचन्द्रस्ततोभवत् ॥४१॥

श्रुतायुरभवत्तस्माद्बृहद्बल इति स्मृतः।
भारते यो महातेजाः सौभद्रेण निपातितः ॥४२॥

उन सब में महान् तेजस्वी राम परम पराक्रमी थे। उस धर्मवेत्ता श्री राम ने समराङ्गण में रावण राक्षस का वध करके तथा यज्ञों के द्वारा यजन करके दश सहस्र वर्ष तक राज्य किया था। श्री राम ने एक पुत्र को जन्म दिया था जो कुश, इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था और लव सुन्दर महान् भाग्य वाला, सुधी और सत्य वाला था। कुश से अतिथि ने जन्म प्राप्त किया था और उसका पुत्र निषध हुआ था ॥३६॥३७॥३८॥ निषध से नल पैदा हुआ था और उस नल से नभ उत्पन्न हुआ था। नभ से पुण्डरीकाक्ष की उत्पत्ति हुई थी और फिर इसका पुत्र क्षेमधन्वा हुआ था ॥३९॥ उसका परम वीर एवं प्रतापी देवानीक पुत्र हुआ था। देवानीक का अहीनर पुत्र और इसका पुत्र फिर फिर सहस्राश्व पैदा हुआ था ॥४०॥ फिर शुभ, चन्द्रावलोक और तारापीड़ हुए थे। उसका पुत्र चन्द्रगिरि और फिर भानुचन्द्र हुआ था ॥४१॥ उससे श्रुतायु हुआ जो बृहद्बल कहा जाता है। जो महातेजस्वी भारत में सौभद्र के द्वारा मार गिराया गया था ॥४२॥

एते इक्ष्वाकुदायादा राजानः प्रायशः स्मृताः।
वंशे प्रधाना एतस्मिन्प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ॥४३॥

सर्वे पाशुपते ज्ञानमधीत्य परमेश्वरम्।
समभ्यर्च्य यथाज्ञानमिष्ट्वा यज्ञैर्यथाविधि ॥४४॥

दिवं गता महात्मानः केचिन्मुक्तात्मयोगिनः।
नृगो ब्राह्मणशापेन कृकलासत्वमागतः ॥४५॥

धृष्टश्च धृष्टकेतुश्च यमबालश्च वीर्यवान्।
रणधृष्टश्च ते पुत्रास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥४६॥

आनर्तो नाम शर्यातिः सुकन्या नाम दारिका।
आनर्तस्याभवत् पुत्रो रोचमानः प्रतापवान् ॥४७॥

रोचमानस्य रेवोभूद्रेवाद्रैवत एव च।
ककुद्मी चापरो ज्येष्ठपुत्रः पुत्रशतस्य तु ॥४८॥
रेवती यस्य सा कन्या पत्नी रामस्य विश्रुता।
नरिष्यन्तस्य पुत्रोभूज्जितात्मा तु महाबली ॥४९॥

ये इक्ष्वाकु महाराज के दायाद राजा प्रायः कहे गये हैं। इस वंश मे जो प्रधान हुए हैं वे प्रधानता से कहे गये हैं ॥४३॥ ये सभी नृप पाशुपति के ज्ञान का अध्ययन करके परमेश्वर का अर्चन कर यथा ज्ञान विधि पूर्वक यज्ञो के द्वारा यजन करके दिव लोक को चले गये थे। इनमे कुछ महात्मा मुक्तात्म योगी थे। राजा नृग ने ब्राह्मण के शाप से कृकलास का देह प्राप्त किया था ॥४४॥४५॥ धृष्ट, धृष्टकेतु, वीर्यवान् यम बाल और रणधृष्ट ये पुत्र हुए थे। उन मे तीन परम धार्मिक थे ॥४६॥ राजा शर्याति की सुकन्या नाम वाली पुत्री और अ नर्त्त नाम वाला पुत्र था। आनर्त्त का रोचमान प्रतापी पुत्र हुआ था ॥४७॥ रोचमान का रेव हुआ और रेव से रैवत हुआ। दूसरा सौ पुत्रों मे ज्येष्ठ पुत्र ककुद्मी था ॥४८॥ रेवती जिसकी एक कन्या थी जो बलराम की परम विश्रुत पत्नी थी। नरिष्यन्त का महान् बलवान् जितात्मा पुत्र हुआ था ॥४९॥

नाभागादंबरीषस्तु विष्णुभक्तः प्रतापवान्।
ऋतस्तस्य सुतः श्रीमान्सर्वधर्मविदांवरः ॥५०॥
कृतस्तस्य सुधर्माभूत्पृषितो नाम विश्रुतः।
करूषस्य तु कारूषाः सर्वे प्रख्यातकीर्तयः ॥५१॥
पृषितो हिंसयित्वा गां गुरोः प्राप सुकल्मषम्।
शापाच्छूद्रत्वमापन्नश्च्यवन स्योति विश्रुतः ॥५२॥
दिष्टपुत्रस्तु नाभागस्तस्मादपि भलंदनः।
भलंदनस्य विक्रांतो राजासीदजवाहनः ॥५३॥
एते समासतः प्रोक्ता मनुपुत्रा महाभुजाः।
इक्ष्वाकोः पुत्रपौत्राद्या ऐलस्याथ वदामि वः ॥५४॥

ऐलः पुरूरवा नाम रुद्रभक्तः प्रतापवान् ।
चक्रे त्वकण्टकं राज्यं देशे पुण्यतमे द्विजाः ॥५५॥
उत्तरे यमुनातीरे प्रयागे मुनिसेविते ।
प्रतिष्ठानाधिपः श्रीमान्प्रतिष्ठाने प्रतिष्ठितः ॥५६॥

नाभाग से अम्बरीष हुआ जो बडा प्रताप वाला विष्णु का परम भक्त था। उसका आत्मज ऋत था श्री से सम्पन्न और समस्त धर्म के वेत्ताओं मे अति श्रेष्ठ था ॥५०॥ उसका वृत हुआ और सुधर्म से विश्रुत पृषित हुआ था। कल्प के कारुष हुए। ये सब प्रख्यात कीर्त्ति वाले थे ॥५१॥ पृषित ने गौ का हनन करके गुरु से सुक्लमय प्राप्त किया था और च्यवन के शाप से शूद्रत्व को प्राप्त हो गया था—यह विश्रुत है ॥५२॥ दिष्ट का पुत्र नाभाग हुआ और उस नाभाग से भलन्दन हुआ तथा भलन्दन का अज वाहन राजा हुआ था ॥५३॥ ये सब सक्षेप से महान् भुजाओं वाले मनु के पुत्र कहे गये हैं। ये इक्ष्वाकु के पुत्र और पौत्र आदि थे। इसके अनन्तर आप लोगो के ऐल के सब बतलाता हू ॥५४॥ सूत जी ने कहा—ऐल पुरूरवा नाम वाला बडा ही प्रताप युक्त रुद्र का भक्त था। हे द्विजगण! उसने इस परम पुण्यतम देश मे निष्कण्टक राज्य का शासन किया था ॥५५॥ मुनिगण के द्वारा सेवित प्रयाग मे यमुना के तट पर उत्तर दिशा में प्रतिष्ठान मे प्रतिष्ठित श्री सम्पन्न प्रतिष्ठानो का अधिप था ॥५६॥

तस्य पुत्राः सप्त भवन्सर्वे विततेजसः ।
गधर्वलोकविदिता भवभक्ता महाबलाः ॥५७॥
आयुर्मायुरमायुश्च विश्वायुश्चैव वीर्यवान् ।
श्रुतायुश्च शतायुश्च दिव्याश्चैवोर्वशीसुताः ॥५८॥
आयुपस्तनया वीराः पञ्चैवासन्महौजसः ।
स्वर्भानुतनयायां ते प्रभाया जज्ञिरे नृपाः ॥५९॥
नहुषः प्रथमस्तेषां धर्मज्ञो लोकविश्रुतः ।
नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः ॥६०॥

उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महौजसः ।
यतिर्ययातिः संयातिरायातिः पंचमोऽन्धकः ॥६१॥
विजातिश्चेति षडिमे सर्वे प्रख्यातकीर्तयः ।
यतिर्ज्येष्ठश्च तेषां वै ययातिस्तु ततोऽवरः ॥६२॥
ज्येष्ठस्तु यतिर्मोक्षार्थी ब्रह्मभूतोऽभवत्प्रभुः ।
तेषां ययातिः पञ्चाना महाबलपराक्रमः ॥६३॥
देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप सः ।
शर्मिष्ठामासुरी चैव तनयां वृषपर्वणः ॥६४॥

उसके सात पुत्र हुए थे जो कि सभी विस्तृत तेज वाले थे । ये सब गन्धर्व लोक मे प्रसिद्ध, महान् बलशाली और शिव के भक्त हुए थे ॥५७॥ आयु, मायु, अमायु, विश्वायु, वीर्यवान्, श्रुतायु और शतायु ये परम दिव्य उर्वशी के सुत थे ॥५८॥ आयु के पुत्र अत्यन्त वीर और महान् ओज वाले पाच ही हुए थे । वे नृप स्वर्भानु की पुत्री प्रभा मे उत्पन्न हुए थे ॥५९॥ उन मे नहुष प्रथम था जो बडा ही धर्म का ज्ञाता और लोक मे परम प्रसिद्ध हुआ है । राजा नहुष के इन्द्र के तुल्य तेजस्वी छै पुत्र हुए थे ॥६०॥ ये महान् ओज वाले पितृ कन्या विरजा मे समुत्पन्न हुए थे । इन छैओ के नाम यति, ययाति, संयाति, आयाति, पाँचवाँ अन्धक और विजाति थे । ये सभी छै बडे ही प्रख्यात कीत्ति वाले हुए हैं । इन सब मे यति सबसे बडा था और उससे छोटा ययाति था ॥६१॥६२॥ ज्येष्ठ जो यति नामधारी पुत्र था वह मोक्ष का इच्छुक ब्रह्म भूत हो गया था । इन शेष पाँचो मे ययाति महान् बलवान् तथा पराक्रमी था ॥६३॥ इस ययाति उशना की पुत्री देवयानी को भार्या के रूप मे प्राप्त किया था । तथा वृष पर्वा की पुत्री आसुरी शर्मिष्ठा भी इसकी पत्नी थी ॥६४॥

यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजा यत ।
तावुभौ शुभकर्माणौ स्तुतौ विद्याविशारदौ ॥६५॥

द्रुह्यं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।
यतातये रथं तस्मै ददौ शुक्रः प्रतापवान् ॥६६॥
तोषितस्तेन विप्रेन्द्रः प्रीतः परमभास्वरम् ।
सुसंग कांचनं दिव्यमक्षये च महेषुधी ॥६७॥
युक्त मनोजवैरश्वैर्येन कन्या समुद्वहन् ।
स तेन रथमुख्येन षण्मासेनाजयन्महीम् ॥६८॥
ययातिर्युधि दुर्धर्षो देवदानवमानुषैः ।
भवभक्तस्तु पुण्यात्मा धर्मे निष्ठः समञ्जसः ॥६९॥
यज्ञयाजी जितक्रोधः सर्वभूतानुकंपनः ।
कौरवाणां च सर्वेषां स भवद्रथ उत्तमः ॥७०॥

देवयानी ने यदु और तुर्वसु को समुत्पन्न किया था। ये दोनों बहुत ही शुभ कर्म करने वाले, परम स्तुत एवं विद्या के विशारद थे ॥६५॥ वृष पर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने द्रुह्य, अनु और पूरु को जन्म ग्रहण कराया था। परम प्रतापी शुक्र ने ययाति को रथ प्रदान किया था ॥६६॥ विप्रेन्द्र उससे परम प्रसन्न एवं अत्यन्त सन्तुष्ट था। यह रथ बहुत ही भास्वर (दीप्ति युक्त), सुन्दरता पूर्वक निर्मित, दिव्य एवं सुवर्ण मय था। मन के तुल्य वेग वाले अश्वों से युक्त था। अक्षय महेषुधी ने जिस रथ के साथ कन्या का समुद्वाह किया था उस मुख्य रथ से उसने छः मासों में ही समग्र भूमि को जीत लिया था ॥६७॥६८॥ राजा ययाति युद्ध स्थल में देव और दानवों के तथा मानवों के द्वारा दुर्धर्ष था। यह शिव का परम भक्त, पुण्यात्मा, धर्म में निष्ठा रखने वाला, समञ्जस (समुचित) था ॥६९॥ यह राजा ययाति यज्ञों के यजन करने वाला, क्रोध को जीत लेने वाला और समस्त प्राणी मात्र पर दया करने वाला था। समस्त कौरवों में यह उत्तम भवद्रथ हुआ ॥७०॥

यावन्नरेन्द्रप्रवरः कौरवो जनमेजयः ।
पूरोर्वंशस्य राजन्तु राज्ञः पारीक्षितस्य तु ॥७१॥

जगाम स रथो नाशं शापाद्गर्गस्य धीमतः ।
गर्गस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः ॥७२॥
अक्रूरं हिंसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः ।
स लोहगंधी राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः ॥७३॥
पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म कर्हिचित् ।
ततः स दुःखसंतप्तो न लेभे संविदं क्वचित् ॥७४॥
जगाम शौनकमृषिं शरण्यं व्यथितस्तदा ।
इन्द्रोतिर्नाम विख्यातो योऽसौ मुनिरुदारधीः ॥७५॥
याजयामास चेन्द्रोतिस्तं नृपं जनमेजयम् ।
अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमाः ॥७६॥
स लोहगंधान्निर्मुक्त एनसा च महायशाः ।
यज्ञस्यावभृथे मध्ये यातो दिव्यो रथः शुभः ॥७७॥

राजा पुरु के वंश का परीक्षित राजा का पुत्र जनमेजय राजा था, जोकि राजाओं मे परम श्रेष्ठ कौरव नृप हुआ है, वह रथ धीमान् गर्ग के शाप से नाश को प्राप्त हो गया था। शाप देने का कारण यह था कि उस राजा जनमेजय ने गर्ग के बालक पुत्र अक्रूर को मारा था और इस हनन के कारण उसे ब्रह्म हत्या लग गई थी। वह रुधिर की गन्ध वाला राजर्षि उधर-इधर सर्वत्र दौड़ता-भागता रहा था ॥७१॥७२॥७३॥ समस्त पुरवासी और देशवासी लोगो ने उस राजा का त्याग कर साथ देना छोड दिया था और इस तरह से सर्वव्यक्त होते हुये उसने कही भी सुख, शान्ति प्राप्त नही की थी। इसके अनन्तर वह इस दुःख से बहुत ही अधिक संतप्त होते हुये घूमता रहा और किसी भी स्थान पर भली प्रकार का कर्तव्य ज्ञान प्राप्त न हो सका था ॥७४॥ तब व्यथा से युक्त वह शरणागत वत्सल शौनक ऋषि के समीप मे पहुचा था वह उदार बुद्धि वाला मुनि इन्द्रोति इस शुभ नाम से विख्यात था ॥७५॥ उस इन्द्रोति ऋषि ने उस जनमेजय राजा से यज्ञ का यजन कराया था। हे द्विजश्रेष्ठो! उस राजा के पावन करने के लिये अश्वमेध यज्ञ का यजन

कराया था ॥७६॥ उससे वह राजा महान् यश वाला उस रुधिर की गन्ध से छुटकारा पा गया था और ब्रह्म हत्या के पाप से भी विमुक्त हो गया था। उस यज्ञ के अवभृथ के मध्य में वह शुभ एवं दिव्य रथ दिवलोक को चला गया था ॥७७॥

तस्माद्वंशात्परिभ्रष्टो वसोश्चेदिपतेः पुनः ।
दत्तः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः ॥७८॥
ततो हत्वा जरासंध भीमस्त रथमुत्तमम् ।
प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनंदनः ॥७९॥
अभ्यषिचत्पूरुं पुत्रं ययातिर्नहुषः प्रभुः ।
वृत्तोपचारास्तेनैव पुरुणा द्विजसत्तमाः ॥८०॥
अभिषेक्तुकामं च नृप पुरुं पुत्रं कनीयसम् ।
ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इदं वचनमब्रुवन् ॥८१॥
कथं शुक्रस्य नप्तारं देवयान्याः सुतं प्रभो ।
ज्येष्ठं यदुमतिक्रम्य कनीयान्राज्यमर्हति ॥८२॥
एतं संबोधयामस्त्वां धर्मं च अनुपालय ॥८३॥

ही है क्योंकि वह सबसे ज्येष्ठ है ॥८२॥ ये सब हम आपको समझाते हैं कि आप धर्म का अनुपालन करें ॥८३॥

ययाति चरित्र वर्णन

ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः सर्वे शृण्वन्तु मे वचः ।
ज्येष्ठं प्रति यथा राज्यं न देयं मे कथंचन ॥१॥
मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालित ।
प्रतिकूलमतिश्चैव न स पुत्रः सता मत. ॥२॥
मातापित्रोर्वचनकृत्सद्भिः पुत्रः प्रशस्यते ।
स पुत्रः पुत्रवद्यस्तु वर्तते मातृपितृपु ॥३॥
यदुनाहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनापि च ।
द्रुह्येन चानुना चैव मय्यवज्ञा कृता भृशम् ॥४॥
पुरुणा च कृत वाक्यं मानितश्च विशेषतः ।
कनीयान्मम दायादो जरा येन धृता मम ॥५॥
शुक्रेण मे समादिष्टा देवयान्याः कृते जरा ।
प्रार्थितेन पुनस्तेन जरा संचारिणी कृता ॥६॥
शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्वयम् ।
पुत्रो यस्त्वानुवर्तेत स ते राज्यधरस्त्विति ॥७॥

इस अध्याय मे राजा ययाति का परम पवित्र चरित तथा सब बोध कराने वाली गाथा का वर्णन किया जाता है । ब्राह्मणो के कहने पर ययाति ने कहा—हे ब्राह्मण प्रमुख वर्ण वालो ! आप मेरी बात कृपा करके श्रवण करें । मुझे अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु को किसी भी प्रकार से राज्यासन नहीं देना है ॥१॥ मेरे ज्येष्ठ पुत्र होते हुए भी यदु ने मेरे आदेश का पालन नहीं किया था । जो पिता के प्रतिकूल मति वाला पुत्र होता है वह सत्पुरुषों के द्वारा कभी पुत्र नहीं माना गया है ॥२॥

माता-पिता के वचनों के प्रतिपालन पूर्णतया करने पर ही सत्पुरुषों के द्वारा पुत्र की प्रशंसा की जाती है। वही वास्तव में पुत्र है जो अपने माता पिता के साथ पुत्र के तुल्य व्यवहार किया करता है ॥३॥ यदु ने मेरी अवज्ञा की थी और उसी भाँति तुर्वसु ने भी मेरे वचनों का अपमान कर दिया था। द्रुह्यु तथा अनु ने भी बहुत ही अधिक मेरे विषय में अवमानना की थी ॥४॥ केवल एक पुरु ने ही मेरे वाक्य का पालन किया था और विशेष रूप से मेरा सम्मान किया है। मेरा यह सबसे छोटा पुत्र है जिसने मेरी वृद्धता को अपने ऊपर लेना स्वीकार करके धारण किया था ॥५॥ शुक्र ने देवयानि के लिए मुझे जरावस्था प्राप्त होने की आज्ञा दी थी। जब मैंने पुनः प्रार्थना उनसे की थी तो उनने उस जरा को सञ्चार कर जाने वाली बनादी थी ॥६॥ शुक्र ने जो काव्य और उशना नामधारी हैं, स्वयं ही मुझे वरदान दिया था कि जो भी पुत्र तुम्हारे अनुकूल व्यवहार करे वही तुम्हारे राज्य का अधिकारी होगा ॥७॥

भवतोऽप्यनुजानन्तु पूरु राज्येऽभिषिच्यते ।
यः पुत्रो गुणसपन्नो मातापित्रोर्हित. सदा ॥८॥
सर्वमर्हति कल्याण कनीया नपि स प्रभुः ।
अर्हः पूरुरिद राज्य य सुतो वाक्यकृत्तव ॥९॥
वरदानेन शुक्रस्य न शक्य कर्तुमन्यथा ।
एव जान पदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा ॥१०॥
अभिषिच्य ततो राज्ये पूरु स सुतमात्मनः ।
दिशि दक्षिणपूर्वस्या तुर्वसु पुत्रमादिशत् ॥११॥
दक्षिणायामथो राजा यदु ज्येष्ठं न्ययोजयेत् ।
प्रतीच्यामुत्तरस्या तु द्रुह्यु चानु च तावुभौ ॥१२॥
सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वी ससागराम् ।
व्यभजत्त्रिधा राज्यं पुत्रेभ्यो नाहुषस्तदा ॥१३॥

पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु　　हर्षनिर्भरमानसः ।
प्रीतिमानभवद्राजा　　भारमावेश्त बंधुपु ॥१४॥

अब आप सब भी मुझे आज्ञा देवें कि यह पुरु राज्य मे अभिषिक्त किया जावे । प्रकृतिगण ने कहा—जो पुत्र गुणो से सम्पन्न होता है और सदा माता-पिता का हित चाहने वाला होता है वह चाहे छोटा ही क्यो न हो किन्तु वह ही सब प्रकार के कल्याण के पाने का अधिकारी तथा प्रभु है । यह पूरु राज्य पाने के योग्य है जोकि ऐसा आपका आज्ञाकारी पुत्र है ॥८॥९॥ शुक्र के वरदान से भी अन्यथा अर्थात् उसके विपरीत किया नही जा सकता है । सूतजी ने कहा—इस प्रकार से परम सन्तुष्ट जनपद के निवासियो के द्वारा इस तरह कहे हुए नहुप के पुत्र ने उसी समय मे अपने पुत्र पूरु को राज्य पर अभिषिक्त कर दिया था और तुर्वसु पुत्र को दक्षिण दिशा मे रहने की आज्ञा दे दी थी । ॥१०॥११॥ इसके अनन्तर दक्षिण दिशा मे ज्येष्ठ यदु को नियोजित कर दिया था । पश्चिम और उत्तर मे द्रुह्यु और चानु इन दोनो को नियोजित किया था ॥१२॥ राजा ययाति ने सात द्वीप और सात सागर पर्यन्त समग्र भूमण्डल को जीतकर फिर नाहुप ने पुत्रो के लिए राज्य को तीन भागो मे विभक्त कर दिया था ॥१३॥ अपने पुत्रो मे राज्य श्री को सक्रामित कर देने वाला राजा हर्ष से परिपूर्ण हृदय वाला परम प्रीतिमान हो गया था क्योकि सारा भार बन्धुओ पर छोड दिया था ॥१४॥

अत्र गाथा महाराज्ञा पुरा गीता ययातिना ।
याभिः प्रत्याहरेत्कामान्सर्वतोगानि कूर्मवत् ॥१५॥
ताभिरेव नरः श्रीमाद्मान्यया कर्मकोटिकृत् ।
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥१६॥
हविपा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ।
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्य पशवः स्त्रियः ॥१७॥

नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् ।
यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम् ॥१८॥
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ।
यदा परान्न बिभेति परे चास्मान्न बिभ्यति ॥१९॥
यदा न निन्देन्न द्वेष्टि ब्रह्म सपद्यते तदा ।
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ॥२०॥
योसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ।
जीर्यन्ति: जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यति जीर्यतः ॥२१॥
चक्षुः श्रोत्रे च जीर्यते तृष्णैका निरुपद्रवा ।
जीर्यंति देहिनः सर्वे स्वभावादेव नान्यथा ॥२२॥

इस विषय मे महाराज ययाति ने पहिले इस गाथा को गाया था जिनसे अपने शरीरावयवो को कूर्म की भाँति कामनाओ को हटाता है उन्ही से ही मानव श्रीमान् होता है अन्यथा करोडों कर्मों के करने वाला ही रहा करता है कामनाओ की पूत्ति करते रहने से कभी भी कामनाएँ शान्त नही हुआ करती हैं। ये तो त्याग से ही उपशम को प्राप्त होती हैं। कामो के उपभोग से तो हवि से अग्नि के समान और अधिक उन की वृद्धि हुआ करती है। इस पृथ्वी मण्डल मे जो भी व्रीहि, यव, सुवर्ण, पशु, स्त्री आदि हैं वे सब एक के लिये भी पर्याप्त नही हैं। अतः यह सभी कुछ हमारा ही है, ऐसा समझकर शम को प्राप्त होना चाहिये। जब समस्त प्राणियो म कर्म, मन और वाणी से पाप बुद्धि या पापात्मक भाव नही करता है तभी मानव ब्रह्म की प्राप्ति करता है। जब दूसरे भय नही खाता है और जब दूसरे इससे भयभीत नही होते है ॥१५॥१६॥१७॥१८॥१९॥ जब न किसी की निन्दा करता है और न किसी से द्वेष ही करता है तभी ब्रह्म के भाव को प्राप्त किया करता है। जो दुष्ट मति वालो के द्वारा दुस्त्यज है और जो जीर्ण हो जाने पर स्वय जीर्ण नही होती है तथा जो प्राण के समीप रहने वाला रोग है उस तृष्णा का त्याग कर देने वाले मानव को ही सुख हुआ करता है।

जीर्ण अर्थात् वृद्ध के केश भी जीर्ण हो जाते हैं तथा जीर्णता पाने पर दाँत भी जीर्ण हो जाया करते हैं एवं चक्षु तथा कान भी जीर्ण हो जाया करते हैं अर्थात् ये सब ठीक-ठीक अपना काम नही किया करते हैं केवल बुढापे मे एक तृष्णा ही तरुण रूप मे रहा करती है। और इसको कोई भी उपद्रव नही होता है। देहधारी के ये सब स्वभाव से ही जीर्ण हुआ करते हैं अन्यथा नही होते ॥२०॥२१॥२२॥

जीविताशा धनाशा च जीर्यतोपि न जीर्यते ।
यच्च कामसुख लोके यच्च दिव्य महत्सुखम् ॥२३॥
तृष्णाक्षयसुखस्यैतत्कला नार्हति षोडशीम् ।
एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद्वनम् ॥२४॥
भृगुतुंगे तपस्तप्त्वा तत्रैव च महायशाः ।
साधयित्वा त्वनशन सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥२५॥
तस्य वंशास्तु पंचैते पुण्या देवर्षिसत्कृताः ।
यैर्व्याप्ता पृथिवी कृत्स्ना सूर्यस्येव मरीचिभिः ॥२६॥
धनी प्रजावानायुष्मान्कीर्तिमांश्च भवेन्नरः ।
ययातिचरित पुण्य पठञ्छृण्वंश्च बुद्धिमान् ॥२७॥
सर्वपाप विनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥२८॥

प्राणी के जीवित रहने की आशा और धन के प्राप्त करने की आशा स्वयं जीर्ण हो जाने पर भी जीर्ण नही हुआ करती हैं। सासारिक काम के उपभोग से जो सुख प्राप्त होता वह और दिव्य महान् सुख अर्थात् स्वर्गादि प्राप्त करने से होने वाला सुख ये दोनो ही सुख तृष्णा के क्षय हो जाने के सुख का सोलहवाँ भाग भी नही हो सकता है। इस प्रकार से कहकर राजर्षि स्त्री के सहित वन मे प्रवेश कर गया था ॥२३॥२४॥ भृगु के तुङ्ग पर तपस्या करके वहाँ पर ही महान् यशस्वी अनशन को साधकर पत्नी के सहित स्वर्ग को प्राप्त हो गया था ॥२५॥ उसके ये पाँच वश हैं जो परम पुण्य अर्थात् पवित्र हैं और देवर्षियो के द्वारा सम्मानित हैं जिनसे यह समस्त भूमण्डल सूर्य की किरणो के

समान व्याप्त है ॥२६॥ वह मनुष्य धन वाला, प्रजा वाला, आयुष्मान् और कीर्ति वाला हो जाता है जो बुद्धिमान् इस परम पवित्र पुण्यमय ययाति के चरित्र को पढ़ता है या श्रवण किया करता है ॥२७॥ इसके चरित्र को पढ़ने वाला मनुष्य समस्त पापों से छुटकारा पाकर शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥२८॥

ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु का वंश वर्णन

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः ।
संक्षेपेणानुपूर्व्याच्च गदतो मे निबोधत ॥१॥
यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देव सुतोपमाः ।
सहस्रजित्सुतो ज्येष्ठः क्रोष्टुर्नीलोजको लघुः ॥२॥
सहस्रजित्सुतस्तद्वच्छतजिन्नाम पार्थिवः ।
सुताः शतजितः ख्यातास्त्रयः परमकीर्तयः ॥३॥
हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयश्च यः ।
हैहयस्य तु दायादो धर्म इत्यभिविश्रुतः ॥४॥
तस्य पुत्रोभवद्विप्रा धर्म नेत्र इति श्रुतः ।
धर्मनेत्रस्य कीर्तिस्तु सजयस्तस्य चात्मजः ॥५॥
सञ्चयस्य तु दायादो महिष्मान्नाम धार्मिकः ।
आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यः प्रतापवान् ॥६॥
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम पार्थिवः ।
दुर्दमस्य सुतो धीमान्धनको नाम विश्रुतः ॥७॥

इस अध्याय में ज्येष्ठ यदु का वंश श्रीकृष्ण के अवतार का हेतु होने से सात्वतों के अन्त तक निरूपित किया जाता है। सूतजी ने कहा— ययाति राजा के सबसे बड़े पुत्र यदु के वंश को बताता हूँ जोकि उत्तम

तेज वाला हुआ था। मैं इसके चरित को संक्षेप तथा आनुपूर्वी से कहूंगा। आप लोग मुझसे समझ लेवें ॥१॥ यदु के पाँच पुत्र हुये थे जो देव पुत्रों के समान थे। उनमें सहस्रजित् सबमें ज्येष्ठ था और क्रोष्टु तथा नीलोजक लघु थे ॥२॥ उसी की भाँति सहस्रजित् का पुत्र शतजित् नाम वाला राजा हुआ था। शतजित् के परम कीर्त्ति युक्त तीन पुत्र प्रसिद्ध हुये थे। उनके नाम हैहय, हय और वेणुहय ये थे। हैहय का दायाद (पुत्र) धर्म, इस नाम से अभिश्रुत हुआ था ॥३॥४॥ हे विप्रो! उस धर्म का धर्मनेत्र नामक आत्मज हुआ था। धर्मनेत्र का कीर्त्ति और इसका पुत्र सजय हुआ था ॥५॥ सजय का पुत्र महिष्मान नाम वाला परम धार्मिक हुआ था महिष्मान् का तनय बडा प्रतापी भद्रश्रेण्य था ॥६॥ भद्रश्रेण्य का पुत्र दुर्दम नामधारी राजा हुआ था और इसका पुत्र धीमान् धनका था ॥७॥

धनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकसंमताः।
कृतवीर्यः कृताग्निश्च कृतधर्मा तथैव च ॥८॥
कृतौजाश्च चतुर्थोभूत्कार्तवीर्यस्ततोर्जुनः।
जज्ञे बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरोत्तमः ॥९॥
तस्य रामस्तदा त्वासीन्मृत्युर्नारायणात्मकः।
तस्य पुत्रशतान्यासन्पञ्च तत्र महारथाः ॥१०॥
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो मनस्विनः।
शूरश्च शूरसेनश्च धृष्टः कृष्णस्तथैव च ॥११॥
जयध्वजश्च राजासीदावन्तीनां विशां पतिः।
जयध्वजस्य पुत्रोभूत्तालजघो महाबलः ॥१२॥
शतं पुत्रास्तु तस्येह तालजंघाः प्रकीर्तिताः।
तेषां ज्येष्ठो महावीर्यो वीतिहोत्रोऽभवन्नृपः ॥१३॥
वृषप्रभृतयश्चान्ये तत्सुताः पुण्यकर्मणः।
वृषो वंशकरस्तेषां तस्य पुत्रोभवन्मधुः ॥१४॥

धनक के कृत वीर्य, कृताग्नि, कृत वर्मा और कृतौजा ये चार लोक के सम्मत पुत्र समुत्पन्न हुए थे। इसके अनन्तर कृतवीर्य का कार्त्तवीर्य सहस्रार्जुन हुआ था जो अपनी सहस्र बाहुओं के द्वारा सातों द्वीपों का उत्तम स्वामी हुआ था ॥८॥९॥ उसकी मृत्यु के उस समय राम था जो नारायण स्वरूप वाला था। उसके उस समय सौ पुत्र थे उनमे पाच महारथ हुए थे ॥१०॥ ये सब अस्त्रों के ज्ञाता, महान् बल वाले, अत्यन्त शूर, धर्मात्मा और मनस्वी थे। इनके शूर, शूरसेन, धृष्ट, कृष्ण और जयध्वज ये नाम थे। जयध्वज अवन्तीयों का विशाम्पति राजा हुआ था। जयध्वज का महान् बल वाला तालजङ्घ पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥११॥१२॥ इसके सौ पुत्र हुए थे जो यहाँ भूमण्डल मे तालजङ्घ नाम से ही प्रकीर्तित किये गये थे। उन सबमें ज्येष्ठ महान् वीर्य वाला वीति होत्र नामक राजा हुआ था ॥१३॥ और अन्य वृष आदि पुण्य कर्म वाले उसके पुत्र हुए थे। उनमे वंश चलाने वाला वृष ही था। इसका पुत्र मधु हुआ था ॥१४॥

मधो. पुत्रशत चासीद्वृष्णिस्तस्य तु वंशभाक्।
वृष्णेस्तु वृष्णय: सर्वे मधोर्वै माधवा स्मृता:।
यादवा यदुवशेन निरुच्यन्ते तु हहैया. ॥१५॥
तेषा पञ्च गणा ह्येते हैहयाना महात्मनाम् ॥१६॥
वीतिहोत्राश्च हर्याता भोजाश्चा वन्तयस्तथा।
शूरसेनास्तु विख्यातास्तालजधास्तथैव च ॥१७॥
शूरश्च शूरसेनश्च वृष कृष्णस्तथैव च।
जयध्वज: पञ्चमस्तु विख्याता हैहयोत्तमा: ॥१८॥
शूरश्च शूरवीरश्च शूरसेनस्य चानघा।
शूरसेना इति ख्याता देशास्तेषा महात्मनाम् ॥१९॥
वीतिहोत्रसुतश्चापि विश्रुतोऽनर्तं इत्युत।
दुजय कृष्णपुत्रस्तु बभूवामित्रकर्शन. ॥२०॥

क्रोष्टुश्च शृणु राजप वंशमुत्तमपौरुषम् ।
यस्यान्वये तु संभूतो विष्णुर्वृष्णिकुलोद्वहः ॥२१॥

मधु के सौ पुत्र हुए थे। उसका वंश भाक् वृष्णि था, वृष्णि के सब वृष्णि हुए और मधु के माधव कहे गये है। यादव यदु के वश से हैहय कहे जाया करते हैं ॥१५॥ उन महान् आत्मा वालों के ये पांच गण थे। जिनके नाम वीतिहोत्र, हर्यात, ओज, अवन्ति और शूरसेन थे और वे इन नामों से विख्यात हुए थे तथा तालजङ्घ भी थे ॥१६॥१७॥ शूर, शूरसेन, वृप, कृष्ण और पाँचवां जयध्वज ये हैहयोत्तम विख्यात हुए थे ॥१८॥ शूर, शूरवीर शूरसेन के ये अनघ अर्थात् निष्पाप शूरसेन थे जिन महात्माओं के देश भी शूरसेन नाम से विख्यात हुए थे ॥१९॥ वीतिहोत्र का पुत्र भी आनर्त्त नाम से विश्रुत हुआ। कृष्ण का पुत्र दुर्जय शत्रुओ का नाशक हुआ था ॥२०॥ हे राजर्षे ! अब क्रोष्टु के उत्तम पौरुष वाले वंश का श्रवण करो जिसके वश मे वृष्णि कुल का उद्वहन करने वाला विष्णु हुए थे ॥२१॥

क्रोष्टोरेकोऽभवत्पुत्रो वृजिनीवान्महायशाः ।
तस्य पुत्रोभवत्स्वाती कुशंकुस्तत्सुतोभवत् ॥२२॥

अथ प्रसूतिमिच्छन्वै कुशंकुः सुमहाबलः ।
महाक्रतुभिरीजेसौ विविधैराप्तदक्षिणैः ॥२३॥

जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः ।
अथ चैत्ररथो वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः ॥२४॥

शशबिंदुस्तु वै राजा अन्वयाद्व्रतमुत्ततमम् ।
चक्रवर्ती महासत्त्वो महावीर्यो बहुप्रजाः ॥२५॥

शशबिंदोस्तु पुत्राणां सहस्राणामभूच्छतम् ।
शंसंति तस्य पुत्राणामनंतकमनुत्तमम् ॥२६॥

अनंतकात्सुतो यज्ञो यज्ञस्य तनयो धृतिः ।
उशनास्तस्या तनयः संप्राप्य तु महीमिमाम् ॥२७॥

आजहाराश्वमेधानां　　शतमुत्तमधार्मिकः ।
स्मृतश्चोशनसः पुत्र. सितेपुर्नाम पार्थिवः ॥२८॥

वृजिनीवान् महायशस्वी क्रोष्टु का एक पुत्र हुआ था। उसका पुत्र स्वाती कुशकु पुत्र हुआ था ॥२२॥ इसके अनन्तर महा बलवान् कुशकु ने सन्तति की इच्छा रखते हुए अनेक आप्तदक्षिणा वाले महा क्रतुओं से इसने यजन किया था ॥२३॥ उसके कर्मों से समन्वित चित्ररथ नामक पुत्र हुआ था। इसके अनन्तर वीर चित्ररथ विपुल दक्षिणा देने वाला याजक हुआ है ॥२४॥ इस वश से उत्तम व्रत वाला, महान् सत्त्व से संपन्न, महावीर्य वाला, बहुत प्रजा से युक्त चक्रवर्ती राजा शशबिन्दु हुआ था ॥२५॥ शशबिन्दु के सहस्र पुत्रों का शत हुआ था और उसके पुत्रों को प्रथुत्तम अनन्त सज्ञा वाले कहते हैं ॥२६॥ अनन तक के सुत यज्ञ और इसका पुत्र धृति तथा धृति का आत्मज उशना हुआ था जिसने इस मही को प्राप्त कर एक सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। यह अत्यन्त श्रेष्ठ धार्मिक कहा गया था उशना का पुत्र सितेपु नामक नृपति हुआ था ॥२७॥२८॥

मरुतस्तस्य　तनयो　राजर्षिर्वंशवर्धनः ।
वीरः कम्बलबर्हिस्तु मरुत्तस्यात्मजः स्मृतः ॥२९॥
पुत्रस्तु　रुक्मकवचो　विद्वान्कम्बलबर्हिषः ।
निहत्य रुक्मकवचो वीरान्कवचिनो रणे ॥३०॥
धन्विनो निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम् ।
अश्वमेधे तु धर्मात्मा ऋत्विग्भ्यः पृथिवी ददौ ॥३१॥
जज्ञे　तु　रुक्मकवचात्परावृत्परवीरहा ।
जज्ञिरे पंच पुत्रास्तु महासत्त्वाः परावृतः ॥३२॥
रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः परिघं हरिः ।
परिघं च हरिं चैव विदेहेषु पिता न्यसत् ॥३३॥
रुक्मेषुरभवद्राजा　पृथुरुक्मस्तदाश्रयात् ।
तेभ्यु प्रव्राजितो राजा ज्या मघोऽवसदाश्रमे ॥३४॥

प्रशात स वनस्थोपि ब्राह्मणैरेव बोधित ।
जगाम धनुरादाय देशमन्य ध्वजी रथी ॥३५॥

वदो का वचन करने वाला राजर्षि मरुत उसका पुत्र हुआ था और परम वीर कम्बलबर्हि मरुत का पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥२९॥ कम्बलबर्हि का अति विद्वान् रुक्मकवच पुत्र हुआ था। रुक्मकवच ने रणस्थल मे धनुष धारी, कवच पहिनने वाले वीरो को अपने पने बाणो द्वारा मारकर उत्तम श्री को प्राप्त किया था। इस धर्मात्मा ने अपने किये हुए अश्वमेध नामक याग म समस्त पृथ्वी ऋत्विजो को दे दी थी ॥३०॥३१॥ रुक्म कवच नृप से पराये वीरो का हनन करने वाला परावृत् उत्पन्न हुआ था। परावृत् के महान् सत्त्व वाले पाँच पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥३२॥ रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ और हरि ये उनके नाम थे। पिता ने परिघ और हरि को विदेह देशो में न्यस्त किया था ॥३३॥ रुक्मो मे उसके आश्रय से पृथुरुक्म राजा हुआ था। उन्होने राजा को प्रव्राजित कर दिया था और वह ज्यामघ आश्रम मे वास करता था। ॥३४॥ वह वन मे स्थित भी प्रशान्त तथा ब्राह्मणो के द्वारा बोधित किया था। वह ध्वजी और रथी धनुष लेकर अन्य देश मे चला गया था ॥३५॥

नर्मदातीरमेकाकीकेवल भार्यया युत ।
ऋक्षवत गिरिं गत्वा त्यक्तमन्यैरुवास स ॥३६॥
ज्यामघस्याभवद्भार्या शैब्या शीलवती सती ।
सा चव तपसोग्रेण शैब्या च सप्रसूयत ॥३७॥
सुत विदर्भं सुभगा वय परिणता सती ।
राजपुत्रसुतायां तु विद्वासौ क्रथकैशिकौ ॥३८॥
पुत्रौ विदर्भ राजस्य शूरौ रणविशारदौ ।
रोमपादस्तृतीयश्च बभ्रुस्तस्यात्मज स्मृत ॥३९॥
सुधृतिस्तनयस्तस्य विद्वान्परमधार्मिक ।
कौशिकस्तन यस्तस्मात्तस्माच्चैद्यान्वय स्मृत ॥४०॥

क्रथो विदर्भस्य सुतः कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत्।
कुन्तेर्वृ तस्ततो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान् ॥४१॥
रणधृष्टस्य च सुतो निधृतिः परवीरहा।
दशार्हो नैधृतो नाम्ना महारिगणसूदनः ॥४२॥

नर्मदा नदी के तट पर अकेला अपनी भार्या के साथ था फिर ऋक्षवान् पर्वत पर चला गया था और यहाँ अन्यों के द्वारा त्यक्त वास करने लगा था ॥३६॥ ज्यामघ की भार्या शैव्या बड़ी शीलवती और सती थी और उस शैव्या ने उग्र तप से विदर्भ सुत को प्रसूत किया था। यह शैव्या सुभगा, वय से परिणत और सती हुई थी। विदर्भ राजा के परम शूर और रण विद्या के महान् पण्डित तथा अत्यन्त विद्वान् क्रथ और कौशिक दो राजपुत्र पुत्र की पुत्री में हुए थे और तृतीय रोमपाद था। उसका पुत्र वभ्रु कहा गया है ॥३७॥३८॥३९॥ उसका पुत्र सुधृति जो परम धार्मिक और बहुत विद्वान् था। उससे कौशिक पुत्र हुआ और उससे चैद्यान्वय कहा गया है ॥४०॥ विदर्भ का पुत्र क्रथ हुआ और उसका पुत्र कुन्ति हुआ था। कुन्ति से वृत समुत्पन्न हुआ था जो बहुत ही अधिक रण धृष्ट तथा प्रताप वाला हुआ था ॥४१॥ रणधृष्ट का पुत्र निधृति हुआ था जो शत्रु के वीरों का हनन करने वाला था। निधृति का पुत्र दशार्ह नामधारी नैधृत हुआ था जो बड़े-बड़े शत्रुओं के समुदाय का संहार करने वाला था ॥४२॥

दशार्हस्य सुतो व्योमो जीमूत इति तत्सुतः।
जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथः सुतः ॥४३॥
अथ भीमरथस्यासीत्पुत्रो नवरथः किल।
दानधर्मरतो नित्य सत्यशीलपरायणः ॥४४॥
तस्य चासीद्दृढरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः।
तस्मात्करम्भः कंभूतो देवरातोऽभवत्ततः ॥४५॥
देवरातादभूद्राजा देवरातिर्महायशाः।
देवगर्भसमो जज्ञे यो देवक्षत्रनामकः ॥४६॥

देवक्षत्रसुतः श्रीमान् मधुर्नाम महायशाः ।
मधूनां वंशकृद्राजा मधोस्तु कुरुवंशकः ॥४७॥
कुरुवंशादनुस्तस्मात्पुरुत्वान्पुरुषोत्तमः ।
अंशुर्जज्ञे च वैदर्भ्यां भद्रवत्यां पुरुत्वतः ॥४८॥
ऐक्ष्वाकीमवहच्चांशुः सत्वस्तस्मादजायत ।
सत्वात्सर्वगुणोपेतः सात्वतः कुलवर्धनः ॥४९॥
ज्यामघस्य मया प्रोक्ता सृष्टिर्वै विस्तरेण वः ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि निसृष्टिं ज्यामघस्य तु ॥५०॥
प्रजीवत्येति वै स्वर्गं राज्यं सौख्यं च विंदति ॥५१॥

दशार्ह का पुत्र व्याम और इसका सुत जीमूत था जीमूत का आत्मज विकृति और इसका पुत्र भीमरथ हुआ था ॥४३॥ इसके अनन्तर भीमरथ का पुत्र नवरथ नामक उत्पन्न हुआ था जो दान और धर्म में रति रखने वाला तथा नित्य ही शील में परायण रहने वाला था ॥४४॥ उसके दृढरथ हुआ था और दृढ़रथ का पुत्र का शकुनि उत्पन्न हुआ था। उस शकुनि से करम्भ हुआ और करम्भ से देवरात पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥४५॥ देवरात का देवराति महान् यशस्वी राजा हुआ था जिसने देव-क्षत्र नाम वाला देवगर्भ की उपमा वाला उत्पन्न किया था ॥४६॥ देवक्षत्र का श्री सम्पन्न और महान् यशस्वी मधु नाम वाला पुत्र पैदा हुआ था। मधुओं के वंश को करने वाला राजा मधु का कुरुवंशक हुआ था ॥४७॥ कुरुवंश से अनु और इससे पुरुत्वान् पुरुषोत्तम हुआ था। पुरुत्वान् से भद्रवती में, जो वैदर्भी थी, अंशु ने जन्म ग्रहण किया था ॥४८॥ अंशु ने ऐक्ष्वाकी के साथ विवाह किया था और उससे सत्त्व उत्पन्न हुआ था। सत्त्व से कुल के बढ़ाने वाला सात्वत समुत्पन्न हुआ था ॥४९॥ इस तरह से मैंने विस्तार से आपको ज्यामघ की सृष्टि वर्णित करदी है। इस ज्यामघ की निसृष्टि को जो भी कोई पढ़ता है या श्रवण करता है वह बहुत समय तक जीवित रहता है और स्वर्ग राज्य तथा सौख्य को प्राप्त किया करता है ॥५०॥५१॥

यदु वंश में कृष्ण भगवान् का आविर्भाव और चरित्र

सात्वत: सत्यसपन्न: प्रजज्ञे चतुर: सुतान् ।
भजन भ्राजमान च दिव्य देवावृध नृपम् ॥१॥
अधक च महाभाग वृष्णि च यदुनदनम् ।
तेपा निसर्गाश्चतुर: श्रृणुष्व विस्तरेण वै ॥२॥
सजय्या भजनाच्चैव भ्राजमानाद्विजज्ञिरे ।
अयुतायु: शतायुश्च बलवान् हर्यक्रुत्स्मृत. ॥३॥
तेपा देवावृधो राजा चचार परम तप: ।
पुत्र: सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्मरन् ॥४॥
तस्य बभ्रुरिति रयात. पुण्यश्लोको नृपोत्तम. ।
अनुवशपुराणज्ञा गायंतीति परिश्रुतम् ॥५॥
गुणान्देवावृधस्याथ कीर्तयतो महात्मन: ।
तथैव श्रृणुमो दूराद् सपश्यामस्तथातिकात् ॥६॥
बभ्रु: श्रेष्ठो मनुष्याणा देवैर्दवावृध: सम. ।
पुरुपा. पञ्चपष्टिस्तु पट् सहस्राणि चाष्ट च ॥७॥
येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि ।
यज्वा दानमतिर्वीरो ब्रह्मण्यस्तु दृढव्रत: ॥८॥
कीर्तिमाश्च महातेजा सात्त्वताना महारथ: ।
तस्यान्ववाये सभूता भोजा वै दैवतोपमा: ॥९॥

इस अध्याय से परमात्मा कृष्ण का यदुवश मे अवतरण तथा चरित्र वर्णन किया जाता है । सूतजी बोले—सत्य से समन्वित सात्वत ने चार पुत्रों को समुत्पन्न किया था । भ्राजमान भजन, दिव्य देवावृध नृप, महाभाग अन्धक और यदु नन्दन वृष्णि उनके नाम थे । अब उनके चार निसर्गों को विस्तार से श्रवण करो ॥१॥२॥ भ्राजमान भजन से तद्दीप राजा कन्या सृञ्जयी में अयुतायु और शतायु उत्पन्न हुए थे । हर्यक्रत बलवान् कहा गया है ॥३॥ उनमे देवावृध राजा ने परम

उत्कृष्ट तप किया था कि मेरे समस्त सद्गुणों से समन्वित पुत्र उत्पन्न हो, ऐसा उस तपस्या के करने से उसने ध्यान लगा रक्खा था ॥४॥ उसका बभ्रु इस नाम से ख्यात पुण्य यश वाला नृपोत्तम हुआ था। मनुवंश में पुराण जानने वाले यह गाया करते हैं, ऐसा सुना है ॥५॥ इसके अनन्तर महान् आत्मा वाले देवावृध के गुणों का कीर्तन करते हुए जो भी कुछ दूर से सुनते हैं वैसा ही समीप से देखते हैं ॥६॥ मनुष्यों में श्रेष्ठ बभ्रु देवों के समान देवावृध था। छै सहस्र पैंसठ और आठ पुरुष जो देवावृध बभ्रु से अमृतत्व को अनुप्राप्त हुये थे। महा यजन करने वाला, दान की बुद्धि वाला, ब्राह्मणों की रक्षा करने वाला, दृढ व्रत से युक्त, कीर्ति वाला, महान् तेजस्वी और सात्वनों में महारथ था। उसके वंश में दैवत के समान भोज समुत्पन्न हुये थे ॥७॥८॥९॥

गाधारी चैव माद्री च वृष्णिभार्ये बभूवतु ।
गाधारी जनयामास सुमित्रं मित्रनंदनम् ॥१०॥
माद्री लेभे च तं पुत्रं ततः सा देवमीढुषम् ।
अनमित्रं शिनिं चैव तावुभौ पुरुषोत्तमौ ॥११॥
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतु ।
प्रसेनश्च महाभाग सत्राजिच्च सुतावुभौ ॥१२॥
तस्य सत्राजित सूर्यं सखा प्राणसमोऽभवत् ।
स्यमन्तको नाम मणिर्दत्तस्तस्मै विवस्वता ॥१३॥
पृथिव्यां सर्वरत्नानामसौ राजाऽभवन्मणिः ।
कदाचिन्मृगया यातः प्रसेनेन सहैव स ॥१४॥

गान्धारी और माद्री वृष्णि भार्यायें हुई थीं। गान्धारी ने मित्रों को आनन्द देने वाले सुमित्र को जन्म दिया था। माद्री ने देव मीढुष पुत्र को प्राप्त किया था और फिर अनमित्र शिनि को प्राप्ति की थी। वे दोनों उत्तम पुरुष थे ॥१०॥११॥ अनमित्र का पुत्र निघ्न हुआ था तथा निघ्न के प्रसेन और महाभाग सत्राजित् ये दो पुत्र समुत्पन्न हुए

थे ॥१२॥ उस सत्रजित् का सूर्य प्राण के समान सखा हुआ था। उसको विवस्वान् ने स्यमन्तक नाम वाली मणि प्रदान की थी ॥१३॥ पृथिवी मण्डल में जितने भी रत्न हैं उन सबसे यह स्यमन्तक मणि राजा थी। किसी समय में वह प्रसेन के साथ ही शिकार खेलने के लिए गया था ॥१४॥

वध प्राप्तो सहायश्च सिंहादेव सुदारुणात् ।
अथ पुत्रः शिनेर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनंदनात् ॥१५॥
सत्यवाक् सत्यसपन्नः सत्यकस्तस्य चात्मजः ।
सात्यकिर्युयुधानस्तु शिनेर्नप्ता प्रतापवान् ॥१६॥
असगो युयुधानस्य कुणिस्तस्य सुतोऽभवत् ।
कुणेर्युगधरः पुत्रः शैनेया इति कीर्तिताः ॥१७॥
माद्र्या सुतस्य संजज्ञे सुतो वार्ष्णिर्युधाजितः ।
श्वफल्क इति विख्यातस्त्रैलोक्यहितकारकः ॥१८॥
श्वफल्कश्च महाराजो धर्मात्मा यत्र वर्तते ।
नास्ति व्याधिभयं तत्र नावृष्टिभयमप्युत ॥१९॥
श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामवाप सः ।
गाधिनी नाम काश्यो हि ददौ तस्मै स्वकन्यकाम् ॥२०॥
सा मातुरुदरस्तथा च वहून्वर्षगणान्किल ।
वसती न च संजज्ञे गर्भस्था ता पिताऽब्रवीत् ॥२१॥

वह प्रसेनजित् उस मणि के साथ ही किसी सुदारुण सिंह से वध को प्राप्त हो गया था। इसके अनन्तर कनिष्ठ वृष्णि नन्दन शिनि से पुत्र उत्पन्न हुआ था सत्य वाणी वाला और सत्य से सम्पन्न सत्यक उसका पुत्र हुआ था। सात्यकि युयुधान प्रतापी शिनि का नप्ता था ॥१५॥१६॥ युयुधान का असङ्ग और उसका कुणि पुत्र हुआ था। कुणि का युगन्धर पुत्र हुआ था। ये सब शैनेय कहे गये थे ॥१७॥ माद्री के सुत से वार्ष्णि युधाजित् पुत्र उत्पन्न हुआ था। यह श्वफल्क इस नाम से त्रिलोकी का हित करने वाला विख्यात हुआ था ॥१८॥ और श्वफल्क

महाराज धर्मात्मा जहाँ पर भी विद्यमान रहा करते हैं वहाँ पर किसी भी व्याधि का भय नहीं होता है और अवृष्टि होने का भय भी नहीं रहा करता है ॥१६॥ उस श्वफल्क ने काशिराज की सुता को अपनी भार्या के रूप में प्राप्त किया था। काश्य अर्थात् काशिराज ने गांदिनी नाम वाली अपनी पुत्री को श्वफल्क के लिए दिया था ॥२०॥ वह अपनी माता के उदर में स्थित बहुत वर्षों तक रही थी और उसने वहाँ पर वास करते हुए जन्म नहीं ग्रहण किया था और गर्भ मे ही स्थित रही थी तब उसके पिता ने उससे कहा था ॥२१॥

जायस्व शीघ्रं भद्रं ते किमर्थं चाभितिष्ठसि ।
प्रोवाच चैनं गर्भस्था सा कन्या गांदिनी तदा ॥२२॥
वर्षत्रयं प्रतिदिनं गामेकां ब्राह्मणाय तु ।
यदि दद्यास्ततः कुक्षेर्निर्गमिष्याम्यहं पितः ॥२३॥
तथेत्युवाच तस्या वै पिता काममपूरयत् ।
दाता शूरश्च यज्वा च श्रुतवानतिथि प्रियः ॥२४॥
तस्याः पुत्रः स्मृतोऽक्रूरः श्वफल्काद्भूरिदक्षिणः ।
रत्ना कन्या च शैवस्य ह्यक्रूरस्तामवाप्तवान् ॥२५॥
अस्यामुत्पादयामास तनयांस्तान्निबोधत ।
उपमन्युस्तथा मागुवृ तस्तु जनमेजयः ॥२६॥
गिरिरक्षस्तयोपेक्षः शत्रुघ्नोः योरिमर्दनः ।
धर्मभृद्दृष्टधर्मा च गोधनोथ वरस्तदा ॥२७॥
आवाहप्रतिवाहौ च सुधारा च वरांगना ।
अक्रूरस्योग्रसेन्यां तु पुत्रौ द्वौ कुलनंदनौ ॥२८॥

हे भद्रे ! तुम शीघ्र जन्म ग्रहण करो, तुम्हारा कल्याण होगा। गर्भ में ही तुम क्यों अवस्थित हो रही हो ? उस समय मे गर्भ मे स्थित उस कन्या गांदिनी ने इस (अपने पिता) से कहा था ॥२२॥ हे पिताजी ! यदि आप तीन वर्ष पर्यन्त प्रतिदिन ब्राह्मण को एक गौ का दान करोगे

तो मैं अपनी माता की कुक्षि से बाहिर निकल कर आऊँगी ॥२३॥ उसके पिता ने "ऐसा ही किया जायगा"— यह कहा था और पिता ने उसकी इच्छा को परिपूर्ण किया था। वह दाता, शूर, यजन करने वाला, श्रुतवान् और अतिथि का प्रिय था ॥२४॥ उसका पुत्र श्वफल्क से भूरि दक्षिणा वाला अक्रूर नाम वाला हुआ था। शैव की रत्ना नामधारिणी कन्या थी उसको अक्रूर ने प्राप्त किया था ॥२५॥ इस रत्ना से उसने जो पुत्र उत्पन्न किये थे उनको तुम सब जान लो। उनके नाम, उपमन्यु, मागु, वृत, जनमेजय, गिरिरक्ष, उपेक्ष, शत्रुघ्न, अरिमर्दन, धर्मभृत्, दृष्टधर्मा, गोधन, वर, आवाह, प्रतिवाह और वराङ्गना सुधारा ये थे। अक्रूर के उग्रसेनी भार्या से दो कुल को आनन्द देने वाले पुत्र हुए थे ॥२६॥२७॥२८॥

देववानुपदेवश्च जज्ञाते देवसंमतौ ।
सुमित्रस्य सुतो जज्ञे चित्रकश्च महायशाः ॥२९॥
चित्रकस्याभवन्पुत्रा विपृथुः पृथुरेव च ।
अश्वग्रीवः सुबाहुश्च सुधासूकगवेक्षणौ ॥३०॥
अरिष्टनेमिरश्वश्च धर्मो धर्मभृदेव च ।
सुभूमिर्बहूभूमिश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ॥३१॥
अधकारकाश्यदुहिता लेभे च चतुरः सुतान् ।
कुकुरं भजमानं च शुचि कंबलबर्हिषम् ॥३२॥
कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेः शूरस्ततोऽभवत् ।
कपोतरोमातिवलस्तस्य पुत्रो विलोमकः ॥३३॥
तस्यासीत्तु वुरुसखो विद्वान्पुत्रो नलः किल ।
ख्यायते स सुनाम्ना तु चंदनानकदुंदुभिः ॥३४॥
तस्मादप्यभिजित्पुत्र उत्पन्नोस्य पुनर्वसुः ।
अश्वमेध स पुत्रार्थमाजहार नरोत्तमः ॥३५॥
तस्य मध्येतिरात्रस्य सदोमध्यात्समुत्थितः ।
ततस्तु विद्वान् सर्वज्ञो दाता यज्वा पुनर्वसुः ॥३६॥

उन दो पुत्रों के नाम देववान् और उपदेव थे। ये दोनो देव संमत समुत्पन्न हुये थे। सुमित्र के महान् यश वाला चित्रक पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥२६॥ चित्रक के विपृथु, पृथु, अश्वग्रीव, सुवाहु, सुधासूत्र, गवेक्षण, अरिष्टनेमि, अश्व, धर्म, धर्मभृत्, सुभूमि, बहुभूमि पुत्र हुये थे अविष्टा और श्रवणा ये दो कन्यायें हुई थी ॥३०॥३१॥ काश्य दुहिता ने ने अन्धक से चार पुत्रो की प्राप्ति की थी। उनके नाम कुकुर, भजमान, शुचि और कम्बल बर्हिष थे ॥३२॥ कुकुर का पुत्र वृष्णि हुआ था और फिर वृष्णि का पुत्र शूर हुआ था। उस शूर के कपोतरोमा अति बलवान् पैदा हुआ था। उसका आत्मज विलोमक नाम वाला था ॥३३॥ उसका तुम्बरु सखा वाला वृहत विद्वान् नल नामक पुत्र हुआ था। वह चन्दनानक दुदुभि इस सुन्दर नाम से ख्यात हुआ था। ३४॥ उससे भी अभिजित् पुत्र हुआ था और इसका पुत्र पुनर्वसु हुआ। उस नरो मे उत्तम ने पुत्र के लिए अश्वमेध यज्ञ किया था ॥३५॥ मध्येतिरात्र उसका सदो मध्य मे समुत्थित हुआ था। इसके पश्चात् परम विद्वान्, सभी कुछ का ज्ञाता, दाता और यजन करने वाला पुनर्वसु हुआ था ॥३६॥

तस्यापि पुत्रमिथुन बभूवाभाजितः किल ।
आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातौ कीर्तिमता वरौ ॥३७॥
आहुकात्काश्यदुहितुर्द्वौ पुत्रौ सबभूवतुः ।
देवकश्चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावुभौ ॥३८॥
देवकस्य सुता राज्ञो जज्ञिरे त्रिदशोपमा ।
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षित. ॥३९॥
तेषा स्वसार. सप्तासन् वसुदेवाय ता ददौ ।
वृषदेवोपदेवा च तथान्या देवरक्षिता ॥४०॥
श्रीदेवा शातिदेवा च सहदेवा तथापरा ।
देवकी चापि तासा च वरिष्ठाऽभूत्सुमध्यमा ॥४१॥
नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषा कसस्तु पूर्वजः ।
तेषा पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोथ सहस्रश. ॥४२॥

उसके भी पुत्र मिथुन अभिजित के हुआ था। कीर्तिमानो में श्रेष्ठ आहुक और आहुकी नाम से ख्यात हुये थे ॥३७॥ आहुक से काश्य की दुहित के दो पुत्र हुये थे। उनके नाम देवक और उग्रसेन थे जो दोनों देव गर्भ के तुल्य थे ॥३८॥ राजा देवक की सुता ने देवो के समान समुत्पन्न किये थे। उन पुत्रो के नाम देववान्, उपदेव, सुदेव और देव रक्षित ये थे ॥३९॥ उनकी सात बहिनें थी वे वसुदेव के लिए दे दी थी। उनके नाम वृषदेवा, उपदेवा, देवरक्षिता, श्रेदेवा, शान्तिदेवा, सह देवा और देवकी थे। इन सबमे सबसे अच्छी एव बडी सुमध्यमा देवकी ही थी ॥४०॥४१॥ उग्रसेन के नौ पुत्रियाँ थी। कस इनका पूर्वज था। उनके पुत्र और पौत्र सैकडो तथा सहस्रो थे ॥४२॥

देवकस्य सुता पत्नी वसुदेवस्य धीमतः ।
वभूव वंद्या पूज्या च देवैरपि पतिव्रता ॥४३॥
रोहिणी च महाभागा पत्नी चानकदुंदुभेः ।
पौरवी वाह्लिकसुता संपूज्यासीत्सुरैरपि ॥४४॥
असूत रोहिणी रामं बलश्रेष्ठं हलायुधम् ।
आश्रित कंसभीतया च स्वात्मान शांततेजसम् ॥४५॥
जाते रामेऽथ निहते पड्गर्भे चातिदक्षिणे ।
वसुदेवो हरिं धीमान्देववयामुदपादयत् ॥४६॥
स एव परमात्मासौ देवदेवो जनार्दनः ।
हलायुधश्च भगवाननंतो रजतप्रभः ॥४७॥
भृगुशापच्छलेनैव मानयन्मानुषीं तनुम् ।
वभूव तस्या देववया वासुदेवो जनार्दनः ॥४८॥
उमादेहसमुद्भूता योगनिद्रा च कौशिकी ।
नियोगाद्देवदेवस्य यशोदातनया ह्यभूत् ॥४९॥

देवक की पुत्री जो धीमान् वसुदेव की पत्नी थी वह देवो के द्वारा भी पूज्य और वन्दमान थी तथा पूर्ण पतिव्रता हुई थी ॥४३॥ महान् भाग वाली रोहिणी आनक दुंदुभि की पत्नी हुई थी। पौरवी

जो वाह्लिक की पुत्री थी सुरो के द्वारा भी सपूज्य थी ।।४४।। रोहिणी ने हल के आयुध रखने वाले और बल-पराक्रम में सबसे श्रेष्ठ राम को उत्पन्न किया था जोकि कंस के द्वारा हनन के भय से शान्त तेज वाले अपने आपको देवकी के गर्भ से निकल कर रोहिणी के उदर का आश्रय करने वाले थे ।।४५।। अत्यन्त सुन्दर छै गर्भों के हृत हो जाने पर अर्थात् कंस के द्वारा वध किये जाने पर और राम के रोहिणी के गर्भ से समुत्पन्न होने पर धीमान् वसुदेव ने देवकी मे श्रीकृष्ण को समुत्पादित किया था ।।४६।। वह ही यह देवो के भी देव जनार्दन साक्षात् परमात्मा हैं। भगवान् हलायुध अर्थात् बलराम रजत के समान प्रभा वाले साक्षात् अनन्त (शेष) भगवान् हैं।।४७।। भृगु ऋषि के शाप के बहाने से मानवीय शरीर को धारण करते हुए वासुदेव जनार्दन उस देवकी मे समुत्पन्न हुये थे ।।४८।। जगदम्बिका उमा के देह से समुद्भूत कौशिकी योग निद्रा देवों के देव भगवान् की आज्ञा से ही यशोदा की पुत्री हुई थी ।।४९।।

सा चैव प्रकृतिः साक्षात्सर्वदेवनमस्कृता ।
पुरुषो भगवान्कृष्णो धर्ममोक्षफलप्रदः ।।५०।।

तां कन्यां जगृहे रक्षन्कंसात्स्वस्यात्मजं तदा ।
चतुर्भुजं विशालाक्ष श्रीवत्सकृतलांछनम् ।।५१।।

शंखचक्रगदापद्मं धारयंतं जनार्दनम् ।
यशोदायै प्रदत्त्वा तु वसुदेवश्च बुद्धिमान् ।।५२।।

दत्त्वैनं नंदगोपस्य रक्षतामिति चाब्रवीत् ।
रक्षकं जगतां विष्णुं स्वेच्छया धृतविग्रहम् ।।५३।।

प्रसादाच्चैव देवस्य शिवस्यामिततेजसः ।
रामेण सार्धं तं दत्त्वा वरदं परमेश्वरम् ।।५४।।

भूभारनिग्रहार्थं च ह्यवतीर्णं जगद्गुरुम् ।
अतो वै सर्वकल्याणं यादवानां भविष्यति ।।५५।।

अथ स गर्भो देवक्या यो नः क्लेश्यान्हरिष्यति ।
उग्रसेनात्मजायाथ कंसायानकदुंदुभिः ॥५६॥

और वह साक्षात् प्रकृति थी जो कि समस्त देवों के द्वारा नमस्कार की गई थी और श्री कृष्ण भगवान् पुरुष थे जो धर्म और मोक्ष के फल को प्रदान करने वाले थे ॥५०॥ उस समय में बुद्धिमान वसुदेव ने अपने आत्मज की कंस से रक्षा करते हुये उसे यशोदा को देकर उस कन्या को ग्रहण कर लिया था । उस समय में श्रीकृष्ण जोकि वसुदेव के पुत्र रूप में समुत्पन्न हुये थे चार भुजाओं से युक्त थे, उनके विशाल नेत्र थे, श्री वत्स का चिन्ह वाले, शंख, चक्र, गदा और पद्म को धारण किये हुए साक्षात् जनार्दन के पूर्ण स्वरूप वाले थे ॥५१॥५२॥ वसुदेव ने श्रीकृष्ण बालक को नन्द को देकर कहा था कि इसकी आप पूर्णतया रक्षा करें । वसुदेव ने नन्द से स्पष्ट कह दिया था कि इसको आप साधारण बालक न समझें । यह जगतों की रक्षा करने वाले साक्षात् भगवान् विष्णु ही हैं । इन्होंने अपनी ही इच्छा से यह मानव बाल स्वरूप धारण किया है ॥५३॥ यह अमित तेज वाले देव शिव की कृपा से राम के सहित वरदान प्रदान करने वाले परमेश्वर की प्राप्ति उन्हें हुई है ॥५४॥ यह स्वयं इस भूमि के भार को दूर करने के लिए ही जगत् के गुरु भगवान् इस समय में अवतीर्ण हुए हैं । इसलिए इनसे अब यादवों का सब प्रकार का कल्याण होगा ॥५५॥ यह देवकी का वही गर्भ है जो हमारे सम्पूर्ण क्लेशों का हरण करेगा अथवा हमको क्लेश देने वालों को मार देगा । इसके अनन्तर आनक दुन्दुभि वसुदेव से उग्रसेन के पुत्र कंस से आकर निवेदन कर दिया था ॥५६॥

निवेदयामास तदा जाता कन्या सुलक्षणाम् ।
अस्यास्त चाष्टमो गर्भो देवक्या. कंस सुव्रत ॥५७॥
मृत्युरेव न संदेह इति वाणी पुरातनी ।
ततस्तां हन्तुमारेभे कंसः सोल्लघ्य चाम्बरम् ॥५८॥

उवाचाष्टभुजा देवी मेघगंभीरया गिरा ।
रक्षस्व तत्स्वकं देहमायातो मृत्युरेव ते ॥५९॥
रक्षमाणस्य देहस्य मायावी कंसरूपिणः ।
किं कृतं दुष्कृतं मूर्ख जातः खलु तवांतकृत् ॥६०॥
देवक्याः स भयात्कंसो जघानैवाष्टमं त्विति ।
स्मरति विहितो मृत्युर्देवक्यास्तनयोऽष्टमः ॥६१॥
यस्तत्प्रतिकृतो यत्नो भोजस्यासीद्वृथा हरेः ।
प्रभावान्मुनिशार्दूलास्तया चैव जडीकृतः ॥६२॥
कंसोपि निहतस्तेन कृष्णेनाक्लिष्ट कर्मणा ।
निहता बहवश्चान्ये देवब्राह्मणघातिनः ॥६३॥

वसुदेव ने कंस से उस उत्पन्न हुई कन्या को बतलाया था जो सुन्दर लक्षणों वाली थी। वसुदेव ने कंस से कहा था—हे सुव्रत ! हे कंस ! इस देवकी का तुम्हारा यही आठवाँ गर्भ है ॥५७॥ यह आठवाँ गर्भ मृत्यु ही है, ऐसी पुरानी वाणी है अतः इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इसलिए कंस ने उसे आकाश की ओर उछाल कर मारना आरम्भ किया था ॥५८॥ वह आठ भुजाएँ धारण करने वाली देवी मेघ के समान गम्भीर वाणी के द्वारा कंस से बोली थी, अब तू अपने देह की रक्षा कर लेना क्योंकि तेरी मौत तो आ ही गया है अर्थात् संसार में उत्पन्न होकर आ गया है ॥५९॥ मायावी कंस के स्वरूप में रहने वाले इस देह की तू रक्षा करने में सयत्न था किन्तु हे मूर्ख ! तूने यह क्या दुष्कृत किया है ? तेरे अन्त करने वाला तो समुत्पन्न हो ही गया है । ॥६०॥ उस कंस ने भय से यह देवकी का आठवाँ गर्भ है, इसलिये उसे मार डाला था क्योंकि उसने यही स्मरण में रक्खा था कि देवकी का आठवाँ पुत्र उसकी मृत्यु कर देने वाला होगा ॥६१॥ उसके प्रतिकार करने में कंस का जो यत्न था वह सब व्यर्थ हो गया था। हे मुनि-शार्दूलो ? हरि के प्रभाव से उस कन्या की वाणी के द्वारा वह कंस और भी जड़ हो गया था ॥६२॥ उन अक्लिष्ट कर्म वाले श्रीकृष्ण ने कंस को

भी मार डाला था। इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत से देव तथा ब्राह्मणों के घात करने वालो को श्रीकृष्ण ने मार दिया था ॥६३॥

तस्य कृष्णस्य तनयाः प्रद्युम्नप्रमुखास्तथा ।
बहवः परिसंख्याताः सर्वे युद्ध विशारदाः ॥६४॥
कृष्णपुत्राः समाख्याताः कृष्णेन सदृशाः सुताः ।
पुत्रेष्वेतेषु सर्वेषु चारुदेष्णादयो हरे ॥६५।
विशिष्टा बलवतश्च रौक्मिणेयारिसूदनाः ।
षोडशस्त्रीसहस्राणि शतमेक तथाधिकम् ॥६६॥
कृष्णस्य तासु सर्वासु प्रिया ज्येष्ठा च रुक्मणी ।
तया द्वादशवर्षाणि कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥६७॥
उष्यता वायुभक्षेण पुत्रार्थं पूजितो हरः ।
चारुदेष्णः सुचारुश्च चारुवेषो यशोधरः ॥६८॥
चारुश्रवाश्चारुयशाः प्रद्युम्नः साब एव च ।
एते लब्धास्तु कृष्णेन शूलपाणिप्रसादतः ॥६९॥
तान् दृष्ट्वा तनयान्वीरान् रौक्मिणेयाश्च रुक्मिणीम् ।
जाबवत्यब्रवीत्कृष्ण भार्या कृष्णस्य धीमतः ॥७०॥

उन श्रीकृष्ण के प्रद्युम्न आदि बहुत से पुत्र परिसख्यात किये गये हैं जो कि सभी युद्ध-विद्या के महान् पण्डित हुय थे ॥६४॥ श्रीकृष्ण के सभी पुत्र कृष्ण के ही समान कहे गये हैं। इन समस्त कृष्ण के पुत्रो मे चारुदेष्ण आदि विशिष्ट बलवान् थे और रुक्मिणी के पुत्र शत्रुओ के सूदन करने वाले हुये थे। श्रीकृष्ण की पत्नियाँ सोलह सहस्र एक सौ आठ थी ॥६५॥६६॥ उन समस्त पत्नियो मे श्रीकृष्ण की सबसे बडी रुक्मिणी अधिक प्रिय हुई थी। उस रुक्मिणी के साथ अक्लिष्ट कर्म वाले कृष्ण ने बारह वर्ष तक केवल वायु का भक्षण करके उपवास करते हुए पुत्रो के लिए भगवान् शिव का पूजन किया था। तब चारु देष्ण, सुचारु, चारुवेष, यशोधर, चारुश्रवा, चारुयशा, प्रद्युम्न और साम्ब ये पुत्र कृष्ण

ने शूलपाणि के प्रसाद से प्राप्त किये थे ॥६७॥६८॥६९॥ उन रुक्मिणी के महान् वीर पुत्रों को तथा रुक्मिणी को देखकर धीमान् कृष्ण की भार्या जाम्बवती श्रीकृष्ण से बोली थी ॥७०॥

मम त्वं पुंडरीकाक्ष विशिष्टं गुणवत्तरम् ।
सुरेशसंमित पुत्रं प्रसन्नो दातुमर्हसि ॥७१॥
जांबवत्या वचः श्रुत्वा जगन्नाथस्ततो हरिः ।
तपस्तप्तुं समारेभे तपोनिधिरनिंदितः ॥७२॥
सोऽथ नारायणः कृष्णः शंखचक्रगदाधरः ।
व्याघ्रपादस्य च मुनेर्गत्वा 'चैवाश्रमोत्तमम् ॥७३॥
ऋषिं दृष्ट्वा त्वंगिरसं प्रणिपत्य जनार्दनः ।
दिव्यं पाशुपत योगं लब्धवांस्तस्य चाज्ञया ॥७४॥
प्रलुप्तश्मश्रुकेशश्च घृताक्तो मुंजमेखली ।
दीक्षितो भगवान्कृष्णस्तताप च परंतपः ॥७५॥
ऊर्ध्वबाहुर्निरालंबः पादांगुष्ठाग्रधिष्ठितः ।
फलाम्बवनिलभोजी च ऋतुत्रयमधोक्षजः ॥७६।
तपसा तस्य संतुष्टो ददौ रुद्रो बहून् वरान् ।
सांबंजांबवतीपुत्रं कृष्णाय च महात्मने ॥७७॥

जाम्बवती ने कृष्ण से कहा—हे पुण्डरीकाक्ष ! आप परम प्रसन्न होकर मुझे भी विशेष गुणों से युक्त इन्द्र के सदृश पुत्र प्रदान करने के योग्य होते हैं ॥७१॥ जगत् के स्वामी हरि ने जाम्बवती के इस वचन का श्रवण करके अनिन्दित तप के निधि ने तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया था ॥७२॥ इसके अनन्तर शङ्ख, चक्र और गदा को धारण करने वाले नारायण कृष्ण व्याघ्रपाद मुनि के उत्तम आश्रम में जाकर जनार्दन ने अङ्गिरस ऋषि के दर्शन किये और उन्हें प्रणाम किया था। उस मुनि की आज्ञा से कृष्ण ने दिव्य पाशुपत योग को प्राप्त किया था ॥७३।।७४॥ अपने श्मश्रु और माथे के केशों को साफ करने वाले, घृत

से म्रक्त और मूज की मेखला धारण करने वाले कृष्ण ने दीक्षित होकर वहाँ पर परन्तप ने घोर तप किया था ।।७५।। ऊपर की ओर बाहुओं को उठाकर बिना किमी अवलम्ब के पैर के अंगूठे के अग्र भाग पर अविस्थित होते हुए फल, वायु और केवल जल का आहार करके अधोक्षज ने तीनो ऋतुओ मे तपस्या की थी ।।७६।। इस उनकी तपस्या से भगवान् रुद्र बहुत सन्तुष्ट हुये थे और बहुत वरदान उन्होने कृष्ण को प्रदान किए थे । महात्मा कृष्ण के लिए जाम्बवती का साम्ब पुत्र प्रदान किया था ।।७७।।

तया जाबवती चैव साब भार्या हरेः सुतम् ।
प्रहृपमतुल लेभे लब्ध्वादित्य यथादितिः ।।७८।।
बाणस्य च तदा तेन च्छेदित मुनिपुंगवाः ।
भुजाना चैव साहस्र शापाद्रुद्रस्य धीमतः ।।७६।।
अथ दैत्यवध चक्रे हलायुधसहायवान् ।
तथा दुष्टक्षितीशाना लीलयव रणाजिरे ।।८०।।
स हत्वा देवसभूत नरक दैत्यपुंगवम् ।
ब्राह्मणस्योच्चचक्रस्य वरदानान्महात्मनः ।।८१।।
स्वोपभोग्यानि कन्यानां षोडशातुलविक्रमः ।
शताधिकानि जग्राह सहस्राणि महाबल. ।।८२।।
शापव्याजेन विप्राणामुपसंहृतवान् कुलम् ।
संहृत्य तत्कुल चैव प्रभासेऽतिष्ठदच्युत. ।।८३।।
तदा तस्यैव तु गत वर्षाणामधिक शतम् ।
कृष्णस्य द्वारकाया वै जराक्ले शापहारिणः ।।८४।।

भगवान् की भार्या जाम्बवती ने साम्ब पुत्र की प्राप्ति करके आदित्य को प्राप्त कर अदिति के समान परम हर्षित हुई थी । उस साम्ब ने हे मुनियो मे श्रेष्ठो ! उस समय मे धीमान् रुद्र के शाप से बाणासुर के एक सहस्र भुजाओ का छेदन कर दिया था ।।७८।।७६।। इसके अनन्तर हलायुध श्री बलराम की सहायता वाला हो दैत्यो का

वध किया था और रणक्षेत्र दुष्ट नृपों का वध लीला ही से कर दिया था ॥८०॥ महान् आत्मा वाले ऊर्ध्व चक्र ब्राह्मण के वरदान से उसने देव से सभूत नरक नामक दैत्यो मे श्रेष्ठ का हनन किया था ॥८१॥ महान् बलवान् श्रीकृष्ण ने, जिनका कि अतुल विक्रम था, वहाँ से अपने उपभोग करने के योग्य सोलह हजार एक सौ कन्याओ को ग्रहण कर लिया था ॥८२॥ भगवान् अच्युत ने विप्रों के शाप के बहाने से अपने समग्र कुल का उपसंहार किया था और उस सम्पूर्ण कुल को संहृत करके स्वयं प्रभास क्षेत्र मे स्थित हो गए थे ॥८३॥ उस समय मे द्वारकापुरी मे जरा के क्लेश को अपहरण करने वाले श्रीकृष्ण को सौ वर्ष से अधिक व्यतीत हो चुके थे ॥८४॥

विश्वामित्रस्य कण्वस्य नारदस्य च धीमतः ।
शापं पिंडारकेऽरक्षद्वचो दुर्वाससस्तदा ॥८५॥
त्यक्त्वा च मानुषं रूपं जरकास्त्रच्छलेन तु ।
अनुगृह्य च कृष्णोपि लुब्धक प्रययौ दिवम् ॥८६॥
अष्टावक्रस्य शापेन भार्याः कृष्णस्य धीमतः ।
चौरैश्चापहृताः सर्वास्तस्य मायाबलेन च ॥८७॥
बलभद्रोपि सत्यज्य नागो भूत्वा जगाम च ।
महिष्यस्तस्य कृष्णस्य रुक्मिणीप्रमुखाः शुभाः ॥८८॥
सहाग्निः विविशुः सर्वाः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।
रेवती च तथा देवी बलभद्रेण धीमता ॥८९॥
प्रविष्टा पावकं विप्राः सा च भर्तृपथं गता ।
प्रेतकार्यं हरेः कृत्वा पार्थः परमवीर्यवान् ॥९०॥
रामस्य च तथान्येषां वृष्णीनामपि सुव्रतः ।
कंलमूलफलैस्तस्य बलिकार्यं चकार सः ॥९१॥
द्रव्याभावात्स्वयं पार्थो भ्रातृभिश्च दिवं गतः ।
एवं संक्षेपतः प्रोक्तः कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥९२॥

प्रभावो विलयश्चैव स्वेच्छयैव महात्मनः ।
इत्येतत्सोमवशाना नृपाणा चरित द्विजा. ॥९३॥
य पठेच्छृणुयाद्वापि ब्राह्मणान् श्रावयेदपि ।
स याति वैष्णव लोक नात्र कार्या विचारणा ॥९४॥

उस समय मे श्रीकृष्ण ने विश्वामित्र, कण्व, धीमान्, नारद और दुर्वासा के वचनों का अर्थात् शाप के वचन की पिण्डारक मे रक्षा की थी अर्थात् शाप को पूरा किया था ॥८५॥ जरक नामक व्याध के प्रक्षिप्त अस्त्र के बहाने से श्रीकृष्ण ने इस मानवीय शरीरात्मक स्वरूप का त्याग करके तथा उस लुब्धक पर भी पूर्ण अनुग्रह करके दिवलोक को प्रस्थान किया था ॥८६॥ परम बुद्धिमान् कृष्ण की समस्त भार्या अष्टावक्र के शाप से चोरो के द्वारा अपहृत हुई थी और यह सब कुछ उनकी ही माया के बल से हुआ था ॥८७॥ फिर बलभद्र भी अपना स्वरूप का त्याग करके नाग होकर चले गये थे। कृष्ण की रुक्मिणी आदि प्रमुख जो शुभ महिषी थी वे सब अविलष्ट कर्म वाले कृष्ण के साथ अग्नि मे प्रविष्ट हो गई थी। हे विप्रगण! रेवती देवी धीमान् बलभद्र के साथ पावक में प्रवेश कर गई थी और वह अपने स्वामी के ही मार्ग मे प्राप्त हो गई थी। परम वीर्य वाले सुव्रत पार्थ (अर्जुन) ने हरि का प्रेत कार्य सम्पन्न किया था तथा बलराम का और अन्य वृष्णियो का भी प्रेत कर्म किया था। उसने कन्द, मूल और फलो के द्वारा सम्पूर्ण बलि देने का कर्म सम्पादित किया था क्योकि उस समय द्रव्य का अभाव था। फिर वह पार्थ भी अपने भाइयो के साथ दिवलोक को चला गया था। इस प्रकार से यह अविलष्ट कर्म वाले श्रीकृष्ण का चरित अत्यन्त सक्षेप म कह दिया है जिसमे महान् आत्मा वाले श्रीकृष्ण का प्रभाव और विलय उनकी अपनी ही इच्छा के अनुसार हुए थे। हे द्विजगण! यह सोम वश मे होने वाले नृपो का चरित हुआ है। ॥८८॥८९॥९०॥९१॥९२॥९३॥ जो इसका पाठ करता है तथा श्रवण

करता है या ब्राह्मणों को श्रवण करता है वह निश्चय ही वैष्णव लोक मे चला जाता है, इसमे विचार करने की कोई भी बात नही है। अर्थात् इसमे बिल्कुल भी सन्देह नही करना चाहिए ॥६४॥

भगवान शिव से समस्त सृष्टि का विस्तार

आदिसर्गस्त्वया सूत सूचितो न प्रकाशितः।
सांप्रतं विस्तरेणैव वक्तुमर्हसि सुव्रत ॥१॥
महेश्वरो महादेवः प्रकृतेः पुरुषस्य च।
परत्वे संस्थितो देवः परमात्मा मुनीश्वराः ॥२॥
अव्यक्तं चेश्वरात्तस्मादभवत्कारण परम्।
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचिंतकाः ॥३॥
गंधवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम्।
अजरं ध्रुवमक्षय्यं नित्य स्वात्मन्यवस्थितम् ॥४॥
जगद्योनिं महाभूत परं ब्रह्म सनातनम्।
विग्रहः सर्वभूतानामीश्वराज्ञाप्रचोदितम् ॥५॥
अनाद्यंतमज सूक्ष्मं त्रिगुण प्रभवाव्ययम्।
अप्रकाशमविज्ञेय ब्रह्माग्रे समवर्तत ॥६॥
अस्यात्मना सर्वमिदं व्याप्तं त्वासीच्छि वेच्छया।
गुणसाम्ये तदा तस्मिन्नविभागे तमोमये ॥७॥

इस अध्याय मे शिव से ही यथातथ रूप मे आदि सर्ग का निरूपण किया जाता है। ऋषियो ने कहा—हे सुव्रत ! आपने हे सूत जी ! आदि सर्ग सूचित तो किया था किन्तु उसे पूर्णतया प्रकट नहीं किया था। अब हम उसे सुनना चाहते हैं अत. विस्तार पूर्वक आप कहने के योग्य हैं ॥१॥ सूत जी ने कहा—हे मुनीश्वरो ! महेश्वर

महादेव प्रकृति और पुरुष इन दोनो के परत्व मे संस्थित परमात्मा देव हैं ॥२॥ और अव्यक्त उस ईश्वर से परम कारण हुआ था जिसको तत्वो के चिन्तन करने वाले विद्वान् लोग प्रधान और प्रकृति कहते हैं ॥३॥ गन्ध, वर्ण और रसो से हीन तथा शब्द और स्पर्श से वर्जित बिना जरा वाला, ध्रुव (नित्य एव अचल) क्षय से रहित, नित्य और अपनी आत्मा में स्थित है ॥४॥ जगत् की योनि अर्थात् इस जगत् को उत्पन्न करने वाला, महाभूत परम ब्रह्म सनातन अर्थात् सवदा रहने वाला है। वह ईश्वर की आज्ञा से प्रेरित होता हुआ समस्त भूतो का विग्रह होता है ॥५॥ आदि अन्त से शून्य, अज (जन्म न लेने वाला), सूक्ष्म, तीन सत्त्व, रज और तम गुणो वाला, प्रभवाव्यय, अप्रकाश और अविज्ञेय अर्थात् विशेष ज्ञान के अयोग्य ब्रह्म के आगे रहता था ॥६॥ भगवान् शिव की इच्छा से इसकी ही आत्मा एव स्वरूप से यह सम्पूर्ण व्याप्त था। उस समय इन विभाग से रहित तमोमय मे गुणो का साम्य स्वरूप था ॥७॥

सर्गकाले प्रधानस्य क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्य च।
गुणभावाद्व्यज्यमानो महान्प्रादुर्बभूवह ॥८॥
सूक्ष्मेण महता चाथ अव्यक्तेन समावृतम्।
सत्वोद्रिक्तो महानग्रे सत्तामात्रप्रकाशक. ॥९॥
मनो महांस्तु विज्ञेयमेकं तत्कारण स्मृतम्।
समुत्पन्नं लिंगमात्रं क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं हि तत् ॥१०॥
धर्मादीनि च रूपाणि लोकतत्वार्थहेतवः।
महान् सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानः सिसृक्षया ॥११॥
मनो महान्मतिर्ब्रह्म पूर्बुद्धिः ख्यातिरीश्वरः।
प्रज्ञा चितिः स्मृतिः संविद्वि श्वेश्वरश्चेति स स्मृतः ॥१२॥
मनुते सर्वभूताना यस्माच्चेष्टा फलं ततः।
सौक्ष्म्यात्तेन विभक्तं तु येन तन्मन उच्यते ॥१३॥

तत्त्वाना मग्रजो यस्मान्महांश्च परिमाणत. ।
विशेषेभ्यो गुणेभ्योपि महानिति ततः स्मृतः ॥१४॥

सर्ग के अर्थात् रचना के समय मे क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित प्रधान का गुण भाव से व्यक्त होने वाला महान् प्रादुर्भूत हुआ था ॥८॥ यह परम सूक्ष्म एव अव्यक्त महान् से समावृत था फिर आगे चलकर सत्त्व से उद्रिक्त अर्थात् सत्त्व के उद्रेक वाला महान् केवल सत्ता मात्र का प्रकाश करने वाला था ॥९॥ यह महान् अर्थात् महत्तत्त्व ही एक समष्टि रूप मन सर्वोत्कृष्ट कारण कहा गया है । वह लिङ्ग मात्र समुत्पन्न क्षेत्रज्ञ के द्वारा अधिष्ठित है ॥१०॥ सृजन करने की इच्छा से ईश्वर के द्वारा प्रेरित वह महान् लोको के तत्त्वार्थ के हेतु स्वरूप धर्म आदि रूपो को और वेदो को सृष्टि किया करता है ॥११॥ वह महेश्वर ही मन, महान्, मति, ब्रह्म, पूर्बुद्धि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, चिति, स्मृति, संविद् और विश्वेश इन त्रयोदश नामो वाला कहा गया है ॥१२॥ समस्त जीवो के कर्म फल का अवबोधन किया जाता है । मनु अवबोध ने, यह धातु है । इसी से मन शब्द रचित होता है । अत्यन्त सूक्ष्म होने से मन के द्वारा उस कर्म फल से उत्पद्यमान यह जगत् विभक्त है इसलिये यह मन कहा जाता है ॥१३॥ तत्त्वो अर्थात् महङ्कारादि का यह अग्रज है अर्थात् इन सभी तत्त्वो से पहिले उत्पन्न होने वाला है और परिमाण से भी महान् है तथा विशेष सत्त्वादि गुणो से पृ थ है अतएव इसे 'महान्'– यह कहा गया है ॥१४॥

विभर्ति मान मनुते विभाग मन्यतेपि च ।
पुरुषो भोगसबधात्त न चासौ मतिः स्मृतः ॥१५॥
बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च भावाना सकलाश्रयात् ।
यस्माद्धारयते भावान्ब्रह्म तेन निरुच्यते ॥१६॥
यः पूरयति यस्माच्च कृत्स्नान्देवाननुग्रहैः ।
नयते तत्त्वभावं च तेन पूरिति चोच्यते ॥१७॥

बुध्यते पुरुषश्चात्र सर्वान् भावान् हितं तथा ।
यस्माद्बोधयते चैव बुद्धिस्तेन निरुच्यते ॥१८॥
ख्यातिः प्रत्युपभोगश्च यस्मात्संवर्तते ततः ।
भोगस्य ज्ञाननिष्ठत्वात्तेन ख्यातिरिति स्मृतः ॥१९॥
ख्यायते तद्गुणैर्वापि ज्ञानादिभि रनेकशः ।
तस्माच्च महतः संज्ञा ख्यातिरित्यभिधीयते ॥२०॥
साक्षात्सर्वं विजानाति महात्मा तेन चेश्वरः ।
यस्माज्ज्ञानानुगश्चैव प्रज्ञा तेन स उच्यते ॥२१॥

ईश्वर भोग सम्बन्ध से सबका पोषण करता है । सकल प्रमाण को और सबके भेद को मानता है । इसी हेतु से यह महेश्वर है और मति इस संज्ञा वाला कहा है । मति महत्त्व होने से और उत्पद्यमान भावों के पोषण से, सबका आश्रय होने से भावों को धारण करता है इस हेतु से ब्रह्म कहा जाता है ॥१५॥१६॥ जो समस्त देवों को अनुग्रहों के द्वारा पूरित करता है और समग्र तत्त्व समूह की सत्ता को प्राप्त कराता है । इसी कारण से पू —यह कहा जाता है ॥१७॥ ईश्वर इस ब्रह्माण्ड नाम वाली पुरी में सम्पूर्ण भावों को और धर्म को जीवों के लिये बोध कराता है इसी हेतु से इसे बुद्धि नाम से कहा जाता है ॥१८॥ आत्म ज्ञानावधि होने से वैषयिक सुख की प्रचता और भोग प्राप्ति जिससे होती है इसी हेतु से ख्याति कहा गया है ॥१९॥ महदादि के शब्दादि गुणों से अथवा भगवत् शब्द वाच्य ज्ञानादि षड्गुणों से अनेक प्रकार से सत्पुरुषों के द्वारा जो प्रशस्य मान होता है इसलिये उस महान् पुरुष का ख्याति ऐसा कहा जाता है ॥२०॥ सम्पूर्ण विश्व को जो प्रत्यक्ष रूप से जानता है जो इन्द्रियों के अनधीन है उसे देखता है वह सर्व व्यापक रूप महात्मा ईश्वर है । ज्ञानरूप वह है इसलिये प्रज्ञा यह परमेश्वर कहा जाता है ॥२१॥

ज्ञानादीनि च रूपाणि यद्धर्मफलानि च ।
विनोति यस्माद्भोगार्थं तेनासौ चितिरुच्यते ॥२२॥

वर्तमानव्य तीतानि तथैवानागतान्यपि ।
स्मरते सर्वकार्याणि तेनासौ स्मृतिरुच्यते ॥२३॥
कृत्स्नं च विदते ज्ञानं यस्मान्माहात्म्यमुत्तमम् ।
तस्माद्विदेर्विदेश्चैव संविदित्यभिधीयते ॥२४॥
विद्यतेपि च सर्वत्र तस्मिन्सर्वं च विंदति ।
तस्मात्संविदिति प्रोक्तो महद्भिर्मुनिसत्तमाः ॥२५॥
जानातेर्ज्ञानमित्याहुर्भगवान् ज्ञानसंनिधिः ।
बधनादिपरीभावादीश्वरः प्रोच्यते बुधैः ॥२६॥
पर्यायवाचकैः शब्दैस्तत्त्व माद्यमनुत्तमम् ।
व्याख्यातं तत्त्वभावज्ञैर्देवसद्भावचितकैः ॥२७॥
महान्सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानः सिसृक्षया ।
संकल्पोघ्यवसायश्च तस्य वृत्तिद्वयं स्मृतम् ॥२८॥

यह परमेश्वर जीवो के अनेक प्रकार के भोगो की प्राप्ति के लिये ज्ञान, ऐश्वर्य, यश प्रभृति रूप वाले अनेक प्रकार के कर्म फलो को विस्तृत किया करता है इस हेतु से उसे चिति कहा गया है ॥२२॥ वर्त्तमान, व्यतीत और अनागत समस्त कार्यों को यह स्मरण किया करता है इसलिये उसे स्मृति कहा जाता है ॥२३॥ सम्पूर्ण ज्ञान और सर्वश्रेष्ठ माहात्म्य का लाभ करता या ज्ञान रखता है इसलिए 'विदलृ-लाभे' तथा 'विदज्ञाने' इन दोनो से ही संविद् शब्द की निष्पत्ति होने से दोनों ही अर्थ वाला वह होता है । अतएव उसे संविद् कहा जाता है ॥२४॥ समस्त देश और सम्पूर्ण कालो मे वह विद्यमान रहता है और जाना जाता है हे मुनि सत्तमगण ! इस हेतु से महान पुरुषो के द्वारा वह संवित् कहा जाता है । साधातु का ज्ञान अर्थ कहते हैं और भगवान् षडैश्वर्य विशिष्ट शिव ज्ञान के समुद्र हैं । बन्धन आदि की तिरिक्तता से बुधो के द्वारा वह ईश्वर कहा जाता है । ॥२५॥२६॥ एकार्थ के प्रतिपादक शब्दो के द्वारा सकल के आदि भूत अनुत्तम तत्व शिवाख्य को यह सब शिव के ही क्रीड़नक हैं, ऐसा विचार

करने वाले तत्व वेत्ताओं के द्वारा व्याख्या की गई है ॥२७॥ सृजन करने की इच्छा से प्रेरित होता हुआ महान् इस सृष्टि को विशेष रूप से किया करता है। सङ्कल्प और अध्यवसाय ये दो वृत्ति बताई जाती हैं ॥२८॥

त्रिगुणाद्रजसोद्रिक्तादहङ्कारस्ततोऽभवत् ।
महता च वृतः सर्गो भूतादिर्बाह्यतस्तु सः ॥२९॥
तस्मादेव तमोद्रिक्तादहङ्कारादजायत ।
भूततन्मात्रसर्गस्तु भूतादिस्तामसस्तु सः ॥३०॥
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दमात्रं ससर्ज ह ।
आकाशं सुषिरं तस्मादुत्पन्नं शब्दलक्षणम् ॥३१॥
आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समावृणोत् ।
वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह ॥३२॥
ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपं गुणमुच्यते ।
स्पर्शमात्रस्तु वै वायू रूपमात्रं समावृणोत् ॥३३॥
ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह ।
सम्भवन्ति ततो ह्यापस्ता वै सर्वरसात्मिकाः ॥३४॥
रसमात्रास्तु ता ह्यापो रूपमात्राग्निरावृणोत् ।
आपश्चापि विकुर्वन्त्यो गन्धमात्रं ससर्जिरे ॥३५॥

को समावृत कर लिया था। विकृति युक्त ज्योति ने रस तन्मात्रा का सृजन किया था। इसके अनन्तर जल समुत्पन्न होते हैं जो कि सब रसों वाले हुआ करते हैं। वे जल रस मात्रा हैं और रूपमात्रा वाले अग्नि ने उसको समावृत कर लिया था। आप अर्थात् जल विकृति प्राप्त करके गन्ध तन्मात्रा का सृजन किया करते हैं ॥३३॥३४॥३५॥

सघातो जायते तस्मात्तस्य गधो गुणो मतः।
तस्मिंस्तस्मिंश्च तन्मात्र तेन तन्मात्रता स्मृता ॥३६॥
अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततस्तु ते।
प्रशातघोरमूढत्वादविशेषास्तत. पुन. ॥३७॥
भूततन्मात्रसर्गोयं विज्ञेयस्तु परस्परम्।
वैकारिकादहङ्कारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तु सात्त्विकात् ॥३८॥
वैकारिकः ससर्गस्तु युगपत्संप्रवर्तते।
बुद्धीद्रियाणि पचैव पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च ॥३९॥
साधकानीन्द्रियाणि स्युर्देवा वैकारिका दश।
एकादश मनस्तत्र स्वगुणेनोभयात्मकम् ॥४०॥
श्रोत्र त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी।
शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि तानि वै ॥४१॥
पादौ पायुरुपस्थश्च हस्तौ वाग्दशमी भवेत्।
गतिर्विसर्गो ह्यानद. शिल्प वाक्य च कर्म तत् ॥४२॥

उससे सघात अर्थात् पृथिवी सज्ञा वाला उत्पन्न होता है उसका गुण गन्ध है। उस, उसमे उससे उस, उसकी तन्मात्रा कही गई है। वे शब्दादिक अविशेष वाचक अर्थात् तन्मात्र शब्द से प्रतिपादक होने से प्रशान्त, घोर, मूढ अर्थात् सात्विक, राजस, तामस होने से अविशेष कहे गये है ॥३६॥३७॥ यह परस्पर मे भूत तन्मात्राओं का सर्ग जानना चाहिए जो वैकारिक अहङ्कार से और सत्त्वोद्रिक्त सात्त्विक से होता है ॥३८॥ वह वैकारिक सर्ग एक ही साथ सप्रवृत्त होता है। अब सात्त्विक राजस अहङ्कार सर्ग को बताया जाता है, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच

कर्मेन्द्रियाँ उनके साधक करण होते हैं। इनके वैकारिक दश नियन्ता देव होते हैं। इन दश इन्द्रियों के अतिरिक्त ग्यारहवाँ मन होता है जो अपने गुण की विशेषता के कारण ज्ञान और कर्म दोनों ही प्रकार के स्वरूप वाला होता है ॥३६। ४०॥ अब पाँच ज्ञानेन्द्रियों को बतलाते हैं, श्रोत्र, त्वक्, दोनों नेत्र, जिह्वा और पाँचवी नासिका ये पाँच बुद्धीन्द्रियाँ हैं जो कि क्रम से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान प्राप्त करती हैं। इसी प्राप्ति करते के कारण उन्हें ज्ञानेन्द्रिय कहा जाता है। ॥४१॥ दोनों पैर, पायु, (मल के त्याग करने वाली अर्थात् गुदा) उपस्थ, (मूत्र का उत्सर्ग करने वाली अर्थात् जननेन्द्रिय) दोनों हाथ और वाणी दशम इन्द्रिय हैं। उक्त पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मिलाकर कुल दश इन्द्रियाँ होती हैं। इन कर्म करने वाली इन्द्रियों का कार्य क्रम से गमन करना, मल का त्याग करना, विषयानंद लेना, शिल्प कार्य करना और वचन बोलना होता है। ये ही इन पाँचों के कर्म हैं ॥४२॥

आकाशं शब्दमात्रं च स्पर्शमात्रं समाविशत् ।
द्विगुणस्तु ततो वायुः शब्दस्पर्शात्मकोऽभवत् ॥४३॥
रूपं तथैव विशत शब्दस्पर्शौ गुणावुभौ ।
त्रिगुणस्तु ततस्त्वग्निः सशब्दस्पर्शरूपवान् ॥४४॥
सशब्दस्पर्शरूपं च रसमात्रं समाविशत् ।
तस्माच्चतुर्गुणा आपो विज्ञेयास्तु रसात्मिकाः ॥४५॥
शब्दस्पर्शं च रूपं च रसो वै गन्धमाविशत् ।
संगता गन्धमात्रेण आविशतो महीमिमाम् ॥४६॥
तस्मात्पञ्चगुणा भूमिः स्थूला भूतेषु शस्यते ।
शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः ॥४७॥
परस्परानुप्रवेशाद्धारयति परस्परम् ।
भूमेरन्तस्त्विदं सर्वं लोकालोकाचलावृतम् ॥४८॥

विशेषाश्चेन्द्रियग्राह्या नियतत्वाच्च ते स्मृताः ।
गुणं पूर्वस्य सर्गस्य प्राप्नुवंत्युत्तरोत्तराः ॥४६॥

अब आकाश आदि पाँचों भूतों का क्रम से संक्रमण बताया जाता है, आकाश शब्द मात्रा वाला होता है। उसका स्पर्श मात्रा मे समावेश होता है। अतएव वायु दो गुण वाला होता है। आकाश का केवल एक ही शब्द गुण होता है किन्तु वायु के शब्द और स्पर्श दो गुण होते हैं ॥४३॥ शब्द और स्पर्श ये दोनो गुण रूप मे प्रवेश करते है। इसीलिये अग्नि शब्द, रूप और स्पर्श, इन तीन गुणो वाला होता है ॥४४॥ शब्द, स्पर्श और रूप ये तीनो गुण रस मात्रा मे समाविष्ट हुए हैं। इसी कारण से रसात्मक जल चार गुणो से युक्त होता है ॥४५॥ शब्द, रूप, रस और स्पर्श ये चारो गुण गन्ध मे प्राविष्ट हो जाते है। गन्ध की मात्रा से सङ्गत होकर इस पृथ्वी मे समावेश प्राप्त करते है। इसलिये यह भूमि पाँच गुण वाली है और यह स्थूल होकर पाँचो भूतो मे प्रशस्त है। वे शब्द आदिक गुण अधिक गुणत्व होने से शान्त, घोर और मूढ एवं विभिन्न कार्य करने वाले विशेष कहे गये हैं ॥४६॥४७॥ परस्पर अनुप्रवेश से ये परस्पर मे भूमि के अन्दर लोका लोका चलावृत इस सबको धारण करते है ॥४८॥ शब्दादित विशेष तत्तद् इन्द्रियो के द्वारा ग्राह्य होते हैं क्योकि वे सब नियत हैं। पूर्व सर्ग अर्थात् प्रथम सृजन का स्वरूप जो आकाश आदि हैं उनके गुण को उत्तरोत्तर सर्ग वायु आदि प्राप्त किया करते हैं ॥४६॥

तेषां यावच्च तयच्च यच्च तावद्गुणं स्मृतम् ।
उपलभ्याप्सु वै गंधं केचिद्ब्रूयुरपां गुणम् ॥५०॥
पृथिव्यामेव तं विद्यादपां वायोश्च संश्रयात् ।
एते सप्त महात्मानो ह्यन्योन्यस्य समाश्रयात् ॥५१॥
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च ।
महादयो विशेषांता ह्यण्डमुत्पादयंति ते ॥५२॥

एककालसमुत्पन्न जलबुदबुदवच्च तत् ।
विशेषेभ्योण्डमभवन्महत्तादुदकेशयम् ॥५३॥
अद्भिर्दशगुणाभिस्तु बाह्यतोण्ड समावृतम् ।
आपो दशगुणेनैतास्तेजसा बाह्यतो वृताः ॥५४॥
तेजो दशगुणेनैव वायुना बाह्यतो वृतम् ।
वायुर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसा वृतः ॥५५॥
आकाशेनावृतोः वायुः खं तु भूतादिनावृतम् ।
भूतादिर्महता चापि अव्यक्तेनावृतो महान् ॥५६॥

उनका जितना और है वह उतना ही गुण कहा गया है । जल में गन्ध की प्राप्ति करके कुछ लोग उस गन्ध को जल का ही गुण बोलते हैं ॥५०॥ गन्ध गुण वस्तुतः पृथिवी का ही होता है जल मे तो वायु के सश्रय से प्रतीत होता है । महत्तात्वाहकार शब्दादि ये सात महान् आत्मा वाले हैं क्योकि इसमे अन्योन्य का सश्रय होता है । वे महदादि विशेषान्त पुरुषाधिष्ठित होने से और अव्यक्त के अनुग्रह से अणु की उत्पत्ति किया करते है ॥५१॥५२॥ इस काल मे समुत्पन्न जल के बुलबुले के समान वह जल मे शयन करने वाला विशेषो से महान् अण्ड हो गया था ॥५३॥ वह अण्ड बाहिर के भाग मे दश गुने जल से समावृत था और जल से दश गुणित आकाश से आवृत था । इसी प्रकार से आकाश भूतादि वायु से आवृत था । भूतादि महान् से और महान् अव्यक्त से आवृत था ॥५४॥५५॥५६॥

शर्वश्चाडकपालस्थो भवश्चाभसि सुव्रताः ।
रुद्रोग्निमध्ये भगवानुग्रो वायौ पुनः स्मृतः ॥५७॥
भीमश्चावनिमध्यस्थो ह्यहंकारे महेश्वरः ।
बुद्धौ च भगवानीशः सर्वतः परमेश्वरः ॥५८॥
एतैरावरणैरडं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ।
एता आवृत्य चान्योन्यमष्टौ प्रकृतयः स्थिताः ॥५९॥

प्रसर्गकाले स्थित्वा तु ग्रसंत्येता: परस्परम् ।
एवं परस्परोत्पन्ना धारयति परस्परम् ॥६०॥
आधाराधेयभावेन विकारास्ते विकारिषु ।
महेश्वर: परोव्यक्तादडमव्यक्तसंभवम् ॥६१॥
अंडाज्जज्ञे स एवेश: पुरुषोर्कसमप्रभ: ।
तस्मिन्कार्यस्य करणं ससिद्ध स्वेच्छयैव तु ॥६२॥
सावै शरीरी प्रथम: स वै पुरुष उच्यते ।
तस्य वामाङ्गजो विष्णु: सर्वदेवनमस्कृत: ॥६३॥

ये समस्त अण्डावरण भगवान् शिव की ही आठ मूर्त्तियाँ थी, यह बताते हुये कहा जाता है कि हे सुव्रतो ! अण्ड कपाल मे स्थित शर्व थे, जल मे भव, अग्नि के मध्य मे रुद्र भगवान्, वायु मे उग्र, अवनि के मध्य मे भीम, अहङ्कार मे महेश्वर, बुद्धि मे भगवान् ईश और सब ओर परमेश्वर इस प्रकार शिव की आठ मूर्त्तियाँ थी ॥५७॥५८॥ इन प्रकृति जन्य सात आवरणो से अण्ड आवृत था। ये अन्योन्य का आवरण कर आठ प्रकृति के भेद स्थित थे ॥५६॥ प्रसर्ग के समय मे ये प्रकृतियाँ परस्पर मे ग्रसती हैं और परस्पर मे समुत्पन्न होकर धारण किया करती हैं ॥६०॥ वे समस्त विकार विकारियो मे आधार, आधेय भाव से स्थित थे। पर महेश्वर अव्यक्त है और उस अव्यक्त से अण्ड की उत्पत्ति हुई थी ॥६१॥ उस अण्ड से अर्क (सूर्य) के समान प्रभा वाला वह ही ईश पुरुष समुत्पन्न हुआ था। उस पुरुष मे उत्पद्यमान सर्ग स्वरूप वाले कार्य का करण उत्पादन स्वेच्छा से ही सिद्ध था किसी अन्य सामग्री से नही था ॥६२। यह ही सबसे प्रथम शरीर के धारण करने वाला था जोकि पुरुष कहा जाता है। उसके ही वामाङ्ग से समुत्पन्न सब देवों के द्वारा वन्दित भगवान विष्णु हुये हैं ॥६३॥

लक्ष्म्या देव्या ह्यभूद्देव इच्छया परमेष्ठिन: ।
दक्षिणाङ्गभवो ब्रह्मा सरस्वत्या जगद्गुरु: ॥६४॥

तस्मिन्नंडे इमे लोका अंतर्विश्वमिदं जगत् ।
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना ॥६५॥
लोकालोकद्वयं किंचिदण्डे ह्यस्मिन्समर्पितम् ।
यत्तु सृष्टौ प्रसंख्यातं मया कालान्तरं द्विजाः ॥६६॥
एतत्कालान्तरं ज्ञेयमहर्वै पारमेश्वरम् ।
रात्रिश्चैतावती ज्ञेया परमेशस्य कृत्स्नशः ॥६७॥
अहस्तस्य तु या सृष्टिः रात्रिश्च प्रलयः स्मृतः ।
नाहस्तु विद्यते तस्य न रात्रिरिति धारयेत् ॥६८॥
उपचारस्तु क्रियते लोकाना हितकाम्यया ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पञ्च च ॥६९॥
तस्मात्सर्वाणि भूतानि बुद्धिश्च सह दैवतं ।
अहस्तिष्ठन्ति सर्वाणि परमेशस्य धामतः ॥७०॥

परमेष्ठी के दक्षिण अङ्ग से उत्पन्न सरस्वती के जगद् गुरु ब्रह्मा हैं जोकि लक्ष्मी देवी की इच्छा से हुये थे ॥६४॥ उसे अण्ड मे अन्दर ये समस्त लोक, विश्व और जगत् था । चन्द्र और सूर्य जो सपूर्ण ग्रह और नक्षत्रो के सहित तथा वायु के साथ थे ॥६५॥ लोका लोक द्वय इस अण्ड मे समर्पित थे । हे द्विजगण ! जोकि मैंने कालान्तर मे सृष्टि मे प्रसङ्ख्यात किये हैं ॥६६॥ यह काल का अन्तर परमेश्वर का दिन जानना चाहिये और परमेश की इतनी ही रात्रि समझ लेनी चाहिए ॥६७॥ उसकी जो सृष्टि है वह तो दिन है और जो प्रलय काल है वही रात्रि है, ऐसा कहा गया है । वैसे उसका दिन और रात्रि कुछ भी नही है, ऐसा धारण करना चाहिये ॥६८॥ लोको के हित की कामना से उपचार किया जाता है । समस्त इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के अर्थ और पाच महाभूत हैं ये सम्पूर्ण भूत और इनके अधिदैवतो के साथ बुद्धि ये सब उस धीमान् परमेश के दिन हैं ॥६९॥७०॥

अहरंते प्रलीयते राज्यते विश्वसंभवः ।
स्वात्मन्यव स्थिते व्यक्ते विकारे प्रतिसाह्हते ॥७१॥

साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ ।
तमःसत्त्वरजोपेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ ॥७२॥
अनुपृक्तावभूतांतावोतप्रोतौ परस्परम् ।
गुणसाम्ये लयो ज्ञेयो वैषम्ये सृष्टिरुच्यये ॥७३॥
तिले यथा भवेत्तैलं घृतं पयसि वा स्थितम् ।
तथा तमसि सत्त्वे च रजस्यनुसृत जगत् ॥७४॥
उपास्य रजनी कृत्स्ना परां माहेश्वरी तथा ।
अहर्मुखे प्रवृत्तश्च परः प्रकृतिसंभवः ॥७५॥
क्षोभयामास यागेन परेण परमेश्वरः ।
प्रधानं पुरुषं चैव प्रविश्य स महेश्वरः ॥७६॥
महेश्वरात्त्रयो देवा जज्ञिरे जगदीश्वरात् ।
शाश्वताः परमा गुह्याः सर्वात्मानः शरीरिणः ॥७७॥

वे सब दिन के अन्त मे अर्थात् परमेश के दिन के अवमान के समय में प्रलीन हो जाया करते हैं और जब उस परमात्मा की रात्रि का अन्त होता है तब इस विश्व का सम्भव अर्थात् उत्पत्ति हुआ करती है। *अपनी आत्मा मे विकार के सहृत होने पर व्यक्त अवस्थित होता* है ॥७१॥ उस समय तम, सत्त्व और रज से युक्त जोकि समत्व से वहाँ व्यवस्थित रहते हैं प्रधान और पुरुष ये दोनो साधर्म्य के साथ अवस्थित रहा करते हैं ॥७२॥ ये दोनो ही परस्पर मे अनुपृक्त, अभूतान्त और ओत-प्रोत होते हैं। जब तीनो गुणो की अर्थात् सत्त्व, रज और तम इनकी साम्य अवस्था होती है तभी लय हो जाता है और इन गुणो की विषमता होने को ही सृष्टि एव सृजन कहा जाता है। ७३॥ जिस प्रकार से तिलो मे तेल रहा करता है तथा दूध मे घृत रहता है और भासमान नही होता है उसी प्रकार से इन तीन सत्त्व, रज और तम गुणो मे यह समग्र जगत् अनुसृत होता है ॥७४॥ पर तम जो माहेश्वरी समग्र रात्रि है उसकी उपासना करके फिर दिन के आरम्भ मे दूसरा प्रकृति का सम्भव प्रवृत्त होता है ॥७५॥ परमेश्वर पर योग से क्षुब्ध होकर वह

महेश्वर प्रधान और पुरुष मे प्रवेश करते हैं तभी महेश्वर से देवगण उत्पन्न हुए हैं और फिर ईश्वर से इन तीनो देवो के उत्पन्न होने के पश्चात यह जगत् उत्पन्न हुआ है। ये समस्त शरीरी शाश्वत (नित्य) परम गुह्य, और सर्वात्मा हैं ॥७६॥७७॥

एत एव त्रयो देवा एत एव त्रयो गुणाः।
एत एव त्रयो लोका एत एव त्रयोऽग्नयः ॥७८॥
परस्पराश्रिता ह्येते परस्परमनुव्रताः।
परस्परेण वर्तंते धारयंति परस्परम् ॥७९॥
अन्योन्यमिथुना ह्येते अन्योन्यमुपजीविनः।
क्षण वियोगो न ह्येषा न त्यजंति परस्परम् ॥८०॥
ईश्वरस्तु परो देवो विष्णुश्च महतः परः।
ब्रह्मा च रजसा युक्तः सर्गादौ हि प्रवर्तते ॥८१॥
परः स पुरुषो ज्ञेयः प्रकृतिः सा परा स्मृता ॥८२॥
अधिष्ठिता सा हि महेश्वरेण प्रवर्तते चोद्यमने समंतात्।
अनुप्रवृत्तस्तु महांस्तदेना चिरस्थिरत्वाद्विपय श्रियः स्वयम् ॥८३॥
प्रधानगुणवैषम्यात्सर्गकालः प्रवर्तते।
ईश्वराधिष्ठितात्पूर्वं तस्मात्सदसदात्मकात् ॥८४॥

ये ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर तीनो देवता हैं, ये ही तीन गुण है ये ही तीन लोक हैं और ये ही तीन अग्नियाँ हैं ॥७८॥ ये सब एक दूसरे के परस्पर मे आश्रित रहने वाले और परस्पर मे अनुव्रत होते हैं। परस्पर मे ही रहते हुए एक दूसरे को धारण किया करते है ॥७९॥ ये एक दूसरे के मिथुन वाले अर्थात् इनके एक दूसरे से दाम्पत्य भाव रखकर उत्पन्न होने वाले हैं और अन्योन्य के आपस मे उपजीवी भी होते हैं। इनका एक क्षण को भी वियोग नही होता है और परस्पर मे कोई भी किसी का त्याग नहीं किया करते हैं ॥८०॥ ईश्वर अर्थात् महेश्वर तो पर देव है और विष्णु महत् से पर है ब्रह्मा सर्ग के आदि

मे रजगुण से युक्त हुआ करते हैं और तभी इस कार्य मे प्रवृत्त होते हैं अर्थात् सृजन का कार्य किया करते है। वह पुरुष पर और प्रकृति भी परा जाननी चाहिये ॥८१॥८२॥ वह प्रकृति जिसको परा बताया गया है जिस समय मे महेश्वर से अधिष्ठित होती है वह सभी ओर से सर्ग रचना के कार्य मे प्रवृत्त हो जाया करती है। महान् इसमे अनुप्रवृत्त रहने वाला होता है। इसमे चिरकाल से स्थित होने के कारण स्वय सृष्टि की श्री का विषय होता है ॥८३॥ प्रधान के तीनो गुणो की विषमता होने पर, सर्ग का समय प्रवृत्त हुआ करता है। जोकि सद् और असत् स्वरूप वाले ईश्वर से अधिष्ठित हुआ करते है ॥८४॥

ससिद्धः कार्यकरणे रुद्रश्चाग्रे ह्यवर्तत ।
तेजसाप्रतिमो धीमानव्यक्त सप्रकाशकः ॥८५॥
स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते ।
ब्रह्मा च भगवास्तस्माच्चतुर्वक्रः प्रजापति ॥८६॥
ससिद्धः कार्यकरणे तथा वै समवर्तत ।
एक एव महादेवस्त्रिधैव स व्यवस्थितः ॥८७॥
अप्रतीपेन ज्ञानेन ऐश्वर्येण समन्वितः ।
धर्मेण चाप्रतीपेन वैराग्येण च तेऽन्विता ॥८८॥
अव्यक्ताज्जायते तेषा मनसा यद्यदीहितम् ।
वशीकृतत्वात्त्रैगुण्य सापेक्षत्वात्स्वभावत ॥८९॥
चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चान्तिक स्मृतः ।
सहस्रमूर्धा पुरुषस्तिस्रोऽवस्थाः स्वयभुवः ॥९०॥
ब्रह्मत्वे सृजते लोकान्कालत्वे सक्षिपत्यपि ।
पुरुषत्वे ह्युदासीनस्तिस्रोवस्थाः प्रजापतेः ॥९१॥

कार्य के करने मे ससिद्ध रुद्र आगे होते हैं। वह तेज से अप्रतिम अर्थात् अनुपम, धीमान्, अव्यक्त और भली-भाँति प्रकाश करने वाले हैं ॥८५॥ वह ही सबसे पहले शरीर धारी हैं और वही पुरुष नाम से कहे जाते हैं। उन्ही से चार मुखो वाले प्रजापति भगवान् ब्रह्मा हुए

हैं ॥८६॥ यह ब्रह्मा सृजन के कार्य करने में संसिद्ध होकर प्रवृत्त होते हैं। केवल एक ही महादेव हैं जोकि ब्रह्मा, विष्णु और महेश इस प्रकार से तीन स्वरूपों मे भिन्न-भिन्न सृजनादि कार्य करने मे व्यवस्थित रहा करते हैं ॥८७॥ ये अप्रतीय ज्ञान, ऐश्वर्य, धर्म और अप्रतीय वैराग्य से समन्वित होते हैं। उनके मन से जो भी कुछ ईहित होता है अर्थात् जो भी कुछ वे मन मे सोचकर करना चाहते हैं वह अव्यक्त से समुत्पन्न हुआ करता है क्योंकि त्रैगुण्य वशीकृत होता है तथा स्वभाव से सापेक्ष भी होता है अर्थात् बिना तीन गुणों के कुछ भी नहीं हुआ करता है। ॥८८॥८९॥ स्वयम्भू की तीन अवस्थाएँ होती हैं। जब वह चार मुखों से युक्त होते हैं तो ब्रह्मा के नाम से प्रसिद्ध होते हैं और जब काल के करने वाला उसका स्वरूप होता है तो वही अन्तिक, इस नाम से कहे गये हैं। सहस्र मूर्धा वाले वह पुरुष होते हैं। इस प्रकार से उसी एक की ये भिन्न-भिन्न तीन अवस्थाएँ हुआ करती हैं ॥९०॥ जब ब्रह्मा के स्वरूप मे होते हैं तो यह लोकों का सृजन किया करते हैं और कालत्व की अवस्था मे जब अपना संहारक स्वरूप धारण करते हैं तो सबका संक्षेप कर देते हैं अर्थात् संहार किया करते हैं। पुरुष के स्वरूप में यह रहकर उदासीन भाव धारण कर लेते हैं। इस तरह प्रजापति की तीन अवस्थाएँ हुआ करती हैं ॥९१॥

ब्रह्मा कमलगर्भाभो रुद्रः कालाग्निसन्निभः ।
पुरुष. पुण्डरीकाक्षो रूपं तत्परमात्मनः ॥९२॥
एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा पुनः ।
महेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च ॥९३॥
नानाकृतिक्रियारूपनामवति स्वलीलया ।
महेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च ॥९४॥
त्रिधा यद्वर्तते लोके तस्मात्त्रिगुण उच्यते ।
चतुर्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूहः प्रकीर्तितः ॥९५॥

यदाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानयम् ।
यच्चास्य सततं भावस्तस्मादात्मा निरुच्यते ॥६६॥
ऋषिः सर्वगतत्वाच्च शरीरी सोऽस्य यत्प्रभुः ।
स्वामित्वमस्य यत्सर्वं विष्णुः सर्वप्रवेशनात् ॥६७॥
भगवान् भगवद्भावान्निर्मलत्वाच्छिवः स्मृतः ।
परमः संप्रकृष्ट त्वादवनादोमिति स्मृतः ॥६८॥

ब्रह्मा कमल के मध्य भाग की आभा के समान आभा वाले होते हैं। रुद्र स्वरूप कालाग्नि के सदृश होता है। पुरुष पुण्डरीक के समान नेत्रो वाला परमात्मा था स्वरूप वाला है ॥६२॥ महेश्वर एक प्रकार का, दो तरह का, तीन प्रकार का और बहुत से तरह के शरीर को धारण किया करते हैं और बदल कर विकृत करते हैं ॥६३॥ उनकी क्रिया, यत्न, रूप और नाम अनेक होते हैं यह उनकी अपनी ही लीला है। उसी से ऐसा करते हैं। एक ही महेश्वर ऐसा करते और बदलते रहा करते हैं ॥६४॥ यह लोक तीन प्रकार का होता है अतएव त्रिगुण कहा जाता है। चार भागो मे चार प्रकार से विभक्त होने से वह चतुर्व्यूहक हो गया है ॥६५॥ जो प्राप्त किया करता है, जो ग्रहण करता है और यह जो विषयो का अदन करता है तथा जो इसका सर्वदा भाव रहता है इससे यह 'आत्मा'—इस नाम वाला कहा जाया करता है ॥६६॥ यह सर्वगत है इसलिये ऋषि होता है। इसका प्रभु शरीरी होता है। इसका स्वामित्व होने से यह सब है और सबमे प्रवेश होने से यह विष्णु है ॥६७॥ भगवद् का भाव होने के कारण इसे ही भगवान् कहा जाता है तथा अत्यन्त निर्मल होने से शिव कहा गया है। संप्रकृष्ट होने से यह परम है और अवन के कारण ही से इसे ओम् कहा गया है ॥६८॥

सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात्सर्वः सर्वमयो यतः ।
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्यं सम्प्रवर्तते ॥६६॥

सृजते ग्रसते चैव रक्षते च त्रिभि. स्वयम् ।
आदित्वादादिदेवोसावजातत्वादजः स्मृतः ॥१००॥
पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरिति स्मृतः ।
देवेषु च महान्देवो महादेवस्ततः स्मृतः ॥१०१॥
सर्वगत्वाच्च देवानामवश्यत्वाच्च ईश्वरः ।
बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भूत उच्यते ॥१०२॥
क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानादेकत्वात्केवलः स्मृतः ।
यस्मात्पुर्यां स शेते च तस्मात्पुरुष उच्यते ॥१०३॥
अनादित्वाच्च पूर्वत्वात्स्वयभूरिति सस्मृतः ।
याज्यत्वादुच्यते यज्ञः कविर्विक्रांतदर्शनात् ॥१०४॥
क्रमणः क्रमणीयत्वात्पालकश्चापि पालनात् ।
आदित्य सज्ञः कपिलो ह्यग्रजोग्निरिति स्मृतः ॥१०५॥
हिरण्यमस्य गर्भोभूद्धिरण्यस्यापि गर्भजः ।
तस्माद्धिरण्यगर्भत्व पुराणेऽस्मिन्निरुच्यते ॥१०६॥
स्वयभुवोपि वृत्तस्य कालो विश्वात्मनस्तु यः ।
न शक्यः परिसख्यातुमपि वर्षशतैरपि ॥१०७॥

सबका विशेष ज्ञान होने के कारण से वह सर्वज्ञ है । क्योंकि यह सर्वमय होता है अत इसे सर्व कहा गया है । यह अपने स्वरूप को तीन भागो मे विभक्त करके त्रैलोक्य मे सम्प्रवृत्त होता है ॥९९॥ यह परम पुरुष ही अपने तीन स्वरूपो के द्वारा इस विश्व का सृजन, रक्षण और ग्रसन किया करते हैं । यह सबके आदि मे रहने वाले हैं इसलिए आदि देव हैं और अजात होने से ही यह अज कहे गये हैं ॥१००॥क्योंकि यह समस्त प्रजा का पालन करते है इसी कारण से इनका नाम प्रजापति कहा गया है । यह समस्त देवो मे महान् देव हैं अतएव इनको महादेव कहा गया है॥१०१॥ सर्वत्र गमन करने से और देवो अवश्य होने से ईश्वर इनका नाम कहा गया है । वृहत् होने से इनको ब्रह्मा और भूत होने से भूत कहा गया है ॥१०२॥ क्षेत्र मे विज्ञान होने से इनको क्षेत्रज्ञ और

एक ही होने के कारण केवल, यह नाम कहा गया है । क्योकि पुरी मे शयन किया करते हैं अतएव 'पुरुष'—इस नाम से कहा जाता है ॥१०३॥ अनादि होने से और सबके पूर्व रहने वाले होने से ही यह 'स्वयम्भू' कहे गये हैं । यजन करने के योग्य होने से यज्ञ तथा विक्रान्त दर्शन होने के कारण कवि कहे गये हैं ॥१०४॥ क्रमण करने के योग्य होने से 'क्रमण' और पालन करने के कारण से इनका नाम पालक कहा गया है । आदित्य संज्ञा वाला, कपिल, अग्रज, और अग्नि कहा गया है । ॥१०५॥ इसका गर्भ हिरण्य था और हिरण्य के भी गर्भ से उत्पन्न थे इसी कारण से इस पुराण मे हिरण्यगर्भत्व कहा जाता है ॥१०६॥ इस स्वयम्भू का वृत्त और विश्वात्मा का जो काल है वह सैकडो भी वर्षों मे परिसंख्या करने के योग्य नही हो सकता है ॥१०७॥

कालसंख्याविवृत्तस्य परार्धो ब्रह्मण. स्मृत. ।
तावच्छेषोऽस्य कालोन्यस्तस्याते प्रतिसृज्यते ॥१०८॥
कोटिकोटिसहस्राणि अहर्भूतानि यानि वै ।
समतीतानि कल्पाना तावच्छेषा. परे तु ये ।
यस्त्वय वर्तते कल्पो वाराहस्त निबोधत ॥१०९॥
प्रथम: साप्रतस्तेषा कल्पोय वर्तते द्विजा: ।
यस्मिन्स्वायभुवाद्यास्तु मनवस्ते चतुर्दश ॥११०॥
अतीता वर्तमानाश्च भविष्या ये च वै पुन. ।
तैरिय पृथिवी सर्वा सप्तद्विपा सपर्वता ॥१११॥
पूर्णं युगसहस्र वै परिपाल्या महेश्वरै ।
प्रजाभिस्तपसा चैव तेषा शृणुत विस्तरम् ॥११२॥
मन्वतरेण चैकेन सर्वाण्येवातराणि च ।
कथितानि भविष्यति कल्प: कल्पेन चैव हि ॥११३॥
अतीतानि च कल्पानि सोदर्काणि सहान्वयै. ।
अनागतेषु तद्वच्च तर्क: कार्यो विजानता ॥११४॥

वर्तमान ब्रह्मा की काल संख्या परार्द्ध बताई गई है। उतने परिमाण वाला इसका काल शेष है। उसके अन्त मे अर्थात् द्वितीय परार्धान्त मे प्रतिसर्जन अर्थात् इस जगत् का संहार किया जाता है ॥१०८॥ सहस्रो करोड जो अहर्भूत व्यतीत हो गये हैं तथा कल्पो के अन्य कुछ शेष हैं। जो यह कल्प इस समय मे वर्तमान है उसको बाराह कल्प समझ लो ॥१०६॥ उनमें यह इस समय होने वाला प्रथम कल्प है जिसमे कि स्वायम्भु व आदि चौदह मनु हुए हैं ॥११०॥ जो व्यतीत हुए वर्तमान काल मे विद्यमान और भविष्य काल मे आने वाले हैं उनसे यह सम्पूर्ण पृथ्वी सात द्वीपो वाली और पर्वतो के सहित है ॥१११॥ पूर्ण युग सहस्र पर्यन्त महेश्वरो के द्वारा यह परिपालन करने के योग्य होती है। प्रजाओ और तप से उनका विस्तार श्रवण करो ॥११२॥ एक मन्वन्तर से समस्त ही अन्तर और वत्सर से कल्प वर्णित हुँगे ॥११३॥ अतीत हो जाने वाले कल्प अन्वयो के सहित बोधक हैं और उसी के समान ज्ञानवान् पुरुष को जो अनागत हैं उनमे तर्क करना चाहिए। ॥११४॥

आपो ह्यग्रे समभवन्नष्टे च पृथिवीतले ।
आततारैकनीरेस्मिन्न प्राज्ञायत किंचन ॥११५॥
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे ।
तदा भवति वै ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥११६॥
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णस्त्वतीन्द्रियः ।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा ॥११७॥
सत्त्वोद्रेकात्प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमुदैक्षत ।
इम चोदाहरंत्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ॥११८॥
आपो नाराश्च सूनव इत्यपां नाम शुश्रुमः ।
आपूर्य ताभिरयनं कृतवानात्मनो यतः ॥११९॥
अप्सु शेते यतस्तस्मात्तो नारायणः स्मृतः ।
चतुर्युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्यतः ॥१२०॥

शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ।
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन्वायुर्भूत्वा समाचरत् ॥१२१॥

इस पृथ्वी तल के नष्ट हो जाने पर सबसे आगे जल हुआ था। जिसमे सम्पूर्ण नक्षत्र नष्ट हो गये हैं ऐसे एक जल वाले ब्रह्माण्ड मे कुछ भी नही जाना जाता था ॥११५॥ उस समय मे समस्त स्थावर और जङ्गम सृष्टि के नष्ट हो जाने पर केवल एक ही अर्णव शेष रहा था उसमे उस वक्त सहस्र नेत्रों वाला और सहस्र पाद वाला तथा सहस्र शिरो से युक्त पुरुष जोकि इन्द्रिय गोचर नही था और सुवर्ण के तुल्य वर्ण वाला था नारायण नामक ब्रह्मा उस जल मे शयन करता था ॥११६॥ ॥११७॥ जब वह सत्त्व गुण का उद्रेक हुआ तो प्रबुद्ध हुआ था और उसने सम्पूर्ण लोक को शून्य देखा था। यहाँ पर नारायण के प्रति इस श्लोक को उदाहृत करते हैं ॥११८॥ आप और नारा अर्थात् नरसूनु ये दो नाम जल के सुनते हैं। उनसे आपूरित करके क्योंकि अपना अयन बनाया था और जिस कारण से जल मे शयन किया करते है इसीलिये इनका नाम 'नारायण'—यह कहा गया है। एक सहस्र चतुर्युगी का रात्रि के काल की उपासना करने वाले की रात्रि का जब अन्त हुआ तो उस समय मे वह सर्ग के करने के कारण से ब्रह्मत्व को अर्थात ब्रह्मा के स्वरूप धारण करते हैं। ब्रह्मा के उस जल मे वायु होकर समाचरण करता था ॥११९॥१२०॥१२१॥

निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्तु सः।
ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायातर्गतां महीम् ॥१२२॥
अनुमानादसं मूढो भूमेरुद्धरणं पुनः ।
अकरोत्स तनूमन्यां कल्पादिषु यथापुरा ॥१२३॥
ततो महात्मा भगवान्दिव्यरूपमचिंतयत् ।
सलिलेनाप्लुतां भूमिं दृष्ट्वा स तु समंततः ॥१२४॥
किंनु रूपमहं कृत्वा उद्धरेय महीमिमाम् ।
जलक्रीडानुसदृशं वाराहं रूपमाविशत् ॥१२५॥

अधृष्य सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसंज्ञितम् ।
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् ॥१२६॥
अद्भिः संछादितां भूमि स तामाशु प्रजापतिः ।
उपगम्योज्जहारैनामापश्चापि समाविशत् ॥१२७॥
सामुद्रा वै समुद्रेषु नादेयाश्च नदीषु च ।
रसातलतले मग्ना रसातलपुटे गताम् ॥१२८॥
प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्रयाम्युज्जहार गाम् ।
ततः स्वस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीधरः ॥१२९॥

वर्षाकाल में रात्रि के समय मे खद्योत की भाँति उसने उस सलिल मे अन्तर्गत पृथ्वी को अनुमान से जान लिया था और फिर उस भूमि के उद्धार करने वाला पहले कल्पादि की भाँति अन्य शरीर उसने धारण किया था ॥१२२॥१२३॥ इसके पश्चात महान् आत्मा वाले भगवान् ने दिव्य रूप का चिन्तन किया था क्योंकि चारो ओर जल मे डूबी हुई भूमि को देख लिया था ॥१२४॥ भगवान् ने मन मन मे विचार था कौन सा रूप धारण करके इस जल मे निमग्न पृथ्वी का उद्धार करना चाहिये फिर भगवान् ने जल की क्रीडा के ही समान वाराह रूप मे प्रवेश किया था ॥१२५॥ समस्त भूतो के द्वारा धर्षित न करने के योग्य वाङ्मय ब्रह्म सज्ञा वाला प्रभु भूमि के उद्धरण करने के लिए रसातल मे प्रवेश कर गये थे ॥१२६॥ वहाँ पर देखा कि मही एकदम जल से पूर्णतया संच्छादित हो रही है । प्रजापति वह प्रभु शीघ्र ही उसके समीप में पहुच गये थे और उसे वहाँ से उठाया था तथा उस जल मे भी अन्दर प्रवेश कर लिया था ॥१२७॥ समुद्र के जल समुद्रो मे और नदियो के जल नदियो मे जैसे हो वैसे ही रसातल के पैंदे मे मग्न और रसातल के पुट मे गई हुई भूमि को प्रभु ने लोकों के कल्याण एव हित के सम्पादन करने के लिये अपनी दाढ पर उठा लिया था और फिर अपने स्थान पर समागत होकर पृथ्वी के धारण करने वाले ने भूमि को लाकर प्राप्त करा दिया था ॥१२८॥१२९॥

मुमोच पूर्ववदसौ धारयित्वा धराधरः ।
तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता ॥१३०॥
तत्समा ह्युरुदेहत्वान्न मही याति संप्लवम् ।
तत उत्क्षिप्य तां देवो जगतः स्थापनेच्छया ॥१३१॥
पृथिव्याः प्रविभागाय मनश्चक्रेम्बुजेक्षणः ।
पृथिवी च समा कृत्वा पृथिव्या सोचिनोद्गिरीन् ॥१३२॥
प्राक्सर्गे दह्यमाने तु तदा संवर्तकाग्निना ।
तेनाग्निना विशीर्णास्ते पर्वता भूरिविस्तराः ॥१३३॥
शैत्यादेकार्णवे तस्मिन् वायुना तेन संहताः ।
निषिक्ता यत्रयत्रासस्तत्रतत्राचलाभवन् ॥१३४॥
तदाचलत्वादचलाः पर्वभिः पर्वताः स्मृताः ।
गिरयो हि निगीर्णत्वाच्छयानत्वाच्छिलोच्चयाः ॥१३५॥
ततस्तेषु विकीर्णेषु कोटिशो हि गिरिष्वथ ।
विश्वकर्मा विभजते कल्पादिषु पुनः पुन. ॥१३६॥
ससमुद्रामिमा पृथ्वी सप्तद्वीपा सपर्वताम् ।
भूराद्याश्च तुरो लोकान्पुनः सोथ व्यकल्पयत् ॥१३७॥
लोकान्प्रकल्पयित्वाथ प्रजासर्गं ससर्ज ह ।
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥१३८॥

धरा के धारण करने वाले इस वाराह प्रभु ने उस मही को धारण कर लिया था और पूर्व की भाँति इसको लाकर छोड़ा था। उस जल के समूह के ऊपर यह पृथ्वी एक बहुत बडी परम विशाल नौका के समान स्थित हो गई थी ॥१३०॥ उसी के समान विशाल देह के होने से फिर यह मही सप्लव को प्राप्त नहीं हुई थी । देव ने जगत् की स्थापना करने की इच्छा से उस भूमि को उत्क्षिप्त कर लिया था ॥१३१॥ कमल के सदृश नेत्रों वाले प्रभु ने पृथिवी के प्रविभाग करने के लिये अपना मन किया था और उसने उस भूमि को एक समान करके पर्वतों को सम्यक् प्रकार से चुन डाला था ॥१३२॥ प्रथम सर्ग के दह्यमान हो

जाने पर सावृर्त्तक नाम की अग्नि के द्वारा बहुत विस्तार वाले समस्त पर्वत विशीर्ण हो गये थे ।।१३३।। उस एकार्णव मे शीत की अधिकता को प्राप्ति कर वायु के द्वारा सहृत हो गये थे और जहाँ-जहाँ वे निषिक्त हो गये थे वहाँ-वहाँ वे अचल हो गये थे ।।१३४।। जब वे चल होने वाले नही रहे तो इनका नाम अचल हो गया था। पर्वों के द्वारा पर्वत, यह नाम पड गया था। निगीर्ण हो जाने के कारण से ही 'गिरी'—यह इनका नाम हुआ था। एक ही स्थान पर जैसे के तैसे शयन करने वाले ये होते हैं इसीलिये शिलोच्चय, यह इनकी संज्ञा हो गई थी ।।१३५।। इसके अनन्तर उन करोडो विकीर्ण (फैले हुये) पर्वतो का विश्वकर्मा ने बार-बार कल्पादि मे विभाजन किया है ।।१३६।। सात द्विपो वाली, *समुद्रो से युक्त और पर्वतो के सहित* इस पृथ्वी की तथा भूर्भुव आदि चारो लोकों की उसने विशेष रूप से कल्पना की थी ।।१३७।। इन लोको की कल्पना करके फिर इसके अनन्तर उसने प्रजा के सर्ग की रचना की थी। स्वयम्भू ब्रह्मा भगवान् अनेक प्रकार की प्रजा की सृष्टि करने की इच्छा वाले हुए थे ।।१३८।।

ससर्ज सृष्टिं तद्रूपा कल्पादिषु यथापुरा ।
तस्याभिध्यायतः सर्गं तथा वै बुद्धिपूर्वकम् ।।१३९।।
बुद्धयाश्च समकाले वै प्रादुर्भूतस्त मोमयः ।
तमोमोहो महामोहस्तामिस्त्रश्चाधसञ्ज्ञितः ।।१४०।।
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ।
पञ्चधावस्थित. सर्गो ध्यायतः सोभिमानिनः ।।१४१।।
सवृतस्तमसा चैव बीजाङ्कुरवदावृतः ।
बहिरन्तश्चाप्रकाशस्तब्धो निःसज्ञ एव च ।।१४२।।
यस्मात्तेषा वृता बुद्धिर्दुःखानि करणानि च ।
तस्मात्ते सवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्तिताः ।।१४३।।
मुख्यसर्गं तथाभूत दृष्ट्वा ब्रह्मा ह्यसाधकम् ।
अप्र सन्नमनाः सोप ततोन्य सो ह्यमन्यत ।।१४४।।

तस्याभिध्यायतश्चैव तिर्यक्स्रोता ह्यवर्तत ।
तस्मात्तिर्यक्प्रवृत्तः स तिर्यक्स्रोतास्ततः स्मृत. ।१४५।।

ब्रह्मा ने कल्पादि मे पूर्व की भाँति तद्रूप सृष्टि का सृजन किया था । उस समय मे सृष्टि के आदि काल मे जब कि सर्ग करने का ब्रह्मा ने ध्यान किया था और बुद्धि से विचार किया तो उस बुद्धि के साथ ही एक तमोमय सर्ग का प्रादुर्भाव हुआ था । क्योंकि जो जीव सृजन को प्राप्त हुए थे उनका कर्म व कन अविद्या के बिना सम्भव नही हो सकता था अतएव पाच प्रकार की अविद्या की सृष्टि हुई थी । उन पाँचो प्रकार की अविद्याओ के तम, मोह, महामोह तामिस्र और अन्ध ये पाँच नाम हैं ।।१३६।।१४०।। उस महान् आत्मा वाले से यह पाँच पर्व वाली अविद्या प्रादुर्भूत हुई थी । इस प्रकार ध्यान करने वाले अभिमानी उसका पाँच प्रकार से अवस्थित सर्ग हुआ था ।।१४१।। बीजाङ्कुर की भाँति आवृत और तम से सवृत तथा बाहिर और अन्दर प्रकाश से रहित एव स्तब्ध बिना सज्ञा वाला ही वह था ।।१४२।। उनके दुःख, बुद्धि और करण ये सब आवृत थे इसी कारण से वे सब सवृतात्मा मुख्य नग प्रकीर्तित हुए थे ।।१४३।। ब्रह्मा ने उस प्रकार के रहने वाले असाधक मुख्य सर्ग को देखकर अप्रसन्नता प्रकट की थी और इसके अनन्तर उसने अन्य सर्ग करने का विचार किया था ।।१४४।। फिर अन्य सर्ग की रचना करने के लिये ध्यान करने पर बहिर्मुख इन्द्रिय प्रवाह वाला तिर्यक् स्रोता सर्ग हुआ था । वह तिर्यक् की प्रवृत्ति वाला था अतएव वह तिर्यक् स्रोता कहा गया था ।।१४५।।

पश्वादयस्ते विख्याता उत्पथग्राहिणो द्विजा ।
तस्याभिध्यायतोऽन्य वै सात्त्विकः समवर्तत ।।१४६।।
ऊर्ध्वस्रोतास्तृतीयस्तु स वै चोर्ध्वं व्यवस्थितः ।
यस्मात्प्रवर्तते चोर्ध्वमूर्ध्वस्रोतास्ततः स्मृत ।।१४७।।
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरतश्च सवृता ।
प्रकाशा बहिरतश्च ऊर्ध्वस्रोतोभवा स्मृताः ।।१४८।।

ते सत्त्वस्य च योगेन सृष्टाः सत्त्वोद्भवाः स्मृताः ।
ऊर्ध्वस्रोतास्तृतीयो वै देवसर्गस्तु स स्मृत. ॥१४९॥
प्रकाशाद्वहिरंतश्च ऊर्ध्वस्रोतोद्भवाः स्मृताः ।
ते ऊर्ध्वस्रोतसो ज्ञेयास्तुष्टात्मानो बुधैः स्मृताः ॥१५०॥
ऊर्ध्वस्रोतस्सु सृष्टेपु देवेपु वरदः प्रभुः ।
प्रीतिमानभवद्ब्रह्मा ततोन्य सोम्यमन्यत ॥१५१॥
ससर्ज सर्गमन्य हि साधकं प्रभुरीश्वर ।
ततोभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा ॥१५२॥
प्रादुरासीत्तदा व्यक्तादर्वाक्स्रोतास्तु साधकः ।
यस्मादर्वाक् न्यवर्तंत ततोर्वाक्स्रोतसस्तु ते ॥१५३॥
ते च प्रकाशबहुलास्तमः पृक्ता रजोधिकाः ।
तस्मात्ते दु.खबहुला भूयोभूयश्च कारिणः ॥१५४॥
सवृता वहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्च ते ।
लक्षणैस्तारकाद्यैस्ते ह्यष्टधा तु व्यवस्थिताः ॥१५५॥
सिद्धात्मानो मनुष्यास्ते गधर्वसहधर्मिण· ।
इत्येप तैजस. सर्गो ह्यर्वाक्स्रोत. प्रकीर्तितः ॥१५६॥

हे द्विजगण ! वे सब पशु, पक्षी और कीट आदि उत्पथ के ग्रहण करने वाले थे। फिर इससे भी अन्य सर्ग की रचना करने का ध्यान करने वाले उसने सात्विक सर्ग किया था ॥१४६॥ तीसरा यह सर्ग ऊर्ध्व अर्थात् अन्तर्मुख वाले स्रोतों का था अतः यह ऊर्ध्व में ही व्यवस्थित था। क्योंकि यह ऊर्ध्व को प्रवृत्त होता है इसीलिये ऊर्ध्व स्रोतोद्भव कहा गया है। वे ऊर्ध्व स्रोत वाले बुधों के द्वारा तुष्टात्मा जानने के योग्य कहे गये हैं ॥१४७॥१४८॥१४९॥१५०॥ ऊर्ध्व स्रोता देवों के सृष्ट होने पर वरद प्रभु ब्रह्मा बहुत प्रीतियुक्त हो गये थे और इसके अनन्तर अन्य सर्ग रचना का विचार किया था ॥१५१॥ ईश्वर प्रभु ने अन्य साधक सर्ग की सृष्टि की थी। इसके पश्चात् सत्य के

अभिध्यायी उनके ध्यान करने पर उस समय में बाह्याभ्यन्तर स्रोतो वाला अर्वाक् स्रोता साधक प्रादुर्भूत हुआ था। इनके सभी ओर स्रोत थे इसी कारण से ये अर्वाक् स्रोतो वाले मनुष्य हुए थे ॥१५२॥१५३॥ ये प्रकाश के बाहुल्य वाले तमोगुण से पृक्त और रजोऽधिक थे। इसी कारण से बहुत दुःखो से युक्त थे और पुनः पुनः उसी के करने वाले थे ॥१५४॥ बाहिर और अन्दर मे सवृत वे साधक मनुष्य तारकादि लक्षणो के द्वारा आठ प्रकार के व्यवस्थित होते हैं ॥१५५॥ वे सिद्धात्मा मनुष्य जो कि गन्धर्व सहधर्मी होते हैं, यह तैजस सर्ग है जो अर्वाक स्रोत कीर्त्तित किया गया है ॥१५६॥

पञ्चमोनुग्रहः सर्गश्चतुर्धा तु व्यवस्थितः।
विपर्ययेण शक्तया च सिद्धया तुष्ट्या तथैव च ॥१५७॥
स्थावरेषु विपर्यासः स्तिर्यग्योनिषु शक्तितः।
सिद्धात्मानो मनुष्यास्तु ऋषिदेवेषु कृत्स्नशः ॥१५८॥
इत्येष प्राकृतः सर्गो वैकृतोऽनवमः स्मृतः।
भूतादिकाना भूतानां षष्ठः सर्गः स उच्यते ॥१५९॥
निवृत्त वर्तमानं च तेषा जानन्ति वै पुनः।
भूतादिकाना भूतानां सप्तमः सर्ग एव च ॥१६०॥
तेऽपरिग्राहिणः सर्वे संविभागरताः पुनः।
स्वादनाश्चाप्यशीलाश्च ज्ञेया भूतादिकाश्च ते ॥१६१॥
विपर्ययेण भूतादिरशक्तया च व्यवस्थितः।
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणः स्मृतः ॥१६२॥

पाचवां अनुग्रह सर्ग है जो चार प्रकार का व्यवस्थित होता है। विपर्यय अर्थात् विपर्यास से जोकि स्थावर वृक्षो में विस्तार आदि का भेद होता है। एक भेद शक्ति के द्वारा होता है जो कि पशु आदि में शक्ति की सामर्थ्य से होता है। सिद्धि के द्वारा एक अन्य भेद है जैसा कि मनुष्य सिद्धात्मा कहे जाते हैं और ये प्रारब्ध जन्य सिद्धि से

युक्त होते हैं। चतुर्थभेद सम्पूर्ण तुष्टि के द्वारा माना गया है जो कि ऋषि और देवो मे पूर्णतया विद्यमान होता है ॥१५७॥१५८॥ यह चार प्रकार का सर्ग प्राकृत कहा गया है और वैकृत अर्थात् विकार को प्राप्त होने वाला अनुग्रह नाम वाला जो सर्ग होता है वह श्रेष्ठ कहा गया है। अब भूतादिक मन्वादिका सर्ग कहा जाता है जो कि भूतो का छटवाँ सर्ग है ॥१५९॥ उन उत्पद्यमान भूतो का निवृत्त अर्थात् प्राक्कर्म, वर्त्तमान और फिर भविष्य के भूतादिक निश्चय रूप से जानते हैं। यह भूतादिक भूतो का सप्तम ही सर्ग होता है ॥१६०॥ ये भूतादिक समस्त अपरग्राही अर्थात् निःस्पृह और दानशील तथा कर्म फल के आस्वादन करने वाले एवं ज्ञान शक्ति से कर्म फलो के सेवन न करने वाले जानने के योग्य होते हैं ॥१६१॥ भूतादि महङ्कार अज्ञान से और विष्णु की माया से व्यवस्थित होता है। ब्रह्मा का यह प्रथम सर्ग महान् अर्थात् महत्तत्व से होता है, ऐसा कहा गया है ॥१६२॥

तन्मात्राणा द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते ।
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ॥१६३॥
इत्येष प्राकृतः सर्गः सभूतो बुद्धिपूर्वकः ।
मुख्यसर्गश्चतुर्थश्च मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥१६४॥
ततोर्वाक्स्रोतसा सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ।
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः ॥१६५॥
पचैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः ।
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृत ॥१६६॥
अबुद्धिपूर्वका सर्गा प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः ।
बुद्धिपूर्वं प्रवर्तन्ते षट् पुनर्ब्रह्मणस्तु ते ॥१६७॥
विस्तरानुग्रहः सर्गः कीर्त्यमानो निबोधत ।
चतुर्धावस्थितः सोऽपि सर्वभूतेषु कृत्स्नशः ॥१६८॥
इत्येते प्राकृताश्चैव वैकृताश्च नवस्मृताः ।
परस्परानुरक्ताश्च कारणैश्च बुधैः स्मृताः ॥१६९॥

अभिध्यायी उनके ध्यान करने पर उस समय में बाह्याभ्यन्तर स्रोतो वाला अर्वाक् स्रोता साधक प्रादुर्भूत हुआ था। इनके सभी ओर स्रोत थे इसी कारण से ये अर्वाक् स्रोतो वाले मनुष्य हुए थे ॥१५२॥१५३॥ ये प्रकाश के बाहुल्य वाले तमोगुण से पृक्त और रजोऽधिक थे। इसी कारण से बहुत दुःखो से युक्त थे और पुनः पुनः उसी के करने वाले थे ॥१५४॥ बाहिर और अन्दर में संवृत वे साधक मनुष्य तारकादि लक्षणों के द्वारा आठ प्रकार के व्यवस्थित होते है ॥१५५॥ वे सिद्धात्मा मनुष्य जो कि गन्धर्व सहधर्मी होते हैं, यह तैजस सर्ग है जो अर्वाक स्रोत कीर्त्तित किया गया है ॥१५६॥

पञ्चमोनुग्रहः सर्गश्चतुर्धा तु व्यवस्थितः।
विपर्ययेण शक्तया च सिद्धया तुष्ट्या तथैव च ॥१५७॥
स्थावरेषु विपर्यासः स्तिर्यग्योनिषु शक्तितः।
सिद्धात्मानो मनुष्यास्तु ऋषिदेवेषु कृत्स्नशः ॥१५८॥
इत्येष प्राकृतः सर्गो वैकृतोऽनवमः स्मृतः।
भूतादिकानां भूतानां षष्ठः सर्गः स उच्यते ॥१५९॥
निवृत्तं वर्तमानं च तेषां जानन्ति वै पुनः।
भूतादिकाना भूतानां सप्तमः सर्ग एव च ॥१६०॥
तेऽपरिग्राहिणः सर्वे संविभागरताः पुनः।
स्वादनाश्चाप्यशीलाश्च ज्ञेया भूतादिकाश्च ते ॥१६१॥
विपर्ययेण भूतादिरशक्तया च व्यवस्थितः।
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणः स्मृतः ॥१६२॥

पाचवाँ अनुग्रह सर्ग है जो चार प्रकार का व्यवस्थित होता है। विपर्यय अर्थात् विपर्यास से जोकि स्थावर वृक्षो में विस्तार आदि का भेद होता है। एक भेद शक्ति के द्वारा होता है जो कि पशु आदि में शक्ति की सामर्थ्य से होता है। सिद्धि के द्वारा एक अन्य ,भेद हैं जैसा कि मनुष्य सिद्धात्मा कहे जाते हैं और ये प्रारब्ध जन्य सिद्धि से

शिरसोङ्गिरसश्चैव श्रोत्रादत्रिं तथासृजत् ।
पुलस्त्यं च तथोदानाद्व्यानाच्च पुलहं पुनः ॥१८७॥
समानजो वसिष्ठश्च अपानान्निर्ममे क्रतुम् ।
इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा दिव्या एकादश स्मृताः ॥१८८॥

अब मैं बड़े देव और ऋषियों को बताता हूँ उनके विषय में मुझसे जानकारी प्राप्त कर लो। उस ब्रह्मा ने मरीचि, भृगु, अङ्गिरा पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ इन नौ मानस पुत्रों का सृजन किया था। ये पुराण मे नौ ब्रह्मा हैं, ऐसा निश्चय किया गया है ॥१८१॥१८२॥ पद्मनाल से समुत्पन्न ब्रह्मा ने पूर्व की भाँति उन सब ब्रह्मा के स्वरूप वाले ब्रह्मवादियों के स्थानों की कल्पना की थी ॥१८३॥ इसके अनन्तर सङ्कल्प और सुख देने वाले धर्म का सृजन किया था। उस देव महेश्वर ने व्यवसाय से धर्म का सृजन किया था ॥१८४॥ समस्त लोकों के पितामह ने सङ्कल्प से सृष्टि की थी। प्रभु ब्रह्मा के मन से रुचि नाम वाली समुत्पन्न हुई थी ॥१८५॥ ब्रह्मा ने प्राण से दक्ष का और चक्षुओं से मरीचि का सृजन किया था। जल मे जन्म प्राप्त करने वाले अर्थात् ब्रह्मा के हृदय से भृगु ने जन्म प्राप्त किया था ॥१८६॥ शिर से अङ्गिरस को और श्रोत्र से अत्रि को जन्म दिया था। उदान वायु से पुलस्त्य की सृष्टि की और व्यान से पुलह की रचना तथा समान वायु से वसिष्ठ की उत्पत्ति एवं अपान वायु से क्रतु का निर्माण किया था। ये परम दिव्य एकादश ब्रह्मा के पुत्र कहे गए हैं ॥१८७॥१८८॥

धर्मादय प्रथमजाः सर्वे ते ब्रह्मणः सुताः ।
भृग्वादयस्तु ते सृष्टा नवैते ब्रह्मवादिनः ॥१८९॥
गृहमेधिनः पुराणास्ते धर्मस्तैः सम्प्रवर्तितः ।
तेषां द्वादश से वंशा दिव्या देवगुणान्विताः ॥१९०॥
क्रियावत. प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृताः ।
ऋभुः सनत्कुमारश्च द्वावेतावूर्ध्वरेतसौ ॥१९१॥

सृजनादि कर्म से निवृत्त होकर मोक्ष की कामना वाले हो गये थे। वे यह जानते थे कि यह संसार के सृजन में जो नानात्व है वह अविद्या के भेद से कल्पित है और मिथ्या स्वरूप है। ऐसा दृढ़ निश्चय करके ही योगी वे इसमे प्रवृत्त नहीं हुए थे और समाधिस्थ हो गये थे ॥१७५॥ वे सनत्कुमार प्रजा की सृष्टि करने के कार्य से विमुख होते हुए मोक्ष के प्राप्त करने का ही कर्म करने मे ही प्रवृत्त हो गये थे। जब वे सृजन करने से निवृत्त हो गये तो उस समय म ब्रह्मा ने अन्य रचना के कार्य को साधन करने वाले स्थानाभिमानी मानस पुत्रों का सृजन किया था जिनके द्वारा यह भूमि आभूत सम्प्लव की अवस्था वाली विघृत है। ॥१७६॥१७७॥ जल, अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, दिव, समुद्र, नदी, नदी, पर्वत, वनस्पति, ओषधि, वल्ली, वृक्ष, वीरुध, लता, काष्ठा, कला, मुहूर्त्त, सन्धि, रात्रि, दिन, पक्ष, मास, अयन, वर्ष और युग ये सब स्थानाभिमानी हैं अतएव स्थान की आख्या से कहे गये हैं ॥१७८॥ ॥१७९॥१८०॥

देवानृषीश्च महतो गदतस्तान्निबोधत ।
मरीचिभृग्वगिरस पुलस्त्य पुलह क्रतुम् ॥१८१॥
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजन्मानसान्नव ।
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चय गता ॥१८२॥
तेषा ब्रह्मात्मकाना वै सर्वेषा ब्रह्मवादिनाम् ।
स्थानानि कल्पयामास पूर्ववत्पद्मसभव. ॥१८३॥
ततोऽसृजत्स सकल्प धर्मं चैव सुखावहम् ।
सोऽसृजद्व्यवसायात्तु धर्म देवो महेश्वर ॥१८४॥
सकल्प चैव सकल्पात्सर्वलोकपिता मह. ।
मानसश्च रुचिर्नाम विजज्ञे ब्रह्मण प्रभो ॥१८५॥
प्राणाद्ब्रह्मासृजद्दक्ष चक्षुर्भ्यां च मरीचिनम् ।
भृगुस्तु हृदयाज्जज्ञे ऋषि सलिल जन्मन. ॥१८६॥

के मानस प्रजा उत्पन्न हुई थी ॥१६५॥ उसके शरीर से समुत्पन्न कार्यों से कारणों के साथ धीमान् उसके गात्रों से क्षेत्रज्ञ हुये थे ॥१६६॥ इसके उपरान्त देव, असुर, पितृगण और मनुष्यों की चारों की तथा जलों की सृष्टि करने की इच्छा वाले ब्रह्मा ने अपने मन को युक्त किया था ॥१६७॥

ततस्तु युञ्जतस्तस्य　तमोमात्रसमुद्भवम् ।
समभिध्यायतः सर्गं प्रयत्नेन प्रजापतेः ॥१६८॥
ततोस्य जघनात्पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुताः ।
असुः प्राणः स्मृतो विप्रास्तज्जमानस्ततोसुराः ॥१६९॥
यया सृष्टासुराः सर्वे ता तनुं स व्यपोहत ।
सापविद्धा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायतः ॥२००॥
सा तमोबहुला यस्मात्ततो रात्रिनियामिकाः ।
आवृतास्तमसा रात्रौ प्रजास्तस्मात्स्वपन्त्युत ॥२०१॥
सृष्ट्वासुरास्ततः सो वै तनुमन्यामगृह्णत ।
अव्यक्ता सत्त्वबहुला ततस्ता सोभ्यपूजयत् ॥२०२॥
ततस्ता यु जस्तस्य प्रियमासीत्प्रजापतेः ।
ततो मुखात्समुत्पन्ना दीव्यतस्तस्य देवताः ॥२०३॥

इसके पश्चात् मन को योजित करने वाले और तमोमात्र से समुद्भव सर्ग के होने का ध्यान करते हुये प्रजापति ने रचना का प्रयत्न किया था। तब इसके जघन भाग से पहिले असुर पुत्र समुत्पन्न हुए थे। हे विप्रगण ! असु, इसको प्राण कहा गया है। इससे जन्म वाले असुर कहे गये हैं ॥१६८॥१६९॥ जिस तनु से समस्त असुरों की सृष्टि की है उस तनु को व्यपोहित कर देता है और वह तनु जब अपविद्ध अर्थात् त्यक्त हो जाती है तो तुरन्त ही रात्रि हो जाया करती है ॥२००॥ उस रात्रि में तम का बाहुल्य होता है अतएव वह सबके स्वाप करने वाली होती है। समस्त प्रजा रात्रि में तम से आवृत होती है इस कारण से

पूर्वोत्पन्नौ परं तेभ्यः सर्वेषामपि पूर्वजौ ।
व्यतीते त्वष्टमे कल्पे पुराणौ लोकसाक्षिणौ ॥१६२॥
विराजेतामुभौ लोके तेजः संक्षिप्य धिष्ठितौ ।
तावुभौ योगकर्माणावारोप्यात्मानमात्मनि ॥१६३॥
प्रजां धर्मं च कामं च त्यक्त्वा वैराग्यमास्थितौ ।
यथोत्पन्नः स एवेह कुमार स इहोच्यते ॥१६४॥
तस्मात्सनत्कुमारेति नामास्येह प्रतिष्ठितम् ।
ततोभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसाः प्रजाः ॥१६५॥
तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्यैस्तैः कारणैः सह ।
क्षेत्रज्ञाः समवर्तत गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः ॥१६६॥
ततो देवासुरपितॄन्मानुषांश्च चतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरंभास्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत् ॥१६७॥

वे सब धर्मादिक ब्रह्मा के प्रथम जन्म लेने वाले पुत्र हैं । ये भृगु आदिक नौ ब्रह्मवादी सृष्ट किये गये थे ॥१८६॥ वे सब परम प्राचीन गृह मेधी थे । उनके द्वारा ही धर्म संसार में सम्प्रवर्त्तित हुआ था । उनके वे परम दिव्य एवं देव गुणों से युक्त द्वादश वंश हुए हैं । ये सब क्रिया वाले, प्रजा वाले और अनेक महर्षियों से अलंकृत थे । ऋभु तथा सनत्कुमार ये दोनों ऊर्ध्वरेता थे ॥१९०॥१९१॥ ये दोनों उनसे पहिले उत्पन्न होने वाले थे और सबके पूर्वज थे । अष्टम कल्प के व्यतीत हो जाने पर ये दोनों पुराने लोकों के साक्षी स्वरूप थे ॥१९२॥ ये अपने तेज को संक्षिप्त करके अधिष्ठित हुए दोनों लोक में विराजमान रहते थे । दोनों ही ये अपनी आत्मा में परमात्मा को आरोपित करके योग कर्म के करने वाले थे ॥१९३॥ प्रजा, धर्म और काम का परित्याग करके वैराग्य में समास्थित रहते थे । जैसे यह उत्पन्न हुआ था वैसे ही अभी तक भी हैं, इसीलिए आज तक भी कुमार, इस शब्द से कहे जाते हैं ॥१९४॥ इसी कारण से सनत्कुमार, यह इसका नाम यहाँ प्रतिष्ठित हो गया है । इसके अनन्तर अभिध्यान करने वाले उस ब्रह्मा

करने लग गये थे ।।२०६।। इसके अनन्तर उसने सत्त्व मात्र स्वरूप वाली दूसरी तनु धारण कर ली थी जोकि पिता की तरह मन्यमान एवं पुत्रों का ध्यान करने वाले प्रभु का तनु था ।।२०७।। दोनों पक्षो से रात्रि और दिन के अन्तर मे होते हुए पितर हुये थे अर्थात् ये पितर अन्तर में ही हुए थे। इसलिए ये देवता पितर हुए और इन मे पितृत्व था। जिस तनु से पितृगण का सृजन किया था उस तनु का व्यपोह कर दिया था जैसे ही उसने उस तनु को अपविद्ध किया था तुरन्त ही सन्ध्या हो गई थी।।२०८।।०२८।। दिन देवताओं का होता है और जो रात्रि होती है वह आसुरी कही गई है। इन दोनों के मध्य मे पैत्री तनु होती है और बहुत ही गरीयसी तनु है ।।२१०।।

तस्माद्देवा सुराः सर्वे ऋषयो मानवास्तथा ।
उपासते मुदायुक्ता राव्यह्लोर्मध्यमा तनुम् ।।२११।।
ततो ह्यन्या पुनर्ब्रह्मा तनुं वं समगृह्णत ।
रजोमात्रात्मिकाया तु मनसा सोसृजत्प्रभुः ।।२१२।।
रजःप्रियास्ततः सोथ मानसानसृजत्सुतान् ।
मनस्विनस्ततस्तस्य मानवा जज्ञिरे सुताः ।।२१३।।
सृष्ट्वा पुनः प्रजाश्चापि स्वां तनु तामपोहत ।
सापविद्धा तनुस्तेन ज्योत्स्ना सद्यस्त्वजायत ।।२१४।।
यस्माद्भवति संहृष्टा ज्योत्स्नाया उद्भवे प्रजाः ।
इत्येतास्तनवस्तेन ह्यपविद्धा महात्मना ।।२१५।।
सद्यो राव्यहनो चव सध्या ज्योत्स्ना च जज्ञिरे ।
ज्योत्स्ना सन्ध्या अहश्चैव सत्त्वमात्रात्मकं त्रयम् ।।२१६।।
तमोमात्रात्मिका रात्रिः सा वै तस्मान्निशात्मिका ।
तस्माद्देवा दिवातन्वा तुष्ट्या सृष्टा मुखात्तु वै ।।२१७।।

इससे देव, सुर, समस्त ऋषि और मानव सब बड़ी ही प्रसन्नता से युक्त होते हुये रात्रि और दिवस के मध्यम तनु की उपासना किया करते हैं ।।२११।। इसके अनन्तर ब्रह्मा ने अन्य तनु का ग्रहण

उस समय से वह स्वपन किया करती है ॥२०१॥ इसके अनन्तर वह सुरों का सृजन करके उसने अन्य तनु का ग्रहण किया था। वह तनु अव्यक्त और सत्व की अधिकता वाली थी अतएव उसने उसका अभिपूजन किया था ॥२०२॥ उसके पश्चात् उस तनु को धारण करते हुए वह प्रजापति के परम प्रिय हो गये थे। इसके अनन्तर उनके मुख से दीप्यमान होने वाले देवगण समुत्पन्न हुए थे ॥२०३॥

यतोऽस्य दीव्यतो जातास्तेनः देवाः प्रकीर्तिताः।
धातुर्दिविति यः प्रोक्तः क्रीडायां स विभाव्यते ॥२०४॥
यस्मात्तस्य तु दीव्यतो जज्ञिरे तेन देवताः।
देवान्सृष्ट्वाथ देवेशस्तनुमन्यामपद्यत ॥२०५॥
उत्सृष्टा सा तनुस्तेन सद्योहः समजायत।
तस्मादहो धर्मयुक्तं देवताः समुपासते ॥२०६॥
सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोन्या सोम्यमन्यत।
पितृवन्मन्यमानस्य पुत्रास्तान्ध्यायतः प्रभोः ॥२०७॥
पितरो ह्युपपक्षाभ्यां राज्यह्नोरतरेभवन्।
तस्मात्ते पितरो देवाः पितृत्वं तेन तेषु तत् ॥२०८॥
यया सृष्टास्तु पितरस्तनुं तां स व्यपोहत।
सापविद्धा तनुस्तेन सद्यः सध्या व्यजायत ॥२०९॥
यस्मादहर्देवताना रात्रिर्या सासुरी स्मृता।
ततोर्मध्ये तु पैत्री या तनुः सा तु गरीयसी ॥२१०॥

क्योंकि इससे जो दीप्यमान होते हुए वे उत्पन्न हुये थे इसीलिए वे देवता कहे गये हैं। दिवु धातु क्रीडा के अर्थ में विभावित होती है। ॥२०४॥ उस धातु से देवता शब्द की निष्पत्ति होने से देवता दीप्यमान होते हुए ही समुत्पन्न हुए थे और इसीलिए वे देवता कहलाये हैं। देवों का सृजन करके उस देवेश ने अन्य शरीर धारण कर लिया था। ॥२०५॥ वह तनु उसने फिर तुरन्त ही त्याग दी थी और दिन उत्पन्न हो गया था जो धर्म से युक्त था और फिर उसकी देवता लोग उपासना

इसी कारण से कि उनका जन्म दिवा में हुआ है वे सब दिन मे ही बलि वाले होते हैं। प्रभु ने रात्रि मे जघन से असुरो को जिस तनु से जन्म दिया था वे प्राणो से निशि जन्मा हैं और वे निशा मे ही बलि ग्रहण करने वाले होते हैं ॥२१८॥ ये प्राणो से रात्रि मे जन्म ग्रहण करने वाले हैं। इसी कारण से निशा काल मे वे अधिक बलशाली भी होते हैं। ये ही सब आगे होने वाले देवो के असुरों के साथ पितर, मानवो के बीते हुए और आने वाले मन्वन्तरो मे सब मे निमित्त होते हैं ॥२१९॥२२०॥ उस प्रजापति ने ज्योत्स्ना (चाँदनी), रात्रि, दिन और सन्ध्या अर्थात् दोनो की सन्धि का काल इन चारों के स्वरूप रूपी अम्भो को देखकर ही अपने शरीर से मानवादि की सृष्टि की थी। ये सब दीप्ति वाले होते हैं इसीलिए मनीषियो ने "अम्भासि" इस शब्द का उनके लिए प्रयोग किया है ॥२२१॥ 'भा दीप्तौ'—इस धातु से 'भाति' यह शब्द दीप्ति के अर्थ मे कहा गया है। फिर इसके अनन्तर उस प्रजापति ने इन अम्भो को अर्थात् दीप्ति वालो की सृष्टि करके पुन. देव, मानुष, दानव और पितरो का अनेक प्रकार वालो का अपनी आत्मा से सृजन किया था। उस प्रभु ने उस ज्योत्स्नामय तनु का त्याग करके अन्य तमो, गुण और रजोगुण मयी मूर्ति को प्राप्त करके उसका अभिपूजन किया था। और अन्धकार में क्षुधा से आविष्ट अन्यो का उस प्रभु ने सृजन किया था ॥२२२॥२२३॥२२४॥

तेन सृष्टा क्षुधात्मानो अम्भास्यादातुमुद्यता: ।
अभास्येनानि रक्षाम उक्तवतस्तु तेषु ये ॥२२५॥
राक्षसा नाम ते यस्मात् क्षुधाविष्टा निशाचरा. ।
येऽनुवन्यक्षमोऽम्भासि तेषा हृष्टाः परस्परम् ॥२२६॥
तेन ते कर्मणा यक्षा गुह्यका गूढकर्मणा ।
रक्षेति पालने चापि धातुरेष विभाव्यते ॥२२७॥
एव च यक्षातिर्धातुर्भक्षणे स निरुच्यते ।
त दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य केशा. शीर्णास्तु धीमतः ॥२२८॥

किया था। उस रजोमात्रात्मिका तनु मे उस प्रभु ने मन से सृजन किया था ॥२१२॥ इसके अनन्तर उसने रज प्रिय मानस पुत्रो की सृष्टि की थी। इसके पश्चात् उसके मनस्वी मानव पुत्रो ने जन्म ग्रहण किया था ॥२१३॥ प्रजा का सृजन करके फिर अपनी उस तनु का अपोह कर दिया था। वह उसकी तनु अपविद्धा हो गई और फिर उससे तुरन्त ही ज्योत्स्ना समुत्पन्न हो गई थी ॥२१४॥ जिस कारण से उस ज्योत्स्ना के उद्भव होने पर प्रजा अत्यन्त हर्षित हुई थी। इस प्रकार से ये इतनी तनु उस महात्मा ने अपविद्ध कर दी थी ॥२१५॥ तुरन्त रात्रि, दिन, सन्ध्या और ज्योत्स्ना उत्पन्न हुई। ज्योत्स्ना, सध्या और दिन ये तीनो सत्त्वमात्राका के स्वरूप थे ॥२१६॥ रात्रि तमो मात्रात्मिका थी अतएव वह निशात्मिका थी। इसी कारण से देवगण दिवस की तनु से तुष्टि के साथ मुख से सृष्ट हुए थे ॥२१७॥

यस्मात्तेषा दिवा जन्म बलिनस्तेन वै दिवा।
तन्वा ययासुरान् रात्रौ जघनादसृजत्प्रभुः ॥२१८॥
प्राणेभ्यो निशिजन्मानो बलिनो निशि तेन ते।
एतान्येव भविष्याणा देवानामसुरैः सह ॥२१९॥
पितृणा मानवाना च अतीतानागतेषु वै।
मन्वतरेषु सर्वेषु निमित्तानि भवति हि ॥२२०॥
ज्योत्स्ना रात्र्यहनी संध्या चत्वार्यंभाति तानि वै।
भाँति यस्मात्ततोभासि शब्दोयं सुमनीषिभिः ॥२२१॥
भातिर्दीप्तो निगदितः पुनश्चाथ प्रजापतिः।
सोऽम्भांस्येतानि सृष्ट्वा तु देवमानुषदानवान् ॥२२२॥
पितृंश्चैवा सृजत्तन्वा आत्मना विविधान्पुनः।
तामुत्सृज्य तनुं ज्योत्स्नां ततोन्या प्राप्य स प्रभुः ॥२२३॥
मूर्ति तमोरजःप्रायां पुनरेवाम्यपूजयत्।
अधकारे क्षुधाविष्टास्ततोन्यान्सोसृजत्प्रभुः ॥२२४॥

इसी कारण से कि उनका जन्म दिवा में हुआ है वे सब दिन में ही बलि वाले होते हैं। प्रभु ने रात्रि मे जघन से असुरो को जिस तनु से जन्म दिया था वे प्राणो से निशि जन्मा हैं और वे निशा मे ही बलि ग्रहण करने वाले होते हैं ॥२१८॥ ये प्राणो से रात्रि मे जन्म ग्रहण करने वाले हैं। इसी कारण से निशा काल मे वे अधिक बलशाली भी होते हैं। ये ही सब आगे होने वाले देवो के असुरो के साथ पितर, मानवो के बीते हुए और आने वाले मन्वन्तरो मे सब मे निमित्त होते हैं ॥२१६॥२२०॥ उस प्रजापति ने ज्योत्स्ना (चाँदनी), रात्रि, दिन और सन्ध्या अर्थात् दोनो की सन्धि का काल इन चारो के स्वरूप रूपी अम्भो को देखकर ही अपने शरीर से मानवादि की सृष्टि की थी। ये सब दीप्ति वाले होते हैं इसीलिए मनीषियो ने "अम्भांसि" इस शब्द का उनके लिए प्रयोग किया है ॥२२१॥ 'भा दीप्तौ'—इस धातु से 'भाति' यह शब्द दीप्ति के अर्थ मे कहा गया है। फिर इसके अनन्तर उस प्रजापति ने इन अम्भो को अर्थात् दीप्ति वालो की सृष्टि करके पुनः देव, मानुष, दानव और पितरो का अनेक प्रकार वालो का अपनी आत्मा से सृजन किया था। उस प्रभु ने उस ज्योत्स्नामय तनु का त्याग करके अन्य तमो, गुण और रजोगुण मयी मूर्त्ति को प्राप्त करके उसका अभिपूजन किया था। और अन्धकार मे क्षुधा से आविष्ट अन्यो का उस प्रभु ने सृजन किया था ॥२२२॥२२३॥२२४॥

तेन सृष्टा. क्षुधात्मानो अंभांस्यादातुमुद्यताः ।
अम्भांस्येतानि रक्षाम उक्तवतस्तु तेषु ये ॥२२५॥
राक्षसा नाम ते यस्मात् क्षुधाविष्टा निशाचराः ।
येऽब्रुवन्यक्षमोम्भांसि तेषां हृष्टाः परस्परम् ॥२२६॥
तेन ते कर्मणा यक्षा गुह्यका क्रूरकर्मणा ।
रक्षेति पालने चापि धातुरेष विभाष्यते ॥२२७॥
एष च यक्षतिर्धातुर्भक्षणे स निरुच्यते ।
स दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य केशाः शीर्णास्तु धीमतः ॥२२८॥

ते शीर्णाश्चोत्थिता ह्यूर्ध्वं ते चैवारुरुधुः प्रभुम् ।
हीनास्तच्छिरसो बाला यस्माच्चैवावसर्पिणः ॥२२६॥
व्यालात्मानः स्मृता बाला हीनत्वादहयः स्मृताः ।
पतत्वात्पन्नगाश्चैव सर्पाश्चैवावसर्पणात् ॥२३०॥
तस्य क्रोधोद्भवो योसौ अग्निगर्भः सुदारुणः ।
स तु सर्पान् सहोत्पन्नानाविवेश विषात्मकः ॥२३१॥

फिर उस प्रजापति ने क्षुधात्माओं का सृजन किया था जोकि इन अम्भों को लेने को उद्यत हो गये थे । हम इन अम्भों की रक्षा करते हैं, ऐसा उनसे जिन्होने कहा था ॥२२५॥ ये लोग क्षुधा से व्याकुल और निशा मे विचरण करने वाले थे अतएव इनका नाम 'राक्षस' यह हुआ था । जो यह बोलते थे कि हम अम्भों के यक्षम हैं और उनसे परस्पर मे बहुत प्रसन्न हुए थे । उस गूढ कर्म से ही वे यक्ष और गुह्यक हुये थे । 'रक्ष'—यह धातु रक्षा करने तथा पालन करने के अर्थ में विभावित है ॥२२६।२२७॥ इस प्रकार से 'यक्षति'—यह धातु का प्रयोग भक्षण मे कहा जाता है । इस अप्रिय से उसको देखकर इस धीमान् के केश शीर्ण हो गए थे ॥२२८॥ वे शीर्ण हुए केश ऊपर की ओर उठ गए थे और प्रभु को अवरुद्ध कर लिया था । वे बाल उसके शिर से हीन हो गये थे इसी कारण से नीचे की ओर अव सर्पण करने वाले हो गये ॥२२६॥ वे ही बाल व्यालों के स्वरूप वाले हो गये थे और हीन होने के कारण वे 'अहि'—इस नाम से भी कहे जाते हैं । पतन होने से इनका नाम 'पन्नग'—यह हुआ है और अवसर्पण करने के कारण 'सर्प' यह नाम इनका हो गया है ॥२३०॥ उसके क्रोध से समुत्पन्न जो सुदारुण अग्नि गर्भ था वह सर्पों के साथ ही उत्पन्न होकर उन्हीं सर्पों मे विष के स्वरूप से युक्त होता हुआ उन्ही मे आविष्ट हो गया था ॥२३१॥

सर्पान्सृष्ट्वा ततः क्रुद्धः क्रोधात्मानो विनिर्ममे ।
वर्णेन कपिशेनोग्रास्ते भूताः पिशिताशनाः ॥२३२॥

भूतत्वात्ते स्मृता भूताः पिशाचाः पिशिताशनात् ।
प्रसन्नं गायतस्तस्य गंधर्वा जज्ञिरे यदा ॥२३३॥
धयतीत्येप वै धातुः पानत्वे परिपठ्यते ।
धयंतो जज्ञिरे वाचं गंधर्वास्तेन ते स्मृताः ॥२३४॥
अष्टस्वेतासु सृष्टासु देव योनिपु स प्रभुः ।
ततः स्वच्छंदतोन्यानि वयांसि वयसासृजत् ॥२३५॥
स्वच्छंदतः स्वच्छंदांसि वयसा च वयांसि च ।
पशून्सृष्ट्वा स देवेशोऽसृजत्पक्षिगणानपि ॥२३६॥
मुखतोजाः ससर्जाथः वक्षसश्चावयोसृजत् ।
गाश्चैवाथोदराद्ब्रह्मा पार्श्वाभ्यां च विनिर्ममे ॥२३७॥

उन सर्पों को देखकर प्रजापति को क्रोध हुआ था और उसी क्रुद्धावस्था मे उसने क्रोध के स्वरूप वालो की रचना कर डाली थी जो कपिश वर्ण से अत्यन्त उग्र और माँस को खाने वाले भूत हुए थे। ॥२३२॥ भूत होने से वे 'भूत'—इस नाम से कहलाये थे और पिशित (माँस) के खाने वाले होने के कारण से 'पिशाच'—यह उनका नाम पड गया था। प्रसन्नता पूर्वक गान करने वाले उससे 'गन्धर्व' समुत्पन्न हुए थे। 'धयति'-यह धातु का रूप पान करने मे पढा जाता है। वे वाचा (वाणी) का पान करते हुये उत्पन्न हुये थे इसलिए वे गन्धर्व कहे गये हैं ॥२३३॥२३४॥ इन आठ देवयोनियो का सृजन करने पर फिर इसके पश्चात् उस प्रभु ब्रह्मा ने स्वच्छन्दता से, वय से पक्षियो का सृजन किया था ॥२३५॥ इस तरह से स्वच्छन्दता से स्वच्छन्दो की और वय (उम्र) से वयो की अर्थात् वयस्कों की सृष्टि की थी। पशुओ का सृजन करके उस देवेश ने पक्षिगणो का भी निर्माण किया था ॥२३६॥ उसने मुख से अजा (बकरी) का सृजन किया था और वक्षःस्थल से आविियो अर्थात् भेड़ो की रचना की थी। ब्रह्मा ने अपने उदर और पार्श्व भागो से गायो की सृष्टि की थी ॥२३७॥

पद्भ्‍यां चाश्वान् समातंगान् रासभानावयान्मृगान् ।
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव तथान्याश्चैव जातयः ॥२३८॥
ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
एवं पश्वोषधीः सृष्ट्वाऽयुयुजत्सोऽध्वरे प्रभुः ॥२३९॥
गौरजः पुरुषो मेषो ह्यश्वोऽश्वतरगर्दभौ ।
एतान्ग्राम्यान्पशूनाहुरारण्यान्वै निबोधत ॥२४०॥
श्वापदो द्विखुरो हस्ती वानराः पक्षिपञ्चमाः ।
आदकाः पशवः षष्ठाः सप्तमास्तु सरीसृपाः ॥२४१॥
महिषा गवयाक्षाश्च प्लवगाः शरभाः वृकाः ।
सिंहस्तु सप्तमस्तेषामारण्या पशवः स्मृताः ॥२४२॥
गायत्रं च ऋचं चैव त्रिवृत्साम रथंतरम् ।
अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात् ॥२४३॥
यजूंषि त्रैष्टुभं छंदस्तोमं पञ्चदशं तथा ।
बृहत्साम तथावध्यं च दक्षिणादसृजन्मुखात् ॥२४४॥

प्रजापति ने अपने पदो से अश्व, गज, रासभ, भेड, मृग, ऊँट और अश्वतर (खिच्चर) तथा अन्य पशुओ की जातियो को समुत्पन्न किया था ॥२३८॥ ओषधियाँ, फल और मूल सब उस ब्रह्मा प्रजापति के रोमो से उत्पन्न हुए थे। इस तरह से उस प्रभु ने इन पशु, ओषधियो का सृजन करके फिर उन्हे अध्वर मे योजित किया था ॥२३९॥ गौ, अज, पुरुष, मेष, अश्व, अश्वतर, गर्दभ, ये सब ग्राम्य पशु बताए गए हैं। नरमेध में मनुष्य की भी पशु-कल्पना होने से उसे भी पशु कोटि मे माना गया है। इसके आगे अब वन के रहने वाले पशुओ को समझ लो। ॥२४०॥ श्वापद (व्याघ्र आदि), द्विखुर (दो खुरो वाले गवय आदि), हाथी, वानर, पाचवाँ पक्षी, आदक, पशु छटवाँ और सातवाँ सरी सृप ये ग्राम्य से इतर आरण्य पशु होते हैं ॥२४१॥ अब अन्य सात आरण्यो को बताते हैं—महिष, गवय, अक्ष (हिरण), प्लवङ्ग, शरभ, वृक और सातवाँ सिंह है। ये आरण्य पशु कहे गए हैं ॥२४२॥ फिर ब्रह्मा ने

गायत्रीच्छन्द, ऋग्वेद, त्रिवृत् गीयमान साम, रथन्तर साम, यज्ञों के मध्य में सोमयाग मुख्य अग्निष्टोम को प्रथम मुख से निर्मित किया था। ॥२४३॥ यजुर्वेद, त्रैष्टुभ छन्द, स्तोम पञ्चदशावृत्त साम, बृहत्साम, उक्थ्य ये सब हैं इनका दक्षिण मुख से सृजन किया था ॥२४४॥

सामानि जगतीच्छन्दःस्तोमं सप्तदशं तथा ।
वैरूपमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात् ॥२४५॥
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च ।
अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥२४६॥
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ।
तेजांसि च ससर्जादौ कल्पस्य भगवान्प्रभुः ॥२४७॥
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
ब्रह्मणस्तु प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः ॥२४८॥
सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्वं देवासुरनरान्पितॄन् ।
ततोऽसृजत भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥२४९॥
यक्षान्पिशाचान् गंधर्वांस्तथैवाप्सरसां गणान् ।
नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान् ॥२५०॥
अव्ययं च व्ययं चापि यदिदं स्थाणुजङ्गमम् ।
तेषां वै यानि कर्माणि प्राक्सृष्टानि प्रतिपेदिरे ॥२५१॥

सृजन करके फिर इनकी सृष्टि करने के पश्चात् उस प्रजापति देव ने स्थावर और चर भूतो का सृजन किया था ।।२४६।। यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सराओ के गण, नर, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग, उरग, अव्यय, व्यय और जो स्थाणु तथा जङ्गम है वे सब और उनके जो कर्म हैं उन्हे वे सृष्टि के पहिले ही प्राप्त कर चुके है।।२५०।।२५१।।

तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ।
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मे नृतानृते ।।२५२।।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ।
महाभूतेषु सृष्टेषु इन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु ।।२५३।।
विनियोगं च भूताना धातैव व्यदधात्स्वयम् ।
केचित्पुरुषकार तु प्राहुः कर्म सुमानवाः ।।२५४।।
दैवमित्यपरे विप्राः स्वभावं भूत चिंतकाः ।
पौरुषं कर्म दैव च फलवृत्तिस्वभावतः ।।२५५।।
न चैक न पृथग्भावमधिकं न ततो विदुः ।
एतदेवं च नैकं च नामभेदेननाप्युभे ।।२५६।।
कर्मस्था विषमं ब्रूयुः सत्वस्थाः समदर्शनाः ।
नाम रूपं च भूतानां कृताना च प्रपचनम् ।।२५७।।

बार-बार सृज्यमान होते हुए ये सब उन्ही अपने कर्मों को प्राप्त किया करते हैं जो उनके स्वभाव के अनुकूल हिंस्र, अहिंस्र, मृदु, क्रूर, धर्म-अधर्म और नृत तथा अनृत होते थे ।।२५२।। पुन. पुनः प्रत्येक कल्प मे उत्पत्ति प्राप्त करते हुए ये सब उन्ही अपने रुचि के अनुकूल पहिले कर्मों को ही सृष्ट महाभूतो मे और इन्द्रियार्थ शरीरो मे प्राप्त किया करते हैं ।।२५३।। भूतो का विनियोग धाता ब्रह्म रूपी महेश्वर ने ही स्वयं किया है। तात्पर्य यह है कि यह जीव अपने सुख-दुख में स्वय असमर्थ है और ईश्वर से प्रेरित होकर ही स्वर्ग तथा नरक मे जाता है। अब जीव कल्पित अन्य मत इस विषय मे बताये जाते हैं, कुछ मनीषी पुरुषकार प्रयत्न को ही कर्म बताते हैं ।।२५४।। हे विप्रो ! अन्य विद्वान् दैव को

और भूत चिन्तक स्वभाव को बतलाते हैं। इस तरह से, पौरुष, कर्म, दैव और फल वृत्ति स्वभाव से स्वभाव को बताया जाता है ॥२५५॥ कर्म मार्ग में प्रवृत्त रहने वाले जीव विचित्र ही, पूर्व मे कथित चतुष्टय से प्रत्येक को विभिन्न सत्ता वाला न कहकर समुच्चित ही कहते है। कारण समुच्चय से अधिक सबके नियन्ता ईश्वर को नही जानते है। जो सत्त्व मे समास्थित है और समदर्शी है वे जगत् को मायिक होने से पूर्व मे वर्णित चतुष्टय को एक ही कहते हैं नामो के भेद से दो-दो नही है ॥२५६॥२५७॥

वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः।
ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु वृत्तयः ॥२५८॥
शर्वर्यंते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः ।
एवंविधाः सृष्टयस्तु ब्रह्मणोव्यक्तजन्मनः ॥२५९॥
शर्वर्यते प्रदृश्यते सिद्धिमाश्रित्य मानसीम् ।
एवंभूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च ॥२६०॥
यदास्य ताः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्धंत सत्तमाः।
तमोमात्रावृतो ब्रह्मा तदा शोकेन दुःखितः ॥२६१॥
ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम् ।
अथात्मनि समद्राक्षीत्तामोमात्रा नियामिकाम् ॥२६२॥
रजः सत्त्व परित्यज्य वर्तमानां स्वधर्मतः।
ततः स तेन दुःखेन दुःख चक्रे जगत्पतिः ॥२६३॥

उस ब्रह्म रूप वाले भगवान् महेश्वर ने पूर्व कल्पीय भूतो के नाम और रूप का समस्त प्रपञ्च सर्ग के आदि मे वेद शब्दों से ही निर्मित किया है। जो भी ऋषियो के नामधेय हैं तथा वेदो मे उनकी वृत्तियाँ बतलाई गई हैं ॥२५८॥ ब्रह्मा रात्रि के अन्त मे अर्थात् लय काल के समाप्त होने पर ऋषियो को जो वृत्तियाँ और नाम हैं अर्थात् वेदो मे बताये गये हैं वे ही उन्हें दिया करते हैं। इस प्रकार वाली अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा की सृष्टि हुआ करती है ॥२५९॥ ब्रह्मा की अपनी रात्रि

का जब अन्त हो जाता है उस समय में मानसी सिद्धि का आश्रय ग्रहण करके इस प्रकार के भूत स्थावर और चर जो सृष्ट हुए हैं दिखलाई देते हैं ॥२६०॥ जब इन ब्रह्मा की सृष्ट हुई प्रजा भली-भाँति वृद्धि को प्राप्त न हुई तो तमोमात्रा से आवृत हुए ब्रह्मा शोक से अत्यन्त दुःखित हुये थे ॥२६१॥ इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने इसका क्या कारण है, इसके निश्चय करने वाली बुद्धि से काम लिया तो उन्होंने प्रजा वृद्धि को रोकने वाली तमोमात्रा अपनी आत्मा में देखा था ॥२६२॥ रजो गुण और सत्व गुण का त्याग करके अपने धर्म से वर्तमान तमोमात्रा को अपने अन्दर प्राप्त कर उस दुःख से प्रजापति ने अत्यन्त दुःख किया था ॥२६३॥

तमश्च व्यनुदत्पश्चाद्रजः सत्त्वं तमावृणोत् ।
सत्तमः प्रतिनुन्नं वै मिथुनं समजायत ॥२६४॥
अधर्मस्तमसो जज्ञे हिंसा शोकादजायत ।
ततस्तस्मिन्समुद्भूते मिथुने दारुणात्मिके ॥२६५॥
गतायुर्भगवानासीत्प्रीतिश्चैनमशिश्रियत् ।
स्वां तनुं स ततो ब्रह्मा तामपोहत भास्वराम् ॥२६६॥
द्विधा कृत्वा स्वकं देहमर्धेन पुरुषोभवत् ।
अर्धेन नारी सा तस्य शतरूपा व्यजायत ॥२६७॥
प्रकृतिं भूतधात्रीं तां कामाद्वै सृष्टवान्प्रभुः ।
सा दिवं पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्यधिष्ठिता ॥२६८॥
ब्रह्मणः सा तनुः पूर्वा दिवमावृत्यतिष्ठति ।
या त्वर्धात्सृजतो नारी शतरूपा व्यजायत ॥२६९॥
सा देवी नियुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ।
भर्तारं दीप्तयशसं पुरुषं प्रत्यपद्यत ॥२७०॥
स वै स्वायंभुवः पूर्वं पुरुषो मनुरुच्यते ।
तस्यैव सप्ततियुगं मन्वंतरमिहोच्यते ॥२७१॥
लेभे स पुरुषः पत्नीं शतरूपां मयोनिजाम् ।
तया सार्धं स रमते तस्मात्सा रतिरुच्यते ॥२७२॥

प्रथमः संप्रयोगात्मा कल्पादौ समपद्यत ।
विराजमसृजद्ब्रह्मा सोभवत्पुरुषो विराट् ॥२७३॥

तम को विनुदित किया और फिर रज तथा सत्त्व ने उसको आवृत कर लिया था। वह तम प्रतिनुन्न हो गया और मिथुन समुत्पन्न हुआ था ॥२६४॥ तम से अधर्म उत्पन्न हुआ था और शोक से हिंसा पैदा हुई थी। इसके पश्चात् उस दारुण स्वरूप मिथुन के समुद्भूत होने पर भगवान् गत प्राण हो गये थे और प्रीति ने इनको से भागी दी। फिर उस ब्रह्मा ने उस अति भास्वर अपनी तनु को अपोहित कर लिया था।

कन्ये द्व च महाभागे याभ्यां जाता इमाः प्रजाः ।
देवी नाम तथाकूतिः प्रसूतिश्चैव ते उभे ॥२७६॥
स्वायभुव प्रसूति तु दक्षाय प्रददौ प्रभुः ।
प्राणो दक्ष इति ज्ञेय. सकल्पो मनुरुच्यते ॥२७७॥
रुचेः प्रजापते· सोथ आकूति प्रत्यपादयत् ।
आकूत्या मिथुन जज्ञे मानसस्य रुचेः शुभम् ॥२७८॥
यज्ञश्च दक्षिणा चैव यमलौ सबभूवतु ।
यज्ञस्य दक्षिणाया तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे ॥२७९॥
यामा इति समाख्याता देवा· स्वायभुवेंतरे ।
एतस्य पुत्रा यज्ञस्य तस्माद्यामाश्च ते स्मृताः ॥२८०॥

शतरूपा और वह सम्राट् वैराज मनु कहा गया है उस वैराज पुरुष मनु ने प्रजा सर्ग का सृजन किया था। उस शतरूपा ने वैराज पुरुष से प्रियव्रत और उत्तानपाद ये दो लोक-सम्मत पुत्रों को समुत्पन्न किया था ॥२७४॥२७५॥ और महान् भाग्य वाली दो कन्या उत्पन्न की थी जिनसे यह समस्त प्रजा हुई है। उन दोनों देवियों के आकूति तथा प्रसूति ये दो नाम थे ॥२७६॥ स्वायम्भुव प्रभु ने प्रसूति नाम वाली कन्या को दक्ष प्रजापति को दे दिया था। दक्ष को प्राण ऐसा जानना चाहिये और सङ्कल्प मनु कहा जाता है ॥२७७॥ उस मनु ने रुचि प्रजापति को आकूति नाम वाली कन्या दी थी। मानस रुचि के आकूति मे शुभ मिथुन (जोडा) ने जन्म लिया था। उस यमल मे यज्ञ और दक्षिणा इन दो ने जन्म ग्रहण किया था। ये यमल कहलाए थे। यज्ञ के दक्षिणा मे बारह पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥२७८॥२७९॥ वे देवगण स्वायम्भुव मन्वन्तर मे यामा'—इस नाम समाख्यात हुये थे। ये इस यज्ञ के पुत्र ये इस कारण से वे याम कहे गये हैं ॥२८०॥

अजितश्चैव शुक्रश्च गणौ द्वौ ब्राह्मणा कृतौ।
यामाः पूर्वं प्रजाता ये तेऽभवस्तु दिवौकसः ॥२८१॥

स्वायंभुवसुतायां तु प्रसूत्यां लोकमातरः ।
तस्यां कन्याश्चतुर्विंशद्दक्षस्त्वजनयत्प्रभुः ॥२८२॥

सर्वास्ताश्च महाभागाः सर्वाः कमललोचनाः ।
भोगवत्यश्च ताः सर्वाः सर्वास्ता योगमातरः ॥२८३॥

सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वा विश्वस्य मातरः ।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ॥२८४॥
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदश ।
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः ॥२८५॥

दाराण्येतानि वै तस्य विहितानि स्वयंभुवा ।
ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः ॥२८६॥

सती ख्यात्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ।
सन्नतिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा ॥२८७॥

ब्रह्मा ने अजित और शुक्र ये दो गण किये थे। जो याम पहिले प्रजात अर्थात् उत्पन्न हुए थे वे दिवौकस अर्थात् देव हुए थे ॥२८१॥ स्वायम्भुव की पुत्री प्रसूति में लोक मातायें हुई थी। उसमें प्रभु दक्ष ने चौबिस कन्यायें उत्पन्न की थी ॥२८२॥ वे सभी महाभाग वाली थीं और सभी कमल के समान नेत्रों वाली थीं। वे सभी भोगवती थी और वे सब योग मातायें थी ॥२८३॥ वे सब ब्रह्म वादिनी और विश्व की मातायें थी। उनमें तरह को प्रभु धर्म ने स्वीकार किया था अर्थात् अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण किया था। उनके श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि, कीर्त्ति ये नाम थे। ये दाक्षायणी धर्म की पत्नियाँ हुई थी ॥२८४॥२८५॥ इन सबको धर्म की दारा स्वयम्भू ने स्वयं बनाया था। अब उनसे छोटी ग्यारह सुन्दर लोचनों वाली शिष्ट रही थीं ॥२८६॥ उन ग्यारह के सती, ख्याति, सम्भूति, स्मृति, प्रीति क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा, स्वधा ये शुभ नाम थे ॥२८७॥

तास्तया प्रत्यपद्य त पुनरन्ये महर्षयः ।
रुद्रो भृगुर्मरीचिश्च अंगिराः पुलहः क्रतुः ॥२८८॥
पुलस्त्योत्रिर्वसिष्ठश्च पितरोग्निस्तथैव च ।
सतीं भवाय प्रायच्छत् ख्याति च भगवे ततः ॥२८९॥
मरीचये च संभूतिं स्मृतिमंगिरसे ददौ ।
प्रीतिं चैव पुलस्त्याय क्षमां वै पुलहाय च ॥२९०॥
क्रतवे संनतिं नाम अनसूयां तथात्रये ।
ऊर्जां ददौ वसिष्ठाय स्वाहामप्यग्नये ददौ ॥२९१॥
स्वधां चैव पितृभ्यस्तु तास्वपत्यानि बोधत ।
एताः सर्वा महाभागाः प्रजास्वनुसृताः स्थिताः ॥२९२॥
मन्वंतरेषु सर्वेषु यावदाभूतसम्प्लवम् ।
श्रद्धा कामं विजज्ञे वेदर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः ॥२९३॥
धृत्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्टया: संतोष एव च ।
पुष्टया लोभः सुतश्चापि मेधापुत्रः श्रुतस्तथा ॥२९४॥

उनको अन्य महर्षियों ने प्राप्त किया था। उनके रुद्र, भृगु, मरीचि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, पितर और अग्नि ये नाम हैं। सती को भव के लिए प्रदान किया था और ख्याति को भृगु को दिया था ॥२८८॥२८९॥ मरीचि ऋषि को सभूति तथा अंगिरा को स्मृति का प्रदान किया था। पुलस्त्य ऋषि को प्रीति, पुलह को क्षमा दी थी ॥२९०॥ कृतु को सनति तथा अत्रि को अनसूया का दान किया था। वसिष्ठ मुनि को ऊर्जा और अग्नि देव के लिये स्वाहा दे दी थी ॥२९१॥ पितृगणो के लिये स्वधा का दान दिया था। अब उनकी जो सन्तति हुई थी उनको भी जान लेना चाहिये। ये सब महाभागा थी और प्रजाओ मे अनुसृत होकर स्थित रहती थी ॥२९२॥ समस्त मन्वन्तरो मे जब तक आभूत सम्प्लव होता है अर्थात् सब प्राणियो का लय होता है। श्रद्धा ने काम को उत्पन्न किया था और दर्प ने लक्ष्मी का पुत्र कहा गया है ॥२९३॥ नियम धृति का पुत्र है तथा तुष्टि का सुत

सन्तोष होता है। लोभ पुष्टि का आत्मज एवं श्रुत मेधा का पुत्र है। ॥२६४॥

क्रियायामभवत्पुत्रो दड समय एव च ।
बुद्धया बोध सुतस्तद्वत्प्रमादोप्युपजायत ॥२६५॥
लज्जाया विनय पुत्रो व्यवसायो वसो सुत ।
क्षेम शांतिसुतश्चापि सुरा सिद्धर्व्यजायत ॥२६६॥
यश कीर्तिसुतश्चापि इत्येते धर्मसूनव ।
कामस्य हर्ष पुत्रो वै देव्या प्रीत्या व्यजायत ॥२६७॥
इत्येष वै सुतोदर्कं सर्गो धर्मस्य कीर्तित ।
जज्ञे हिंसा त्वधर्माद्वै निकृति चानृत सुतम् ॥२६८॥
निकृत्या तु द्वय जज्ञे भय नरक एव च ।
माया च वेदना चापि मिथुनद्वयमेतयो ॥२६९॥
भूयो जज्ञेथ वै माया मृत्यु भूतापहारिणम् ।
वेदनाया सुतश्चापि दु ख जज्ञे च रौरव ॥३००॥
मृत्योर्व्याधिजराशोकक्रोधासूयाश्च जज्ञिरे ।
दु खोत्तरा सुता ह्यते सर्वे चाधर्मलक्षणा ॥३०१॥

क्रिया म दण्ड और समय पुत्र समुत्पन्न हुआ था। बुद्धि से बोध और उसी भाँति प्रमाद भी पुत्र उत्पन्न हुआ था॥२६५॥ लज्जा में विनय सुत हुआ तथा व्यवसाय वसु का पुत्र हुआ था। क्षेम शान्ति का आत्मज एवं सिद्धि से सुख समुत्पन्न हुआ था॥२६६॥ यश कीर्ति का पुत्र था ये सब इतने धर्म के पुत्र हुए थे। काम का पुत्र हर्ष हुआ था जो कि प्रीति देवी म समुत्पन्न हुआ था॥२६७॥ यह धर्म का सुतोदर्क सर्ग कहा गया है। हिंसा ने अधर्म से निकृति और अनृत पुत्र को जन्म दिया था॥२६८॥ निकृति म दो समुत्पन्न हुये थे उनमें एक भय और दूसरा नरक था। इनके दो मिथुन (जोड़ा) थे जिनका नाम माया और वेदना था॥२६९॥ फिर माया ने भूतों के अपहरण करने वाले मृत्यु को समुत्पन्न किया था। वेदना से दु ख तथा रौरव पुत्र उत्पन्न हुए थे॥३००॥

मृत्यु से व्याधि, जरा (तृष्णा) शोक, क्रोध और असूया ये सब समुत्पन्न हुये थे। ये सब दुःखोत्तर अधर्म के लक्षण वाले पुत्र उत्पन्न हुये थे। ॥३०१॥

नैषां भार्यास्तु पुत्रादच सर्वे ह्येते परिग्रहाः।
इत्येष तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः ॥३०२॥
प्रजाः सृजेति व्यादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहितः।
सोभिध्याय सती भार्या निर्ममे ह्यात्मसंभवान् ॥३०३॥
नाधिकान्न च हीनांस्तान्मानसानात्मनः समान्।
सहस्रं हि सहस्राणां सोमृजत्कृत्तिवाससः ॥३०४॥
तुल्यानेवात्मनः सर्वान् रूपतेजोबलश्रुतैः ।
पिंगलान्सनिषंगांश्च सकपर्दान्सलोहितान् ॥३०५॥
विविशान् हरिकेशांश्च दृष्टिघ्नांश्च कपालिनः।
महारूपान्विरूपाश्च विश्वरूपान्स्वरूपिणः ॥३०६॥
रथिनश्चर्मिणश्चैव वर्मिणश्च वरूथिनः ।
सहस्रशतबाहूश्च दिव्यान्भौ मांतरिक्षगान् ॥३०७॥
स्थूलशीर्षानष्टदंष्ट्रान्द्विजिह्वांस्त्रिलोचनान् ।
अन्नादान्पिशिताशाश्च आज्यपान्सोमपानपि ॥३०८॥
मीढुषोतिकपालाश्च शितिकंठोर्ध्वरेतसः ।
हृव्यादान्द्रुतधर्माश्च धर्मिणो ह्यथ वर्हिणः ॥३०९॥

इनके पुत्र और भार्या नही थे। ये सब परिग्रह थे। यह इतना धर्म का नियामक तामस सर्ग समुत्पन्न हुआ था ॥३०२॥ ब्रह्मा के द्वारा भगवान् नील लोहित से कहा गया था कि तुम प्रजा का सृजन करो। उसने अभिध्यान करके सती भार्या और आत्म सम्भव पुत्रों को निर्मित किया था ॥३०३॥ उनके पुत्र न तो हीन थे और न अधिक थे। वे सब मानस पुत्र उनके आत्मा ही के समान थे। उन्होने सहस्रों की सख्या मे कृत्ति (चर्म) के वस्त्र धारण करने वाले समुत्पन्न किए थे ॥३०४॥ वे सब उनके ही आत्मा के समान रूप, तेज, बल और श्रुत के द्वारा थे

जो वैसे ही पिंगल निषग युक्त, सलोहित और सकपर्द थे ॥३०५॥ विशिष्ट, हरिकेश, कपाल धारण करने वाले और दृष्टिघ्न अर्थात् दृक्पात मात्र से ही नाश कर देने वाले थे। ये समस्त असंख्य श्री रुद्र के गण ऐसे थे जिनके महान् रूप थे, जो विरूप, विश्व रूप और स्वरूप धारी थे ॥३०६॥ ये रथी, चर्मी, वर्म धारण करने वाले, वरूथी, सैकड़ो और सहस्रो बाहुओ वाले, दिव्य तथा भूमि एव अन्तरिक्ष में गमन करने वाले थे ॥३०७॥ स्थूल शीर्ष वाले, आठ दाढो से युक्त, दो जिह्वा वाले, तीन नेत्रो से सम्पन्न, अन्न को खाने वाले, मास का भक्षण करने वाले, आज्य (घृत) पान करने तथा सोम का पान करने वालो को भी उत्पन्न किया था ॥३०८॥ मीढुप, प्रतिकपाल, शितिकण्ठ (नीले कण्ठ वाले), ऊर्ध्व, रेता, हृव्य ग्रहण करने वाले, श्रुतधर्म, धर्मी तथा वहीं हुये थे। ॥३०९॥

आसीनान्धावतश्चैव पञ्चभूतान्सहस्रशः ।
अध्यापिनोध्यायिनश्च जपतो युंजतस्तथा ॥३१०॥
धूमवतो ज्वलंतश्च नदीमतोतिदीप्तिनः ।
वृद्धनबुद्धिमतश्चैव ब्रह्मिष्ठान्शुभदर्शनान् ॥३११॥
नीलग्रीवान्सहस्राक्षान्सर्वांश्चाथ क्षमाकरान् ।
अदृश्यान्सर्वभूताना महायोगान्महौजसः ॥३१२॥
भ्रमंतोभिद्रवतश्च प्लवतश्च सहस्रशः ।
अयातयामानसृजद्रुद्रानेतान् सुरोत्तमान् ॥३१३॥
ब्रह्मा दृष्ट्वाब्रवीदेन मास्राक्षीरीदृशीः प्रजाः ।
स्रष्टव्या नात्मनस्तुल्याः प्रजा देव नमोस्तु ते ॥३१४॥
अन्याः सृज त्व भद्रं ते प्रजा वै मृत्युसंयुताः ।
नारप्स्यते हि कर्माणि प्रजा विगतमृत्यव ॥३१५॥
एवमुक्तोऽब्रवीदेनं नाहं मृत्युजरान्विताः ।
प्रजाः स्रक्ष्यामि भद्रं ते स्थितोह त्वं सृजः प्रजाः ॥३१६॥

एते ये वै मया सृष्टा विरूपा नीललोहिताः ।
सहस्राणां सहस्रं तु आत्मनो निस्मृताः प्रजाः ॥३१७॥

नील लोहित रुद्र ने ऐसे गणों को समुत्पन्न किया था जो ग्रामीन थे तथा दौड़ने वाले थे, विस्तृ भूतों वाले सहस्रों ही थे। अध्यापी, अध्यायी, जप करने वाले तथा योगाभ्यास करने वाले थे ॥३१०॥ धूम वाले, ज्वाला युक्त, गंगा को धारण करने वाले और अत्यन्त दीप्ति से युक्त थे। वृद्ध, बुद्धिमान, ब्रह्मिष्ठ, शुभ दर्शन वाले थे ॥३११। नीली ग्रीवा वाले, सहस्र नेत्रों से युक्त और क्षमा करने वाले सब थे। समस्त प्राणियों को न दीखने के योग्य, महान् योग वाले, महान् ओज से सम्पन्न थे ॥३१२॥ रुद्र ने ऐसे सहस्रों गण समुत्पन्न किए थे जिनमे कुछ भ्रमण करने वाले थे, कुछ इधर-उधर भाग-दौड़ करने वाले थे और उछल-कूद करने वाले थे। ऐसे अयातयाम, सुरोत्तम, रुद्रों का नील लोहित भगवान् ने सृजन किया था ॥३१३॥ ब्रह्माजी ने अब ऐसी अद्-भुत सृष्टि को देखा तो वे नील लोहित से बोले—ऐसी सृष्टि मत करो। हे देव ! आपको ऐसी अपने ही समान प्रजा का सृजन नहीं करना चाहिए। इससे हमारा मनोरथ पूरा नहीं होता है। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥३१४॥ यदि कृपा कर सृजन करें तो और प्रकार की प्रजा का सृजन करें जो मृत्यु से सयुत हो। आपका भद्र होगा। जो प्रजा बिना मृत्यु वाली है वह कोई भी कर्मों का आरम्भ नहीं करेगी और मेरा अभीष्ट पूर्ण न होगा ॥३१५॥ ऐसा जब ब्रह्मा ने कहा तो नीललोहित भगवान् ने उत्तर मे यह ब्रह्मा से कहा था कि मैं मृत्यु और जरा से युक्त प्रजा का सृजन नहीं करूँगा। आपका भद्र हो। मैं तो अब शान्ति से स्थित होता हूँ। आप ही इस सृजन का काम करो। ये इतने विरूप और नीललोहित सहस्रों की सख्या वाले अपनी आत्मा से निःसृत प्रजा मैंने समुत्पन्न करदी है ॥३१६॥३१७॥

एते देवा भविष्यंति रुद्रा नाम महाबलाः ।
पृथिव्यामंतरिक्षे च दिक्षु चैव परिश्रिताः ॥३१८॥

शतरुद्रा समात्मानो भविष्यतीति याज्ञिका ।
यज्ञभाजो भविष्यति सर्वदेवगणै सह ॥३१६॥
मन्वन्तरेषु ये देवा भविष्यतीह भेदत ।
सार्धं तैरीज्यमानास्ते स्थास्यतीहायुगक्षयात् ॥३२०॥
एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा महादेवेन धीमता ।
प्रत्युवाच नमस्कृत्य ह्दृष्यमाण प्रजापति ॥३२१॥
एव भवतु भद्र ते यथा ते व्याहृत विभो ।
ब्रह्मणा समनुज्ञाते तथा सवमभूत्किल ॥३२२॥
तत प्रभृति देवेशो च चासूयत वै प्रजा ।
ऊर्ध्वरेता स्थित स्थाणुर्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥३२३॥

ये सब महान् बल, पौरुष वाले देव हो जायेंगे जिनका नाम रुद्र होगा। ये सब पृथ्वी, अ तरिक्ष और दिशा विदिशाओं म परिश्रित होगे ॥३१८॥ इनमे शत रुद्र समात्मा याज्ञिक होगे जो समस्त देवगणों के सहित यज्ञ के भाग ग्रहण करने वाले भी होगे ॥३१६॥ म वन्तरो मे जो देवता यहाँ पर भेद स स्थित होग उनके साथ पूजित व यहाँ युग क्षय पर्यं त स्थित रहगे ॥३२०॥ परम बुद्धिमान महादेव के द्वारा इस प्रकार से कहे हुए प्रजापति ब्रह्मा ने अति प्रसन्न होकर और उन्ह प्रणाम करके कहा--हे विभो ! जैसा भी आपने कहा है उसस आपका भद्र होवे। ब्रह्मा के द्वारा सब ज्ञात कर लेने पर उसी प्रकार से सभी कुछ हुआ था ॥३२१॥३२२॥ उस समय स लकर फिर दवेश न प्रजा का कोई अनिष्ट नही किया था और भूत सम्प्लव पय त स्थाणु ऊर्ध्वरेता होकर स्थित रहते थ ॥३२३॥

यस्मादुक्त स्थितोस्मीति तस्मात्स्थाणुरिति स्मृत ।
एष देवो महादेव पुरपोर्वसमद्युति ॥३२४॥
अर्धनारीनरवपुस्तेजसा ज्वलनोपम ।
स्वच्छयासौ द्विधाभूत पृथक् स्त्री पुरुष पृथक् ॥३२५॥
स एवैकादशार्धेन स्थितोसौ परमेश्वर ।
तत्र या सा महाभागा शङ्कर स्यार्धकायिनी ॥३२६॥

प्रागुक्ता तु महादेवी स्त्री संवेह सती ह्यभूत् ।
हिताय जगतां देवी दक्षेणाराधिता पुरा ॥३२७॥
कार्यार्थं दक्षिणं तस्याः शुक्लं वामं तथासितम् ।
आत्मानं विभजस्वेति प्रोक्ता देवेन शंभुना ॥३२८॥

क्योंकि महादेव ने यह कहा था कि मैं स्थित हूँ इसीलिए उनका नाम स्थाणु यह कहा गया है । यह महादेव देवता पुरुष स्वरूप में सूर्य के समान द्युति वाले थे ॥३२४॥ इनका आधा भाग नारी और आधा भाग नर के वपु वाला था तथा तेज से यह अग्नि के समान थे । यह अपनी ही इच्छा से दो स्वरूपों वाले हुये थे जिनमे पुरुष तथा स्त्री पृथक् स्वरूप था ॥३२५॥ वह ही परमेश्वर अर्ध भाग से एकादश स्वरूपों में स्थित हैं । वहाँ जो शङ्कर की अर्धाङ्गिनी थी वह महाभागा थी ॥३२६॥ पहिले वह महादेवी स्त्री कही गई थी वह ही सती हुई थी । इस देवी की जगतों के हित के लिए दक्ष प्रजापति ने पहिले आराधना की थी ॥३२७॥ कार्य के लिए उसका दक्षिण शुक्ल तथा वाम असित इस तरह आत्मा का विभाग करो, ऐसा देव शम्भु के द्वारा वह आदिष्ट हुई थी ॥३२८॥

सा तथोक्ता द्विधाभूता शुक्ला कृष्णा च वै द्विजाः ।
तस्या नामानि वक्ष्यामि शृण्वतु च समाहिताः ॥३२९॥
स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मीः सरस्वती ।
सती दाक्षायणी विद्या इच्छाशक्तिः क्रियात्मिका ॥३३०॥
अपर्णा चैकपर्णा च तथा चैवैकपाटला ।
उमा हैमवती चैव कल्याणी चैकमातृका ॥३३१॥
ख्यातिः प्रज्ञा महाभागा लोके गौरीति विश्रुता ।
गणाम्बिका महादेवी नंदिनी जातवेदसी ॥३३२॥
एकरूपमथैतस्याः पृथग्देहविभावनात् ।
सावित्री वरदा पुण्या पावनी लोकविश्रुता ॥३३३॥

आज्ञा आवेशनी कृष्णा तामसी सात्विकी शिवा ।
प्रकृतिर्विकृता रौद्री दुर्गा भद्रा प्रमाथिनी ॥३३४॥
कालरात्रिर्महामाया रेवती भूतनायिका ।
द्वापरांतविभागे च नामानीमानि सुव्रताः ॥३३५॥

हे द्विजगण ? शम्भु के द्वारा आज्ञा प्रदान की गई वह शुक्ला और कृष्णा दो प्रकार की हो गई थी । अब मैं उसके शुभ नामों को बतलाता हूं उनको आप लोग सावधान चित्त वाले होकर श्रवण करो ॥३२६॥ स्वाहा, स्वधा, महाविद्या, लक्ष्मी, सरस्वती, सती, दाक्षायणी विद्या, इच्छा, शक्ति क्रियात्मिका ये नाम हैं ॥३३०॥ अपर्णा, एकपर्णा, एक पाटला, उमा, हैमवती, कल्याणी, एक मातृका ये सब उसी देवी के शुभ नाम थे ॥३३१॥ ख्याति, प्रज्ञा, महाभागा जो लोक में गौरी नाम से विश्रुत थी । गुणाम्बिका, महादेवी, नन्दिनी और जात वेदसी ये सब उसी देवी के नाम है ॥३३२॥ इसके पृथक् देहों के प्रकट होने से एक ही रूप था । सावित्री, वरदा, पुण्या, पावनी, लोक विश्रुता, आज्ञा, आवेशिनी, कृष्णा, तामसी, सात्विकी, शिवा, प्रकृति, विकृता, रौद्री, दुर्गा, भद्रा और प्रमाथिनी ये सब उसी देवी के शुभ नाम हैं ॥३३३॥३३४॥ काल रात्रि, महामाया, रेवती, भूतनायिका ये शुभनाम हे सुव्रत वालो ! द्वापर के अन्त विभाग में थे ॥३३५॥

गौतमी कौशिकी चार्या चंडी कात्यायनी सती ।
कुमारी यादवी देवी वरदा कृष्णपिंगला ॥३३६॥
बर्हिध्वजा शूलधरा परमा ब्रह्मचारिणी ।
महेद्रोपेंद्रभगिनी दृषद्वत्येकशूलधृक् ॥३३७॥
अपराजिता बहुभुजा प्रगल्भा सिंहवाहिनी ।
शुंभादिदैत्यहंत्री च महामहिषमर्दिनी ॥३३८॥
अमोघा विंध्यनिलया विक्रांता गणनायिका ।
देव्या नामविकाराणि इत्येतानि यथाक्रमम् ॥३३९॥

भद्र काल्या मयोक्तानि सम्यक्फलप्रदानि च ।
ये पठंति नरास्तेषां विद्यते न च पातकम् ॥३४०॥
अरण्ये पर्वते वापि पुरे वाप्यथवा गृहे ।
रक्षामेतां प्रयुंजीत जले वाथ स्थलेपि वा ॥३४१॥

गौतमी, कौशिकी, आर्या, चण्डी, कात्यायनी, सती, कुमारी, यादवी, देवी, वरदा, कृष्ण पिंगला, बर्हिध्वजा, शूलधरा, परमा, ब्रह्मचारिणी, महेन्द्रा, उपेन्द्र भागिनी, दृषद्वनी, एक शूल धृक् मे उसी देवी के नाम हैं ॥३३६॥३३७॥ अपराजिता, बहुभुजा, प्रगल्भा, सिंह वाहिनी, शुम्भादि दैत्यो के हनन करने वाली, महा महिष मर्दिनी, अमोघा, विन्ध्यनिलया, विक्रान्ता, गण नायिका, ये सब उस देवी के नाम विकार हैं जोकि यथाक्रम से है ॥३३८॥३३९॥ ये सब शुभ नाम मैंने भद्रकाली के बताये हैं जो भली-भाँति फलो के प्रदान करने वाले होते हैं । जो मनुष्य भगवती के इन परम शुभ एव पुण्यमय नामो का पाठ किया करते है उन मनुष्यो के कोई भी पातक शेष नही रहा करता है ॥३४०॥ अरण्य मे, पर्वत में, पुर मे अथवा घर मे इन शुभ नामो से सुरक्षा मे प्रयोग करना चाहिए तथा जल एव स्थल मे भी रक्षार्थ इन नामो का प्रयोग करे ॥३४१॥

व्याघ्रकुम्भीनचोरेभ्यो भयस्थाने विशेषतः ।
आपत्स्वपि च सर्वासु देव्या नामानि कीर्तयेत् ॥३४२॥
आर्यकग्रहभूतैश्च पूतनामातृभिस्तथा ।
अभ्यर्दितानां बालानां रक्षामेतां प्रयोजयेत् ॥३४३॥
महादेवीकले द्वे तु प्रज्ञा श्रीश्च प्रकीर्तिते ।
आभ्यां देवीसहस्राणि यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ॥३४४॥
अनया देवदेवोसौ सत्या रुद्रो महेश्वरः ।
आतिष्ठत्सर्वलोकानां हिताय परमेश्वरः ॥३४५॥
रुद्रः पशुपतिश्चासीत्पुरा दग्ध पुरत्रयम् ।
देवाश्च पशवः सर्वे बभूवुस्तस्य तेजसा ॥३४६॥

व्याघ्र, कुम्भीन और चोरों से विशेष करके भय के स्थलो में तथा सब प्रकार की आपत्तियों मे देवी के इन परम पवित्र शुभ नामों का कीर्त्तन करना चाहिये ।।३४२।। आर्यक, ग्रह और भूतो से तथा पूतना एवं मातृ गणो से पीडित बालको की रक्षा इन शुभ नामो के द्वारा करनी चाहिए ।।३४३।। महादेवी की दो कलाएँ बताई गई हैं जिनके नाम प्रज्ञा और श्री कहे गए हैं । इन दोनो से और देवी के सहस्रों नामो से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है ।।३४४।। इस सती से देवों के देव यह महेश्वर रुद्र परमेश्वर समस्त लोको के हित के लिए शास्वित होते हैं ।।३४५।। यह रुद्र पहिले पशुपति थे । इन्होने पुरत्रय को दग्ध किया था समस्त देवता उनके तेज से पशु हो गये थे ।।३४६।।

देवताओं द्वारा विविध प्रकार लिंग का वर्णन

लिंगानि कल्पयित्वैनं स्वाधिकारानुरूपतः ।
विश्वकर्मा ददौ तेषा नियोगाद्ब्रह्मणः प्रभोः ।।१।।
इन्द्रनीलमयं लिंग विष्णुना पूजितं सदा ।
पद्मरागमय शक्रो हैमं विश्रवसः सुतः ।।२।।
विश्वेदेवास्तथा रौप्यं वसवः कांतिकं शुभम् ।
आरकूटमय वायुरश्विनौ पार्थिवं सदा ।।३।।
स्फाटिकं वरुणो राजा आदित्यास्ताम्रनिर्मितम् ।
मौक्तिकं सोमराड् धीमांस्तथा लिंगमुत्तमम् ।।४।।
अनंताद्या महानागाः प्रवालकमयं शुभम् ।
दैत्या ह्ययोमयं लिंगं राक्षसाश्च महात्मनः ।।५।।
त्रैलोहिकं गुह्यकाश्च सर्वलोहमयं गणाः ।
चामुंडा सैकतं साक्षान्मातरश्च द्विजोत्तमाः ।।६।।

दारुज नैऋ तिर्भक्त्या यमो मारकतं शुभम् ।
नीलाद्याश्च तथा रुद्राः शुद्धं भस्ममयं शुभम् ।७।।

इस अध्याय मे पृथक् देव लिङ्गो का भेद और लिङ्ग स्थापन करने का फल बतलाया जाता है। सूतजी ने कहा—प्रभु ब्रह्मा के आदेश से विश्वकर्मा ने अपने अधिकार के अनुरूप लिङ्गों की कल्पना करके उनको दे दिए थे ।।१।। भगवान् विष्णु ने सदा इन्द्र नील मणि से विरचित लिङ्ग का पूजन किया था। इन्द्र ने पद्मराग मणि से विनिर्मित लिङ्ग का अर्चन किया है और विश्रवा के पुत्र ने सुवर्ण रचित लिङ्ग का पूजन किया है ।।२।। विश्वे देवो ने रौप्य, वसुगण ने चन्द्रकान्त मणि का, वायु ने पैत्तिल (आरकूटमय) लिङ्ग का, अश्विनी कुमारो ने पार्थिव लिङ्ग का सदा पूजन किया था ।।३।। वरुण ने स्फटिक मणि का, आदित्यो ने ताम्रमय का, धीमान् सोमराट् ने मुक्ता निर्मित महेश्वर के लिङ्ग का पूजन किया था ।।४।। अनन्त आदि जो महा नाग हैं उन्होने प्रवालमय शुभ का दैत्यो, ने अयोमय का, तथा राक्षसों ने भी लोहमय लिङ्ग का पूजन किया था ।।५। गुह्यको ने त्रिविध लोहमय का, गणो ने सर्व लोहमय का, चामुण्डा ने सिकता (बालू) निर्मित का पूजन किया था जोकि साक्षात् माताएँ हैं ।।६।। नैऋ ति लकडी से विरचित लिंग का भक्ति से अर्चन करता है। यम मरकत मणि के विनिर्मित शुभ लिङ्ग का पूजन करते हैं। नीलादि तथा रुद्र शुद्ध एवं शुभ भस्म मय लिङ्ग का अर्चन करते हैं ।।७।।

लक्ष्मीवृक्षमयं लक्ष्मीर्गुहो वै गोमयात्मकम् ।
मुनयो मुनिशार्दूलाः कुशाग्रमयमुत्तमम् ।।८।।
वामाद्याः पुष्पलिंगं तु गन्धलिंगं मनोन्मनी ।
सरस्वती च रत्नेन कृतं रुद्रस्य वाम्भसा ।।९।।
दुर्गा हैमं महादेवं सवेदिकमनुत्तमम् ।
उग्रा पिष्टमयं सर्वे मन्त्रा ह्याज्यमयं शुभम् ।।१०।।

वेदाः सर्वे दधिमयं पिशाचाः सीसनिर्मितम् ।
लेभिरे च यथायोग्यं प्रसादाद्ब्रह्मणः पदम् ॥११॥
बहुनात्र किमुक्तेन चराचरमिदं जगत् ।
शिवलिंगं समभ्यर्च्य स्थितमत्र न संशयः ॥१२॥
षड्विधं लिंगमित्याहुर्द्रव्याणां च प्रभेदतः ।
तेषां भेदाश्चतुर्युक्तचत्वारिंशदिति स्मृताः ॥१३॥
शैलजं प्रथमं प्रोक्तं तद्धि साक्षाच्चतुर्विधम् ।
द्वितीयं रत्नजं तच्च सप्तधा मुनिसत्तमाः ॥१४॥

लक्ष्मी देवी लक्ष्मी वृक्ष अर्थात् विल्व वृक्ष से रचित लिंग का, गृह गोमय (गोबर) से बने हुए लिंग का, मुनिशार्दूल मुनिगण कुशा से बने हुए लिंग का अर्चन किया करते हैं ॥८॥ वामादि पुष्प रचित लिंग का तथा मनोन्मनी सुगन्धित द्रव्य से निर्मित लिंग का, सरस्वती देवी रत्न से निर्मित अथवा जल से विरचित लिंग का पूजन करते हैं ॥९॥ दुर्गा सुवर्ण से रचित महादेव का जोकि सर्व वेदिक और अत्युत्तम है समर्चन करती है । उग्र आटे से निर्मित लिंग का तथा मन्त्र घृतमय शुभ लिंग का यजन करते हैं ॥१०॥ समग्र वेद दधिमय का और पिशाच लोग सीसा से निर्मित लिंग का पूजन करते हैं । सबने शिव के प्रसाद से यथायोग्य ब्रह्म के पद की प्राप्ति की थी ॥११॥ यहाँ पर इस विषय मे अत्यधिक कथन से क्या प्रयोजन है, सार युक्त बात यह है कि यह समस्त चराचर जगत शिव के लिंग का अर्चन करके ही यहाँ पर स्थित है इसमे तनिक भी संशय नही है ॥१२॥ द्रव्यो के प्रभेद होने से छैः प्रकार के लिंग कहे गये हैं । उनके भेद चार युक्त होने से चालीस हो जाते हैं ऐसा बताया गया है ॥१३॥ प्रथम शैलज लिंग कहा गया है वह साक्षात् रूप से चार प्रकार का होता है । द्वितीय लिंग रत्नो से निर्मित बताया गया है वह हे मुनिसत्तमो ! सात प्रकार का होता है ॥१४॥

तृतीयं धातुजं लिंगमष्टधा परमेष्ठिनः ।
तुरीयं दारुजं लिंग तत्तु षोडशधोच्यते ॥१५॥

मृन्मयं पञ्चमं लिंगं दिधा भिन्नं द्विजोत्तमाः ।
षष्ठं तु क्षणिक लिंगं सप्तधा परिकीर्तितम् ॥१६॥
श्रीपद रत्नजं लिग शैलजं सर्वसिद्धिदम् ।
धातुजं धनदं साक्षाद्दारुजं भोगसिद्धिदम् ॥१७॥
मृन्मयं चैव विप्रेन्द्राः सर्वसिद्धिकरं शुभम् ।
शैलजं चोत्तमं प्रोक्तं मध्यम चैव धातुजम् ॥१८॥
बहुधा लिंगभेदाश्च नव चैव समासतः ।
मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः ॥१९॥
रुद्रोपरि महादेवः प्रणवाख्यः सदाशिवः ।
लिंगवेदी महादेवी त्रिगुणा त्रिमयांबिका ॥२०॥
तया च पूजयेद्यस्तु देवी देवश्च पूजितौ ।
शैलज रत्नजं वापि धातुजं वापि दारुजम् ॥२१॥

तीसरा भेद धातु जन्य है वह परमेष्ठी का लिंग आठ प्रकार का होता है । चौथा काष्ठ से निर्मित भेद है वह लिंग सोलह प्रकार का होता है ॥१५॥ पाँचवाँ लिंग का भेद मृन्मय होता है वह भिन्न दो प्रकार का होता है । छठा भेद क्षणिक लिंग का होता है, वह सात तरह का होता है ऐसा कहा गया है ॥१६॥ रत्नज लिंग श्री का प्रदान करने वाला है और शैलज समस्त सिद्धियों के देने वाले होते हैं । धातुज लिंग अर्थात् धातुओं से विनिर्मित लिंग धन प्रदान करने वाला होता है और काष्ठ से विरचित लिंग भोग और सिद्धि दोनो के देने वाला है ॥१७॥ हे विप्रगण ! मिट्टी का लिंग समस्त सिद्धियों के करने वाला और परम शुभ होता है । सबसे उत्तम तो शैलज लिंग कहा गया है, धातु जन्य लिंग मध्यम श्रेणी का माना गया है ॥१८॥ लिंग के भेद बहुत प्रकार के हैं किन्तु संक्षेप मे नौ ही होते हैं । इसके मूल मे ब्रह्मा हैं और मध्य मे त्रिभुवन के ईश्वर विष्णु हैं ॥१९॥ रुद्र के ऊपर प्रणवाख्य सदाशिव महादेव हैं । लिंग की वेदी त्रिगुणा त्रिमयाम्बिका महादेवी हैं ॥२०॥ उसके साथ जो पूजन करता है उससे देवी और देव दोनो ही पूजित हो जाते

शैलज, धातुज, गारुज अथवा क्षाणिक मृन्मय कैसा भी हो, भक्ति से स्थापित करने से ही शुभ फल होता है ॥२१॥
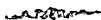
शिव का अद्वैत स्वरूप और ध्यान द्वारा प्राप्ति

निष्कलो निर्मलो नित्यः सकलत्वं कथं गतः ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं यथा पूर्वं यथा श्रुतम् ॥१॥
परमार्थविदः केचिदूचुः प्रणवरूपिणम् ।
विज्ञानमिति विप्रेन्द्राः श्रुत्वा श्रुतिशिरस्यजम् ॥२॥
शब्दादिविषयं ज्ञानं ज्ञानमित्यभिधीयते ।
तज्ज्ञानं भ्रांतिरहितमित्यन्ये नेति चापरे ॥३॥
यज्ज्ञान निर्मल शुद्धं निर्विकल्पं निराश्रयम् ।
गुरुप्रकाशक ज्ञानमित्यमन्ये मुनयो द्विजाः ॥४॥
ज्ञानेनैव भवेन्मुक्तिः प्रसादो ज्ञानसिद्धये ।
उभाभ्यां मुच्यते योगी तत्रानंदमयो भवेत् ॥५॥
वदति मुनयः केचित्कर्मणा तस्य संगतिम् ।
कल्पनाकल्पित रूप संहृत्य स्वेच्छयैव हि ॥६॥
द्यौर्मूर्धा तु विभोस्तस्य ख नाभिः परमेष्ठिनः ।
सोमसूर्याग्नयो नेत्र दिशः श्रोत्रं महात्मनः ॥७॥

इस अध्याय मे शिव शास्तव मे निर्गुण, उमायुत और षडा-ध्यादि मे योगगम्य है, इसका निरूपण किया जाता है। ऋषियों ने ने कहा—निष्कल, नित्य और निर्मल शिव सकलत्व को कैसे प्राप्त हो गये थे, इसे आपने जैसा भी पहिले सुना हो वह हमको बतलाने की योग्यता रखते हैं ॥१॥ सूतजी ने कहा—कुछ परमार्थ के वेत्ता लोगों ने इसे

प्रणव रूप वाला कहा है। उपनिषद्भाग में मज श्रवण कर विज्ञान अर्थात् शास्त्रीय ज्ञान रूप कहा है ॥२॥ अन्य विद्वान् शब्दादि विषय ज्ञान ही ज्ञान है, यह कहते हैं। दूसरे लोग उसे ज्ञान नहीं कहते हैं किन्तु भ्रान्ति से रहित प्रमात्मक ज्ञान कहते हैं ॥३॥ हे द्विजगण ! अन्य व्यासादि मुनिगण का मत है कि जो ज्ञान निर्मल, शुद्ध, निर्विकल्प, निराश्रय और गुरु अर्थात् शिव का प्रकाशक जो है वह ज्ञान है ॥४॥ ज्ञान से ही मुक्ति होती है और प्रसाद ज्ञान की सिद्धि के लिए है। इन दोनो दोनो ज्ञान और प्रसाद से योगी मुक्त होता है और वहाँ मुक्ति मे वह आनन्द मय हो जाता है ॥५॥ स्वेच्छा से ही माया से विरचित रूप को हृदय में विचार कर विधि प्रेरित निष्काम कर्म के द्वारा उस ज्ञान की प्राप्ति कुछ मुनिगण बतलाते हैं ॥६॥ विभु का स्वर्ग मूर्धा है और उस परमेष्ठी की नाभि आकाश है। सोम, सूर्य और अग्नि ये उसके नेत्र हैं और उस महान् आत्मा वाले के श्रोत्र दिशाएं हैं ॥७॥

चरणौ चैव पातालं समुद्रस्तस्य चांबरम् ।
देवास्तस्य भुजाः सर्वे नक्षत्राणि च भूषणम् ॥८॥
प्रकृतिस्तस्य पत्नी च पुरुषो लिंगमुच्यते ।
वक्त्राद्वै ब्राह्मणाः सर्वे ब्रह्मा च भगवान्प्रभुः ॥९॥
इन्द्रोपेंद्रौ भुजाभ्यां तु क्षत्रियाश्च महात्मनः ।
वैश्याश्चोरुप्रदेशात्तु शूद्राः पादात्पिनाकिनः ॥१०॥
पुष्करावर्तकाद्यास्तु केशास्तस्य प्रकीर्तिताः ।
वायवो घ्राणजास्तस्य गतिः श्रौतं स्मृतिस्तथा ॥११॥
अथानेनैव कर्मात्मा प्रकृतेस्तु प्रवर्तकः ।
पुंसा तु पुरुषः श्रीमान् ज्ञानगम्यो चान्यथा ॥१२॥
कर्मयज्ञसहस्रेभ्यस्तपोयज्ञो विशिष्यते ।
जपयज्ञसहस्रेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते ॥१३॥
तपोयज्ञसहस्रेभ्यो ध्यानयज्ञो विशिष्यते ।
ध्यानयज्ञात्परो नास्ति ध्यान ज्ञानस्य साधनम् ॥१४॥

पाताल चरण हैं और उसका अम्बर समुद्र है। समस्त देवगण उसकी भुजाएँ हैं और नक्षत्र उसके भूषण हैं ॥८॥ प्रकृति उसकी पत्नी है और पुरुष लिङ्ग है, ऐसा कहा जाता है। समस्त ब्राह्मण उसके मुख से हुये हैं और भगवान् प्रभु ब्रह्मा भी मुख से हुआ है ॥६॥ उस महा-की भुजाओं से इन्द्र और उपेन्द्र तथा क्षत्रिय उत्पन्न हुए हैं। पिनाकी के ऊरुओं के प्रदेश से वैश्य तथा पदों से शूद्र हुए हैं ॥१०॥ पुष्करावर्तक आदि मेघ उसके केश कहे गये हैं। वायु घ्राण से जन्य हैं और श्रुति से कहे हुए तथा स्मृति से कहे हुए कर्म भी समुत्पन्न हुए हैं ॥११॥ इसके अनन्तर सर्ग के आदि काल में इसके द्वारा ही कर्म प्रवर्त्तक तथा प्रकृति का प्रेरक श्रीमान् विराट् पुरुष ज्ञान के द्वारा ही जानने के योग्य होता है अन्यथा इन्द्रिय आदि के प्रत्यक्ष का विषय नहीं होता है ॥१२॥ सहस्रों कर्म यज्ञों से तपो यज्ञ विशिष्ट होता है। सहस्रों ही तपो यज्ञों से जप यज्ञ विशेषता वाला होता है ॥१३॥ इसी भाँति सहस्र जप यज्ञों से ध्यान यज्ञ को विशिष्ट कहा गया है। ध्यान यज्ञ सबसे विशिष्ट होता है। इससे पर अन्य कुछ भी नहीं होता है क्योंकि यह ध्यान ही ज्ञान का साधन होता है ॥१४॥

यदा समरसे निष्ठो योगी ध्यानेन पश्यति।
ध्यानयज्ञरतस्यास्य तदा सन्निहितः शिवः ॥१५॥
नास्ति विज्ञानिना शौच प्रायश्चित्तादि चोदना।
विशुद्धा विद्यया सर्वे ब्रह्मविद्याविदो जनाः ॥१६॥
नास्ति क्रिया च लोकेषु सुखं दुःखं विचारतः।
धर्माधर्मौ जपो होमो ध्यानिना सन्निधिः सदा ॥१७॥
परानन्दात्मकं लिंग विशुद्धं शिवमक्षरम्।
निष्कलं सर्वगं ज्ञेयं योगिना हृदि संस्थितम् ॥१८॥
लिंग तु द्विविधं प्राहुर्बाह्यमाभ्यंतरं द्विजाः।
बाह्यं स्थूलं मुनिश्रेष्ठाः सूक्ष्ममाभ्यंतरं द्विजा ॥१६॥

प्रणव रूप वाला कहा है। उपनिषद्भाग में श्रज श्रवण कर विज्ञान श्रर्थात् शास्त्रीय ज्ञान रूप कहा है ॥२॥ अन्य विद्वान् शब्दादि विषय ज्ञान ही ज्ञान है, यह कहते हैं। दूसरे लोग उसे ज्ञान नहीं कहते हैं किन्तु भ्रान्ति से रहित *प्रमात्मक ज्ञान कहते हैं ॥३॥* हे द्विजगण ! अन्य व्यासादि मुनिगण का मत है कि जो ज्ञान निर्मल, शुद्ध, निर्विकल्प, निराश्रय और गुरु अर्थात् शिव का प्रकाशक जो है वह ज्ञान है ॥४॥ ज्ञान से ही मुक्ति होती है और प्रसाद ज्ञान की सिद्धि के लिए है। इन दोनो दोनो ज्ञान और प्रसाद से योगी मुक्त होता है और वहाँ मुक्ति मे वह आनन्द मय हो जाता है ॥५॥ स्वेच्छा से ही माया से विरचित रूप को हृदय में विचार कर विधि प्रेरित निष्काम कर्म के द्वारा उस ज्ञान की प्राप्ति कुछ मुनिगण बतलाते हैं ॥६॥ विभु का स्वर्ग मूर्धा है और उस परमेष्ठी की नाभि आकाश है। सोम, सूर्य और अग्नि ये उसके नेत्र हैं और उस महान् आत्मा वाले के श्रोत्र दिशाएँ हैं ॥७॥

चरणौ चैव पातालं समुद्रस्तस्य चांबरम् ।
देवास्तस्य भुजाः सर्वे नक्षत्राणि च भूषणम् ॥८॥
प्रकृतिस्तस्य पत्नी च पुरुषो लिंगमुच्यते ।
वक्राद्वै ब्राह्मणाः सर्वे ब्रह्मा च भगवान्प्रभुः ॥९॥
इन्द्रोपेंद्रौ भुजाभ्यां तु क्ष त्रयाश्च महात्मनः ।
वैश्याश्चोरुप्रदेशात्तु शूद्राः पादात्पिनाकिनः ॥१०॥
पुष्करावर्तकाद्यास्तु केशास्तस्य प्रकीर्तिताः ।
वायवो घ्राणजास्तस्य गतिः श्रौतं स्मृतिस्तथा ॥११॥
अथानेनैव कर्मात्मा प्रकृतेस्तु प्रवर्तकः ।
पुंसां तु पुरुषः श्रीमान् ज्ञानगम्यो चान्यथा ॥१२॥
कर्मयज्ञसहस्रेभ्यस्तपोयज्ञो विशिष्यते ।
जपयज्ञसहस्रेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते ॥१३॥
तपोयज्ञसहस्रेभ्यो ध्यानयज्ञो विशिष्यते ।
ध्यानयज्ञात्परो नास्ति ध्यानं ज्ञानस्य साधनम् ॥१४॥

पाताल चरण हैं और उसका अम्बर समुद्र है। समस्त देवगण उसकी भुजाएं हैं और नक्षत्र उसके भूषण हैं ॥८॥ प्रकृति उसकी पत्नी है और पुरुष लिङ्ग है, ऐसा कहा जाता है। समस्त ब्राह्मण उसके मुख से हुये हैं और भगवान् प्रभु ब्रह्मा भी मुख से हुआ है ॥६॥ उस महा-की भुजाओं से इन्द्र और उपेन्द्र तथा क्षत्रिय उत्पन्न हुए हैं। पिनाकी के ऊरुओं के प्रदेश से वैश्य तथा पदों से शूद्र हुए हैं ॥१०॥ पुष्करावर्तक आदि मेघ उसके केश कहे गये हैं। वायु घ्राण से जन्य है और श्रुति से कहे हुए तथा स्मृति से कहे हुए कर्म भी समुत्पन्न हुए हैं ॥११॥ इसके अनन्तर सर्ग के आदि काल में इसके द्वारा ही कर्म प्रवर्त्तक तथा प्रकृति का प्रेरक श्री मान् विराट पुरुष ज्ञान के द्वारा ही जानने के योग्य होता है अन्यथा इन्द्रिय आदि के प्रत्यक्ष का विषय नहीं होता है ॥१२॥ सहस्रों कर्म यज्ञों से तपो यज्ञ विशिष्ट होता है। सहस्रों ही तपो यज्ञों से जप यज्ञ विशेषता वाला होता है ॥१३॥ इसी भाँति सहस्र जप यज्ञों से ध्यान यज्ञ को विशिष्ट कहा गया है। ध्यान यज्ञ सबसे विशिष्ट होता है। इससे पर अन्य कुछ भी नहीं होता है क्योंकि यह ध्यान ही ज्ञान का साधन होता है ॥१४॥

यदा समरसे निष्ठो योगी ध्यानेन पश्यति ।
ध्यानयज्ञरतस्यास्य तदा सन्निहित शिव ॥१५॥
नास्ति विज्ञानिना शौच प्रायश्चित्तादि चोदना ।
विशुद्धा विद्यया सर्वे ब्रह्मविद्याविदो जना ॥१६॥
नास्ति क्रिया च लोकेपु सुख दु ख विचारत ।
धर्माधर्मौ जपो होमो ध्यानिना सन्निधि सदा ॥१७॥
परानदात्मक लिंग विशुद्ध शिवमक्षरम् ।
निष्कल सर्वग ज्ञेय योगिना हृदि सस्थितम् ॥१८॥
लिंग तु द्विविध प्राहुर्बाह्यमाभ्यतर द्विजा ।
बाह्य स्थूल मुनिश्रेष्ठा सूक्ष्ममाभ्यतर द्विजा ॥१६॥

कर्मयज्ञरताः स्थूलाः स्थूललिंगार्चनेरताः ।
असतां भावनार्थाय नान्यथा स्थूलविग्रहः ॥२०॥
आध्यात्मिकं च यल्लिंगं प्रत्यक्षं यस्य नो भवेत् ।
असौ मूढो बहिः सर्वं कल्पयित्वैव नान्यथा ॥२१॥

जिस समय समरस मे निष्ठा रखने वाला योगी ध्यान से देखता है तब ध्यान यज्ञ मे रत रहने वाले इस योगी के शिव सन्निहित रहा करते हैं ॥१५॥ जो विज्ञानी पुरुष हैं उनको शुद्धि का विचार और प्रायश्चित्त करने की प्रेरणा नही होती है । ब्रह्म विद्या के ज्ञाता मनुष्य सब उस अपनी विद्या से ही विशुद्ध होते हैं ॥१६॥ लोको मे सुख और दु.ख के विचार से क्रिया नही है । धर्म अधर्म, जप होम आदि की कुछ भी विचारणा वहाँ नही होती है क्योकि ध्यानियो के तो सदाशिव की सन्निधि रहती है ॥१७॥ परमानन्द स्वरूप, अक्षर, विशुद्ध, निष्कल और सर्वत्र गमन करने वाला शिव लिंग ज्ञानियो के हृदय मे सस्थित जानना चाहिये ॥१८॥ हे द्विजो ! यह लिंग वाह्य और आभ्यन्तर दो प्रकार का कहा गया है । हे मुनिश्रेष्ठो ! वाह्य लिंग स्थूल होता है और आभ्यन्तर सूक्ष्म लिंग होता है ॥१९॥ जो मनुष्य कर्म यज्ञ मे रत होते हैं वे स्थूल हैं और स्थूल ही लिंग के अर्चन मे रत रहा करते है। जो अज्ञानी असत् पुरुष हैं उनकी भावना के अर्थ के लिए ही स्थूल विग्रह पार्थिव लिंग का स्वरूप होता है वस्तुत विचार से नही होता है ॥२०॥ आध्यात्मिक जो लिंग है उसका प्रत्यक्ष नही होता है किन्तु जो ज्ञानी नहीं है मूढ हैं वे बाहिर इसकी सब कल्पना किया करते है अर्थात् स्थूल की अर्चना करते हैं अन्यथा यह कुछ नही है ॥२१॥

ज्ञानिनां सूक्ष्मममलं भवेत्प्रत्यक्षमव्ययम् ।
यथा स्थूलमयुक्तानां मृत्काष्ठाद्यैः प्रकल्पितम् ॥२२॥
अर्थो विचारतो नास्तीत्यन्ये तत्त्वार्थवेदिनः ।
निष्कलः सकलश्चेति सर्वं शिवमयं ततः ॥२३॥

व्योमैवमपि दृष्टं हि शरावं प्रति सुव्रता ।
पृथक्त्वं चापृथक्त्वं च शंकरस्येति चापरे ॥२४॥
प्रत्ययार्थं हि जगतामेकस्थोपि दिवाकरः ।
एकपि बहुधा दृष्टो जलाधारेषु सुव्रता ॥२५॥
जंतवो दिवि भूमा च सर्वे वै पांचभौतिकाः ।
तथापि बहुला दृष्टा जातिव्यक्तिविभेदतः ॥२६॥
दृश्यते श्रूयते यद्यत्तत्तद्विद्धि शिवात्मकम् ।
भेदो जनानां लोकेस्मिन्प्रतिभासो विचारतः ॥२७॥
स्वप्ने च विपुलान् भोगान् भुक्त्वा मर्त्यः सुखी भवेत् ।
दुःखी च भोग दुःख च नानुभूत विचारतः ॥२८॥

ध्यान योगी ज्ञानियों को तो सूक्ष्म, अमल, अव्यय का प्रत्यक्ष होता है। जिस प्रकार से अयुक्तों को मूर्त्ति का तथा काष्ठ आदि से कल्पित स्थूल का प्रत्यक्ष है ॥२२॥ विचार से देखा जावे तो स्थूल कुछ भी नहीं है। अन्य तत्त्वार्थ के ज्ञाता लोग यही कहते है। निष्कल अर्थात् निर्गुण और सकल यह सब शिवमय ही होता है ॥२३॥ जिस तरह यह आकाश तो एक ही सवत्र दिखाई देने वाला होता है किन्तु शराव के प्रति भिन्नता होती है उसी भाँति शङ्कर का पृथक्त्व और अपृथक्त्व होता है, ऐसा दूसरे लोग कहते हैं ॥२४॥ हे सुव्रत वालो ! जगतो को प्रत्यय कराने के लिए एक ही जगह पर स्थित दिवाकर जो वस्तुतः एक ही है जलादि आधारो मे बहुत स्वरूप वाला देखा हुआ होता है ॥२५॥ दिवलोक मे और भूमि मे रहने वाले समस्त जन्तुगण पाँच भौतिक होते है तो भी जाति और व्यक्ति भेदो से ये बहुत देखे गये हैं ॥२६॥ जो कुछ भी दिखलाई देता है और जो कुछ भी सुना जाता है उन सबको शिव स्वरूप ही जानना चाहिए। इस लोक मे जनों का भेद केवल विचार से प्रति भास मात्र ही होता है ॥२७॥ स्वप्न मे मनुष्य बहुत से भोगो का उपभोग करके सुखी होता है और कभी-कभी वह स्वप्न में

कुछ ऐसा भी देखता है कि उससे दुःखी हो जाता है किन्तु यह भोग और दुःख विचार से यह देखा जावे तो कुछ भी अनुभूत नहीं है ।।२८।।

एवमाहुस्तथान्ये च सर्वे वेदार्थतत्त्वगाः ।
हृदि संसारिणां साक्षात्सकलः परमेश्वरः ।।२९।।
योगिनां निष्कलो देवो ज्ञानिनां च जगन्मयः ।
त्रिविधं परमेशस्य वपुर्लोके प्रशस्यते ।।३०।।
निष्कलं प्रथमं चैकं ततः सकलनिष्कलम् ।
तृतीयं सकलं चैव नान्यथेति द्विजोत्तमाः ।।३१।।
अर्चयंति मुहुः केचित्सदा सकलनिष्कलम् ।
सर्वज्ञं हृदये केचिच्छिवलिंगे विभावसौ ।।३२।।
सकलं मुनयः केचित्सदा संसारवर्तिनः ।
एवमभ्यर्चयंत्येव सदाराः ससुता नराः ।।३३।।
यथा शिवस्तथा देवी यथा देवी तथा शिवः ।
तस्मादभेदबुद्ध्यैव सप्तविंशत्प्रभेदतः ।।३४।।
यजति देहे बाह्ये च चतुष्कोणे षडस्रके ।
दशारे द्वादशारे च षोडशारे त्रिरस्रके ।।३५।।
स स्वेच्छया शिवः साक्षाद्देव्या सार्धं स्थितः प्रभुः ।
संतारणार्थं च शिवः सदसद्व्यक्तिवर्जितः ।।३६।।
तमेकमाहुर्द्विगुणं च केचित्केचित्तमाहुस्त्रिगुणात्मकं च ।
ऊचुस्तथा तं च शिवं तथान्ये संसारिणं वेदविदो वदंति ।।३७।।

इसी प्रकार से यह सब अन्य वेदार्थ के तत्व के ज्ञाता कहते हैं कि ससारी पुरुषो के हृदय मे साक्षात् सकल परमेश्वर है ।।२९।। योगी जनो के विचार से वह देव निष्कल अर्थात् निर्गुण होता है तथा ज्ञानियो की दृष्टि से वह जगत् स्वरूप ही होता है । इस प्रकार से लोक में ही परमेश का वपु तीन प्रकार का प्रशस्त माना जाता है ।।३०।। सर्वप्रथम निष्कल एक है। इसके अनन्तर सकल, निष्कल दूसरा होता है और तीसरा सकल स्वरूप होता है । हे द्विजश्रेष्ठो ! इन तीनो स्वरूपो से

अन्यथा नहीं है ॥३१॥ कुछ ज्ञानी पुरुष सर्वदा द्रष्टा के भेद से निर्गुण, सगुण रूप वाला जो शिव का स्वरूप है उसका ही निरन्तर अर्चन किया करते हैं। कुछ योगी लोग हृदय में सर्वज्ञ निष्कल का ही यजन किया करते हैं और कुछ संसार में रहने वाले मुनिगण सर्वदा सगुण का विभा वसु शिव लिंग में समर्चन किया करते हैं ॥३१॥३२॥ इस प्रकार से स्त्री और पुत्रादि के सहित मनुष्य सदा परमेश्वर शिव के सगुण स्वरूप का ही पूजन करते हैं ॥३३॥ शिव और जगदम्बा देवी का अभेद बताते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार के शिव हैं वैसी ही देवी हैं और जैसी देवी हैं उसी रूप में स्थित शिव हैं। इस कारण से दोनों के अभेद की बुद्धि से ही सत्ताईश प्रभेदों में यजन किया करते हैं ॥३४॥ देह में अर्थात् अपने शरीर में, मण्डल में चतुष्कोण आदि षट् स्थानों में यजन किया करते हैं। अजपा जप के विधान में इन स्थानों को बताया गया है। मूलाधार में चतुष्कोण, स्वाधिष्ठान में षड् दल, और मूर्धा में दशार उसी को सहस्रार कहा जाता है, हृदय में द्वादशार, कण्ठ में षोडशार और भ्रूमध्य में त्रिरस्र जानना चाहिये। ॥३५॥ वह शिव साक्षात् अपनी इच्छा से प्रभु देवी के साथ स्थित हैं। वह निर्गुण प्रभु लोकों के उद्धार के लिए ही इस सगुण साकार रूप में विग्रह धारण करने वाले हुये हैं ॥३६॥ एक अद्वितीय उन शिव को, जिन्होंने अपनी इच्छा से शरीर धारण किया है, दो गुण वाला अर्थात् प्रकृति-पुरुष रूप कुछ लोग कहते हैं तथा कोई अन्य विद्वान् उनके त्रिगुणात्मक अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, त्रिदेव कहते हैं एवं अन्य वेद के वक्ता लोग उन शिव प्रभु को समस्त संसार का जनक कहा करते हैं। ॥३७॥

शिवजी ही सर्व-शक्ति मान हैं

कोहं ब्रह्माथवा देवा दैत्या देवारिसूदनाः ।
मुनयश्च महात्मानः प्रसादेन विना प्रभोः ॥
यः सर्वविशको नित्यः परात्परतरः प्रभुः ।
विश्वामरेश्वरो वंद्यो विश्वाधारो महेश्वर. ॥
स एव सर्व देवेशः सर्वेषामपि शङ्करः ।
लीलया देवदैत्येंद्रविभागमकरोद्धरः ॥
तस्यांशमेकं संपूज्य देवा देवत्वमागताः ।
ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नो ह्यहं विष्णुत्वमेक च ॥
तमपूज्य जगत्यस्मिन् कः पुमान् सिद्धिमिच्छति ।
तस्मात्तेनैव हंतव्या लिंगार्चनविधेर्बलात् ॥

मैं कौन हू, ब्रह्मा, देव, दैत्य, देवारि सूदन, मुनिगण और महात्मा बिना प्रभु के प्रसाद के कोई भी कुछ नहीं है अर्थात् किसी भी कुछ सामर्थ्य-शक्ति नहीं है। जो सर्वविशक अर्थात् जीवेश भेद को लेकर नित्य, परात्पर, प्रभु, विश्व और अमरो का ईश्वर, विश्व का आधार महेश्वर है वह ही वन्दना करने के योग्य हैं। वह ही सर्व देवो का ईश है और सबका शङ्कर अर्थात् कल्याण करने वाला है। हर ने ही लीला से देवो और दैत्येन्द्रो का विभाग किया है। उस रुद्र के एक अंश लिङ्ग रूप का सम्पूजन करके देव देवत्व को प्राप्त हुए हैं। यह ब्रह्मा ब्रह्मत्व को प्राप्त हुआ है और मैं इस विष्णुत्व के पद को प्राप्त हुआ हू। इस जगत में उसकी पूजा, अर्चना करके कौन पुरुष सिद्धि की इच्छा कर सकता है। इसलिए लिङ्गार्चन विधि के बल से ये उसी के द्वारा हनन